महाबोधि-ग्रंथमाला—४ पुष्प

सुत्तपिटकका

दीघ-निकाय

अनुवादक

भिक्षु राहुल सांकृत्यायन

भिक्षु जगदीश काश्यप (एम्० ए०)

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ (बनारस)

बुद्धाब्द
२४७९
१९३६ ई०

प्रकाशक
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय, बी० ए०
प्रधान-मन्त्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ (बनारस)

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

समर्पण

करुणामय विद्यामूर्त्ति गुरुवर **श्रीधर्मानन्द**

नायक महास्थविरपादके करकमलोमे

शिष्यद्वयकी सादर भेंट ।

प्रकाशकीय निवेदन

आज हम महाबोधि-ग्रन्थमालाके इस चतुर्थ पुष्प दीर्घ-निकायको पाठकोके सन्मुख उपस्थित करते है। हमे यह कहते दुःख होता है, कि आर्थिक कठिनाइयोके कारण सयुक्तनिकाय (हिन्दी अनुवाद) के तैयार होते हुये भी हम इस समय उसे प्रकाशित करनेमे असमर्थ है। हम अपने इन दाताओके बहुत कृतज्ञ है, जिन्होने इस शुभकार्यमे धन दे हमारी सहायता की है—

सेठ युगलकिशोर बिडला	५००)
U. Thwin, Rangoon	१००)
डाक्टर पेडामल, अमृतसर	१००)
Quah Ee Sin, Rangoon	१००)

१९-२-३७

विनम्र
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय
प्रधानमत्री,
महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

प्राक्कथन

दी घ नि का य त्रिपिटकके सुत्त(=सूत्र) पिटकके पाँच निकायोमेंसे पहिला है। म ज्झि म नि का य का नबर यद्यपि इसके बाद आता है, किन्तु, उपयोगिताका ख्याल कर उसे पहिले प्रकाशित किया गया। बुद्धचर्या और विनय पिटक की भूमिकाओमे सक्षेपसे वतलाया जा चुका है, कि कैसे बुद्धनिर्वाणके ढाईसौ वर्षोके भीतर ही बौद्धधर्ममे १८ निकाय (=सम्प्रदाय) हो गये। इन सभी निकायोके अपने अपने पिटक थे, या यो कहिये, वेदकी भिन्न भिन्न शाखाओमे जैसे पाठभेद तथा कुछ न्यूनाधिक मत्र मिलते है, वैसे ही इन निकायोके पिटकोमे भी कितने ही पाठभेद और कितने ही सुत्तोकी कमी बेशी थी। किन्तु, उन अठारह निकायोमेसे एक स्थ वि र(=थेर) वाद ही रह गया है, जिसका पिटक पाली भाषामे है, और जिसके एक ग्रथका अनुवाद हम आज पाठकोके सामने रख रहे है। बाकी नि का य लुप्त हो गये, और उनके वही ग्रथ वच रहे है, जो चीनी या तिब्बती भाषामे अनुवादित हो चुके थे।

नि का य के लिये दूसरा प्रतिशब्द आ ग म है। पालीमे भी आगम शब्द अज्ञात नही है, तो भी अधिकतर निकाय शब्दहीका प्रयोग होता है, किन्तु, सस्कृत पिटकमे आगम ही प्रचलित शब्द था। चीनी भाषामे यही अपभ्रष्ट हो अ गो न् कहा जाता है। चीनी दीर्घागममे ३० सूत्र है, किन्तु, पालीमे चौतीस।

तुलनाके लिये देखिये*—		अन्यत्र भी
१—ब्रह्मजालT	दी० २१	Nanjio's 554
२—सामञ्ञफल	दी० २७	N 593
३—अम्बट्ठ	दी० २०	N 592
४—सोणदड	दी० २२	
५—कुटदन्त	दी० २३	
६—महालि		
७—जालिय		
८—कस्सपसीहनाद	दी० २५	
९—पोट्ठपाद	दी० २८	
१०—सुभ		
११—केवट्ट	दी० २४	
१२—लोहिच्च	दी० २९	
१३—तेविज्ज	दी० २६	

---

*दी=दीर्घागम, म=मध्यमागम। दी=दीर्घागम (Nanjio's 545), म=मध्यमागम (Nanjio's 342) T=तिब्बतीय अनुवाद स्कन्ज्युर (के, चि)।

१४—महापदान	दी० १	
१५—महानिदान	दी० १३	N 542 97 and 553
१६—महापरिनिव्वाण	दी० २	N 552
१७—महासुदस्सन	म० ६८	
१८—जनवसभ	दी० ४	
१९—महागोविंद	दी० ३	
२०—महासमय T	दी० १९	
२१—सक्कपञ्ह	दी० १४	N 542 134
२२—महासतिपट्ठान	म० ९८	
२३—पायासिराजञ्ञ	दी० ७	N 542 71
२४—पाथिक	दी० १५	
२५—उदुम्बरिकसीहनाद	दी० ८	N 542 104
२६—चक्कवत्तिसीहनाद	दी० ६	N 542 70
२७—अग्गञ्ञ	दी० ५	N 542 154
२८—सम्पसादनिय	दी० १८	
२९—पासादिक	दी० १७	
३०—लक्खण	म० ५९	
३१—सिगालोवाद	दी० १६	N 543 135, 555, 595
३२—आटानाटिय T		
३३—सगीति	दी० ९	
३४—दसुत्तर	दी० १०	N 548

इसे देखनेसे मालूम होगा कि पालीके ३४ सुत्तोमे २७ चीनी दीर्घागममे मिलते है, शेष सातमे ३ मध्यमागममे मिलते है, और ४ का पता नही लगा है। इन सूत्रोका अनुवादकाल इस प्रकार है—

		काल (ई०)	अनुवादक
१५—महानिदान	(N 553)	१४६	अन्-शि-काऊ
३१—सिगाल	(N 555)	(?),,	,,
३४—दसुत्तर	(N 548)	,,	,,
१—ब्रह्मजाल	(N 554)	२४०(?)	गा-खि-एन्
३—अम्बट्ठ	(N 592)	,,	,,
१६—महापरिनिब्बाण	(N 552)	३००(?)	पो-फा-चु (२९०-३०६ ई०)
३१—सिगालोवाद	(N 595)	,,	धर्मरक्ष
२—सामञ्ञ	(N 593)	,,	,,
दीर्घागम	(N 545)	४१२-१३	बुद्धयश
मध्यमागम	(N 542)	३९७-९८	गौतम सघदेव

इस प्रकार दीर्घागमके तीन सूत्रोका अनुवाद १४६ ई० के आसपास हुआ था।

अनुवादोमे यह नही वतलाया गया है, कि यह किस सप्रदायसे सवन्ध रखते है, किन्तु हम दीर्घागमके अनुवादक बुद्धयश (४०३-१३ ई०) को धर्मगुप्तिक विनय ग्रन्थो (N 1117, 1155) का

भी अनुवाद करते देखते हैं, इससे ख्याल होता है, शायद यह धर्मगुप्तिकसप्रदायका दीर्घागम।
सूत्रोके मिलानेसे मालूम होता है, कि सस्कृत और पाली सूत्रोमे बहुत अन्तर नही था।

× × ×

हम दोनोने अलग अलग सूत्रोके अनुवाद किये है। यद्यपि एक बार फिर एक दूसरेके अनुवादको देख लिया गया है, तोभी कही कही भाषाकी विषमता रह गई है।

धम्मपद, मज्झिमनिकाय, विनयपिटक और दीघनिकायके हिन्दी अनुवादोको पाठकोके सामने रखा जा चुका। हमारे पूर्व सकल्पके अनुसार स यु त्त नि का य तथा उदान-सुत्तनिपात-मिलिन्दपञ्ह दो जिल्द और बाकी रहते हैं, जिनके कि अनुवाद तैयार है। यदि हिन्दी-प्रेमी और पाठक, प्रकाशक को आर्थिक सहायता दे प्रोत्साहित करेगे, तो वह दोनो भाग भी समयपर निकल जायेगे। भदन्त आनन्दके जातक-हिन्दी अनुवादका प्रथम भाग भी प्रेसमे है। हमे यह प्रसन्नता हो रही है, कि बौद्धधर्मके मौलिक साहित्यके सबधमे हिन्दी अपने अनुरूप स्थानको लेने जा रही है।

१७-७-३५ } राहुल साकृत्यायन
जगदीश काश्यप

सुत्त (=सूत्र) विषय-सूची

१—सीलक्खन्ध वग्ग

पृष्ठ

१—(१) ब्रह्मजाल-सुत्त १

१—साधारण बातें २
(१) आरम्भिक शील २
(२) मध्यम शील ३
(३) महाशील ४
२—असाधारण बातें ५
(बासठ दार्शनिक मत)
(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें ५
१—शाश्वतवाद ६
२—नित्यता-अनित्यतावाद ७
३—सान्त-अनन्तवाद ८
४—अमराविक्षेपवाद ९
५—अकारणवाद १०
(२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें ११
६—मरणान्तर होशवाला आत्मा ११
७—मरणान्तर बेहोश आत्मा १२
८—मरणान्तर न होश न बेहोश आत्मा १२
९—आत्माका उच्छेद १२
१०—इसी जन्ममें निर्वाण १३

२—(२) सामञ्ञफल-सुत्त १६

१—छै तीर्थंकरोंका मत १९
(१) पूर्ण काश्यपका मत
(अक्रियवाद) १९
(२) मक्खलि गोसालका मत
(दैववाद) २०
(३) अजित केश कम्बलका मत
(जडवाद) २०

पृष्ठ

(४) प्रकुध कात्यायनका मत
(अकृततावाद) २१
(५) निगण्ठ नाथपुत्तका मत
(चातुर्याम संवर) २१
(६) संजय वेलट्ठिपुत्तका मत
(अनिश्चितता वाद) २२
२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल २२
१—शील २४
(१) आरम्भिक शील २४
(२) मध्यम शील २४
(३) महाशील २६
(४) इन्द्रियोंका संयम २७
(५) स्मृति सम्प्रजन्य २७
(६) सन्तोष २७
२—समाधि २८
(१) प्रथम ध्यान २८
(२) द्वितीय ध्यान २९
(३) तृतीय ध्यान २९
(४) चतुर्थ ध्यान २९
३—प्रज्ञा ३०
(१) ज्ञान ३०
(२) मनोमय शरीरका निर्माण ३०
(३) ऋद्धियाँ ३०
(४) दिव्यश्रोत्र ३१
(५) परचित्तज्ञान ३१
(६) पूर्वजन्मोंका स्मरण ३१
(७) दिव्य चक्षु ३१
(८) दुःख क्षय ३२

३—(३) अम्बट्ठ-सुत्त ३४

१—अम्बट्ठका शाक्यों पर आक्षेप ३५

पृष्ठ

२—शाक्योकी उत्पत्ति ३६
३—जात पाँतका खण्डन ३८
४—विद्या और आचरण ३९
५—विद्याचरणके चार विघ्न ४०

४—(४) सोणदण्ड-सुत्त ४४

१—ब्राह्मण बनाने वाले धर्म ४५
२—शील ४७
३—प्रज्ञा ४७

५—(५) कुटदन्त-सुत्त ४८

१—बुद्धकी प्रशसा ४९
२—अहिसामय यज्ञ (महाविजितजातक) ५०
(१) बहुत सामग्री का यज्ञ ५०
१—राजयुद्ध ५०
२—होम यज्ञ ५१
(२) अल्पसामग्रीका यज्ञ ५३
१—दानयज्ञ ५४
२—त्रिशरण यज्ञ ५४
३—शिक्षापद यज्ञ ५४
४—शीलयज्ञ ५४
५—समाधि यज्ञ ५५
६—प्रज्ञा यज्ञ ५५

६—(६) महालि-सुत्त ५६

१—भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत्तकथा) ५७
(१) समाधिके चमत्कार नही ५७
(२) निर्वाण साक्षात्कारके लिये ५७
(३) आत्मवाद नही ५८
(४) निर्वाण साक्षात्कारके उपाय ५८
१—शील ५८
२—समाधि ५८
३—प्रज्ञा ५८

७—(७) जालिय-सुत्त ५९

१—जीव और शरीरका भेद अभेद-कथन अयुक्त ५९
१—शीलसे ५९
२—समाधिसे ५९
३—प्रज्ञासे ५९

पृष्ठ

८—(८) कस्सपसीहनाद-सुत्त ६१

१—सभी तपस्याये निन्द्य नही ६१
२—सच्ची धर्मचर्य्यामे सहमत ६१
३—झूठी शारीरिक तपस्याये ६२
४—सच्ची तपस्याये ६३
(१) शीलसम्पत्ति ६४
(२) चित्त सम्पत्ति ६४
(३) प्रज्ञासम्पत्ति ६४
५—बुद्ध का सिहनाद ६५

९—(९) पोट्ठपाद-सुत्त ६७

१—व्यर्थकी कथाये ६७
२—सज्ञानिरोध सप्रज्ञात समापत्ति ६८
(१) शीलसम्पत्ति ६८
(२) समाधि सम्पत्ति ६८
३—सज्ञा और आत्मा ७०
(१) अव्याकृत (=अनिर्वचनीय) ७१
(२) आत्मवाद ७२
(३) तीन प्रकारके शरीर ७३
(४) वर्तमान शरीर ही सत्य ७४

१०—(१०) सुभ-सुत्त ७६

१—धर्मके तीन स्कन्ध ७७
(१) शील स्कन्ध ७७
(२) समाधि स्कन्ध ७७
(३) प्रज्ञा स्कन्ध ७७

११—(११) केवट्ट-सुत्त ७८

१—ऋद्धियोका दिखाना निषिद्ध ७८
२—तीन ऋद्धि प्रातिहार्य ७८
३—चारो भूतोका निरोध कहाँपर ७९
(१) सारे देवता अनभिज्ञ ७९
(२) अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्म वचना ८०
(३) बुद्ध ही जानकार ८०

१२—(१२) लोहिच्च-सुत्त ८२

१—धर्मोपर आक्षेप ८२
२—सभीपर आक्षेप ठीक नही ८३

पृष्ठ

३—झूठे गुरु ८४
४—सच्चे गुरु ८५
(१) शील ८५
(२) समाधि ८५
(३) प्रज्ञा ८५

१३—(१३) तेविज्ज-सुत्त *८६*

ब्रह्माकी सलोकताका मार्ग ८६
१—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ ८७
२—बुद्धका बतलाया मार्ग ९०
(१) मैत्री भावना ९१
(२) करुणा भावना ९१
(३) मुदिता भावना ९१
(४) उपेक्षा भावना ९१

२—महावग्ग ९३

१४—(१) महापदान-सुत्त *९५*

१—विपश्यी आदि छ बुद्धोकी जाति गोत्र आदि ९५
२—विपश्यी बुद्धकी जीवनी ९७
(१) जाति गोत्र आदि ९७
(२) गर्भमे आनेके लक्षण ९८
(३) बत्तीस शरीर लक्षण ९९
(४) गृहत्यागके चार पूर्वलक्षण १०१
१—वृद्ध १०१
२—रोगी १०२
३—मृत १०२
४—सन्यास १०३
(५) सन्यास १०३
(६) बुद्धत्वप्राप्ति १०३
(७) धर्मचक्रप्रवर्तन १०५
(८) शिष्यो द्वारा धर्म प्रचार १०८
(९) देवता साक्षी १०९

१५—(२) महानिदान-सुत्त *११०*

अनात्मवाद ११०
१—प्रतीत्य समुत्पाद ११०
२—नाना आत्मवाद ११३
३—अनात्मवाद ११३
४—प्रज्ञाविमुक्त ११५
५—उभयतो भाग विमुक्त ११६

१६—(३) महापरिनिब्बाण-सुत्त *११७*

१—वज्जियो के विरुद्ध अजात शत्रु ११७
२—हानिसे बचनेके सात उपाय ११८
३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा १२२
(१) बुद्धके प्रतिसारिपुत्रका उद्गार १२२
(२) पाटलिपुत्रका निर्माण १२४
(३) धर्म-आदर्श १२६
(४) अम्बपाली गणिकाका भोजन १२७
(५) सख्त बीमारी १२९
(६) निर्वाणकी तैयारी १३१
(७) महाप्रदेश (कसौटी) १३५
(८) चुन्दका अन्तिम भोजन १३६
४—जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ १४०
(१) चार दर्शनीय स्थान १४१
(२) स्त्रियो के प्रति भिक्षुओ का वर्ताव १४१
(३) चक्रवर्ती की दाह क्रिया १४२
(४) आनन्द के गुण १४२
(५) चक्रवर्ती के चार गुण १४३
(६) महानुदर्शन जातक १४३
(७) सुभद्रकी प्रव्रज्या १४४
(८) अन्तिम उपदेश १४६
५—निर्वाण १४७
६—महाकाश्यप को दर्शन १४९
७—दाहक्रिया १५०
८—स्तूपनिर्माण १५०

१७—(४) महासुदस्सन-सुत्त *१५२*

१—कुशावती राजधानी १५२
२—चक्रवर्ती के सात रत्न १५३
३—चार ऋद्धियाँ १५५
४—धर्म प्रासाद (महल) १५६

पृष्ठ

५—राजा ध्यान में रत १५७
६—राजाका ऐश्वर्य १५७
७—सुभद्रादेवी का दर्शनार्थ आना १५८
८—राजाकी मृत्यु १५८
९—बुद्ध ही महासुदर्शन राजा १५९

१८—(५) जनवसभ-सुत्त १६०

१—सभी देशो के मृतभक्तोकी गतिका प्रकाश १६०
२—मगधके भक्तो की गतिका प्रकाश क्यो नही १६०
३—जनवसभ (बिम्बिसार) देवताका सलाप १६१
४—शक्रद्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशसा १६२
५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशसा १६३
६—मगध के भक्तो की सुगति १६५

१९—(६) महागोविन्द-सुत्त १६७

१—शक्रद्वारा बुद्धकी प्रशसा १६७
२—बुद्धके आठ गुण १६७
३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशसा १६८
४—महागोविन्दजातक १६९
(१) महागोविन्दकी दक्षता १७०
(२) जम्बुद्वीपका सात राज्योमे विभाग १७०
(३) ब्रह्माका दर्शन १७२
(४) महागोविन्दका सन्यास १७३
(५) बुद्ध-धर्मकी महिमा १७६

२०—(७) महासमय-सुत्त १७७

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओका आगमन १७७
२—देवताओके नाम गाँव आदि १७८
३—मारका भी सदलवल पहुँचना १८०

२१—(८) सक्कपञ्ह-सुत्त १८१

१—इन्द्रशाल गुहामे शक्र १८१

पृष्ठ

२—पचशिखका गान १८१
३—तिम्बरुकी कन्यापर पचशिख आसक्त १८२
४—बुद्ध धर्मकी महिमा १८३
५—शक्रके छै प्रश्न १८५

२२—(९) महासतिपट्ठान सुत्त १९०

१—कायानुपश्यना १९०
२—वेदनानुपश्यना १९२
३—चित्तानुपश्यना १९३
४—धर्मानुपश्यना १९३

२३—(१०) पायासिराजञ्ञ-सुत्त १९९

परलोकवादका खण्डन मण्डन १९९
१—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न १९९
(१) मरे नही लौटते २००
(२) धर्मात्मा आस्तिकोको भी मरनेकी अनिच्छा २०३
(३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नही २०४
२—मत-त्यागमे लोकलाजका भय २०७
३—सत्कार रहित यज्ञका कम फल २१०

३—पाथिकवग्ग २१३

२४—(१) पाथिक-सुत्त २१५

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म-त्याग २१५
२—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु २१६
३—अचेल कोर मट्टककी सात-प्रतिज्ञाये २१८
४—अचेल पाथिक-पुत्रकी पराजय २१९
५—ईश्वर निर्माणवादका खण्डन २२३
६—शुभविमोक्ष २२४

२५—(२) उदुम्बरिक सीहनाद-सुत्त २२६

१—न्यग्रोधद्वारा बुद्धकी निन्दा २२६
२—अशुद्ध तपस्या २२७
३—शुद्ध तपस्या २२९
४—वास्तविक तपस्या—चार भावनाये २२९
५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप २३१
६—बुद्ध धर्म से लाभ इसी शरीर मे २३२

पृष्ठ

२६—(३) चक्कवत्ति सीहनाद-सुत्त २३३

१—स्वावलम्बी बनो २३३
२—मनुष्य क्रमश अवनतिकी ओर २३३
(१) चक्रवर्त्तिव्रत २३४
(२) व्रतके त्यागसे लोगोमें असन्तोष और निर्धनता २३५
(३) निर्धनता सभी पापोकी जननी २३५
(४) पापोसे आयु और वर्णका ह्रास २३६
(५) पशुवत् व्यवहार और नरसहार २३७
३—मनुष्य क्रमश उन्नतिकी ओर २३८
(१) पुण्य कर्मसे आयु और वर्णकी वृद्धि २३८
(२) मैत्रेय बुद्धका जन्म २३८
४—भिक्षुओ के कर्तव्य २३९

२७—(४) अग्गञ्ञ-सुत्त २४०

१—वर्णव्यवस्थाका खडन २४०
२—मनुष्य जाति की प्रगति २४१
(१) प्रलय के बाद सृष्टि २४१
(२) सत्त्वो (=मनुष्यो)का आरम्भिक आहार २४२
(३) स्त्री पुरुषका भेद २४३
(४) वैयक्तिकसम्पत्तिका आरभ २४३
३—चारो वर्णोका निर्माण २४४
(१) राजा(क्षत्रिय)की उत्पत्ति २४४
(२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति २४४
(३) वैश्यकी उत्पत्ति २४५
(४) शूद्रकी उत्पत्ति २४५
(५) श्रमणकी उत्पत्ति २४५
४—जन्म नही कर्म प्रधान है २४५

२८—(५) सम्पसादनिय-सुत्त २४६

१—परम ज्ञानमे बुद्ध तीन कालमें अनुपम २४६
२—बुद्धके उपदेशोकी विशेषताये २४७
३—बुद्धमे अभिमान शून्यता २५१

पृष्ठ

२९—(६) पासादिक-सुत्त २५२

१—तीर्थंकर महावीरके मरने पर अनुयायियो मे विवाद २५२
२—विवाद के लक्षण २५३
(१) अयोग्य गुरु २५३
(२) अयोग्य धर्म २५३
३—अयोग्य गुरु और धर्म २५३
(१) अधन्य शिष्य २५३
(२) धन्य शिष्य २५३
(३) गुरु की शोचनीय मृत्यु २५३
(४) गुरु की अशोचनीय मृत्यु २५४
(५) अपूर्ण सन्यास २५४
(६) पूर्ण सन्यास २५४
४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म २५५
५—बुद्ध वचनकी कसौटी २५५
६—बुद्धधर्मचित्तकी शुद्धिके लिये २५६
७—अनुचित और उचित आराम पसन्दी २५६
(१) अनुचित २५६
(२) उचित २५६
(३) उचितका फल २५७
८—भिक्षु धर्मपर आरूढ २५७
९—बुद्धकालवादी यथार्थवादी २५७
(१) कालवादी २५७
(२) यथार्थवादी २५८
१०—अव्याकृत और व्याकृत बाते २५८
(१) अव्याकृत २५८
(२) व्याकृत २५८
११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन २५८
(१) पूर्वान्त दर्शन २५८
(२) अपरान्त दर्शन २५९
१२—स्मृति प्रस्थान २५९

३०—(७) लक्खण-सुत्त २६०

१—बत्तीस महापुरुषलक्षण २६०
२—किस कर्मविपाकसे कौन लक्षण २६१
(१) कायिक सदाचार २६१

पृष्ठ

(२) प्रियकारिता — २६१
३—जीवहिंसाका त्याग २६२
४—सुन्दर भोजन का दान २६२
५—मेल कराना २६३
६—अर्थधर्मका उपदेश २६३
७—सत्कारपूर्वकशिक्षण २६३
८—हितकी जिज्ञासा २६४
९—अक्रोध और वस्त्रदान २६४
१०—मेल करना २६५
११—योग्य अयोग्य पुरुषका ख्याल २६५
१२—परहिताकाक्षा २६६
१३—पीडा न देना २६६
१४—प्रियदृष्टि २६६
१५—सुकार्यमे अगुआपन २६७
१६—सत्यवादिता २६७
१७—झगळा मिटाना २६८
१८—मधुरभाषिता २६८
१९—भावपूर्ण वचन २६९
२०—सच्ची जीविका २६९

३१—(८) सिगालोवाद-सुत्त *२७१*

गृहस्थके कर्तव्य २७१
१—चार कर्मक्लेश २७१
२—चार स्थानोसे पाप २७२
३—छ सम्पत्तिके नाशके कारण २७२
४—मित्र और अमित्र २७३
(क) मित्ररूपमे अमित्र २७३
(१) परधनहारक २७३
(२) वातूनी २७३
(३) खुशामदी २७३
(४) नाशमे सहायक २७४
(ख) वास्तविक मित्र २७४
(१) उपकारी २७४
(२) समान सुखदुखी २७४
(३) हितवादी २७४
(४) अनुकम्पक २७४
५—छे दिशाओ की पूजा २७५

३२—(९) आटानाटिय-सुत्त *२७७*

१—आटानाटिय (भूतो-यक्षोसे) रक्षा २७७
(१) सातो बुद्धोको नमस्कार २७७
(२) चारो महाराजोका वर्णन २७८
१—धृतराष्ट्र २७८
२—विरूढक २७८
३—विरूपाक्ष २७८
४—वैश्रवण २७९
(३) रक्षा न मानने वाले यक्षोको दड २७९
(४) प्रवल यक्षोका नामस्मरण २८०
२—आटानाटिय रक्षा की पुनरावृत्ति २८०

३३—(१०) संगीति परियाय-सुत्त *२८१*

१—पावाके नवीन सस्थागार मे बुद्ध २८१
२—गुरु के मरने पर जैनो मे विवाद २८२
३—बौद्ध मन्तव्यो की सूची २८२

३४—(११) दसुत्तर-सुत्त *३०२*

१—बौद्ध मन्तव्यो की सूची ३०२

सुत्त(=सूत्र)-अनुक्रमणी

नाम	पृष्ठ
अग्गञ्ञ (२७)	२४०
अपदान। महा—(१४)	९५
अम्बट्ठ (३)	३४
आटानाटिय (३२)	२७७
उदुम्बरिक-सीहनाद (२५)	२२६
कस्सप-सीहनाद (८)	६१
कुटदन्त (५)	५०
केवट्ट (११)	७८
गोविन्द। महा—(१९)	१६७
चक्कवत्ति-सीहनाद (२६)	२३३
जनवसभ (१८)	१६०
जालिय (७)	५९
तेविज्ज (१३)	८६
दसुत्तर (३४)	३०२
निदान। महा—(१५)	११०
परिनिब्बाण। महा—(१६)	११७
पाथिक (२४)	२१५
पायासि राजञ्ञ (२३)	१९९
पासादिक (२९)	२५२
पोट्ठपाद (९)	६७
ब्रह्मजाल (१)	१
महागोविन्द (१९)	१६७
महानिदान (१५)	११०
महापदान (१४)	९५
महापरिनिब्बाण (१६)	११७
महालि (६)	५६
महासतिपट्ठान (२२)	१९०
महासमय (२०)	१७७
महासीहनाद (८)	६१
महासुदस्सन (१७)	१५२
लक्खण (३०)	२६०
लोहिच्च (१२)	८२
सक्कपञ्ह (२१)	१८१
सगीति (३३)	२८१
सतिपट्ठान। महा—(२२)	१९०
समय। महा—(२०)	१७७
सम्पसादनिय (२८)	२४६
सामञ्ञफल (२)	१६
सिगालोवाद (३१)	२७१
सीहनाद। उदुम्बरिक–(२५)	२२६
सीहनाद। चक्कवत्ति–(२६)	२३३
सीहनाद। महा–(८)	६१
सुदस्सन। महा–(१७)	५१२
सुभ (१०)	७६
सोणदड (४)	४४

ग्रन्थ-विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१—प्राक्कथन	..	७
२—सुत्त-सूची	..	११
३—सुत्त-अनुक्रमणी	..	१७
४—मान-चित्र	..	१५
५—ग्रन्थानुवाद	..	१-३१४
६—उपमा-अनुक्रमणी	..	३१५
७—नाम-अनुक्रमणी	..	३१७
८—शब्द-अनुक्रमणी	..	३३२

१—सीलक्खन्ध-वग्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

दीघ-निकाय

१-ब्रह्मजाल-सुत्त (१।१।१)

१—बुद्धमें साधारण बातें—आरभिक शील, मध्यम शील, महाशील। २—बुद्धमें असाधारण बातें—बासठ दार्शनिक मत—(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें, (२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पॉच सौ भिक्षुओ के बळे सघके साथ रा ज गृ ह और ना ल न्दाके बीच लम्बे रास्तेपर जा रहे थे ।

सु प्रि य परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्र ह्म द त्त माणवकके साथ० जा रहा था। उस समय सुप्रिय० अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी निन्दा कर रहा था। किन्तु सुप्रियका शिष्य ब्रह्मदत्त० अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी प्रशसा कर रहा था। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनो परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पक्षका प्रतिपादन करते भगवान् और भिक्षु-सघके पीछे-पीछे जा रहे थे।

तब भगवान् भिक्षु-सघके साथ रात-भरके लिए अ म्ब ल ट्ठि का (नामक बाग)के राजकीय भवनमे टिक गये।

सुप्रिय भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्तके साथ० (उसी) भवनमे टिक गया। वहाँ भी सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी निन्दा कर रहा था और ब्रह्मदत्त० प्रशसा। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनो परस्पर विरोधी पक्षका प्रतिपादन कर रहे थे।

रात ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमे इकट्ठे हो बैठे बहुतसे भिक्षुओमे ऐसी बात चली—"आवुस ! यह बळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक-ठीक जान लेते हैं। यही सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और सघकी निन्दा कर रहा है, और उसका शिष्य ब्रह्मदत्त प्रशसा ।०"

तब भगवान् उन भिक्षुओके वार्तालापको जान बैठकमे गये, और बिछे हुए आसनपर बैठ गये।

बैठकर भगवान्ने भिक्षुओको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमे लगे थे ?"

इतना कहनेपर उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—"भन्ते(=स्वामिन्) ! रातके ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमे इकट्ठे बैठे हम लोगोमे यह बात चली—आवुस ! यह बळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्ववित्, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक-ठीक जान लेते है। यही सुप्रिय० निन्दा कर रहा है और ब्रह्मदत्त प्रशसा ०। इस तरह ये पीछे-पीछे आ रहे है। भन्ते ! हम लोगोकी बात यही थी कि भगवान् पधारे।"

(भगवान् बोले—) "भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी निन्दा करे, या धर्मकी निन्दा करे, या सघकी निन्दा करे, तो तुम लोगोको न (उससे) वैर, न असन्तोष और न चित्तमें कोप करना चाहिए।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी निन्दा करे, और तुम (उससे) कुपित या खिन्न हो जाओगे, तो इसमे तुम्हारी ही हानि है।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी निन्दा करे, तो क्या तुम लोग (झट) कुपित और खिन्न हो जाओगे, और इसकी जाँच भी न करोगे कि उन लोगोके कहनेमे क्या सच बात है और क्या झूठ ?"

"भन्ते ! ऐसा नही ।"

"भिक्षुओ ! यदि कोई० निन्दा करे, तो तुम लोगोको सच और झूठ वातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नही है, यह असत्य है, यह वात हम लोगोमे नही है, यह वात हम लोगोमे विलकुल नही है ?

"भिक्षुओ ! और यदि कोई मेरी, धर्मकी या सघकी प्रशसा करे, तो तुम लोगोको न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए।०यदि तुम लोग आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाओगे, तो उसमे तुम्हारी ही हानि है ।

"भिक्षुओ ! यदि कोई प्रशसा ० करे, तो तुम लोगोको सच और झूठ वातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह वात ठीक है, यह वात सत्य है, यह वात हम लोगोमे है और यथार्थमे है ।

१—बुद्ध में साधारण बातें

(१) आरम्भिक शील

"भिक्षुओ ! यह शील तो वहुत छोटा और गौण है, जिसके कारण अनाळी लोग (=पृथग् जन) मेरी प्रशसा करते है । भिक्षुओ ! वह छोटा और गौण शील कौनसा है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशसा करते है ?—(वे ये है)—श्रमण गौ त म जीवहिसा (=प्राणातिपात) को छोळ हिसासे विरत रहता है। वह दड और शस्त्रको त्यागकर लज्जावान, दयालु और सव जीवोका हित चाहनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—श्रमण गौतम चोरी (=अदत्तादान) को छोळकर चोरीसे विरत रहता है। वह किसीसे दी-गई चीजको ही स्वीकार करता है (=दत्तादायी), किसीसे दी गई चीजहीकी अभिलाषा करता है (=दत्ताभिलाषी), और इस तरह पवित्र आत्मावाला, होकर विहार करता है।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—व्यभिचार छोळकर श्रमण गौतम निकृष्ट स्त्री-सभोगमे सर्वथा विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—मिथ्या-भाषणको छोळ श्रमण गौतम मिथ्या-भाषणसे सदा विरत रहता है। वह सत्यवादी, सत्यव्रत, दृढवक्ता, विश्वास-पात्र और जैसी कहनी वैसी करनीवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—चुगली करना छोळ श्रमण गौतम चुगली करनेसे विरत रहता है । फूट डालनेके लिए न इधरकी वात उधर कहता है और न उधरकी वात इधर, वल्कि फूटे हुए लोगोको मिलानेवाला, मिले हुए लोगोके मेलको और भी दृढ करनेवाला, एकता-प्रिय, एकता-रत, एकतासे प्रसन्न होनेवाला और एकता स्थापित करनेके लिये कहनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—कठोर भाषणको छोळ श्रमण गौतम कठोर भाषणसे विरत रहता है। वह निर्दोष, मधुर, प्रेमपूर्ण, जँचनेवाला, शिष्ट और वहुजनप्रिय भाषण करनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निरर्थक वातूनीपनको छोळ श्रमण गौतम निरर्थक वातूनीपनसे विरत रहता है। वह समयोचित वोलनेवाला, यथार्थवक्ता, आवश्यकोचित वक्ता, धर्म और विनयकी वात वोलनेवाला तथा सारयुक्त वात कहनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—श्रमण गौतम किसी बीज या प्राणी के नाश करनेसे विरत रहता है, एकाहारी है, और बेवक्तके खानेसे, नृत्य, गीत, वाद्य और अश्लील हाव-भावके दर्शनसे विरत रहता है। माला, गन्ध, विलेपन, उबटन तथा अपनेको सजने-धजनेसे श्रमण गौतम विरत रहता है। श्रमण गौतम ऊँची और बहुत ठाट-बाटकी शय्यासे विरत रहता है। ० कच्चे अन्नके ग्रहणसे विरत रहता है। ० कच्चे माँसके ग्रहणसे विरत रहता है। ० स्त्री और कुमारीके ग्रहणसे विरत रहता है। ० दास और दासीके ग्रहणसे विरत रहता है। बकरी या भेळके ग्रहणसे विरत रहता है। ०कुत्ता और सूअरके ग्रहणसे विरत रहता है। ० हाथी, गाय, घोळा और खच्चरके ग्रहणसे०।० खेत तथा माल असबाबके ग्रहणसे०।० दूतके काम करनेसे ०।० खरीद-बिक्रीके काम करनेसे ०।० तराजू, पैला और बटखरेमे ठगवनीजी करनेसे ०। दलाली, ठगी और झूठा सोना-चाँदी बनाना (=निकति)के कुटिल कामसे, हाथ-पैर काटने, बध करने, बाँधने, लूटने-पीटने और डाका डालनेके कामसे विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अनाळी तथागतकी प्रशसा इसी प्रकार करते है।

(२) *मध्यम शील*

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीज और सभी प्राणीके नाशमे लगे रहते है, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होता है), स्कन्धबीज (=जिनका प्ररोह गाँठसे होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पाँचवाँ अग्रबीज (=ऊपरसे उगता पौधा)। उस प्रकार श्रमण गौतम बीज और प्राणीका नाश नही करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारके जोळने और बटोरनेमे लगे रहते है, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीजोका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमे नही लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमे लगे रहते है, जैसे—नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तबला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन,[१] हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोका युद्ध, भेळोका युद्ध, मुर्गोका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार-पीटका खेल, सेना, लळाईकी चाले इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमे नही लगा रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० जूआ आदि खेलोके नशेमे लगे रहते है, जैसे—[२]अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्निक, खलिक, घटिक, शलाक-हस्त, अक्ष, पगचिर, वकक, मोक्खचिक, चिलिगुलिक, पत्ताल्हक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, ओर नकल, उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोके नशेमे नही पळता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस तरहकी ऊँची ओर ठाट-बाटकी शय्यापर सोते है, जैसे—दीर्घ आसन, पलग, बळे बळे रोयेवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनो ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची ओर ठाट-बाटकी शय्यापर नही सोता।

---

[१] उस समयके खेल।

[२] उस समयके जूये।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनेको सजने-धजनेमे लगे रहते है, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, दर्पण, अजन, माला, लेप, मुख-चूर्ण(=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखामे कुछ बाँधना, छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमे नही लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामे लगे रहते है, जैसे—राजकथा, चोर, महामत्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, सूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत-प्रेतकी कथाये, ससारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ, उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओमे नही लगता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी लळाई-झगळोकी बातोमे लगे रहते है, जैसे—तुम इस मत(=धर्मविनय)को नही जानते, मै० जानता हूँ, तुम० क्या जानोगे ? तुमने इसे ठीक नही समझा है, मै इसे ठीक-ठीक समझता हूँ, मै धर्मानुकूल कहता हूँ, तुम धर्म-विरुद्ध कहते हो, जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया, बात कट गई, तुमपर दोषारोपण किया गया, तुम पकळ लिये गये, इस आपत्तिमे छूटनेकी कोशिश करो, यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि, इस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळेकी बातमे नही रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० (इधर-उधर) जैसे—राजा, महामन्त्री, क्षत्रिय, ब्राह्मणो, गृहस्थो, कुमारोके दूतका काम करते फिरते है, वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नही करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखडी और वचक, बातूनी, जोतिषके पेशावाले, जादू-मन्त्र दिखानेवाले और लाभसे लाभकी खोज करते है, वैसा श्रमण गौतम नही है।

(३) *महाशील*

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन बिताते है, जैसे—अगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूषिक-विष० अग्नि-हवन, दर्वी-होम, तुष-होम, कण-होम, तण्डुल-होम, घृत-होम, तैल-होम, मुखमे घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विष०, बिच्छूके झाळ-फूँककी विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (मन्त्र जाप, जिससे लळाईमे बाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, बाण, धनुष०, आयुध०, स्त्री०, पुरुष०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, बत्तक०, गोह०, कर्णिका०, कच्छप० और मृगलक्षण, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार० निन्दित जीवन बिताते है, जैसे—राजा बाहर निकल जायेगा नही निकल जायेगा, यहाँका राजा बाहर निकल जायगा, बाहरका राजा यहाँ आवेगा,

यहाँके राजाकी जीत होगी और बाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और बाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार, श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निन्दित जीवन विताते है, जैसे—चन्द्र-ग्रहण होगा, सूर्य-ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायेगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा,० मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा दाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा वादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोका उदय, अस्त, सदोप होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा,० चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोप या निर्दोप होनेसे यह फल होगा, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निन्दित जीवन विताते है, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी०, सस्ती होगी, महँगी पळेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा-विद्या, गणना, कविता-पाठ इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही० ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निन्दित जीवन विताते हैं, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र वताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र वताना, उधार या ऋणमे दिये गये रुपयोके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र वताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र वताना, सजना-धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रवलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,० दूसरेके कानको वहरा वना देना,० दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देव-वाहिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रके बल मुँहसे अग्नि निका-लना, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही० ।

"भिक्षुओ ! अथवा० निन्दित जीवन विताते हैं, जैसे—मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रवलसे पुरुपको नपुसक और नपुसकको पुरुप वनाना, इन्द्रजाल, वलिकर्म, आचमन, स्नान-कार्य, अग्नि-होम, दवा देकर वमन, विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमे डालने के लिए तेल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमे तेल देकर छिकवाना, अजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही० ।

"भिक्षुओ ! यह शील तो वहुत छोटे और गौण है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशसा करते हैं।

२—बुद्धमें असाधारण बातें

वासठ दार्शनिक मत

"भिक्षुओ ! (इनके अतिरिक्त) और दूसरे धर्म है, जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, अतर्कावचर (=जो तर्कमे नही जाने जा सकते), निपुण और पडितोके समझने योग्य हैं, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्कर कहते हैं, (और) जिन्हे तथागतके यथार्थ गुणको ठीक-ठीक कहने वाले कहते हैं।

(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणाये

"भिक्षुओ ! वे ० धर्म कौन से हैं ?

"भिक्षुओ ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो १८ कारणोसे पूर्वान्त-कल्पिक=आदिम-छोरवाले मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यहवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके वल पर० पूर्वान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते हैं।

"भिक्षुओ ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण नित्यवादी (=शाश्वतवादी) है, जो चार कारणोसे आत्मा और लोक दोनोको नित्य मानते है ? वे० किस कारण और किस प्रमाणके बल पर ० आत्मा और लोकको नित्य मानते है ?

१—शाश्वत-वाद—(१) "भिक्षुओ ! कोई भिक्षु सयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर-चित्तसे उस प्रकार चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाधिप्राप्त चित्तमे अनेक प्रकारके—जैसे एक सौ० हजार० लाख, अनेक लाख पूर्वजन्मोकी स्मृति हो जाती है—मै इस नामका, इस गोत्रका, इस रंगका, इस आहारका, इस प्रकारके सुखो और दुःखोका अनुभव करनेवाला और इतनी आयु तक जीनेवाला था। सो मै वहाँ मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी मै इस नामका० था । सो मै वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ।

"इस प्रकार वह अपने पूर्वजन्मके सभी आकार प्रकारका स्मरण करता है। वह (इसीके बलपर) कहता है—आत्मा और लोक नित्य, अपरिणामी, कूटस्थ और अचल है। प्राणी चलते, फिरते, उत्पन्न होते और मर जाते है, (किन्तु) अस्तित्व नित्य है।

"सो कैसे ? मै भी ० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमे अनेक प्रकारके० पूर्वजन्मोकी स्मृति हो जाती है। अत ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य० है।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिस प्रमाणके आधार पर कितने श्रमण और ब्राह्मण शाश्वतवादी हो, आत्मा और लोकको नित्य बताते है।

"(२) दूसरे, वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर ० आत्मा और लोकको शाश्वत मानते है ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमे अनेक प्रकारके पूर्वजन्मोको जैसे—एक सवर्त-विवर्त (कल्प) ०, दस सवर्त—मै इस नामका० था०, स्मरण करता है, सो मै वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ।

"इस प्रकार वह अपने पूर्व जन्मके सभी आकार-प्रकारोको स्मरण करता है। अत वह (इसी के बलपर) कहता है—आत्मा और लोक दोनो नित्य है। प्राणी ० मर जाते है, किन्तु अस्तित्व नित्य है। सो कैसे ? मै भी ० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमे अनेक प्रकार के पूर्व जन्मोकी स्मृति हो जाती है० । अत ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य है।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है० ।

(३) "तीसरे, वे किस कारण ० आत्मा और लोकको नित्य मानते है ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्त मे अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोको स्मरण करता है, जैसे—दस सवर्त-विवर्त, बीस०, तीस०, चालीस सवर्त-विवर्त —मै इस नामका० था०, सो मै वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ। अत वह (इसीके बलपर) कहता है —आत्मा और लोक दोनो नित्य है। प्राणी० मर जाते है, किन्तु अस्तित्व नित्य है।

"सो कैसे ? मै भी ० उस चित्त-समाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमे अनेक प्रकारके पूर्वजन्मोकी स्मृति हो जाती है० । अत ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य ० है।

"भिक्षुओ यह तीसरा कारण है० ।

(४) "चौथे, वे किस कारण० आत्मा और लोकको नित्य मानते है ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तर्क करनेवाला है। वह अपने तर्कसे विचारकर ऐसा मानता

है—आत्मा और लोक नित्य० हैं। प्राणी० मर जाते हैं, किन्तु अस्तित्व नित्य है।

"भिक्षुओ! यह चौथा कारण है०।

"भिक्षुओ! इन्ही चार कारणोसे शाश्वतवादी श्रमण और ब्राह्मण आत्मा और लोकको नित्य मानते है। जो कोई ० आत्मा और लोकको नित्य मानते है, उनके यही चार कारण है। इनको छोळ और कोई कारण नही है।

"तथागत उन सभी कारणोको जानते है, उन कारणोके प्रमाण और प्रकारको जानते है, और अधिक भी जानते है, जानकर भी "मै जानता हूँ" ऐसा अभिमान नही करते। अभिमान न करते हुए स्वय मुक्तिको जान लेते है। वेदनाओकी उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, रस (=आस्वाद), दोष और निराकरणको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते है। भिक्षुओ! वे धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, अतर्कावचर, निपुण और पडितोके समझने योग्य है, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्कर कहते है, जिसे कि तथागतके यथार्थ गुणको कहने वाले कहते है।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२–नित्यता-अनित्यता-वाद (५)—"भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण है, जो अशत नित्य और अशत अनित्य माननेवाले है। वे चार कारणोसे आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य मानते है। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० आत्मा और लोकको अशत नित्य और अशत अनित्य मानते है?

"भिक्षुओ! बहुत वर्षोके बीतनेपर एक समय आता है, जब इस लोकका प्रलय (=सवर्त) हो जाता है। प्रलय हो जानेके बाद आ भा स्व र ब्रह्मलोकके रहनेवाले वहाँ मनोमय, प्रीतिभक्ष (=समाधिज प्रीतिमे रत रहनेवाले) प्रभावान्, अन्तरिक्षचर, मनोरम वस्त्र और आभरणसे युक्त बहुत दीर्घ काल तक रहते है।

"भिक्षुओ! बहुत वर्षोके बीतनेपर एक समय आता है, जब उस लोकका प्रलय हो जाता है। ० प्रलय हो जानेके बाद सूना (=शून्य) ब्रह्मविमान उत्पन्न होता है। तब कोई प्राणी आयु या पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानमे उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय ०। वहाँ वह अकेले बहुत दिनो तक रहकर ऊब जाता है, और उसे भय होने लगता है—अहो! यहाँ दूसरे भी प्राणी आवे!

"तब (कुछ समय बाद) दूसरे भी आयु और पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानमे उत्पन्न होते है। वे उस (पहले) सत्वके साथी होते है। वे भी वहाँ मनोमय०।

"वहाँ जो सत्त्व पहले उत्पन्न होता है, उसके मनमे ऐसा होता है—मै ब्रह्मा, महाब्रह्मा, अभिभू, अजित, सर्वद्रष्टा, वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, महायशस्वी, वशी और हुए और होनेवाले (प्राणियो) का पिता हूँ, ये प्राणी मेरे ही द्वारा निर्मित हुए है। सो कैसे? मेरे ही मनमे पहले ऐसा हुआ था—अहो! दूसरे भी जीव यहाँ आवे। फिर मेरी ही इच्छासे ये सत्व यहाँ उत्पन्न हुए है।

"जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुए थे, उनके मनमे भी ऐसा हुआ—यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा० है। हम सभी इसी ब्रह्मा द्वारा निर्मित किये गये है। सो किस हेतु? इनको हम लोगोने पहले ही उत्पन्न देखा, हम लोग तो इनके पीछे उत्पन्न हुए। अत जो (हम लोगो से) पहले ही उत्पन्न हुआ, वह हम लोगोसे दीर्घ आयु का, अधिक गुणपूर्ण और अधिक यशस्वी है, और जो (हम सब) प्राणी उसके पीछे हुए वे अल्प आयुके, अल्पगुणो से युक्त और अल्प यशवाले है।

"भिक्षुओ! तब कोई प्राणी वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है। यहाँ आकर वह घरसे बे-घर हो साधु हो जाता है। वह ० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें वह अपने

पहले जन्मको स्मरण करता है, उससे पहलेको नहीं,०। वह ऐसा कहता है—जो ब्रह्मा, महाब्रह्मा है०, जिनके द्वारा हम लोग निर्मित किये गये है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिणामधर्मा और अचल है, और ब्रह्माने निर्मित किये गये हम लोग अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत, परिणामी और मरणशील है।

"भिक्षुओ! यह पहला कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अंशत नित्य और अंशत अनित्य मानते० हैं।

(६) "दूसरे ०? क्री डा प्र दू पि क नामके कुछ देव है। वे बहुत काल तक रमण=क्रीडामे लगे रहते है। उससे उनकी स्मृति क्षीण हो जाती है। स्मृतिके क्षीण हो जानेसे वे उस शरीरसे च्युत हो जाते है, और यहाँ उत्पन्न होते है। यहाँ आकर साधु हो जाते है।० साधु हो० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करते है, जिस समाहित चित्तमे अपने पहले जन्मको स्मरण करते है, उसके पहलेको वह ऐसा कहते है—जो क्रीडाप्रदूषिक देव नही होते है, वे बहुत काल तक रमण-क्रीडामे लगे होकर नही विहार करते।० इससे उनकी स्मृति क्षीण नही होती। स्मृतिके क्षीण न होनेके कारण वे उस शरीरसे च्युत नही होते, वे नित्य, ध्रुव रहते है, और जो हम लोग क्रीडा-प्रदूषिक देव है, सो बहुत काल तक रमण-क्रीडामे लगे होकर विहार करते रहे, जिससे हम लोगोकी स्मृति क्षीण हो गई। स्मृतिके क्षीण होनेसे हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। अत हम लोग अनित्य, अध्रुव मरणशील है।

"भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अंशत नित्य और अंशत अनित्य० मानते हैं।

"(७) तीसरे ०? भिक्षुओ! म न प्र दू षि क नामके कुछ देव है। वे बहुत काल तक परस्पर एक दूसरेको क्रोधसे देखते है। उससे वे एक दूसरेके प्रति द्वेष करने लगते है। एक दूसरेके प्रति बहुत काल तक द्वेष करते हुए शरीर और चित्तसे क्लान्त हो जाते है, अत वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते है।

"भिक्षुओ! तब कोई प्राणी उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (=इस लोकमे) उत्पन्न होते है। यहाँ आकर० साधु हो जाते है।० साधु हो० उस समाधिको प्राप्त करते है, जिस समाहित चित्तमें अपने पहले जन्मको स्मरण करते है, उसके पहलेका नहीं। (तब) वह ऐसा कहते है—जो मन-प्रदूषिक देव नही होते, वे बहुत काल तक एक दूसरेको क्रोधकी दृष्टिसे नहीं देखते रहते, जिससे उनमें परस्पर द्वेष भी नही उत्पन्न होता।० द्वेष नही करनेसे वे शरीर और चित्तसे क्लान्त भी नहीं होते। अत वे उस शरीरसे च्युत भी नही होते। वे नित्य, ध्रुव० है।

और जो हम लोग मन-प्रदूषिक देव थे, सो० क्रो०, द्वेष करते रहे, (और) ० मन तथा शरीरसे थक गये। अत हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। हम लोग अनित्य, अध्रुव० है।

"भिक्षुओ! यह तीसरा कारण० है।

"(८) चौथे ०? भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण तर्क करनेवाले है? वे तर्क और न्यायसे ऐसा कहते है—जो यह चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा और शरीर है, वह अनित्य, अध्रुव० है, और (जो) यह चित्त, मन या विज्ञान है (वह) नित्य, ध्रुव ० है।

"भिक्षुओ! यह चौथा कारण है ०।

"भिक्षुओ! ये ही श्रमण और ब्राह्मण अंशत नित्य और अंशत अनित्य० मानते है०। वे सभी इन्ही चार कारणोंसे ऐसा मानते हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ! तथागत उन सभी कारणोंको जानते है०।

३—सान्त-अनन्त-वाद—(९) "भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोंसे अन्तानन्त-वादी है, जो लोकको सान्त और अनन्त मानते है। वे० किस कारण० ऐसा मानते है?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमे 'लोक सान्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और परिछिन्न है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमे 'लोक सान्त है', ऐसा भान होता है, इसीसे मै समझता हूँ कि लोक सान्त और परिछिन्न है।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते है।

"(१०) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० समाहित चित्तमे 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कही नही है। जो० ऐसा कहते है कि यह लोक सान्त और परिच्छिन्न है, वे मिथ्या कहनेवाले हे। (यथार्थमे) यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कही नही है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमे 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है, अत मै समझता हूँ कि यह लोक अनन्त है०।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते है।

"(११) तीसरे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० समाहित चित्तमे 'यह लोक ऊपरसे नीचे सान्त और दिशाओकी ओर अनन्त है', ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है। जो लोकको सान्त वताते है और जो अनन्त, दोनो मिथ्या कहनेवाले है। (यथार्थमे) यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमे ० ऐसा भान होता हूँ, जिससे मै समझता हूँ कि यह लोक सान्त और अनन्त दोनो है।

"भिक्षुओ ! यह तीसरा कारण है कि जिससे वे ० लोकको सान्त और अनन्त मानते है।

"(१२) चौथे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तर्क करनेवाला होता है। वह अपने तर्कसे ऐसा समझता है कि 'यह लोक न सान्त है और न अनन्त।' जो ० लोकको सान्त, या अनन्त, (=सान्तानन्त) मानते है, सभी मिथ्या कहनेवाले है। (यथार्थ मे) यह लोक न सान्त और न अनन्त है।

"भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते है।

"भिक्षुओ ! इन्ही चार कारणोसे कितने श्रमण अ न्ता न न्त वा दी है, लोकको सान्त और अनन्त वताते है। वे सभी इन्ही चार कारणोसे ऐसा कहते है। इन्हे छोळ और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! उन कारणोको तथागत जानते है ०।

"भिक्षुओ ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण अ म रा वि क्षे प *वादी है, जो चार कारणोसे प्रश्नोके पूछे जानेपर उत्तर देनेमे घवळा जाते है ? वे क्यो घवळा जाने है ?

४—अमराविक्षेप-वाद—(१३) "भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नही जानता कि यह अच्छा है और यह वुरा। उसके मनमे ऐसा होता है—मै ठीकसे नही जानता हूँ कि यह अच्छा हे और यह वुरा। तव मै ठीकसे बिना जाने कह दूँ—'यह अच्छा है' और 'यह वुरा', यदि 'यह अच्छा है' या 'यह वुरा है' तो यह असत्य ही होगा। जो मेरा असत्य-भापण होगा, सो मेरा घातक (=नाशका कारण) होगा, और जो घातक होगा, वह अन्तराय (=मुक्तिमार्गमे विघ्नकारक) होगा। अत वह असत्य-भापणके भय और घृणासे न यह कहता है कि 'यह अच्छा है' और न यह कि 'यह वुरा'।

"प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर वाते नही करता—यह भी मैंने नही कहा, वह भी नही कहा,

---

***अमराविक्षेप नामक छोटी-छोटी मछलियाँ वळी चंचल होती है। जिस तरह वहुत प्रयत्न करनेपर भी वे हाथमें नहीं आती है, उसी तरह इनके सिद्धान्तमें भी कोई स्थिरता नहीं।**

अन्यथा भी नही, ऐसा नही है—यह भी नही, ऐसा नही नही है—यह भी नही कहा। भिक्षुओ! यह पहला कारण है जिससे कितने अमराविक्षेपवादी श्रमण या ब्राह्मण प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नही कहते।

"(१४) दूसरे० ? भिक्षुओ! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नही जानता, कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमे ऐसा होता है—मैं ठीकसे नही जानता हूँ कि यह अच्छा है और यह बुरा तब यदि मै बिना ठीकसे जाने कह दूँ ० तो यह मेरा लोभ, राग, द्वेष और क्रोध ही होगा। लोभ, राग० मेरा उपादान (=ससारकी ओर आसक्ति) होगा। जो मेरा उपादान होगा, वह मेरा घात होगा, और घात मुक्तिके मार्गमे विघ्नकर होगा। अत वह उपादानके भयसे और घृणासे यह भी नही कहता कि यह अच्छा है, और यह भी नही कहता कि यह बुरा है। प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नही कहता—मै यह भी नही कहता, वह भी नही ०।

"भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० कोई स्थिर बात नही कहते।

"(१५) तीसरे० ? भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण यह ठीकसे नही जानता कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमे ऐसा होता है –० यदि मै बिना ठीकसे जाने कह दूँ ०, और जो श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, बळे शास्त्रार्थ करनेवाले, कुशाग्रबुद्धि तथा दूसरेके सिद्धान्तोको अपनी प्रज्ञासे काटनेवाले है, वे यदि मुझसे पूछे, तर्क करे, या बाते करे, और मै उसका उत्तर न दे सकूँ तो यह मेरा विघात (=दुर्भाव) होगा। जो मेरा विघात होगा, वह मेरी मुक्तिके मार्गमे बाधक होगा। अत, वह पूछे जानेके भय और घृणासे न तो यह कहता है कि यह अच्छा है और न यह कि यह बुरा है। प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बाते नही करता—मै यह भी नही कहता, वह भी नही ०।

"भिक्षुओ! यह तीसरा कारण है, जिससे वे० कोई स्थिर बात नही कहते।

"(१६) चौथे ०? भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण मन्द और महामूढ होता है। वह अपनी मन्दता और महामूढताके कारण प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नही कहता। यदि मुझे इस तरह पूछे—'क्या परलोक है?' और यदि मै समझूँ कि परलोक है, तो कहूँ कि 'परलोक है'। मै ऐसा भी नही कहता, वैसा भी नही०। यदि मुझे पूछे, 'क्या परलोक नही है'०। परलोक है, नही है, और न है, न नही है। औपपातिक (=अयोनिज) सत्व (=ऐसे प्राणी जो बिना माता पिताके सयोगके उत्पन्न हुए हो) है, नही-है, है-भी-और-नही-भी, और-न-है-न-नही है। सुकृत और दुष्कृत कर्मोके विपाक (=फल) है, नही-है, है-भी-और-नही-भी, और-न-है, न-नही है। तथागत मरनेके बाद रहते है, नही रहते है०। ऐसा भी मै नही कहता, वैसा भी नही ०।

"भिक्षुओ! यह चौथा कारण है जिससे वे० कोई स्थिर बाते नही कहते।

"भिक्षुओ! ० वे सभी इन्ही चार कारणोसे ऐसा मानते है, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है। भिक्षुओ! तथागत उन सभी कारणोको जानते हैं०।

५—अकारण-वाद—(१७) "भिक्षुओ! कितने श्रमण और ब्राह्मण अ का र ण वा दी (=बिना किसी कारणके सभी चीजे उत्पन्न होती है, ऐसा माननेवाले) है। दो कारणोसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते है। वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर० ऐसा मानते है? भिक्षुओ! 'अ स ज्ञि स त्व' (=जो सज्ञासे रहित है) नामके कुछ देव है। सज्ञाके उत्पन्न होनेसे वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते है। तब, उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (इस लोकमे) उत्पन्न होते है। यहाँ० साधु हो जाते है।० साधु होकर० समाहित चित्तमे सज्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करते है, उसके पहलेको नही। वह ऐसा कहते है—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न हुए है। सो कैसे? मै पहले नही था, मै नही होकर भी उत्पन्न हो गया।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी' हो आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न बतलाते है।

"(१८) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तार्किक होता है। वह स्वय तर्क करके ऐसा समझता है—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न होते है।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी'० है।

"भिक्षुओ ! इन्ही दो कारणोसे वे० अकारणवादी० है, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है। भिक्षुओ ! तथागत उन सभी कारणोको जानते है ०।

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्ही १८ कारणोसे पूर्वान्तिकल्पिक, पूर्वछोरके मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! उन दृष्टि-स्थानो (=सिद्धान्तो)के प्रकार, विचार, गति और भविष्य क्या है, (वह सब) तथागतको विदित है। तथागत उसे और उससे भी अधिक जानते है। जानते हुए ऐसा अभिमान नही करते—'मै इतना जानता हूँ'। अभिमान नही करते हुए वे निर्वृति (=मुक्ति)को जान लेते है। वेदनाओके समुदय (=उत्पत्तिस्थान), उपशम, आस्वाद, दोष और नि सरण (=दूर करना)को यथार्थत जानकर तथागत उपादान (=लोकासक्ति)से मुक्त होते है।

"भिक्षुओ ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोके जानने योग्य है, जिसे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्कर उपदेश देते है, जिन्हे कि तथागतके यथार्थ गुणोको कहनेवाले कहते है।

(२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणाये

"भिक्षुओ ! कितनेही श्रमण और ब्राह्मण है, जो ४४ कारणोमे अपरान्तकल्पिक, अपरान्त मत माननेवाले और अपरान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है ?

६-मरणान्तर होशवाला आत्मा—(१९-३४) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण 'मरनेके बाद आत्मा[1] सज्ञी रहता है', ऐमा मानते है। वे १६ कारणोसे ऐसा मानते है। वे० सोलह कारणोसे ऐसा क्यो मानते है ? 'मरनेके बाद आत्मा रूपवान्, रोगरहित और आत्म-प्रतीति (सज्ञा=प्रतीति)के साथ रहता है। अरूपवान् और रूपवान् आत्मा होता है, न रूपवान्, न अरूपवान् आत्मा होता है, आत्मा सान्त होता है, आत्मा अनन्त होता है, आत्मा सान्त और अनन्त होता है, आत्मा न सान्त और न अनन्त होता है, आत्मा एकात्मसज्ञी होता है, आत्मा नानात्मसज्ञी होता है, आत्मा परिमित-सज्ञावाला होता है, आत्मा अपरिमितसज्ञावाला होता है, आत्मा बिल्कुल शुद्ध होता है, आत्मा बिल्कुल दु खी होता है, आत्मा सुखी और दु खी होता है, आत्मा सुख दु खसे रहित होता है, आत्मा अरोग और सज्ञी होता है।

"भिक्षुओ ! इन्ही १६ कारणोसे वे० ऐसा कहते है। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोको जानते है ०।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

---

१ "मै"के ख्याल (=सज्ञा)के साथ।

७—मरणान्तर बेहोश आत्मा—(३५–४२) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोसे 'मरनेके वाद आत्मा असज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ? वे कहते है—मरनेके वाद आत्मा असज्ञी, रूपवान् ओर अरोग रहता है—अरूपवान्०, रूपवान् और अरूपवान् ० न रूपवान् और न अरूपवान्०, सान्त०, अनन्त०, सान्त और अनन्त०, न सान्त और न अनन्त०।

"भिक्षुओ ! इन्ही आठ कारणोसे वे० 'मरनेके वाद आत्मा असज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० सभी इन्ही आठ कारणोसे० इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोको जानते है।

८—मरणान्तर न-होशवाला न-बेहोश आत्मा—(४३–५०) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोसे 'मरनेके वाद आत्मा नैवसज्ञी, नैवअसज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ?

"भिक्षुओ ! मरनेके वाद आत्मा रूपवान्, अरोग और नैवसज्ञी नैवासज्ञी रहता है। वे ऐसा कहते है—अरूपवान् ०।

"भिक्षुओ ! इन्ही आठ कारणोसे वे० 'मरने के वाद आत्मा नैवसज्ञी नैवअसज्ञी रहता है', ऐसा मानते है। वे० सभी इन्ही आठ कारणोसे०, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोको जानते है०।

९—आत्माका उच्छेद—(५१–५७) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण सात कारणोसे 'सत्व (=आत्मा) का उच्छेद, विनाश और लोप हो जाता है' ऐसा मानते है। वे० ऐसा क्यो मानते है ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मानते है—यथार्थमे यह आत्मा रूपी=चार महाभूतोसे वना है, और माता पिताके सयोगसे उत्पन्न होता है, इसलिए शरीरके नष्ट होते ही आत्मा भी उच्छिन्न, विनष्ट और लुप्त हो जाता है। क्योकि यह आत्मा विल्कुल समुच्छिन्न हो जाता है, इसलिए वे सत्व (=जीव) का उच्छेद, विनाश और लोप वताते है।

"(जव) उन्हे दूसरे कहते—जिसके विपयमे तुम कहते हो, वह आत्मा है, (उसके विपयमे) मै ऐसा नही कहता हूँ कि नही है, किन्तु यह आत्मा इस तरहसे विल्कुल उच्छिन्न नही हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी, का मा व च र लोकमे रहनेवाला (जहाँ आत्मा सुखोपभोग करता है), और भोजन खाकर रहनेवाला है। उसको तुम न तो जानते हो और न देखते हो। उसको मै जानता और देखता हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न और विनष्ट हो जाता हे, मरनेके वाद नही रहता। इस तरह आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इस तरह कितने सत्वोका वह उच्छेद, विनाश और लोप वताते है।

"उनसे दूसरे कहते है—जिसके विपयमे तुम कहते हो, वह आत्मा है, (उसके विपयमे) 'यह नही है', ऐसा मै नही कहता, किन्तु यह उस तरह विल्कुल उच्छिन्न नही हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी मनोमय, अग-प्रत्यगसे युक्त और अहीनेन्द्रिय है। उसे तुम नही जानते०, मै जानता० हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न० हो जाता है०। ० आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इसलिये वह कितने सत्वोका उच्छेद, विनाश और लोप वताते है।

"उन्हे दूसरे कहते है—० वह आत्मा है०, किन्तु उस तरह० नही ०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे रूप और सज्ञासे भिन्न, प्रतिहिसाकी सज्ञाओके अस्त हो जानेसे नानात्म (=नाना शरीरकी) सज्ञाओको मनमे न करनेसे अनन्त आकाशकी तरह अनन्त आकाश शरीरवाला है। उसे तुम नही जानते०, मै जानता० हूँ। वह आत्मा० उच्छिन्न हो जाता है, अत कितने इस प्रकार सत्वका उच्छेद० वताते है।

"उनसे दूसरे कहते है—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे अनन्त आकाश-शरीरको अतिक्रमण (=लांघ) कर अनन्त विज्ञान-शरीरवाला है।

"उन्हे दूसरे कहते है—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे विज्ञान-आयतनको अतिक्रमणकर कुछ नही ऐसा अकिचन (=शून्य) शरीरवाला रहता है।०

"उन्हे दूसरे कहते है—० । दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे आकिचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर शान्त और प्रणीत नैवसज्ञा-न-असज्ञा है।०

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्ही सात कारणोसे उच्छेदवादी हो, जो (वस्तु) अभी है, उसका उच्छेद, विनाश और लोप वताते है। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत उनको जानते है।०

१०—इसी जन्ममें निर्वाण—(५८–६२) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण पाँच कारणोसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी (=इसी ससारमे देखते-देखते निर्वाण हो जाता है, ऐसा माननेवाले) है, जो ऐसा वतलाते है कि प्राणीका इसी ससारमे देखते-देखते निर्वाण हो जाता है। वे० ऐसा क्यो मानते है ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मत माननेवाला होता है—चूँकि यह आत्मा पाँच काम-गुणो (=भोगो) मे लगकर सासारिक भोग भोगता है, इसलिए यह इसी ससारमे आँखोके सामने ही निर्वाण पा लेता है। अत कितने ऐसा वतलाते है कि सत्व इसी ससारमे देखते-देखते निर्वाण पा लेता है।

"उनसे दूसरे कहते है— ०। यह आत्मा इस तरह देखते-देखते ससार हीमे निर्वाण नही प्राप्त कर लेता। सो कैसे ? सासारिक काम-भोग अनित्य, दु ख और चलायमान है। उनके परिवर्तन होते रहनेसे शोक, रोना पीटना, दु ख=दौर्मनस्य और वळी परेशानी होती है।

"अत यह आत्मा कामोसे पृथक् रह, बुरी वातोको छोळ, सवितर्क, सविचार विवेकज प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। इसलिए यह आत्मा इसी ससारमे आँखोके सामने ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है०।

"उनसे दूसरे कहते है—०। आत्मा इस प्रकार ० निर्वाण नही पाता। सो कैसे ? जो वितर्क और विचार करनेसे वळा स्थूल (=उदार) मालूम होता है, वह आत्मा वितर्क और विचारके शान्त हो जानेसे भीतरी प्रसन्नता (=आध्यात्म सम्प्रसाद), एकाग्रचित्त हो, वितर्क-विचार-रहित समाधिज प्रीति-सुखवाले दूसरे ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है।

"इतनेसे यह आत्मा ससारहीमे आँखोके सामने निर्वाण प्राप्त कर लेता है।०

"उनसे दूसरे कहते है—०। सो कैसे ? जो प्रीति पा चित्तका आनन्दसे भर जाना है, उसीसे स्थूल प्रतीत होता है। क्योकि यह आत्मा प्रीति और विरागसे उपेक्षायुक्त (=अनासक्त) होकर विहार करता है, तथा ज्ञानयुक्त पण्डितोसे वर्णित सभी सुखको शरीरसे अनुभव करता है, अत उपेक्षायुक्त स्मृतिमान् और सुखविहारी तीसरे ध्यानको प्राप्त करता है।

"इतनेसे ० निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"उनसे दूसरे कहते है—०। जो वहाँ इतनेसे चित्तका सुखोपभोग स्थूल प्रतीत होता है, यह आत्मा सुख और दु खके नष्ट होनेसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पहले ही अस्त होनेसे, न सुख न दु खवाले, उपेक्षा और स्मृतिसे परिशुद्ध चोथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है।०

"इतनेसे० निर्वाण"० ।

"भिक्षुओ ! इन्ही पाँच कारणोसे वे० 'इसी ससारमे आँखोके सामने निर्वाण प्राप्त होता है,' ऐसा मानते है। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोको जानते है०।

"भिक्षुओ ! श्रमण और ब्राह्मण इन्ही ४४ कारणोसे अपरान्तकल्पिक मत माननेवाले और

अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नही है।

"भिक्षुओ! ये श्रमण और ब्राह्मण इन्ही ६२ कारणोसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक, पूर्वान्त और अपरान्त मत माननेवाले तथा पूर्वान्त और अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है। इनके अतिरिक्त और दूसरा कोई कारण नही है।

"तथागत उन सभी कारणोको जानते है, उन कारणोके प्रमाण और प्रकारको जानते है, और उससे अधिक भी जानते हैं, जानकर भी 'मै जानता हूँ', ऐसा अभिमान नही करते।

"वेदनाओकी निवृत्ति, उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, आस्वाद, दोप और लिप्तताको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते हैं। भिक्षुओ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोके समझनेके योग्य है, जिन्हे तथागत स्वय जानकर और साक्षात्-कर कहते है, जिसे तथागतके यथार्थ गुणको कहनेवाले कहते है।

"भिक्षुओ! जो श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोसे नित्यतावादी है तथा आत्मा और लोकको नित्य कहते हैं, वह उन सासारिक वेदनाओको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणो और ब्राह्मणोकी चचलता मात्र है।

"भिक्षुओ! जो ० चार कारणोसे अशत नित्यतावादी ओर अशत अनित्यतावादी है, जो ० चार कारणोसे आत्मा और लोकको अन्तानन्तिक (=सान्त भी और अनन्त भी) मानते है, जो चार कारणोसे प्रश्नोके पूछे जानेपर कोई स्थिर वात नही कहते, जो अकारणवादी हो दो कारणोसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते है, जो ० इन अट्ठारह कारणोसे ० पूर्वान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है।

जो० सोलह कारणोसे मरनेके वाद आत्मा सज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते, जो ० आठ कारणोसे 'मरनेके वाद आत्मा सज्ञावाला नही रहता', ऐसा मानते हैं, जो ० आठ कारणोसे० आत्मा न तो सज्ञावाला और न नही-सज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते हैं, जो सात कारणोसे उच्छेदवादी ० है, जो पॉच कारणोसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी ० है, जो० इन ४४ कारणोसे ० अपरान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है।

"जो ० इन ६२ कारणोसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक ० पूर्वान्त और अपरान्तके आधार पर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोका प्रयोग करते है, वह सभी उन सासारिक वेदनाओको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणो और ब्राह्मणोकी चचलता मात्र है।

"भिक्षुओ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोसे आत्मा और लोकको नित्य मानते है वह स्पर्शके होनेसे। ० । जो ० ६२ कारणोसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० है, वह स्पर्शके ही होनेसे।

"भिक्षुओ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोसे आत्मा ओर लोकको नित्य मानते है, उन्हे स्पर्शके विनाही वेदना होती है, ऐसी वात नही है ०। ।

"भिक्षुओ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० है, वे सभी छै स्पर्शायतनो (=विषयो)से स्पर्श करके वेदनाको अनुभव करते है। उनकी वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णा ० से उपादान, उपादान० से भव, भव० से जन्म और जन्म०से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दु ख, दौर्मनस्य और परेशानी होती है। भिक्षुओ! जब भिक्षु छै स्पर्शायतनोके समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और विरागको यथार्थत जान लेता है, तव वह इनसे ऊपरकी वातोको भी जान लेता है।

"भिक्षुओ! ० वे सभी इन्ही ६२ कारणोके जालमे फँसकर वही वधे रहते है। भिक्षुओ! जैसे

कोई दक्ष मल्लाह, या मल्लाहका लळका छोटे-छोटे छेदवाले जालसे सारे जलाशयको हीडे, उसके मनमे ऐसा हो—इस जलाशयमे जो अच्छी-अच्छी मछलियॉ है, सभी जालमे फँसकर वझ गई है, उसी तरहसे०।

"भिक्षुओ! भव-तृष्णा (=जन्मके लोभ) के उच्छिन्न हो जानेपर भी तथागतका शरीर रहता है। जव तक उनका शरीर रहता है, तभी तक उन्हे मनुष्य और देवता देख सकते है। शरीर-पात हो जाने के बाद उनके जीवन-प्रवाहके निरुद्ध हो जानेसे उन्हे देव और मनुष्य नही देख सकते। भिक्षुओ! जैसे किसी आमके गुच्छेकी ढेपके टूट जानेपर उस ढेपसे लगे सभी आम नीचे आ गिरते है, उसी तरह भव-तृष्णाके छिन्न हो जानेपर तथागतका शरीर होता है।०"

भगवान्‌के इतना कहनेपर आयुष्मान आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! आश्चर्य है, अद्‌भुत है। भन्ते! आपके इस उपदेशका नाम क्या हो।"

"आनन्द! तो तुम इस धर्म-उपदेशको 'अर्थजाल' भी कह सकते हो, धर्मजाल भी०, ब्र ह्म जा ल भी०, दृष्टिजाल भी०, तथा अलौकिक सग्रामविजय भी कह सकते हो।"

भगवान्‌ने यह कहा। उन भिक्षुओने भी अनुकूल मनसे भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन किया। भगवान्‌के इस प्रकार विस्तारपूर्वक कहनेपर दस हजार ब्रह्माड कॉप उठे।

२—सामञ्ञफल-सुत्त (१।२)

१—१२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल छै तीर्थंकरोके मत—शील (=सदाचार), समाधि, प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [1]राजगृहमे [2]जीवक कौमार-भृत्यके आम्रवनमे, साढे बारहसौ भिक्षुओके महाभिक्षुसघके साथ विहार करते थे।

उस समय पूर्णमासीके उपोसथके दिन चातुर्मासकी कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा)से पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध [3]अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्योसे घिरा, उत्तम प्रासादके ऊपर बैठा हुआ था। तब राजा ० अजातशत्रु ० ने उस दिन उपोसथ (=पूर्णिमा)को उदान कहा—

---

[1] अ क. "यह बुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय नगर होता है, बाकी समय शून्य भूतोका डेरा रहता है।"

[2] अ क ".. जीवकने एक समय भगवान्‌को . . . विरेचन देकर शिविके दुशालेको देकर, वस्त्र(-दान)के अनुमोदनके अन्तमें स्रोतआपत्तिफलको पा सोचा—'मुझे दिनमें दो तीन बार बुद्धकी सेवामें जाना है, तथा यह वेणुवन अति दूर है, और मेरा आम्रवन समीपतर है, क्यो न मैं यहाँ भगवान्‌के लिये विहार बनवाऊँ'। (तब) उसने उस आम्रवनमें रात्रि-स्थान, दिन-स्थान, गुफा(=लयन), कुटी, मडप आदि तैयार करा, भगवान्‌के अनुरूप गध-कुटी बनवा, आम्रवनको अठारह हाथ ऊँची ताँबेके पत्रके रगके प्राकारसे घिरवाकर, चीवर-भोजन दानके साथ बुद्धसहित भिक्षु-सघके उद्देश्यसे दान-जल छोळकर, विहार अर्पित किया।"

[3] अ. क "इसके पेटमें होते देवीको . . दोहद(=सधौर) उत्पन्न हुआ। . . . राजाने . . . वैद्यको बुलाकर सुनहली छुरीसे (अपनी) बाँह चिरवा सुवर्णके प्यालेमें लोहू ले पानीमें मिला, पिला दिया। ज्योतिषियोने सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका शत्रु होगा, इसके द्वारा राजा मारा जायेगा।' देवीने सुनकर.. गर्भ गिरानेके लिये बागमें जाकर पेट मँडवाया, किंतु गर्भ न गिरा। . . . । जन्मके समय भी . . . रक्षक लोग बालकको हटा ले गये। तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया। उसको पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ; इससे वह मार न सकी। राजाने भी क्रमश उसे युवराज-पद दिया। . . . राज्य दे दिया। उसने .. देवदत्तसे कहा। तब उसने उससे कहा—'. . . थोळेही दिनोमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनेगा। . . . । चुपकेसे मरवा डालो।'

'किन्तु भन्ते! मेरा पिता है न? शस्त्र-वध्य नही है।'

'भूखा रखकर मार दो।' उसने पिताको तापन-गेहमें डलवा दिया। तापनगेह कहते हैं, (लोह-) कर्म करनेके लिये (बने) धूम-घरको। और कह दिया—मेरी माताको छोळकर दूसरेको मत देखने

"अहो ! कैसी रमणीय चाँदनी रात है ! कैसी सुन्दर चाँदनी रात है !! कैसी दर्शनीय चाँदनी रात है !!! कैसी प्रासादिक चाँदनी रात है !!! कैसी लक्षणीय चाँदनी रात है !!! किस श्रमण या ब्राह्मणका सत्सग करे, जिसका सत्सग हमारे चित्तको प्रसन्न करे।"

ऐसा कहनेपर एक राज-मन्त्रीने मगधराज, अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्रसे यह कहा—"महाराज ! यह पू र्ण का श्य प सघ-स्वामी=गण-अध्यक्ष, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थङ्कर (=मतस्थापक) बहुत लोगोसे सम्मानित, अनुभवी, चिरकालका साधु, वयोवृद्ध है। महाराज उसी पू र्ण का श्य प से धर्मचर्चा करे,

---

देना। देवी सुनहले कटोरे (=सरक)में भोजन रख, उत्सगमें (छिपा) प्रवेश करती थी। राजा उसे खाकर निर्वाह करता था। उसने . वह हाल सुन—'मेरी माताको उत्सग (=ओइछा) बाँध मत जाने दो।' तब जूळेमें डालकर . तब सुवर्ण पादुकामे .। तब देवी गधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार मधुर(रस) मलकर, कपळा पहिनकर जाने लगी। राजा उसके शरीरको चाटकर निर्वाह करता था। . । 'अबसे मेरी माताका जाना रोक दो।' देवी दर्वाजेके पास खळी हो बोली—'स्वामि बिंबिसार ! बचपनमें मुझे इसे मारने नही दिया, अपने शत्रुको अपनेही पाला। यह अब अन्तिम दर्शन है। इसके बाद अब तुम्हे न देखने पाऊँगी। यदि मेरा (कोई) दोष हो, तो क्षमा करना' (कह) रोती काँदती लौट गई।

उसके बादसे राजाको आहार नही मिला। राजा (स्रोतआपत्ति)-मार्गफल (की भावना)के सुखसे टहलते हुए निर्वाह करता था। । 'मेरे पिताके पैरोको छुरेसे फाळकर नून-तेलसे लेपकर खैरके अगारमें चिटचिटाते हुए पकाओ—(कह) नापितको भेजा। . पका दिया। राजा मर गया। उसी दिन राजा (अजातशत्रु)को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो लेख (=पत्र)एक साथही निवेदन करनेके लिये आये। अमात्योने पहिले पुत्र-जन्मके . लेखको ही राजाके हाथमें रक्खा। उसी क्षण पुत्र-स्नेह राजाको उत्पन्न हो, सकल शरीरको व्याप्तकर, अस्थि-मज्जा तकमें समा गया। उस समय उसने पिताके गुणको जाना—'मेरे पैदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसाही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा'। 'जाओ भणे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो' बोला। 'किसको मुक्त कराते हो देव !' (कहकर) दूसरा लेख हाथमें रख दिया। वह उस समाचारको सुनकर रोते हुए माताके पास जाकर बोला—'अम्मा ! मेरे पिताका मेरे ऊपर स्नेह था ?' उसने कहा—'बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है ? बचपनमें तेरी अँगुलीमे फोळा हुआ था। तब रोते-रोते तुझे न समझा सकनेके कारण, कचहरी (=विनिश्चयशाला=अदालत) में बैठे, तेरे पिताके पास ले गये। पिताने तेरी अँगुली मुँहमें रक्खी। फोळा मुखमें ही फूट गया। तब तेरे स्नेहसे उस खून मिली पीबको न थूककर, घोट गये। इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था।' उसने रो काँदकर पिताकी शरीर-क्रिया की।

देवदत्तने सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिषद् लेकर चले जानेपर मुँहसे गर्म खून फेंक, नवमास बीमार पळा रहकर, खिन्न हो (पूछा)—'आजकल शास्ता कहाँ है ?'

'जेतवनमें' कहनेपर 'मुझे खाटपर ले चलकर शास्ताका दर्शन कराओ' कहकर ले जाये जाते हुए दर्शनके अयोग्य काम करनेसे, जेतवन पुष्करिणीके समीप ही वह फटी पृथ्वीमें धँसकर नर्कमें जा स्थित हुआ। । यह (अजातशत्रु) कोसल-राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह-राजकी(का) नही। वैदेही पडिताको कहते हैं, जैसे 'वैदेहिका गृहपत्नी', 'आर्य आनन्दको वैदेह मुनि'। .. वेद= ज्ञान , उससे ईहन (=प्रयत्न) करती है=वैदेही ।

पू र्ण का श्य प के साथ थोळी ही धर्म-चर्चा करनेसे चित्त प्रसन्न हो जायेगा। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज अजातशत्रु, वैदेहिपुत्र चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने मगधराज ० से यह कहा—"महाराज! यह म क्ख लि गो सा ल सघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०से यह कहा—"महाराज! यह अ जि त के श क म्ब ल सघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर ०।

दूसरे मन्त्रीने भी ०—"महाराज! यह प्र क्रु ध का त्या य न सघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह स ञ्ज य बे ल ट्ठि पु त्त सघवाला ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह निगण्ठ **नाथपुत्त** (नातपुत्त, नाटपुत्त) सघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

उस समय जी व क कौमारभृत्य राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुके पास ही चुपचाप बैठा था। तब राजा ० अजातशत्रुने **जीवक** कौमारभृत्यसे यह कहा— "सौम्य जीवक! तुम बिलकुल चुपचाप क्यो हो?"

"देव! ये भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे आमके बगीचेमे साढे बारह सौ भिक्षुओके बळे सघके साथ विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मगल यश फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे युक्त, सुगत (=सुन्दरगतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने)के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योके शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं'। महाराज! आप उनके पास चले और धर्म-चर्चा करे। उन भगवान्के साथ धर्मालाप करनेसे कदाचित् आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।"

"तो सौम्य जीवक! हाथियोकी सवारीको तैयार कराओ।"

तब जीवक कौमारभृत्यने राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुको "देव! जैसी आज्ञा।" कह पॉच सौ हाथी और राजाके अपने हाथीको सजवाकर मगधराज० को सूचना दी—"देव! सवारीके लिये हाथी तैयार हैं, अब देवकी जैसी इच्छा हो करे।"

तब राजा० अजातशत्रु पॉच सौ हाथियोपर अपनी रानियोको बिठला स्वय राजहाथीपर सवार हो मशालोकी रोशनीके साथ रा ज गृ ह से बळे राजकीय ठाट बाटसे निकला, और, जहाँ जीवक कौमारभृत्यका आमका बगीचा था उधर चला। तब उस आमके बगीचेके निकट पहुँचनेपर ० अजातशत्रुको भय, घबराहट और रोमाञ्च होने लगा। मगधराज ० डरकर घबराकर और रोमाञ्चित होकर जीवक कौमारभृत्यसे बोला—"सौम्य जीवक! कही तुम मुझे धोखा तो नही दे रहे हो? कही तुम मुझे दगा तो नही दे रहे हो? कही तुम मुझे शत्रुओके हाथ तो नही दे रहे हो? बारह सौ पचास भिक्षुओके बळे सघके (यहाँ रहनेपर भी) भला कैसे, थूकने, खासने तकका या किसी दूसरे प्रकारका शब्द न होगा?"

"महाराज! आप मत डरे, आपको मैं धोखा नही दे रहा हूँ, न आपको दगा दे रहा हूँ, न आपको शत्रुओके हाथमे दे रहा हूँ। आगे चले महाराज! आगे चले। यह मडपमे दीये जल रहे हैं।"

तब ० अजातशत्रु जितनी भूमि हाथीद्वारा जाने योग्य थी उतनी हाथीसे जा, हाथीनागसे उतर पैदलही उस मडपका जहाँ द्वार था वहाँ गया। जाकर जीवक कौमारभृत्यसे यह बोला—

"सौम्य जीवक! भगवान् कहाँ हैं?"

"महाराज ! भगवान् यहाँ है। महाराज ! भगवान् यहाँ भिक्षुसघको सामने किये बीच वाले खम्भेके सहारे पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे है।"

तब ० अजातशत्रु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा होकर अजातशत्रुने निर्मल जलाशयकी तरह बिल्कुल चुपचाप, शान्त, भिक्षुसघको देख यह उदान (=प्रीति वाक्य) कहा—"मेरा कुमार उ द य भ द्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिमे इस समय यह भिक्षुसघ विराज रहा है।"

"महाराज ! प्रेमपूर्वक आओ।"

"भन्ते ! मेरा कुमार उदयभद्र मेरा बळा प्रिय है, मेरा कुमार उदयभद्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिसे युक्त हो इस समय यह भिक्षुसघ विराज रहा है।

तब राजा अजातशत्रु ०। भगवान्को अभिवादन करके और भिक्षु सघको हाथ जोळ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर मगधराज ० ने भगवान्से कहा—"भन्ते ! मै आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो भगवान् कृपा करके प्रश्न पूछनेकी अनुमति दे।"

"महाराज ! जो चाहो पूछो।"

"जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (=विद्या, कला) है, जैसे कि हस्ति-आरोहण (=हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (=युद्धध्वज-धारण), चलक (=व्यूह-रचन), पिंडदायिक (=पिड बाँटनेवाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र), महानाग (=हाथीसे युद्ध करनेवाले)-शूर, चर्म (=ढाल)-योधी, दासपुत्र, आलारिक (=बावर्ची), कल्पक (=हजाम), नहापक (=नहलानेवाले), सूद (=पाचक), मालाकार, रजक, पेशकार (=रगरेज), नलकार, कुभकार, गणक, मुद्रिक (=हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प है, (इनके) शिल्पफलसे (लोग) इसी शरीरमे प्रत्यक्ष जीविका करते है, उससे अपनेको सुखी करते है, तृप्त करते है। पुत्र स्त्रीको सुखी करते है, तृप्त करते है। मित्र अमात्योको०। ऊपर लेजानेवाला, स्वर्गको लेजानेवाला, सुख-विपाकवाला, स्वर्गमार्गीय, श्रमण ब्राह्मणोके लिये दान, स्थापित करते है। क्या भन्ते ! उसी प्रकार श्रामण्य (=भिक्षुपनका) फल भी इसी जन्ममे प्रत्यक्ष (फलदायक) बतलाया जा सकता है ?"

"महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ?"

"भन्ते ! जाना है ०।"

"यदि तुम्हे भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उन्होने उत्तर दिया था ?"

"भन्ते ! मुझे भारी नही है, जब कि भगवान् या भगवान्के समान कोई बैठा हो।"

"तो महाराज ! कहो।"

१—छै तीर्थंकरोंके मत

(१) पूर्ण काश्यपका मत (अक्रियवाद)—"एक बार मै भन्ते ! जहाँ पूर्ण काश्यप थे, वहाँ गया। जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैने समोदन किया एक ओर बैठकर यह पूछा—'हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान है ०। ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मुझसे कहा—'महाराज ! करते कराते, छेदन करते, छेदन कराते, पकाते पकवाते, शोक करते, परेशान होते, परेशान कराते, चलते चलाते, प्राण मारते, बिना दिया लेते, सेध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते भी, पाप नही किया जाता। छुरेसे तेज चक्रद्वारा जो इस पृथिवी के प्राणियोका (कोई) एक माँसका खलियान, एक माँसका पुज बना दे, तो इसके कारण उसको पाप नही, पापका आगम नही होगा। यदि घात करते कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गगाके दक्षिण तीर पर भी जाये, तो भी इसके कारण उसको पाप नही, पापका आगम नही होगा। दान देते, दान

दिलाते, यज्ञ करते, यज्ञ कराते यदि गगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नही, पुण्यका आगम नही होगा। दान दम सयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है।' इस प्रकार भन्ते! पूर्ण ० ने मेरे सादृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य-फल पूछने पर **अक्रिया** वर्णन किया। जैसे कि भन्ते! पूछे आम, जवाब दे कटहल, पूछे कटहल, जवाब दे आम, ऐसेही भन्ते! पूर्ण काश्यपने मेरे सादृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया।"

"कैसे मुझ जैसा (कोई राजा) अपने राज्यमे वसनेवाले किसी श्रमण या ब्राह्मणको देशसे निकाल दे? भन्ते सो मैंने **पूरणकस्सपके** कहे हुयेका न तो अभिनन्दन किया और न निन्दा की। न बळाई, न निन्दा करके खिन्न हो, कोई खिन्न बात भी न कहकर, उस (उसकी कही हुई) वातको न स्वीकार कर, और न उसका ख्याल कर, आसनसे उठकर चल दिया।

(२) मक्खलि गोसालका मत (दैववाद)—

"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ म क्ख लि गो सा ल था वहाँ गया, जाकर मक्खलि गोसालके साथ कुशल समाचार ०। एक ओर वैठकर मक्खलि गोसालसे मैंने यह कहा, 'हे गोसाल! जिस तरह ये जो दूसरे शिल्प हैं, जैसे ०। और भी जो दूसरे ० आँखोके सामने फल देनेवाले है, वे उनसे अपने सुख० पुण्य कमाते है। हे गोसाल! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करते ०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते! **मक्खलि गोसालने** यह उत्तर दिया—'महाराज! सत्वोके क्लेशका हेतु नही है=प्रत्यय नही है। विना हेतुके और विना प्रत्ययके ही सत्व क्लेश पाते है। सत्वोकी शुद्धिका कोई हेतु नही है, कोई प्रत्यय नही है। विना हेतुके और विना प्रत्ययके सत्व शुद्ध होते है। अपने कुछ नही कर सकते है, पराये भी कुछ नही कर सकते है, (कोई) पुरुष भी कुछ नही कर सकता है, वल नही है, वीर्य नही है, पुरुषका कोई पराक्रम नही है। सभी सत्व, सभी प्राणी, सभी भूत, और सभी जीव अपने वशमे नही है, निर्बल, निर्वीर्य, भाग्य और सयोगके फेरसे छै जातियो (मे उत्पन्न हो) सुख और दु ख भोगते है। वे प्रमुख योनियाँ चौदह लाख छियासठ सौ है। पाँच सौ पाँच कर्म, तीन अर्ध कर्म (=केवल मनसे शरीरसे नही), वासठ प्रतिपदाये (=मार्ग), वासठ अन्तरकल्प, छै अभिजातियाँ, आठ पुरुष-भूमियाँ, उन्नीस सो आजीवक, उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नाग-आवास, बीस सौ इन्द्रियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात सज्ञी (=होशवाले) गर्भ, सात असज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रन्थ गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात स्वर, सात सौ सात गाँठ, सात सौ सात प्रपात, सात सौ सात स्वप्न, और अस्सी लाख छोटे-बळे कल्प है, जिन्हे मूर्ख और पण्डित जानकर और अनुगमनकर दु खोका अन्त कर सकते है। वहाँ यह नही है—इस शील या व्रत या तप, ब्रह्मचर्यसे मै अपरिपक्व कर्मको परिपक्व करूँगा। परिपक्व कर्मको भोगकर अन्त करूँगा। सुख दु ख द्रोण(=नाप)से तुले हुये है, ससारमे घटना-बढना उत्कर्ष-अपकर्ष नही होता। जैसे कि सूतकी गोली फेकनेपर उछलती हुई गिरती है, वैसे ही मूर्ख और पडित दौळकर=आवागमनमे पळकर, दु खका अन्त करेगे।

"'भन्ते! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे जानेपर, मक्खलि गोसालने इस तरह ससारकी शुद्धिका उपाय वताया। भन्ते! जैसे आमके पूछनेपर कटहल कहे और कटहलके पूछनेपर आम कहे। भन्ते! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्य-फलके पूछे जानेपर ०। भन्ते! तब मेरे मनमे यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते! सो मैंने मक्खलि गोसालके ०। ० उठकर चल दिया।

(३) अजित केशकम्बलका मत (जडवाद, उच्छेदवाद)—"भन्ते! एक दिन मै जहाँ अ जि त के श क म्ब ल था वहाँ ०। एक ओर वैठकर ० यह कहा—"हे अजित! जिस तरह ०। हे अजित! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करते ०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते! अजित केशकम्बलने यह उत्तर दिया—'महराज! न दान है, न यज्ञ है न होम है, न पुण्य या पापका अच्छा बुरा फल होता है, न यह लोक है न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज (=औपपातिक, देव) सत्व है, और न इस लोकमे वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण है जो इस लोक और परलोकको स्वय जानकर और साक्षात्कर (कुछ) कहेगे। मनुष्य चार महाभूतोसे मिलकर बना है। मनुष्य जब मरता है तब पृथ्वी, महापृथ्वीमे लीन हो जाती है, जल ०, तेज ०, वायु ० और इन्द्रियाँ आकाशमे लीन हो जाती है। मनुष्य लोग मरे हुयेको खाटपर रखकर ले जाते है, उसकी निन्दा प्रशसा करते है। हड्डियाँ कबूतरकी तरह उजली हो (बिखर) जाती है, और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते है, उसका कोई फल नही होता। आस्तिकवाद (=आत्मा है) झूठा है। मूर्ख और पण्डित सभी शरीरके नष्ट होते ही उच्छेदको प्राप्त हो जाते है। मरनेके बाद कोई नही रहता। भन्ते! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० अजित केशकम्बलने उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके ० उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते! तब मेरे मनमे यह हुआ—'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते! सो मैंने अजित केशकम्बलके०।० उठकर चल दिया।

(४) प्रक्रुध कात्यायनका मत (अकृततावाद)—"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ प्रक्रुध कात्यायन ०। श्रमणभावके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते! प्रक्रुध कात्यायनने यह उत्तर दिया—'महाराज! यह सात काय (=समूह) अकृत=अकृतविध=अ-निर्मित=निर्माण-रहित, अवध्य=कूटस्थ, स्तम्भवत् (अचल) है। यह चल नही होते, विकारको प्राप्त नही होते, न एक दूसरेको हानि पहुँचाते है, न एक दूसरेके सुख, दुख, या सुख-दुखके लिये पर्याप्त है। कौनसे सात? पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुख, और जीवन यह सात। यह सात काय अकृत ० सुख-दुखके योग्य नही है। यहाँ न हन्ता (=मारनेवाला) है, न घातयिता (=हनन करानेवाला), न सुननेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण शस्त्रसे शीश भी काटे (तोभी) कोई किसीको प्राणसे नही मारता। सातो कायोसे अलग, विवर (=खाली जगह)मे शस्त्र (=हथियार) गिरता है।'

"इस प्रकार भन्ते! ० प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० प्रक्रुध कात्यायनने दूसरी ही इधर उधरकी बाते बनाई। भन्ते! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते! इसी तरह ० बाते बनाई। भन्ते! तब मेरे मनमे यह हुआ—'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते! सो मैंने ०। ० उठकर चल दिया।

(५) निगण्ठ नाथपुत्तका मत—(चातुर्याम सवर)—"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ निगण्ठ नाथपुत्त ०।—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्तने यह उत्तर दिया—'महाराज! निगण्ठ चार (प्रकारके) सवरोमे सवृत (=आच्छादित, सयत) रहता है। महाराज! निगण्ठ चार सवरोमे कैसे सवृत रहता है? महाराज! (१) निगण्ठ (=निर्ग्रंथ) जलके व्यवहारका वारण करता है (जिसमे जलके जीव न मारे जावे)। (२) सभी पापोका वारण करता है, (३) सभी पापोके वारण करनेसे धुतपाप (=पापरहित) होता है, (४) सभी पापोके वारण करनेमे लगा रहता है। महाराज! निगण्ठ इस प्रकार चार सवरोसे सवृत रहता है। महाराज! क्योकि निगण्ठ इन चार प्रकारके सवरोसे सवृत रहता है, इसीलिये वह निर्ग्रन्थ, गतात्मा (=अनिच्छुक), यतात्मा (=सयमी) और स्थितात्मा कहलाता है।"

"भन्ते! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे० निगण्ठ नाथपुत्तने चार सवरोका वर्णन किया। भन्ते! जैसे आमके पूछने०। भन्ते! इसी तरह० चार सवरोका वर्णन किया। भन्ते! तब मेरे मनमे यह हुआ 'कैसे मुझ जैसा०। भन्ते! सो मैंने०।० उठकर चल दिया।

(६) सजय वेलट्ठिपुत्तका मत (अनिश्चिततावाद)

"भन्ते ! एक दिन मै जहाँ स ञ्ज य वे ल ट्ठि पु त्त० ।—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! सञ्जय वेलट्ठिपुत्तने यह उत्तर दिया—"महाराज ! यदि आप पूछे, 'क्या परलोक है ? और यदि मै समझूँ कि परलोक है, तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मै ऐसा भी नही कहता, मै वैसा भी नही कहता, मै दूसरी तरहसे भी नही कहता, मै यह भी नही कहता कि 'यह नही है' मै यह भी नही कहता कि 'यह नही नही है।' परलोक नही है ०। परलोक है भी और नही भी ०, परलोक न है और न नही है ०। अयोनिज (=औपपातिक) प्राणी है०, अयोनिज प्राणी नही है, है भी और नही भी, न है और न नही है ०। अच्छे बुरे कामके फल है, नही है, है भी और नही भी, न है और न नही है ? ०। तथागत मरनेके बाद होते है नही होते है ० ?' यदि मुझे ऐसा पूछे, और मै ऐसा समझूँ कि मरनेके बाद तथागत न रहते है और न नही रहते है, तो मै ऐसा आपको कहूँ। मै ऐसा भी नही कहता, मै वैसा भी नही कहता ०।'

"भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे ० सजय वेलट्ठिपुत्तने कोई निश्चित बात नही कही। भन्ते ! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह ० कोई निश्चित बात नही कही। भन्ते ! तब मेरे मनमे यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैने ०। ० उठकर चल दिया।

२–भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल

१—शील

"भन्ते ! सो मै भगवान्से पूछता हूँ, 'जिस तरह ये दूसरे शिल्प है, जैसे, हस्त्यारोह, अश्वारोह०। और भी जो दूसरे ० आँखोके सामने फल देनेवाले है, वे उनसे अपने सुख ० करके पुण्य कमाते है। उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करने ० ?"

"हाँ महाराज ! तो मै आपसे ही पूछता हूँ, जैसा आप समझे वैसा ही उत्तर दे। महाराज ! तो आप क्या समझते है ? आपका एक नौकर हो जो आपके सारे कामोको करता हो, आपके कहनेके पहले ही वह आपके सारे कामोको कर चुकता हो, आपके सोने या बैठनेके बाद ही स्वय सोता या बैठता हो, आपकी आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहता हो, प्रिय आचरण करने वाला, प्रिय बोलने वाला, और आपकी आज्ञाओको सुननेके लिये सदा आपके मुँहकी ओर ताकता रहता हो। उस (नौकर)के मनमे यह हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बळा अद्भुत और आश्चर्यमय है। यह मगधराज अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्र भी मनुष्य ही है और मै भी मनुष्य ही हूँ। यह मगधराज० पाँच प्रकारके भोगो (=कामगुणो) का भोग करते है, जैसे मानो कोई देव हो, और मै उनका नौकर हूँ, जो उनके सारे कामोको करता हूँ, उनके कहनेके पहले ही उनके सारे कामोको कर डालता हूँ ०। तो मै भी पुण्य करूँ, शिर और दाढी मुँळवा, काषाय वस्त्र धारण कर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ।'

"वह उसके बाद शिर और दाढी मुळा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर बन, प्रव्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे सयम, वचनसे सयम और मनसे सयम करके विहार करे, तथा खाना कपळा मात्रसे सतुष्ट और प्रसन्न रहे। तब आपसे दूसरे लोग आकर कहे—'महाराज ! क्या आप जानते है कि जो आपका नौकर ० था, वह शिर और दाढी मुँळा, काषाय वस्त्र धारणकर घरसे बेघर बन प्रव्रजित हो गया है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे ० प्रसन्न रहता है।' तब क्या आप ऐसा कहेगे—'मेरा वह पुरुष लौट आवे और फिर भी मेरा नौकर ० होवे।"

"भन्ते ! हम ऐसा नही कह सकते। बल्कि हम ही उसका अभिवादन करेगे, उसकी सेवा करेंगे, उसको आसन देगे और उसे चीवर, पिण्डपात, शयन-आसन और दवा-पथ्य देनेके लिये निमन्त्रण देंगे। उसकी सभी तरहसे देख-भाल भी करेगे।"

"तो महाराज ! क्या समझते है, श्रमणभाव(=साधु होना)के पालन करनेका (यह) फल यही आँखोके सामने मिल रहा है या नही ?"

"भन्ते ! हाँ ऐसा होनेपर तो श्रमणभावके पालन करने का फल यही आँखोके सामने मिल रहा है।"

"महाराज ! यह तो श्रमणभावके पालन करनेका पहला ही फल मैने बतलाया जो कि यही आँखोके सामने मिल जाता है।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या और दूसरा भी श्रमणभावका ० आँखोके सामने मिल जानेवाला फल दिखा सकते है ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! आप ही से पूँछता हूँ, जैसा आप समझे वैसा उत्तर दे। तो क्या समझते है महाराज ! आपका कोई आदमी कृपक, गृहपति, काम-काज करनेवाला और धन-धान्य बटोरनेवाला हो। उसके मनमे ऐसा हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बळा आश्चर्य-कारक और अद्भुत है। यह **मगधराज** ०—मनुष्य हूँ। यह मगधराज ० पाँच भोगोसे ० जैसे कोई देव और मै कृषक ०। सो मै भी पुण्य करूँ। शिर और दाढी ० प्रव्रजित हो जाऊँ।

"सो दूसरे समय अल्प या अधिक (अपनी) भोगकी सामग्रियोको छोळ, अल्प या अधिक परि-वार और जातिके वन्धनको तोळ, शिर और दाढी मुँळा ० प्रव्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे सयम। ०। और आपके दूसरे पुरुष आकर आपको यह कहे—'महाराज ! क्या आप जानते है ! जो आपका पुरुष कृपक ० वह शिर दाढी ०। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे ०। तो आप क्या कहेगे—'वह मेरा आदमी आवे और फिर भी कृषक ० होवे ?"

"नही भन्ते ! बल्कि हम ही उसका ०। तब महाराज ! क्या समझते है, श्रमण भावके पालन करने ० मिल रहा है या नही ?"

"भन्ते ! हाँ, ऐसा होनेपर तो ०।"

"महाराज ! यह दूसरा श्रमणभाव ०।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या दूसरा भी ० ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! सुने, अच्छी तरह ध्यान दे, मै कहता हूँ।"

"हाँ भन्ते !" कह ० अजातशत्रुने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने कहा—"महाराज ! जब ससारमे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या-आचरणसे युक्त, सुगत (=अच्छी गतिवाले), लोकविद्, अनुत्तर (=अलौकिक), पुरुपोको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने)के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव मनुष्योके शास्ता, (और) बुद्ध (=ज्ञानी) उत्पन्न होते है, वह देवताओके साथ, मारके साथ, ब्रह्माके साथ, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजाओके साथ तथा देवताओ और मनुष्योके साथ, इस लोकको स्वय जाने, साक्षात् किये (धर्म)को उपदेश करते है। वह आदि-कल्याण, मध्यकल्याण, अन्त्यकल्याण धर्मका उपदेश करते है। सार्थक, स्पष्ट, विलकुल पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको बतलाते है। उस धर्मको गृहपति या गृहपतिका पुत्र, या किसी दूसरे कुलमे उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके प्रति श्रद्धालु हो जाता है। वह श्रद्धालु होकर ऐसा विचारता है—गृहस्थका जीवन बाधा और रागसे युक्त है और प्रव्रज्या बिल्कुल स्वच्छन्द खुला हुआ स्थान है। घरमे रहनेवाला पूरे तौरसे, एकदम परिशुद्ध और खरादे शखसे निर्मल (इस) ब्रह्मचर्यका पालन नही कर सकता। इसलिये क्यो न मै शिर और दाढी ० प्रव्रजित हो जाऊँ। वह दूसरे समय अल्प या अधिक भोगकी सामग्रियो ० जातिके बन्धनको तोळ ० प्रव्रजित हो जाता है।

(१) शील

१—आरम्भिक शील

"वह प्रव्रजित हो प्रातिमोक्षके नियमोका ठीक ठीक पालन करते हुए विहार करता है, आचार-गोचरके सहित हो, छोटेसे भी पापसे डरनेवाला काय और वचन कर्मसे सयुक्त, शुद्ध जीविका करते, शीलसम्पन्न, इन्द्रिय-सयमी, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और सतुप्ट रहता है।

"महाराज! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है? (१) महाराज! भिक्षु हिसाको छोळ हिसासे विरत होता है, दण्डको छोळ, शस्त्रको छोळ, लज्जा (पाप कर्म्मो)से मुक्त, दयासम्पन्न, सभी प्राणियोके हितकी कामनासे युक्त हो विहार करता है। यह भी शील है। (२) चोरीको छोळ चोरीसे विरत रहता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीको ग्रहण करता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीकी अभिलापा करता है। इस प्रकार वह पवित्रात्मा होकर विहार करता है। यह भी शील है। (३) अब्रह्मचर्यको छोळ ब्रह्मचारी रहता है, मैथुन कर्मसे विरत और दूर रहता है। यह भी शील है। (४) मिथ्याभापण-को छोळ, मिथ्याभापणसे विरत रहता है, सत्यवादी, सत्यसन्ध, स्थिर, विश्वसनीय और यथार्थवक्ता होता है। यह भी शील है। (५) चुगली खाना छोळ, चुगली खानेसे विरत रहता है, लोगोमे लळाई लगानेके लिये यहाँसे सुनकर वहाँ नही कहता है और वहाँसे सुनकर यहाँ नही कहता। वह फूटे हुए लोगोका मिलानेवाला, मिले हुए लोगोमे और भी अधिक मेल करानेवाला, मेल चाहनेवाला, मेल(के काम)मे लगा हुआ, (और) मेलमे प्रसन्न होनेवाला, मेल करनेकी वातका बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (६) कठोर बचनको छोळ कठोर बचनसे विरत रहता है। जो वात निर्दोप, कर्णप्रिय, प्रेमयुक्त, मनमे लगनेवाली, सभ्य, तथा लोगोको प्रिय हे, उसी प्रकारकी वातोका कहनेवाला होता है। यह भी शील है। (७) व्यर्थके बकवादको छोळ व्यर्थके बकवादसे विरत रहता हे। समयोचित वात बोलनेवाला, ठीक वात बोलनेवाला, सार्थक वात बोलनेवाला, धर्मकी वात बोलनेवाला, विनयकी वात बोलनेवाला, जॅचनेवाली बात बोलनेवाला होता है। समय और अवस्थाके अनुकूल विभागकर सार्थक वात बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (८) बीजो और जीवोके नाश करनेको छोळ बीजो और जीवोके नाश करनेसे विरत रहता है ०। (९) दिनमे एक बार ही भोजन करनेवाला होता है, विकाल (=मध्याह्नके बाद) भोजनसे विरत रहता है। (१०) नृत्य, गीत, वाजा, और बुरे प्रदर्शनसे विरत रहता है। (११) ऊँची और सजी-धजी शय्यासे विरत रहता है। (१२) सोने चॉदीके छूनेसे विरत रहता है। (१३), कच्चा अन्न ०। (१४) कच्चा मास ०। (१५) स्त्री और कुमारीके स्वीकार करने ०। (१६) दासी और दासके ०। (१७) भेळ बकरी ०। (१८) मुर्गी, सूअर ०। (१९) हाथी, गाय, घोळा, घोळी ०। (२०) खेत, माल असवावके स्वीकार०। (२१) दूतके काम करने ०। (२२) क्रय-विक्रय ०। (२३) नाप-तराजू, वटखरोमे ठगवनीजी करने ०। (२४) घूस लेने, ठगने, और नकली सोना चॉदी वनाने ०। (२५) हाथ पैर काटने, मारने, वॉधने, लूटने और डॉका डालनेसे विरत होता है ०। यह भी शील है।

२—मध्यम शील

"महाराज! अथवा अनाळी मेरी प्रशसा इस प्रकार करते है—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीजो और सभी प्राणियोके नाशमे लगे रहते है, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होता है), स्कन्धबीज (जिनका प्ररोह गॉठसे होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पॉचवॉ अग्रबीज (उगता पौधा), उस प्रकार श्रमण गौतम बीजो और प्राणियोका नाश नही करता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण०इस प्रकारके जोळने और

बटोरनेमे लगे रहते हैं, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीजोका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमे नही लगा रहता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमे लगे रहते है, जैसे—नृत्य, गीत, वाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तवला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन*, हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोका युद्ध, भेळोका युद्ध, मुर्गोका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मारपीटका खेल, सेना, लळाईकी चाले इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमे नही लगता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० जूआ आदि खेलोके नशेमे लगे रहते है, जैसे—†अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्निक, खलिक, घटिक, सलाक-हस्त, अक्ष, पगचिर, वकक, मोक्खचिक, चिलिगुलिक, पत्ताल्हक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, और नकल, उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोके नशेमे नही पळता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस तरहकी ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर सोते हैं, जैसे—दीर्घ-आसन, पलग, बळे बळे रोयेवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनो ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर नही सोता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनेको सजने-धजनेमे लगे रहते है, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, ऐना, अजन, माला, लेप, मुख-चूर्ण (=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखाका आभूषण छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमे नही लगा रहता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामे लगे रहते है, जैसे—राजकथा, चोर, महामत्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, शूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत-प्रेतकी कथाये, ससारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ, उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओमे नही लगता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारकी लळाई-झगळोकी बातोमे लगे रहते है, जैसे—तुम इस मत (=धर्म विनय)को नही जानते, मै० जानता हूँ, तुम०क्या जानोगे ? तुमने इसे ठीक नही समझा है, मै इसे ठीक-ठीक समझता हूँ, मै धर्मानुकूल कहता हूँ, तुम धर्म-विरुद्ध कहते हो, जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया, बात कट गई, तुमपर दोषारोपण हो गया, तुम पकळ लिये गये, इस आपत्तिसे छूटनेकी कोशिश करो, यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळोकी बातमे नही रहता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० राजाका, महामन्त्रीका,

---

* उस समयके खेल ।

† उस समयके जूये ।

क्षत्रियका, ब्राह्मणोका, गृहस्थोका, कुमारोका (इधर उधर) दूतका काम—वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि, करते फिरते हैं, उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नही करता ।

"महाराज ! अथवा ०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखडी और वचक, वातूनी, जोतिपके पेशावाले, जादू-मन्तर दिखानेवाले और लाभसे लाभकी खोज करते है, वैसा श्रमण गौतम नही है।

३—महाशील

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन विताते है, जैसे—अगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूपिक-विप-विद्या, अग्निहवन, दर्वी-होम, तुप-होम, कण-होम, तण्डुल-होम, घृत-होम, तैल-होम, मुखमे घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विप०, विच्छूके झाळ-फूँककी विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (=मन्त्र जाप, जिससे लळाईमे वाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता ।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन विताते है, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, वाण०, धनुप०, आयुध०, स्त्री०, पुरुप०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैंस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, वत्तक०, गोह०, कर्णिका०, कच्छप० और मृग-लक्षण, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता।

"महाराज ! अथवा०—इस प्रकार० निन्दित जीवन विताते है, जैसे—राजा वाहर निकल जायेगा, नही निकल जायेगा, यहाँका राजा वाहर जायगा, वाहरका राजा यहाँ आवेगा, यहाँके राजाकी जीत होगी और वाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और वाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार , उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता।

"महाराज ! अथवा०—निन्दित जीवन विताते है, जैसे—चन्द्र-ग्रहण होगा, सूर्य-ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायेगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा, नक्षत्र अपने मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा डाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा वादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोका उदय, अस्त, सदोप होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा०, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोप या निर्दोप होनेसे यह फल होगा, उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नही विताता।

"महाराज ! अथवा०—निन्दित जीवन विताते है, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी वृष्टि होगी, सस्ती-होगी, महँगी पळेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा-विद्या, गणना, कविता-पाठ इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही० ।

"महाराज ! अथवा ०—निन्दित जीवन विताते है, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र वताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र वताना, उधार या ऋणमे दिये गये रुपयोके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र वताना, सजना-धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रबलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,०

दूसरेके कानको वहरा बना देना, दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देववा-हिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रके वल मुँहसे अग्नि निकालना, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही०।

"महाराज! अथवा० निन्दित जीवन विताते है, जैसे—मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रबलसे पुरुपको नपुसक और नपुसकको पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, बलिकर्म, आचमन, स्नान-कार्य, अग्नि-होम, दवा देकर वमन, विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमे डालनेके लिए तेल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमे तेल देकर छिकवाना, अजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म, उस प्रकार श्रमण गौतम० नही०।

"महाराज! यह शील तो वहुत छोटे और गौण है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशसा करते है।

"महाराज! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो इस शील-सवरके कारण कहीसे भय नही देखता है। जैसे महाराज! कोई मूर्धाभिपिक्त (=sovereign) क्षत्रिय राजा, सभी शत्रुओको जीतकर कहीसे किसी शत्रुसे भय नही खाता, उसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो कहीसे ०। वह इस शीलके पालन करनेसे अपने भीतर निर्दोप सुखको अनुभव करता है। महाराज! भिक्षु इस तरह शीलसम्पन्न होता है।

४—इन्द्रियोंका सवर (=सयम)

"महाराज! कैसे भिक्षु अपने इन्द्रियोको वशमे रखता है? महाराज! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर न उसके आकारको ग्रहण करता है और न आसक्त होता है। जिस चक्षु इन्द्रियका सयम नही रखनेसे (मनमे) दौर्मनस्य बुराइयाँ और पाप चले आते है, उसकी रक्षा (=सवर)के लिये यत्न करता है। चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है, चक्षु इन्द्रियको सवृत करता है। कानसे शब्द सुनकर ०। नाकसे गन्ध सूँघकर ०। जिह्वासे रसका आस्वादन करके ०। शरीरसे स्पर्श करके०। मनसे धर्मोको जान करके ०। वह इस प्रकारके आ र्य स व र से युक्त हो अपने भीतर परम सुखको प्राप्त करता है। महाराज! इस प्रकार भिक्षु अपनी इन्द्रियोको वशमे रखता है।

५—स्मृति, सम्प्रजन्य

"महाराज! कैसे भिक्षु स्मृति और सप्रजन्य (=सावधानी)से युक्त होता है? महाराज! भिक्षु जाने और आनेमे सावधान रहता है। देखने और भालनेमे ०। मोळने और पसारनेमे ०। सघाटी, पात्र और चीवरके धारण करनेमे ०। खाने, पीने, चलने और सोनेमे ०। पाखाना, पेशाव करनेमे ०। चलते, खळा रहते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते०। महाराज! इस तरह भिक्षु स्मृति और सप्रजन्यसे युक्त होता है।

६—सन्तोष

"महाराज! कैसे भिक्षु सतुष्ट रहता है? महाराज! भिक्षु इस प्रकार शरीर ढकनेभर चीवरसे और पेटभर भिक्षासे सतुष्ट रहता है—वह जहाँ जहाँ जाता है अपना सव कुछ लेकर जाता है। जिस तरह महाराज! पक्षी जहाँ जहाँ उळता है, अपने पखोको लिये ही उळता है, उसी प्रकार महाराज! भिक्षु सतुष्ट रहता है, शरीर ढकनेभर ० —लेकर जाता है। महाराज! वह भिक्षु इस प्रकार सतुष्ट रहता है।

"वह इस प्रकार उत्तम शीलो (=आर्यशीलस्कध), उत्तम इन्द्रियसवर, उत्तम स्मृति-सप्रजन्य, और उत्तम सतोपसे युक्त हो (ऐसे) एकान्तमे वास करता है, जैसे कि जगलमे वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, जगलका रास्ता, खुले स्थान, पुआलका ढेर। पिण्डपातसे लौटनेके वाद भोजन

करनेके उपरान्त, आसन मार, शरीरको सीधाकर, चारो ओरसे स्मृतिमान् हो वाहरकी ओरसे ध्यानको खीच भीतरकी ओर फेरकर विहार करता है। (ऐसे) ध्यान (-अभ्यास)से वह (अपने) चित्तको शुद्ध करता है। हिंसाके भावको छोळ, अहिंसक चित्तवाला होकर विहार करता है। सभी जीवोके प्रति दयाका भाव (लेकर) अपने चित्तको हिंसाके भावसे शुद्ध करता है। आलस्यको छोळ बिना आलस्य-वाला होकर विहार करता है। प्रकाशयुक्त सज्ञा (=ख्याल)से युक्त सावधान हो अपने चित्तको आलस्य-मे शुद्ध करता है। अपनी चचलता और शकाओको छोळ शान्त भावसे रहता है। अपने भीतरकी शान्तिमे-सयुक्तचित्तवाला हो, चचलताओ और शकाओसे अपने चित्तको शुद्ध करता है। सदेहोको छोळ सदेहोसे रहित होकर विहार करता है। भले कामोमे सदहोसे चित्तको शुद्ध करता है।

"**जैसे** महाराज! (कोई) पुरुष **ऋण** लेकर अपना काम चलावे। (जब) उसका काम पूरा हो जावे, वह (पुरुष) अपने (लिये हुए) पुराने ऋणको समूल चुका दे। स्त्रीको पोसनेके लिये उसके पास कुछ (धन) बच भी जावे। उसके मनमे ऐसा होवे—मैंने पहले ऋण लेकर अपना काम चलाया। मेरा काम पूरा हो गया। सो मैंने पुराने ऋणको समूल चुका दिया। स्त्रीको पोसनेके लिये भी मेरे पास कुछ (धन) बच गया है। और इससे वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **रोगी**=दुखी और बहुत बीमार हो। उसे भात अच्छा नही लगे, और न शरीरमे बल मालूम दे। वह (पुरुष) कुछ दिनोके बाद उस बीमारीसे उठे, उसे भात भी अच्छा लगे और शरीरमे बल भी मालूम दे। उसके (मनमे) ऐसा हो—'मै पहले रोगी० था। सो मै बीमारीसे ० बल भी मालूम होता है।' और इससे वह प्रसन्न ०।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **जेलमे** बन्द हो। वह कुछ दिनोके बाद सकुशल, बिना हानिके जेलसे छूटे, और उसके धनका कोई नुकसान न हो। उसके मनमे ऐसा हो—'मै पहले जेलमे ० था। सो मै ० जेलसे छूट गया ०।' और इससे वह प्रसन्न ०।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **दास** हो, न-अपने-अधीन, पराधीन हो, अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ कही नही जा सकनेवाला हो। दूसरे समय वह दासतासे मुक्त हो जावे, स्वतन्त्र, अपराधीन, यथेच्छ-गामी हो, जहाँ चाहे जावे। उसके मनमे ऐसा होवे—'मै पहले दास था ०। सो मै अब ० जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ'। इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"**जैसे** महाराज! कोई धनी और सुखी मनुष्य किसी **कान्तार** (=मरुभूमि)के लम्बे मार्गमे जा रहा हो, जहाँ भोजनकी सामग्रियाँ नही मिलती हो और जहाँ (चोर, डाकू, बाघ आदिका) भय भी हो। सो कुछ समयके बाद उस कान्तारको पार कर जावे, (और) सकुशल भयरहित और क्षेमयुक्त गाँवके पास पहुँच जावे। उसके मनमे ऐसा होवे—'मै पहले० कान्तार०। सो मै अब० पहुँच गया' इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"महाराज! **जैसे** ऋण, रोग, जेल, दासता, और कान्तारके रास्तेमे जाना, वैसेही भिक्षुका अपनेमे वर्तमान पाँच नी व र णो (=काम, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य, विचिकित्सा) को देखता है। जैसे महाराज, ऋणसे मुक्त होना, नीरोग होना, जेलमे छूटना, और स्वतत्र होना, कान्तार पार होना है, वैसे ही महाराज! भिक्षुका इन पाँच नीवरणोको अपनेमे नष्ट हो गया देखना है।

२—*समाधि*

१—प्रथम ध्यान—इन नीवरणोको अपनेमे नष्ट देख, प्रमोद (आनन्द)उत्पन्न होता है। प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिके उत्पन्न होनेसे शरीर शान्त होता है। शरीरके शान्त रहनेसे उसे सुख होता है। सुखके उत्पन्न होनेसे चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह कामो (=सासारिक भोगोकी इच्छा)को छोळ, पापोको छोळ स-वितर्क, स-विचार, और विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। वह इस शरीरको विवेकमे उत्पन्न प्रीति-सुखसे सींचता है, भिगोता है, पूर्ण करता है, और चारो ओर व्याप्त करता है। उसके शरीरका कोई भी भाग विवेकमे उत्पन्न उस प्रीति-सुखसे अव्याप्त नही रहता।

"जैसे महाराज! नाई या नाईका शागिर्द (=अन्तेवासी, लळका) काँसेके थालमे स्नान-चूर्णको डाल पानीसे थोळा थोळा सींचे। वह स्नानचूर्णकी पिण्डी तेलमे अनुगत, बाहर भीतर तेलमे व्याप्त हो (किन्तु तेल) न चुवे। इसी तरह महाराज! इस शरीरको विवेकमे उत्पन्न प्रीतिसुखमे ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नही रहता है।

"महाराज! जो भिक्षु भोगोको छोळ, पापोको छोळ सवितर्क, सविचार, और विवेकमे उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह इसी शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुख-से ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नही रहता है।—महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल (=श्रमण भावका-फल) है, पहले जो प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे गये है, उनमे भी बढकर=प्रशस्ततर है।

२—द्वितीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेमे भीतरी प्रसाद, चित्तकी एकाग्रतासे युक्त किन्तु वितर्क और विचारमे रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले दूसरे ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको समाधिमे उत्पन्न प्रीतिसुखमे ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।

"जैसे महाराज! कोई जलाशय गम्भीर, और भीतरमे पानीके सोतेवाला हो। न उसके पूर्व दिशामे जलके आनेका कोई रास्ता हो, न दक्षिण ०, न पश्चिम ०, न उत्तर ०। समय समयपर वर्षाकी धारा भी उस (जलाशयमे) आकर न गिरे। और उस जलाशय (के भीतरसे) शीतल जलधारा फूटकर उस जलाशयको शीतल जलसे भरे, ०। और उस जलाशयका कोई भी भाग शीतल जलधारासे रहित न हो। इसी तरहसे महाराज! इसी शरीरको समाधिसे उत्पन्न ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।— यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्यफल पहले कहे गये ० से भी बढकर ० है।

३—तृतीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु प्रीति और विरागसे भी उपेक्षायुक्त (=अन्य-मनस्क) हो स्मृति और सम्प्रजन्यसे युक्त हो विहार करता है। और शरीरसे आर्यो (=पण्डितो)के कहे हुए सभी सुखोका अनुभव करता है, और उपेक्षाके साथ, स्मृतिमान् और सुखविहारवाले तीसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको प्रीतिरहित सुखसे सींचता ०। इसके शरीरका कोई भी भाग प्रीतिरहित सुखसे अव्याप्त नही होता।

"जैसे महाराज! उत्पलसमुदाय पद्मसमुदाय, या पुण्डरीकसमुदायमे कोई कोई नील कमल (=उत्पल), रक्तकमल, या श्वेतकमल जलमे उत्पन्न हुये जलहीमे बढे, जलहीमे रहनेवाले, और जलहीके भीतर पुष्ट होनेवाले, जलमे चोटी तक शीत जलमे व्याप्त ०। उनका कोई भी भाग शीत जलसे अव्याप्त नही रहता। इसी तरह महाराज! भिक्षु इस शरीरको प्रीतिरहित सुखमे ०। उसके शरीरका कोई भी भाग ०। महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य फल ०।

४—चतुर्थ ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु सुखको छोळ, दुःखको छोळ पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्यके अस्त हो जानमे न-दुःख और न-सुखवाले, तथा स्मृति और उपेक्षासे शुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। सो इसी शरीरको अपने शुद्ध चित्तसे निर्मल बनाकर बैठता है। उसके शरीरका कोई भाग शुद्ध और निर्मल चित्तसे अव्याप्त नही होता। जैसे महाराज! कोई पुरुष उजले कपळे से शिर तक ढाँककर, पहनकर बैठे, (और) उसके शरीरका कोई भाग उस उजले कपळेसे बे-ढँका न हो। इसी तरह महाराज! भिक्षु इसी शरीरको ०— अव्याप्त नहीं होता। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्यफल ०।

३—प्रज्ञा

१—ज्ञान दर्शन—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, निर्मल, निष्पाप, क्लेशोसे रहित, मृदु, मनोरम, और निश्चल चित्त पानेके वाद सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिये अपने चित्तको नवाता है। वह इस प्रकार जानता है—'यह मेरा शरीर, भौतिक (=रूपी) चार महाभूतो (=पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बना, माता और पिताके सयोगसे उत्पन्न, भात दालसे वर्द्धित, अनित्य, छेदन, भेदन, मर्दन, और नाशन योग्य (है)। यह मेरा विज्ञान (=मन) इसमे लग जाता है और बँध जाता है। जैसे महाराज! श्वेत अच्छी जातिवाला, अठपहलू, अच्छा काम किया हुआ, स्वच्छ, प्रसन्न, निर्मल, और सभी गुणोसे युक्त हीरा (हो), और उसमे नीला, पीला, लाल, उजला, या पाडु रगका धागा पिरोया हो। उसे आँखवाला (कोई) पुरुष हाथमे लेकर देखे—'यह श्वेत ० हीरा पाडु रगका धागा पिरोया है। इसी तरह महाराज! भिक्षु एकाग्र, शुद्ध ०—चित्तको लगाता है। वह ऐसा जानता है,—'यह मेरा शरीर भौतिक ० नाशनयोग्य है। और मेरा यह विज्ञान यहाँ लग गया है, फँस गया है। यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल० वढकर है।

२—मनोमय शरीरका निर्माण—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पानेके वाद मनोमय शरीरके निर्माण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह इस शरीरसे अलग एक दूसरे भौतिक, मनोमय, सभी अङ्गप्रत्यङ्गोसे युक्त, अच्छी पुष्ट इन्द्रियोवाले शरीरका निर्माण करता है।

जैसे महाराज! कोई पुरुष **मूँजसे** सरकडेको निकाल ले। उसके मनमे ऐसा हो, 'यह मूँज है (और) यह सरकडा। मूँज दूसरी है और सरकडा दूसरा है। मूँजहीसे सरकडा निकाला गया है।'

"**जैसे** महाराज! (कोई) पुरुष **तलवारको म्यानसे निकाले**। उसके मनमे ऐसा हो—'यह तलवार है और यह म्यान। तलवार दूसरी है ओर म्यान दूसरा। तलवार म्यान हीसे निकाली गई है।

"या, **जैसे** महाराज! कोई (सँपेरा) अपने **पिटारेसे सॉपको निकाले**। उसके मनमे ऐसा हो—'यह सॉप है यह पिटारा ०।' इसी तरहसे महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पाकर मनोमय शरीरके निर्माणके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो इस शरीरसे दूसरा ०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

३—ऋद्धियाँ—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धियोकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोको प्राप्त करता है—एक होकर वहुत होता है, वहुत होकर एक होता है, प्रगट होता है, अन्तर्धान होता हे, दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार विना टकराये चला जाता है, मानो आकाशमे (जा रहा हो)। पृथिवीमे जलमे जैसा गोते लगाता है, जलके तलपर भी पृथिवीके तलपर जैसा चलता है। आकाशमे भी पलथी मारे हुये उळता है, मानो पक्षी (उळ रहा हो), महा-तेजस्वी सूरज और चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है, ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमे किये रहता है।

"**जैसे** महाराज! (कोई) चतुर कुम्हार, या कुम्हारका लळका अच्छी तरहसे तैयार की गई मिट्टी से जो वर्तन चाहे वही बनाले और फिर बिगाळ दे।

"**जैसे** महाराज! (कोई) चतुर (हाथीके) दाँतका काम करने वाला (=**दन्तकार**) ० अच्छी तरह सोधे गये दाँत से ०।

"**जैसे** महाराज! कोई चतुर **सुवर्णकार** (=सोनार) ० अच्छी तरहसे सोधे गये सोनेसे ०।—इसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्त कर ऋद्धिकी प्राप्तिके लिए अपने चित्तको लगाता हे। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोको प्राप्त कर लेता है—एक होकर बहुत ०।

"यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

४—दि व्य श्रो त्र—"वह इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पाकर दिव्य श्रोत्रधातुके पानेके लिये अपने चित्तको लगाता है, और वह अपने अलौकिक शुद्ध दिव्य, श्रोत्र (=कान)से दोनो (प्रकारके) शब्द सुनता है, देवताओके भी और मनुष्योके भी, दूरके भी और निकटके भी। जैसे महाराज ! कोई पुरुष रास्तेमे जा रहा हो, वह सुने भेरीके शब्द, मृदङ्गके शब्द, शख और प्रणवके शब्द। उसके मनमे ऐसा हो, (यह) भेरीका शब्द है, मृदङ्गका शब्द है, शख और प्रणवका शब्द है। इसी तरहसे महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पा दिव्य श्रोत्रधातुके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह, शुद्ध दिव्य० दूरके भी और निकटके भी। महाराज ! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल०।

५—प र चि त्त ज्ञा न—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर दूसरेके चित्तकी बातोको जाननेके लिये अपना चित्त लगाता है। वह दूसरे सत्वोके, दूसरे लोगोके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—रागसहित चित्तको रागसहित जान लेता है, वैराग्यसहित चित्त०, द्वेषसहित चित्त०, द्वेषसे रहित चित्त०, मोहसहित चित्त०, मोहसे रहित०, सकीर्ण चित्त०, विक्षिप्त चित्त०, उदार चित्त०, अनुदार चित्त०, सासारिक (=साधारण) चित्त०, अलौकिक (=असाधारण) चित्त, एकाग्र चित्त ०, न-एकाग्र ०, विमुक्त चित्त ०, अ-मुक्त (=बद्ध) चित्त ० (को वैसाही जान लेता है),

"जैसे महाराज ! स्त्री या पुरुष, या लळका, या जवान, अपनेको सज धजकर दर्पण या शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ जलके पात्रमे अपने मुखको देखते हुये अपने मुखके मैलेपन या स्वच्छताको ज्योका त्यो जान ले, उसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर दूसरेके चित्त ०। वह दूसरे सत्वो और दूसरे लोगोके चित्त ०।—यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

६—पूर्वजन्मोका स्मरण—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर पूर्व जन्मोकी बातोको स्मरण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो नाना पूर्व जन्मोकी बातोको स्मरण करता है। जैसे, एक जाति, दो ०, तीन ०, चार ०, पाँच ०, दस ०, बीस ०, तीस ०, चालीस ०, पचास ०, सौ ०, हजार ०, लाख ०, अनेक सवर्त (=प्रलय) कल्पो, अनेक विवर्त (=सृष्टि) कल्पो, अनेक सवर्त-विवर्त कल्पो (को जानता है)—'(मै) वहाँ था, इस नाम वाला, इस गोत्र वाला, इस रगका, इस आहार (भोजन)को खाने वाला इतनी आयु वाला था। मैने इस प्रकारके सुख और दु खका अनुभव किया। सो (मै) वहाँसे मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ, इस नाम वाला ०। सो (मै) वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ" इस तरह आकार प्रकारके साथ वह अनेक पूर्व जन्मोको स्मरण करता है।

"जैसे महाराज ! (कोई) पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जावे, वह फिर भी उस गाँवसे अपने गाँवमे लौट आवे। उसके मनमे ऐसा हो—'मै अपने गाँवसे अमुक गाँवमे गया, वहाँ ऐसे खळा रहा, ऐसे बैठा, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस गाँवसे भी अमुक गाँवमे गया, वहाँ भी ऐसे खळा ०—सो मै उस गाँवसे अपने गाँवमे लौट आया। इसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र ० अनेक पूर्व जन्मोको ०—जैसे, एक जन्म ०। मै वहाँ था, इस नाम वाला ०। इस तरह आकार प्रकारके साथ ०। यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

७—दिव्य चक्षु—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर प्राणियोके जन्म मरण (के विषय) मे जाननेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह शुद्ध और अलौकिक दिव्य चक्षुसे मरते उत्पन्न होते, हीन अवस्थामे आये, अच्छी अवस्थामे आये, अच्छे वर्ण (=रग) वाले, बुरे वर्ण वाले, अच्छी गतिको प्राप्त, बुरी गतिको प्राप्त, अपने अपने कर्मके अनुसार अवस्थाको प्राप्त, प्राणियोको जान लेता है—ये प्राणी शरीरसे दुराचरण, वचनसे दुराचरण, और मनसे दुराचरण करते हुये, साधुपुरुषोकी निन्दा करते थे, मिथ्या दृष्टि (=बुरे सिद्धान्त) रखते थे, बुरी धारणा (= मिथ्यादृष्टि) के काम करते थे। (अब) वह मरनेके बाद नरक, और दुर्गतिको प्राप्त हुये है। और यह (दूसरे)

प्राणी शरीर, वचन और मनसे सदाचार करते, साधुजनोकी प्रशसा करते, ठीक धारणा (=सम्यक् दृष्टि) वाले, सम्यक् दृष्टिके अनुकूल आचरण करते थे, सो अब अच्छी गति और स्वर्गको प्राप्त हुये है।—इस तरह शुद्ध अलौकिक दिव्य चक्षुसे ० जान लेता है।

"जैसे महाराज! **चौरस्तेके बीचमें प्रासाद** (=महल) हो। वहाँ आँखवाला (कोई) मनुष्य खळा हो मनुष्योको घरमे घुसते भी और बाहर आते भी एक सळकसे दूसरी सळकमे घूमते, चौरस्तेके बीचमे पास बैठे भी देखे। उसके मनमे ऐसा होवे —'यह मनुष्य घरमे घुसते हैं, यह बाहर निकल रहे है, यह एक सळकसे दूसरी सळकमे घूम रहे है, यह चौरस्तेके बीचमे बैठे है।' इसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र,० चित्तको पाकर प्राणियोके जन्म मरण जानने ०। वह० दिव्य चक्षुसे प्राणियोको मरते जीते ० जान लेता है—'यह प्राणी शरीर० दुर्गति०। ये प्राणी० सुगति०। इस प्रकार० दिव्य चक्षुसे प्राणियोको जन्म लेते ० जान लेता है। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष०।

८—**दु ख-क्षय-ज्ञान**—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर आस्रवो (=चित्तमलो)के क्षयके (विषयमें) जाननेके लिये ०। वह 'यह दु ख है' इसको भली भाति जान लेता है, 'यह दु ख-समुदय (=दु खका कारण) है ०', 'यह दुख-निरोध (=दु खका नाश) है' ०, 'यह दु खोसे बचनेका मार्ग है'० जान लेता है। 'यह आस्रव है' ०, 'यह आस्रवोका समुदय है' ०, 'यह आस्रवोका निरोध है' ०, 'यह आस्रवोके निरोधका मार्ग है' ०। ऐसा जानने और देखनेसे कामास्रव[1]से उसका चित्त मुक्त हो जाता है, भवआस्रवसे ०, अविद्या-आस्रवसे ०। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये करनेको नही रहा'—ऐसा जान लेता है। /

"जैसे महाराज! पहाळ के ऊपर स्वच्छ, प्रसन्न और **निर्मल जलाशय** (हो)। वहाँ आँख-वाला (कोई) मनुष्य किनारेपर खळा होकर, सीप, घोघा, और जलजन्तु, तैरती खळी मछलियाँ, देखे। उसके मनमे ऐसा हो—'यह जलाशय स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल है। इसमे ये सीप ०' उसी तरह महा-राज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र० चित्तको पाकर आस्रवोके क्षयके लिये०। वह 'यह दु ख है' ० ०। 'यह आस्रव है' ० ० जान लेता है। जानने और देखनेसे कामास्रवसे भी उसका चित्त मुक्त हो जाता है, भवआस्रव ०, अविद्यआस्रव ०। 'मै मुक्त हो गया, मै मुक्त हो गया'—ज्ञान होता है। आवागमन क्षीण०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष ०।

"महाराज! इस प्रत्यक्ष श्रामण्य-फलसे बढकर कोई दूसरा प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल नही है।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर मगधराज ० अजातशत्रुने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! जैसे उलटेको सीधा करदे, जैसे ढँकेको खोल दे, जैसे मार्ग भूलेको मार्ग बता दे, जैसे अन्धकारमे तेलका दीपक दिखादे, जिसमे कि आँखवाले रूपको देखें, उसी तरहसे भन्ते! भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते! यह मै भगवान्‌की शरणमे जाता हूँ, धर्मकी और भिक्षु-सघकी भी। आजसे यावज्जीवन भगवान् मुझे अपनी शरणमे आया उपासक स्वीकार करे। भन्ते! मैने एक बळा भारी अपराध किया है जो अपनी मूर्खता, मूढता और पापोके कारण राज्यके लिये अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या की। सो भन्ते! भविष्यमे सँभलकर रहनेके लिये मुझ अपराधी पापीको क्षमा करे।"

"तो महाराज! अपनी मूर्खता, मूढता और पापोसे जो तुमने अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या कर दी, सो बळा भारी अपराध और पाप किया। (किंतु) चूकि महाराज! तुम

---

[1]भोगो (=कामके)के भोगनेकी इच्छा, जन्मनेकी इच्छा, और अविद्या यही तीनो चित्तमल उक्त तीन आस्रव है।

अपने पापको स्वीकारकर भविष्यमे सँभलकर रहनेकी प्रतिज्ञा करते हो, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूँ। आर्यधर्ममे यह वृद्धि (की वात) ही समझी जाती है, यदि कोई अपने पापको समझकर और स्वीकार करके भविष्यमे उस पापको न करने और धर्माचरण करनेकी प्रतिज्ञा करता है।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर राजा मागध वैदेहीपुत्र, अजातशत्रुने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! तो मैं अव जाता हूँ, मुझे वहुत कृत्य है, वहुत करणीय है।"

"महाराज! जिसका तुम समय समझते हो।"

तव राजा ० अजातशत्रु भगवान्‌के कहे हुयेका अभिनन्दन और अनुमोदन कर आसनसे उठ भगवान्‌की वन्दना और प्रदक्षिणाकर चला गया।

तव भगवान्‌ने राजा ० अजातशत्रुके जानेके वाद ही भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! इस राजाका सस्कार अच्छा नही रहा, यह राजा अभागा है। यदि भिक्षुओ! यह राजा अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या न करता, तो आज इसे इसी आसनपर वैठे वैठे विरज (=मल रहित), निर्मल धर्मचक्षु (=धर्मज्ञान) उत्पन्न हो जाता।"

भगवान्‌ने यह कहा, भिक्षुओने भगवान्‌के भाषणका वळी प्रसन्नतासे अभिनन्दन किया।

३—अम्बट्ठ-सुत्त (१।३)

१—अम्बष्टका शाक्योपर आक्षेप। २—शाक्योकी उत्पत्ति। ३—जात-पाँतका खडन। ४—विद्या और आचरण। ५—विद्याचरण के चार विघ्न।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओके महान् भिक्षु-सघके साथ को स ल (देश) मे विचरते जहाँ इ च्छा न ग ल नामक ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् इच्छानगलके इच्छानगल-वनखण्डमे विहरते थे ।

उस समय पौ ष्क र सा ति ब्राह्मण, कोसलराज, प्रसेनजित-द्वारा प्रदत्त, राजभोग्य राज-दायज्ज ब्रह्म-देय, जनाकीर्ण, तृणकाष्ठ-उदकधान्यसम्पन्न उ क्क ट्ठा का स्वामी था।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुना—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० कोसल-देशमे चारिका करते, इच्छानगलमे ० विहार कर रहे है। उन भगवान् गौतमका ऐसा मगल-कीर्ति शब्द फैला हुआ है। वह भगवान् अर्हत् सम्यक् सबुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योके शास्ता, बुद्ध भगवान् है। वह देव-मार सहित इस लोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको स्वय जानकर, साक्षात् कर, समझाते है। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण पर्यवसान-कल्याण वाले धर्मका उपदेश करते है। अर्थ-सहित=व्यजन-सहित, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते है। इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। उस समय पौष्करसाति ब्राह्मणका अम्बष्ट नामक माणवक अध्यायक, मत्र-धर, निघण्टु, केटुभ (=कल्प), अक्षर-प्रभेद, शिक्षा (=निरुक्त) सहित तीनो वेद, पाँचवे इतिहासका पारङ्गत, पद-ज्ञ (=कवि), वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुष-लक्षण (=सामुद्रिक शास्त्र) मे निपुण, अपनी पडिताई, प्रवचनमे—'जो मै जानता हूँ, सो तू जानता है, जो तू जनता है वह मै जानता हूँ' (—कहकर आचार्यद्वारा) स्वीकृत किया गया था ।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बष्ट माणवकको सम्बोधित किया—

"तात! अम्बष्ट! ० इच्छानगलमे विहार करते है ०, इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। आओ तात! अम्बष्ट! जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ जाओ। जाकर श्रमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका (कीर्त्ति) शब्द यथार्थ फैला हुआ है, या अ-यथार्थ? क्या ० वैसे है या नही, जिसमे कि हम आप गौतमको जाने ।

"कैसे भो! मै आप गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम ० वैसे है या नही?"

"तात! अम्बष्ट! हमारे मत्रोमे बत्तीस महापुरुष-लक्षण आये है। जिनसे युक्त महापुरुष-की दो ही गति होती है, तीसरी नही। यदि वह घरमे रहता है, ० चक्रवर्ती राजा होता है। यदि घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है,... अर्हत् सम्यक् सबुद्ध होता है। तात! अम्बष्ट! मै मत्रोका दाता हूँ, तू मत्रोका प्रतिग्रहीता है।"

पौष्कर-साति ब्राह्मणसे "हाँ, भो!" कह अम्बष्ट माणवक, आसनसे उठ, अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, घोळीके रथपर चढ, बहुतसे माणवकोके साथ जिधर इच्छानगल वन-खण्ड था, उधर

चला। जितनी रथकी भूमि थी, उतना रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममे प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमे टहल रहे थे। तब अम्बष्ट माणवक जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओसे बोला—

"भो! आप गौतम इस समय कहाँ विहार कर रहे है? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये है।

तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'यह कुलीन प्रसिद्ध अम्बट्ठ (=अम्बष्ट) माणवक, अभिज्ञात (=प्रख्यात) पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य है। इस प्रकारके कुल-पुत्रोके साथ कथा-सलाप भगवान्को भारी नही होता।' और अम्बट्ठ माणवकसे कहा—

"अम्बट्ठ! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार (=कोठरी) है, चुपचाप धीरेसे वहाँ जाओ और बराडे (=अलिन्दे)मे प्रवेशकर खासकर, जजीरको खटखटाओ, बिलाईको हिलाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देगे।"

१—अम्बष्टका शाक्योंपर आक्षेप

तब अम्बट्ठ माणवकने जहाँ वह बद दर्वाजेवाला विहार था, चुपचाप धीरेसे वहाँ जा ० बिलाईको हिलाया। भगवान्ने द्वार खोल दिया। अम्बष्ट माणवकने भीतर प्रवेश किया। (दूसरे) माणवकोने भी प्रवेशकर भगवान्के साथ समोदन किया (और) वह एक ओर बैठ गये। (उस समय) अम्बट्ठ माणवक (स्वय) बैठे हुये भी, भगवान्के टहलते वक्त कुछ पूछ रहा था, स्वय खळे हुये भी बैठे हुये भगवान्मे कुछ पूछ रहा था।

तब भगवान्ने अम्बष्ट माणवकसे यह कहा—

"अम्बष्ट! क्या बृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणोके साथ कथा-सलाप, ऐसे ही होता है, जैसा कि तू चलते खळे बैठे हुये मेरे साथ कर रहा है?"

"नही हे गौतम! चलते ब्राह्मणोके साथ चलते हुये, खळे ब्राह्मणोके साथ खळे हुये, बैठे ब्राह्मणोके साथ बैठे हुये बात करनी चाहिये। सोये ब्राह्मणके साथ सोये बात कर सकते है। किन्तु हे गौतम! जो मुडक, श्रमण, इभ्य (=नीच) काले, ब्रह्मा(=बन्धु)के पैरकी सतान है, उनके साथ ऐसे ही कथा-सलाप होता है, जैसा कि (मेरा) आप गौतमके साथ।"

"अम्बट्ठ! याचक(=अर्थी)की भाँति तेरा यहाँ आना हुआ है। (मनुष्य) जिस अर्थके लिये आवे, उसी अर्थको (उसे) मनमे करना चाहिये। अम्बष्ट! (जान पळता है) तूने (गुरुकुलमे) नही वास किया है, वास करे बिना ही क्या (गुरुकुल-) वासका अभिमान करता है?"

तब अम्बष्ट माणवकने भगवान्के (गुरुकुल-) अ-वास कहनेसे कुपित, असतुष्ट हो, भगवान्को ही खुन्साते (=खुन्सेन्तो) भगवान्को ही निन्दते, भगवान्को ही ताना देते—'श्रमण गौतम दुष्ट है' (सोच) यह कहा—"हे गौतम! शाक्य-जाति चड है। हे गौतम शाक्य-जाति क्षुद्र (=लघुक) है। हे गौतम! शाक्य-जाति बकवादी (=रभस) है। नीच (=इभ्य) समान होनेसे शाक्य, ब्राह्मणोका सत्कार नही करते, ब्राह्मणोका गौरव नही करते, ० नही मानते, ० नही पूजते, ० नही (=खातिर) करते। हे गौतम! सो यह अयोग्य है, जो कि नीच, नीच-समान शाक्य, ब्राह्मणोका सत्कार नही करते ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठने शाक्योपर इभ्य (=नीच) कह यह प्रथम आक्षेप किया।

"अम्बट्ठ! शाक्योने तेरा क्या कसूर किया है?"

"हे गौतम! एक समय मै (अपने) आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिके किसी कामसे कपिलवस्तु गया और जहाँ शाक्योका सस्थागार (=प्रजातन्त्र-भवन) था, वहाँ पहुँचा। उस समय बहुतसे शाक्य तथा शाक्य-कुमार सस्थागारमे ऊँचे ऊँचे आसनोपर, एक दूसरेको अगुली गळाते हँस रहे

थे, खेल रहे थे, मुझे ही मानो हँस रहे थे। (उनमेंसे) किसीने मुझे आसनपर बैठनेको नही कहा। सो हे गौतम! अच्छन्न=अयुक्त है, जो यह इभ्य तथा इभ्य-समान शाक्य ब्राह्मणोका सत्कार नही करते ०।"

इस प्रकार अम्वट्ठ माणवकने शाक्योपर दूसरा आक्षेप किया।

"लटुकिका (=गौरय्या) चिळिया भी अम्वट्ठ अपने घोसलेपर स्वच्छन्द-आलाप करती है। कपिलवस्तु शाक्योका अपना (घर) है, अम्बट्ठ! इस थोळी वातसे तुम्हे अमर्प न करना चाहिये।"

"हे गौतम! चार वर्ण है—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इनमे हे गौतम! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह तीनो वर्ण, ब्राह्मणके ही सेवक है। गौतम! सो यह ० अयुक्त है ०।"

इस प्रकार अम्वट्ठ माणवकने इभ्य कह, शाक्योपर तीसरी बार आक्षेप किया।

तव भगवान्‌को यह हुआ—यह अम्वट्ठ माणवक वहुत बढ बढकर शाक्योपर इभ्य कह आक्षेप कर रहा है, क्यो न मै (इससे) गोत्र पूछूँ। तब भगवान्‌ने अम्वट्ठ माणवकसे कहा—"किस गोत्रके हो, अम्वट्ठ!"

"काण्र्यायन हूँ, हे गौतम!"

२—शाक्योंकी उत्पत्ति

"अम्वट्ठ! तुम्हारे पुराने नाम गोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य(=स्वामि)-पुत्र होते है। तुम शाक्योके दासी-पुत्र हो। अम्वष्ट! शाक्य, राजा इक्ष्वाकु (=ओक्काक)को पितामह कह धारण करते (=मानते) है। पूर्वकालमे अम्वट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया मनापा रानीके पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, ओक्कामुख (=उल्कामुख), करण्डु, हत्थिनिक, और सिनीसूर (नामक) चार बळे लळकोको राज्यसे निर्वासित कर दिया। वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) वळे शाक (=सागौन)-वनमे वास करने लगे। (गोरी) जातिके विगळनेके डरसे उन्होने अपनी वहिनोके साथ सवास (=सभोग) किया। तव अम्वट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपने अमात्यो और दरवारियोसे पूछा—'कहाँ है भो! इस समय कुमार?'

'देव! हिमवान्‌के पास सरोवरके किनारे महाशाकवन (=साक-सड) है, वही इस वक्त कुमार रहते है। वह जातिके विगळनेके डरसे अपनी वहिनोके साथ सवास करते है।'

"तव अम्वट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने उदान कहा—'अहो! कुमार! शाक्य (=समर्थ) है रे!! महाशाक्य है रे कुमार!' तवसे अम्वट्ठ! वह शाक्यके नामहीसे प्रसिद्ध हुए, वही (इक्ष्वाकु) उनका पूर्वपुरुप था। अम्वट्ठ! राजा इक्ष्वाकुकी दिशा नामकी दासी थी। उससे कृष्ण (=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ। पैदा होतेही कृष्णने कहा—'अम्मा! धोओ मुझे, अम्मा! नहलाओ मुझे, इस गदगी (=अशुचि)से मुक्त करो, मै तुम्हारे काम आऊँगा।' अम्वट्ठ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोको देखकर 'पिशाच' कहते है, वैसेही उस समय पिशाचोको, कृष्ण कहते थे। उन्होने कहा—इसने पैदा होते ही वात की, (अत यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ'। उसी (कृष्ण)से (उत्पन्न वश) आगे काण्र्यायन प्रसिद्ध हुआ। वही काण्र्यायनोका पूर्व-पुरुप था। इस प्रकार अम्वष्ट! तुम्हारे माता-पिताओके गोत्रको ख्याल करनेसे, शाक्य आर्य-पुत्र होते है, तुम शाक्योके दासी-पुत्र हो।"

ऐसा कहनेपर उन माणवकोने भगवान्‌से कहा—

"आप गौतम! अम्वष्ट माणवकको कळे दासी-पुत्र-वचनसे मत लजावे। हे गौतम! अम्वष्ट माणवक सुजात है, कुल-पुत्र है ० वहुश्रुत ०, सुवक्ता ०, पडित है। अम्वष्ट माणवक इस वातमे आप गौतमके साथ वाद कर सकता है।"

तव भगवान्‌ने उन माणवकोसे कहा—

"यदि तुम माणवकोको होता है—'अम्बष्ट माणवक दुर्जात है, ० अ-कुलपुत्र है, ० अल्पश्रुत ०,० दुर्वक्ता ०, दुष्प्रज्ञ (=अ-पडित)०। अम्बष्ट माणवक श्रमण गौतमके साथ इस विषयमे वाद नही कर सकता। तो अम्बष्ट माणवक वैठे, तुम्ही इस विपयमे मेरे साथ वाद करो। यदि तुम माणवकोको ऐसा है—अम्बष्ट माणवक सुजात है ०।०। तो तुम लोग ठहरो, अम्वष्ट माणवकको मेरे साथ वाद करने दो।"

"हे गौतम! अम्वष्ट माणवक सुजात है, ०। अम्बष्ट माणवक इस विषयमे आप गौतमके साथ वाद कर सकता है। हम लोग चुप रहते है। अम्बष्ट माणवक ही आप गौतमके साथ वाद करेगा।"

तब भगवान्ने अम्वष्ट माणवकसे कहा—

"अम्वष्ट! यहाँ तुमपर धर्म-सम्वन्धी प्रश्न आता है, न इच्छा होते हुए भी उत्तर देना होगा, यदि नही उत्तर दोगे, या इधर उधर करोगे, या चुप होगे, या चले जाओगे, तो यही तुम्हारा शिर सात टुकळे हो जायगा। तो अम्वष्ट! क्या तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणो आचार्य-प्राचार्यो श्रमणोसे सुना है (कि) कबसे काण्र्यायन है, और उनका पूर्व-पुरुष कौन था?"

ऐसा पूछनेपर अम्बष्ट माणवक चुप हो गया।

दूसरी बार भी भगवान्ने अम्वष्ट माणवकसे यह पूछा—०।

तब भगवान्ने अम्वष्ट माणवकसे कहा—

"अम्बष्ट! उत्तर दो, यह तुम्हारा चुप रहनेका समय नही। जो कोई तथागतसे तीन बार अपने धर्म-सम्वन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नही देगा, उसका शिर यही सात टुकळे हो जायगा।"

उस समय व ज्र पा णि यक्ष बळे भारी आदीप्त=सप्रज्वलित=चमकते लोह-खड (=अय-कूट)को लेकर, अम्बष्ट माणवकके ऊपर आकाशमे खळा था—'यदि यह अम्वष्ट माणवक तथागतसे तीन वार अपने धर्म-सम्वन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नही देगा, (तो) यही इसके शिरको सात टुकळे करूँगा।' उस वज्रपाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्बष्ट माणवक। तब उसे देख अम्वष्ट माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमाचित हो, भगवान्से त्राण=लयन=शरण चाहता, वैठकर भगवान्से बोला—

"क्या आप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहे तो?"

"तो क्या मानते हो, अम्वष्ट! क्या तुमने सुना है ०?"

"ऐसा ही है हे गौतम! जैसा कि आपने कहा। तबसे ही काण्र्यायन हुए, और वही काण्र्यायनो-का पूर्व-पुरुप था।"

ऐसा कहनेपर (दूसरे) माणवक उन्नाद=उच्चशब्द=महा-शब्द (=कोलाहल) करने लगे—

"अम्वष्ट माणवक दुर्जात है। अ-कुलपुत्र है। अम्वष्ट माणवक शाक्योका दासी-पुत्र है। शाक्य, अम्बष्ट माणवकके आर्य(=स्वामि)-पुत्र होते है। सत्यवादी श्रमण गौतमको हम अश्रद्धेय वनाना चाहते थे।"

तव भगवान्ने देखा—'यह माणवक, अम्वष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक लजाते है, क्यो न मै (इसे) छुळाऊँ।' तव भगवान्ने माणवकोसे कहा—

"माणवको! तुम अम्वष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर वहुत अधिक मत लजवाओ। वह कृ ष्ण महान् ऋषि थे। उन्होने दक्षिण-देशमे जाकर ब्रह्ममत्र पढकर, राजा इक्ष्वाकुके पास जा (उसकी) क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगा। तव राजा इक्ष्वाकुने—'अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगता है' (सोच), कुपित हो असन्तुष्ट हो, वाण चढाया। लेकिन उस वाणको न वह छोळ सकता था, न समेट सकता था। तव अमात्य और पार्षद (=दर्वारी) कृष्ण ऋपिके पास जाकर वोले—

'भदन्त! राजाका मगल हो, भदन्त! राजाका मगल (=स्वस्ति) हो।'

'राजाका मगल होगा, यदि राजा नीचेकी ओर वाण(=क्षुरप्र)को छोळेगा। (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी फट जायगी।'

'भदन्त! राजाका मगल हो, जनपद(=देश)का मगल हो।'

'राजाका मगल होगा, जनपदका भी मगल होगा, यदि राजा ऊपरकी ओर वाण छोळेगा, (लेकिन) जहाँ तक राजाका राज्य है, सात वर्ष तक वहाँ वर्षा न होगी।'

'भदन्त! राजाका मगल हो, जनपदका मगल हो, दैव वर्षा करे।'

'० देव भी वर्षा करेगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळे। कुमार स्वस्ति पूर्वक (रहेगा किन्तु) गजा हो जायेगा।'

"तव माणवको! अमात्योने इक्ष्वाकुसे कहा—' ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळे, कुमार स्वस्ति-सहित (किन्तु) गजा हो जायेगा। राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळ दिया । उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्विग्न, रोमाचित, तर्जित राजा इक्ष्वाकुने ऋषिको कन्या प्रदान की। माणवको! अम्वष्ट माणवकको दासी-पुत्र कह, तुम मत वहुत अधिक लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे।"

३—जात-पाँतका खंडन

तव भगवान्‌ने अम्वष्ट माणवकको सम्बोधित किया—

"तो अम्वष्ट! यदि (एक) क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ सहवास करे, उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामे पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोमे आसन और पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पाहुनाईमे उसे (साथ) खिलायेगे?"

"खिलायेगे हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण उसे मत्र (=वेद) वँचायेगे?" "वँचायेगे हे गौतम!"

"उसे (ब्राह्मणी) स्त्री (पाने)मे रुकावट होगी, या नही?"

"नही रुकावट होगी।"

"क्या क्षत्रिय! उसे क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेगे?"

"नही, हे गौतम! क्योकि माताकी ओरसे हे गौतम! वह ठीक नही है।"

"तो .अम्वष्ट! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ सहवास करे, और उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय-कन्यामे पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणोमे आसन पानी पायेगा?"

"पायेगा हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पाहुनाईमे उसे (साथ) खिलायेगे?"

"खिलायेगे हे गौतम!"

"ब्राह्मण उसे मत्र वँचायेगे, या नही?"

"वँचायेगे हे गौतम!"

"क्या उसे (ब्राह्मण-)स्त्री(पाने)मे रुकावट होगी?"

"रुकावट न होगी हे गौतम!"

"क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेगे?"

"नही, हे गोतम!"

"सो किस हेतु?"

"(क्योकि) हे गौतम! पिताकी ओरसे वह ठीक नही है।"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! स्त्रीकी ओरसे भी, पुरुषकी ओरसे भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। तो . अम्बष्ट यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको छुरेसे मुडित करा, घोळेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दे। क्या वह ब्राह्मणोमे आसन, पानी पायेगा ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्थालिपाक, यज्ञ, पाहुनाईमे उसे खिलायेगे ?"

"नही, हे गौतम !"

"ब्राह्मण उसे मत्र बँचायेगे या नही ?"

"नही, हे गौतम !"

"उसे (ब्राह्मण-)स्त्री (पाने)मे रुकावट होगी या नही ?"

"रुकावट होगी, हे गौतम !"

"तो अम्वष्ट ! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुरेसे मुडित करा, घोळेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दे। क्या वह ब्राह्मणोमे आसन पानी पायेगा ?"

"पायेगा हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण ० उसे खिलायेगे ?" "खिलायेगे हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण उसे मत्र बँचायेगे ?"

"बँचायेगे हे गौतम !"

"उसे स्त्रीमे रुकावट होगी, या नही ?"

"रुकावट नही होगी हे गौतम !"

"अम्वट्ठ ! क्षत्रिय बहुतही निहीन (=नीच) हो गया रहता है, जबकि उसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुडित कर ०। इस प्रकार अम्वष्ट ! जब वह क्षत्रियोमे परम नीचताको प्राप्त है, तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्वष्ट ! यह गाथा कही है—

४—विद्या और आचरण

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोमे क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

'जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योमे श्रेष्ठ है ॥१॥"

"सो अम्बष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी(=सुगीता) है, अनुचित नही गायी है,—सुभाषित है, दुर्भाषित नही है, सार्थक है, निरर्थक नही है, मै भी सहमत हूँ, मै भी अम्वष्ट कहता हूँ—'गोत्र लेकर ०।"

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्वष्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नही कहते, नही गोत्र-वाद कहते, नही मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नही है' कहते है। जहाँ अम्वष्ट ! आवाह-विवाह होता है , वही यह जातिवाद , गोत्रवाद , मानवाद, 'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नही है' कहा जाता है। अम्वट्ठ ! जो कोई जातिवादमे बँधे है, गोत्रवादमे बँधे है, (अभि-)मान-वादमे बँधे है, आवाह-विवाहमे बँधे है, वह अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर है। अम्वष्ट ! जाति-वाद-वन्धन, गोत्र-वाद-वन्धन, मान-वाद-वन्धन, आवाह-विवाह-वन्धन छोळकर, अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाका साक्षात्कार किया जाता है।

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! ससारमे तथागत उत्पन्न होते है ०[1] । ०। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर-पेटके

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २३-२७।

खानेसे सन्तुष्ट होता है। ०। इस तरह अम्बष्ट! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है ०[1]।

[2]वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी उसके चरणमे होता।० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमे होता है। अम्बष्ट! यह चरण है। ० सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिए, (अपने) चित्तको नवाता है, झुकाता है। सो इस प्रकार एकाग्र चित्त ०[3]। इस तरह आकार-प्रकार के साथ अनेक पूर्व-(जन्म-)निवासोको जानता है। यह भी अम्बष्ट! उसकी विद्यामे है। ० विशुद्ध अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०[4] प्राणियोको देखता है। यह भी अम्बष्ट! उसकी विद्यामे है। ०[5] 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ (करने)के लिये कुछ नही रहा'—यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामे है। यह अम्बष्ट! विद्या है। अम्बष्ट! ऐसा भिक्षु विद्या-सम्पन्न कहा जाता है। इसी प्रकार चरण-सम्पन्न, इस प्रकार विद्या-चरण-सम्पन्न होता है। इस विद्या-सम्पदा, तथा चरण-सम्पदासे बढकर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण-सम्पदा नही है।

५—विद्याचरणके चार विघ्न

"अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न होते है। कौनसे चार? (१) कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण सम्पदाको पूरा न करके, बहुतसा विविध झोरी-मत्रा (=वाणप्रस्थीक सामान) लेकर—'फल मूलाहारी होऊँ' (सोच) वन-वासके लिय जाता है। वह विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुका सेवन करता है। इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाका यह प्रथम विघ्न है। (२) और फिर अम्बष्ट! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाको पूरा न करके, फलाहारिता को भी पूरा न करके, कुदाल ले 'कन्द-मूल फलाहारी होऊँ' (सोच) विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुको सेवन करता है।० यह द्वितीय विघ्न है। (३) और फिर अम्बष्ट! ० फलाहारिताको न पूरा करके, गाँवके पास या निगम (=कस्बा)के पास अग्निशाला बना अग्नि-परिचण (=होम आदि) करता रहता है ०। ० यह तृतीय विघ्न है। (४) और फिर अम्बष्ट! ० अग्नि-परिचर्याको भी न पूरा करके, चौरस्तेपर चार द्वारोवाला आगार बनाकर रहता है, कि यहाँ चारो दिशाओसे जो श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मै यथाशक्ति=यथाबल सत्कार करूँगा। अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके अम्बष्ट! यह चार विघ्न है।

"तो अम्बष्ट! क्या आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-सम्पदाका उपदेश करते हो?"

"नही हे गौतम! कहाँ आचार्य-सहित मै और कहाँ अनुपम विद्या-चरण-सम्पदा! हे गौतम! आचार्य-सहित मै अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर हूँ।"

"तो अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाको पूरा न कर, झोली आदि (=खारी-विविध) लेकर 'फलाहारी होऊँ' (सोच), क्या तुम आचार्य-सहित वनवासके लिये वनमे प्रवेश करते हो?

"नही हे गौतम!"

"०।०। चौरस्तेपर चार द्वारोवाला आगार बनाकर रहते हो, कि जो यहाँ चारो दिशाओसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका यथाशक्ति सत्कार करूँगा?" "नही हे गौतम!"

"इस प्रकार अम्बष्ट! आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे भी हीन हो, ओर यह जो अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न (=अपाय-मुख) है, उनसे भी हीन। तुमने अम्बष्ट! क्यो आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिमे सीखकर यह वाणी कही—'कहाँ इब्भ, (=नीचा, इभ्य) काले,

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २७-२८। [2] पृष्ठ २९-३०। [3] पृष्ठ ३१। [4] पृ. ३१-३२। [5] पृ ३२।

पैरसे उत्पन्न मुडक श्रमण है, और कहाँ त्रैविद्य (=त्रिवेदी) ब्राह्मणोका साक्षात्कार' ? स्वय अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) न पूरा करते (हुए भी), अम्वष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष देखो। अम्वष्ट ! पौष्करसाति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नही देता। जव उसके साथ मत्रणा भी करनी होती है, तो कपळेकी आळसे मत्रणा करता है। अम्वष्ट ! जिसकी धार्मिक दी हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, वह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नही देता ! ! देखो अम्वष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष। । तो क्या मानते हो अम्वष्ट ! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथीपर बैठा, या रथके ऊपर खळा उग्रोके साथ या राजन्योके साथ कोई सलाह करे, और उस स्थानसे हटकर एक ओर खळा हो जाय। तव (कोई) शूद्र या शूद्र-दास आजाय, वह उस स्थानपर खळा हो, उसी सलाहको करे—जिसे कि राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो वह राज-कथनको कहता है, राजमत्रणाको मत्रित करता है, इतनेसे क्या वह राजा या राज-अमात्य हो जाता है ?"

"नही हे गौतम !"

"इसी प्रकार हे अम्वष्ट ! जो वह ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषि मत्र-कर्ता, मत्र-प्रवक्ता (थे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (=चिन्तित) मत्रपद (=वेद)को ब्राह्मण आजकल अनुगान, अनुभाषण करते है, भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनुवाचित करते है, जैसे कि—अ ट्ट क, वा म क, वा म दे व, वि श्वा मि त्र, य म द ग्नि, अ गि रा, भ र द्वा ज, व शि ष्ट, क श्य प, भृ गु। 'उनके मत्रोको आचार्य-सहित मै अध्ययन करता हूँ', क्या इतनेसे तुम ऋपि या ऋपित्वके मार्गपर आरूढ कहे जाओगे ? यह सभव नही।

"तो क्या अम्वष्ट ! तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणो, आचार्यो-प्राचार्योको कहते सुना है कि जो वह ब्राह्मणोके पूर्वज ऋपि ० अट्टक ० (थे), क्या वह ऐसे सुस्नात, सुविलिप्त (=अगराग लगाये), केश मोछ सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिने, स्वच्छ (= श्वेत) वस्त्र-धारी, पाँच काम-भोगोमे लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वह ऐसा शालिका भात, शुद्ध मासका तीवन (= उपसेचन), कालिमारहित सूप, अनेक प्रकारकी तरकारी (= व्यजन) भोजन करते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वह ऐसी (साळी) वेष्टित कमनीयगात्रा स्त्रियोके साथ रमते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम ?"

"क्या वह ऐसी कटे वालोवाली घोळियोके रथपर लम्वे डडेवाले कोळोसे वाहनोको पीटते गमन करते थे, जैसे कि ० तुम ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वह ऐसे खॉई खोदे, परिघ (= काष्ट-प्राकार) उठाये, नगर-रक्षिकाओमे (=नगरूपकारिकासु) दीर्घ-आयु-पुरुपोसे रक्षा करवाते थे, जैसे कि ० तुम ?"

"नही, हे गौतम !"

"इस प्रकार अम्वष्ट ! न आचार्य-सहित तुम ऋपि हो, न ऋपित्वके मार्गपर आरूढ। अम्वप्ट ! मेरे विपयमे जो तुम्हे सशय=विमति हो वह प्रश्न करो, मै उसे उत्तरसे दूर करूँगा।"

यह कह भगवान् विहारसे निकल, चक्रम (= टहलने)के स्थानपर खळे हुए। अम्वष्ट माणवक भी विहारसे निकल चक्रमपर खळा हुआ। तव अम्वष्ट माणवक भगवान्‌के पीछे पीछे टहलता भगवान्‌के

शरीरमे ३२ महापुरुप-लक्षणोको ढूँढता था। अम्बष्ट माणवकने दोको छोळ वत्तीस महापुरुष-लक्षणो-मेसे अधिकाश भगवान्‌के शरीरमे देख लिये। ०।

तव अम्वष्ट माणवकको ऐसा हुआ—'श्रमण गौतम वत्तीस महापुरुप-लक्षणोसे समन्वित, परिपूर्ण है' और भगवान्‌से बोला—"हन्त! हे गौतम! अव हम जायेंगे, हम वहुत कृत्यवाले बहुत काम-वाले है।"

"अम्वष्ट! जिसका तुम काल समझते हो।"

तव अम्वष्ट माणवक वडवा(=घोळी)-रथपर चढकर चला गया।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण, वळे भारी ब्राह्मण-गणके साथ, उक्कट्ठासे निकलकर, अपने आराम (=वगीचे)मे, अम्बष्ट माणवककी ही प्रतीक्षा करते वैठा था। तव अम्वष्ट माणवक जहाँ अपना आराम था वहाँ गया। जितना यान (=रथ)का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतरकर पैदल ही जहाँ पोष्कर-साति ब्राह्मण था, वहाँ गया। जाकर ब्राह्मण पौष्कर-सातिको अभिवादनकर एक ओर वैठे गया। एक ओर वैठे अम्वष्ट माणवकसे पौष्कर-साति ब्राह्मणने कहा—

"क्या तात! अम्वष्ट! उन भगवान् गौतमको देखा?"

"भो! हमने उन भगवान् गौतमको देखा।"

"क्या तात! अम्वष्ट! उन भगवान् गौतमका यथार्थ यश फैला हुआ है, या अयथार्थ? क्या आप गौतम वैसे ही है, या दूसरे?"

"भो! यथार्थमे उन भगवान् गौतमके लिये शब्द (=यश) फैला हुआ है। आप गौतम वैसेही है, अन्यथा नही। आप गौतम वत्तीस महापुरुष-लक्षणोसे समन्वित परिपूर्ण है।"

"तात! अम्वष्ट! क्या श्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा-सलाप हुआ?"

"भो! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-सलाप हुआ।"

"तात! अम्वष्ट! श्रमण गौतमके साथ क्या कथा-सलाप हुआ?"

तब अम्वष्ट माणवकने जितना भगवान्‌के साथ कथा-सलाप हुआ था, सव पौष्कर-साति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्कर-साति०ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अहो! हमारा पडितवा-पन!! अहो! हमारा वहुश्रुतवा-पन!! अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यक-पन! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुप, काया छोळ मरनेके वाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात=निरय (=नरक)मे ही उत्पन्न होता है, जो अम्वट्ठ! उन आप गौतमसे इस प्रकार चिढाते हुए तुमने बात की। और आप गौतम हम (ब्राह्मणो)के लिये भी ऐसे खोल खोलकर वोले। अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यकपन!!! " (यह कह पौष्कर-सातिने) कुपित, असतुष्ट हो, अम्वष्ट माणवकको पैदलही वहाँसे हटाया, और उसी वक्त भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ। तव उन ब्राह्मणोने पौष्करसाति ब्राह्मणसे यह कहा—

"भो! श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विकाल है। दूसरे दिन आप पौष्कर-साति श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावे।"

इस प्रकार पौष्कर-साति ब्राह्मण अपने घरमे उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा, यानोपर रखवा, मशाल (=उल्का)की रोशनीमे उक्कट्ठासे निकल, जहाँ इच्छानगल वन-खण्ड था, वहाँ गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। जाकर भगवान्‌के साथ सम्मोदनकर (कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"हे गौतम! क्या हमारा अन्तेवासी अम्वष्ट माणवक यहाँ आया था?"

"ब्राह्मण! तेरा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था।"

"हे गौतम! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कुछ कथा-सलाप हुआ?"

"ब्राह्मण! अम्बष्ट माणवकके साथ मेरा कुछ कथा-सलाप हुआ।"

"हे गौतम! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कथा-सलाप हुआ?"

तब भगवान्ने, अम्बष्ट माणवकके साथ जितना कथा-सलाप हुआ था, (वह) सब पौष्करसाति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"बालक है, हे गौतम! अम्बष्ट माणवक। क्षमा करे, हे गौतम! अम्बष्ट माणवकको।"

"सुखी होवे, ब्राह्मण! अम्बष्ट माणवक।"

तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्के शरीरमे ३२ महापुरुष-लक्षणोको ढूँढने लगा ०[1]। पौष्कर-साति ब्राह्मणको हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोसे समन्वित, परिपूर्ण हैं', और भगवान्से बोला—

"भिक्षुसघ सहित आप गौतम आजका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने भगवान्की स्वीकृति जान, भगवान्से कालनिवेदन किया— "(भोजनका) काल है, हे गौतम! भात तैयार है।" तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ ब्राह्मण पौष्कर-सातिके परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्को अपने हाथसे उत्तम खाद्यभोज्यसे सतर्पित=सप्रवारित किया, और माणवकोने भिक्षु-सघको। पौष्कर-साति ब्राह्मण भागवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक दूसरे नीचे आसनको ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, पौष्कर-साति ब्राह्मणको भगवान्ने आनुपूर्वी-कथा कही ०[1] जैसे कि दानकी कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगोके दुष्परिणाम, अपकार, मलिन-करण, और निष्कामता (=भोग-त्याग)के माहात्म्यको प्रकाशित किया। जब भगवान्ने पौष्करसाति ब्राह्मणको उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त=प्रसन्न-चित्त जाना, तो जो बुद्धोका खीचने वाला धर्म उपदेश है—दुख, कारण, विनाश, मार्ग—उसे प्रकाशित किया, जैसे शुद्ध, निर्मल वस्त्रको अच्छी तरह रग पकळता है, वैसेही पौष्कर-साति ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला (=समुदय-धर्म) है, वह नाशवान् (=निरोध-धर्म) है'—उत्पन्न हुआ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म ० हो भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम!! अद्भुत हे गौतम!!! ०[2] (अपने) पुत्र-सहित भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, मै भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे आप गौतम मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करे। जैसे उक्कट्ठामे आप गौतम दूसरे उपासक-कुलोमे आते है, वैसेही पुष्कर-साति-कुलमे भी आवे। वहाँपर माणवक (=तरुण ब्राह्मण) या माणविका जाकर भगवान् गौतमको अभिवादन करेगे, आसन या जल देगे। या (आपके प्रति) चित्तको प्रसन्न करेगे। वह उनके लिये चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

"सुन्दर (=कल्याण) कहा, ब्राह्मण!"

---

[1]पृष्ठ ४२। [2]पृष्ठ ३२।

४—सोणदण्ड-सुत्त (१।४)

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म (जात-पात-खडन)। २—शील। ३—प्रज्ञा।

ऐसा मैने सुना—एक समय पाँचसौ भिक्षुओके महाभिक्षु-सघके साथ भगवान् **अग** (देश)मे विचरते, जहाँ **चम्पा** है, वहाँ पहुँचे। वहाँ चम्पामे भगवान् **गर्गरा** (गग्गरा) पुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे।

उस समय **सोणदण्ड** (=स्वर्णदण्ड) ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसार**-द्वारा दत्त, जना-कीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय, चम्पाका स्वामी था।

चम्पा-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित० श्रमण गौतम चम्पामे गर्गरा पुष्करिणीके तीर विहार कर रहे है। उन भगवान् गौतमका ऐसा मगल-कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—०[1]। इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। तब चम्पा-वासी ब्राह्मण-गृहस्थ चम्पासे निकलकर झुडके झुड जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे। उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये (अपने) प्रासादपर गया हुआ था। सोणदण्ड ब्राह्मणने चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोको ० जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर ० जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को सम्बोधित किया—०[1]०।

उस समय चम्पामे नाना देशोके पाँच-सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करते थे। उन ब्राह्मणोने सुना—सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ सोणदण्ड ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर सोणदण्ड ब्राह्मणसे बोले—०[2]०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ गर्गरा पुष्करिणी थी, वहाँ गया। तब वनखडकी आळमे जानेपर, सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तमे वितर्क उत्पन्न हुआ—'यदि मै ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ, तब यदि श्रमण गौतम मुझे ऐसा कहे—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नही पूछना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रकारसे, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—अज्ञ (=बाल)=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, श्रमण गौतमसे ठीकसे (=योनिसो) प्रश्न भी नही पूछ सकता। जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होगे। यशसे ही भोग मिलते है। और यदि मुझसे श्रमण गौतम प्रश्न पूछे, यदि मै प्रश्नके उत्तर द्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ। तब मुझे, यदि श्रमण गौतम ऐसा कहे—ब्राह्मण! इस प्रश्नका ऐसे उत्तर नही देना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देना चाहिये। तो यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मै यदि इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही लौट जाऊँ, तो इससे भी यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—बाल=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, मानी है, भयभीत है, श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेमे समर्थ नही हुआ। इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही, कैसे लौट गया? जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी ०।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ ० समोदन कर ०

---

[1] देखो पृष्ठ ४८। [2] पृष्ठ ४९।

एक ओर बैठ गया। चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये, कोई-कोई समोदनकर ०, कोई-कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०, कोई-कोई नाम गोत्र सुनाकर ०, कोई-कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

वहाँ भी सोणदण्ड ब्राह्मणके (चित्तमे) बहुतसा वितर्क उठ रहा था—'यदि मै ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ ०। अहोवत! यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रै वि द्य क पडिताईमे प्रश्न पूछता, तो मै प्रश्नका उत्तर देकर उसके चित्तको सतुष्ट करता।'

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है। क्यो न मे सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पडिताईमे ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्‌ने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग कितने अगो (=गुणो)से युक्त (पुरुप)को ब्राह्मण कहते है, और वह 'मै ब्राह्मण हूँ' कहते हुए सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नही होता?"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणको हुआ—'अहो! जो मेरा इच्छित=आकाक्षित=अभिप्रेत=प्रार्थित था—अहोवत! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविद्यक पडिताईमे प्रश्न पूछता ०। सो श्रमण गौतम मुझसे अपनी त्रैविद्यक पडिताईमे ही पूछ रहा है। मै अवश्य प्रश्नोत्तरसे उसके चित्तको सतुष्ट करूँगा। तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठाकर, परिषद्‌की ओर नजर दौळा भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम! ब्राह्मण लोग पाँच अगोसे युक्त (पुरुष)को, ब्राह्मण कहते है ०। कौनसे पाँच? (१) ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात हो ०। (२) अध्यायक (=वेदपाठी) मत्रधर ० त्रिवेद-पारगत ०। (३) अभिरूप=दर्शनीय ० अत्यन्त (गौर) वर्णसे युक्त हो। (४) शीलवान्०। (५) पडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा (=सुजा) ग्रहण करनेवालोमे प्रथम या द्वितीय हो। इन पाँच अगोसे युक्तको ०।"

"ब्राह्मण! इन पाँच अगोमे एकको छोळ, चार अगोसे भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन पाँच अगोमेंसे हे गौतम! वर्ण (३)को छोळते है। वर्ण (=रग) क्या करेगा। यदि ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात हो ०। अध्यायक, मत्रधर० ० हो। शीलवान् ० हो ०। पडित मेधावी ० हो। इन चार अगोसे युक्तको, हे गौतम! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते है ०।"

"ब्राह्मण! इन चार अगोमेसे एक अगको छोळ, तीन अगोसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन चारो अगोमेंसे हे गौतम! मत्रो (=वेद) (२) को छोळते है। मत्र क्या करेगे, यदि भो! ब्राह्मण दोनो ओरसे सुजात० हो। शीलवान्० हो। पडित मेधावी ० हो। इन तीन अगोसे युक्तको हे गौतम! ब्राह्मण कहते है ०।"

"ब्राह्मण! इन तीन अगोमेसे एक अगको छोळ, दो अगोसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ०?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम! इन तीनोमेसे हे गौतम! जाति (१) को छोळते है, जाति (=जन्म) क्या करेगी, यदि भो! ब्राह्मण शीलवान् ० हो। पडित मेधावी ० हो। इन दो अगोसे युक्तको ब्राह्मण कहते है ०।"

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"आप सोणदण्ड! ऐसा मत कहे, आप सोणदण्ड ऐसा मत कहे। आप सोणदण्ड वर्ण (=रग)-का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते है, मत्र (=वेद)का प्रत्याख्यान करते है, जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान करते है, एक अशसे आप सोणदण्ड श्रमण गौतमके ही वादको स्वीकार कर रहे है।"

तब भगवान्‌ने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"यदि ब्राह्मणो ! तुमको यह हो रहा है—सोणदण्ड ब्राह्मण अल्पश्रुत है, ० अ-सुवक्ता है, ० दुष्प्रज्ञ है। सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद नही कर सकता। तो सोणदण्ड ब्राह्मण ठहरे, तुम्ही मेरे साथ वाद करो। यदि ब्राह्मणो ! तुमको ऐसा होता है—सोणदण्ड ब्राह्मण बहुश्रुत है, ० सुवक्ता है, ० पडित है, सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमे श्रमण गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदण्ड ब्राह्मणको मेरे साथ वाद करने दो।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"आप गौतम ठहरे, आप गौतम मोन धारण करे, मैही धर्मके साथ इनका उत्तर दूँगा।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"आप लोग ऐसा मत कहे, आप लोग ऐसा मत कहे—आप सोणदण्ड वर्णका प्रत्याख्यान करते है ०। मै वर्ण या मत्र (=वेद) या जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान नही करता।"

उस समय सोणदण्ड ब्राह्मणका भाजा **अंगक** नामक माणवक उस परिषद्‌मे बैठा था। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोसे कहा—

"आप सब हमारे भाजे अगक माणवकको देखते है ?"

"हाँ, भो !"

"भो ! (१) अगक माणवक अभिरूप दर्शनीय प्रासादिक, परम (गौर) वर्ण पुष्कलतासे युक्त ० है। इस परिषद्‌मे श्रमण गौतमको छोळकर, वर्ण (=रग)मे इसके बराबरका (दूसरा) कोई नही है। (२) अगक माणवक अध्यायक, (=वेद-पाठी) मत्रधर निघण्टु-कल्प-अक्षरप्रभेद-सहित तीनो वेद और पाँचवे इतिहासमे पारगत है, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत-महापुरुष-लक्षण-(शास्त्रो)मे निपुण है। मैही उसे मत्रो (=वेद)को पढानेवाला हूँ। (३) अगक माणवक दोनो ओरसे सुजात है ०। मै इसके माता पिता दोनोको जानता हूँ ०। (यदि) अगक माणवक प्राणोको भी मारे, चोरी भी करे, परस्त्रीगमन भी करे, मृषा (=झूठ) भी बोले, मद्य भी पीवे। यहाँपर अब भो ! वर्ण क्या करेगा ? मत्र और जाति क्या (करेगी) ? जब कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) बृद्धशील (=बढे शीलवाला), बृद्धशीलतासे युक्त होता है, (२) पडित और मेधावी होता है, सुजा (=यज्ञ-दक्षिणा)-ग्रहण करनेवालोमे प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनो अगोसे युक्तको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते है। (वह) 'मै ब्राह्मण हूँ' कहते, सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नही होता।"

"ब्राह्मण ! इन दो अगोमेंसे एक अगको छोळ, एक अगसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ? ०।"

"नही, हे गौतम ! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान)। प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है, जहाँ प्रज्ञा है, वहाँ शील है। शीलवान्‌को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्‌को शील। किन्तु शील लोकमे प्रज्ञाओका अगुआ (=अग्र) कहा जाता है। जैसे हे गौतम ! हाथसे हाथ धोवे, पैरसे पैर धोवे, ऐसेही हे गौतम ! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है ०।"

"यह ऐसाही है, ब्राह्मण ! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा-प्रक्षालित शील है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा, जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील ! शीलवान्‌को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्‌को शील। किन्तु लोकमे शील प्रज्ञाका सर्दार कहा जाता है। ब्राह्मण ! शील क्या है ? प्रज्ञा क्या है ?"

"हे गौतम ! इस विषयमे हम इतनाही भर जानते है। अच्छा हो यदि आप गौतमही ... (इसे कहे)।"

"तो ब्राह्मण ! सुनो, अच्छी तरह मनमे करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" (कह) सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्‌को उत्तर दिया। भगवान्‌ने कहा—

२—शील

"ब्राह्मण ! तथागत लोकमे उत्पन्न होते[1]०। इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। यह भी ब्राह्मण वह शील है।

३—प्रज्ञा

"० प्रथम ध्यान ०[1]। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीयध्यान ०। ० चतुर्थध्यान ०। ० ज्ञानदर्शनके लिये चित्तको लगाता है ०। '० अब कुछ यहाँ करनेको नही है' यह जानता है। यह भी उसकी प्रज्ञामे है। ब्राह्मण ! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !! ०[2]। आजसे आप गौतम मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करे। भिक्षु-सघ सहित आप मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। ०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमे उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा भगवान्को काल सूचित किया—'हे गौतम ! (चलनेका) काल है, भोजन तय्यार है'।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ ब्राह्मण सोण-दण्डका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सर्तपित=सप्रवारित किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"यदि हे गौतम ! परिषद्मे बैठे हुए मै आसनसे उठकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, तो मुझे वह परिषद् तिरस्कृत करेगी। वह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा। यशसे ही तो हमारे भोग मिले है। मै यदि हे गौतम ! परिषद्मे बैठ हाथ जोळूँ, तो उसे आप गौतम मेरा प्रत्युपस्थान (=खळा होना) समझे। मै यदि हे गौतम ! परिषद्मे बेठा साफा (=वेष्ठन) हटाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझे। मै यदि हे गौतम ! यानमे बैठा हुआ, यानसे उतरकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, उससे वह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मै यदि हे गौतम ! यानमे बैठाही पतोद-लट्ठी (=कोळेका डडा) ऊपर उठाऊँ, तो उसे आप गौतम मेरा यानसे उतरना धारण करे। यदि मै हे गौतम ! यानमे बैठा हाथ उठाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार करे।"

तब भगवान् सोणदण्ड ब्राह्मणको धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० कर, आसनसे उठकर चल दिये।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-३२। [2] पृष्ठ ३२।

५—कुटदन्त-सुत्त (१।५)

१—बुद्धकी प्रशसा । २—अहिंसामय-यज्ञ (महाविजित जातकका)—(१) बहुसामग्रीका यज्ञ; (२) अल्प सामग्रीका महान् यज्ञ ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओके महा-भिक्षु-सघके साथ मगध देशमे विचरते, जहाँ **खाणुमत** नामक मगधका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् खाणुमतमे अम्ब-लट्ठिका (=आम्रयष्टिका)मे विहार करते थे।

उस समय **कुटदन्त** ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ट-उदक-धान्य-सम्पन्न राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था। उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था। सात सौ बैल, सातसौ बछळे, सातसौ बछळियाँ, सातसौ बकरियाँ, सातसौ भेळे यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भा)पर लाई गई थी।

खाणुमत-वासी ब्राह्मण गृहस्थोने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामे विहार करते है। उन आप गौतमका ऐसा मगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगति-प्राप्त, लोकवेत्ता, पुरुषोके अनुपम चाबुक सवार, देव-मनष्यके उपदेशक, बुद्ध भगवान् है, इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ खाणुमतसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाने लगे। उस समय कुटदन्त ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनके शयनके लिये गया हुआ था। कुटदन्त ब्राह्मणने खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोको झुण्डके झुण्ड खाणुमतसे निकलकर, जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रटरी)को सम्बोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता! (जो) ० खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ ० अम्बलट्ठिका जा रहे है?"

"भो! शाक्य कुलसे प्रव्रजित ० श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामे विहार कर रहे है। उन गौतम-का ऐसा मगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है ०। उन्ही आप गौतमके दर्शनार्थ जा रहे है।"

तब कुटदन्त ब्राह्मणको हुआ—'मैने यह सुना है, कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कारोवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदा (=यज्ञविधि)को जानता है। मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। क्यो न श्रमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदाको पूछूँ?' तब कुटदन्त ब्राह्मणने क्षत्ताको सम्बोधित किया—

"तो हे क्षत्ता! जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ है, वहाँ जाओ। जाकर खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोसे ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है 'थोळी देर आप सब ठहरे, कुटदन्त ब्राह्मण भी, श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

कुटदन्त ब्राह्मणको—'अच्छा भो!' कह क्षत्ता वहाँ गया, जहाँ कि खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ थे। जाकर ० बोला—'कुटदन्त ०'।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञका उपभोग करनके लिये खाणुमतमें वास करते थे।

उन ब्राह्मणोने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ कुटदन्त ० था वहाँ गये। जाकर कुटदन्त ब्राह्मणसे बोले—"सचमुच आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगे ?"

"हाँ भो ! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मै भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जाये। आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नही है। यदि आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगे, (तो) आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढेगा। चूँकि आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका बढेगा, इस बात(=अग)से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नही है। श्रमण गौतम ही आप कुटदन्तके दर्शनार्थ आने योग्य है ०। आप कुटदन्त बहुतोके आचार्य-प्राचार्य है, तीनसौ माणवकोको मत्र (=वेद) पढाते है। नाना दिशाओसे, नाना देशोसे बहुतसे माणवक (=विद्यार्थी) मत्रके लिये, मत्र-पढनेके लिये, आप कुटदन्तके पास आते है ०। आप कुटदन्त जीर्ण=बृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय प्राप्त है। श्रमण गौतम तरुण है, तरुण साधु है ०। आप कुटदन्त मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसारसे** सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित है ०। आप कुटदन्त ब्राह्मण **पौष्कर-सातिसे** सत्कृत ० है ०। आप कुटदन्त ० खाणुमतके स्वामी है। इस बातसे भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नही है, श्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

१—बुद्धको प्रशंसा

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने, उन ब्राह्मणोसे यह कहा—

"तो भो ! मेरी भी सुनो, कि क्यो हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य है, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नही है। श्रमण गौतम भो ! दोनो ओरसे सुजात है ०, इस बातसे भी हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य है, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नही। श्रमण गौतम बळे भारी जाति-सघको छोळकर प्रव्रजित हुए है ०। श्रमण गौतम शीलवान् आर्यशील-युक्त कुशल-शीली=अच्छे शीलसे युक्त ०। श्रमण गौतम सुवक्ता=कल्याण-वाक्करण। श्रमण गौतम बहुतोके आचार्य-प्राचार्य ०। ० काम-राग-रहित, चपलता-रहित ०। ० कर्मवादी-क्रियावादी ०। ब्राह्मण सतानोके निष्पाप अग्रणी ०। ० अमिश्र उच्चकुल क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित ०। ० आढच महाधनी, महाभोगवान्-कुलसे प्रव्रजित ०। श्रमण गौतमके पास दूसरे राष्ट्रो दूसरे जनपदोसे पूछनेके लिये आते है ०। ० अनेक सहस्र देवता प्राणोसे शरणागत हुए ०। श्रमण गौतमके लिये ऐसा मगल-कीर्ति शब्द फैला हुआ है—कि वह भगवान् ०[1]। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोसे युक्त है ०। श्रमण गौतम 'आओ, स्वागत' बोलनेवाले, समोदक, अब्भाकुटिक (=अकुटिलभ्रू), उत्तान-मुख, पूर्वभाषी ०। ० चारो परिषदोसे सत्कृत=गुरुकृत ० ०। श्रमण गौतममे बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् है ०। श्रमण गौतम जिस ग्राम या नगरमे विहार करते है, उसे अ-मनुष्य (=देव, भूत आदि) नही सताते ०। श्रमण गौतम सघी (=सघाधिपति), गणी, गणाचार्य, बळे तीर्थकरो (=सप्रदाय-स्थापको)मे प्रधान कहे जाते है ०। जैसे किसी-किसी श्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे कैसे हो जाता है, उस तरह श्रमण गौतम का यश नही हुआ है। अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे श्रमण गौतमका यश उत्पन्न हुआ है। भो ! पुत्र-सहित, भार्या-सहित, अमात्य-सहित मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसार** प्राणोसे श्रमण गौतमका शरणागत हुआ है ०। ० राजा **प्रसेनजित्** कोसल ०।० ब्राह्मण **पौष्करसातिसे** ० ०। श्रमण गौतम खाणुमतमे आये है। खाणुमतमे अम्बलट्ठिकामे विहार करते है। जो कोई श्रमण या

---

[1] पृष्ठ ४८।

ब्राह्मण हमारे गॉव-खेतमे आते है, वह (हमारे) अतिथि होते है। अतिथि हमारा सत्करणीय=गुरु-करणीय=माननीय=पूजनीय है। चूकि भो! श्रमण गौतम खाणुमतमे आये है ०। श्रमण गौतम हमारे अतिथि है। अतिथि हमारा सत्करणीय ० है। इस वातसे भी ०। भो! मै श्रमण गौतमके इतने ही गुण कहता हूँ। लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नही है, आप गौतम अपरिमाण गुणवाले है।"

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोने कुटदन्त ब्राह्मणसे कहा—"जैसे आप कुटदन्त श्रमण गौतमके गुण कहते है, (तव तो) यदि वह आप गौतम यहाँसे सौ योजनपर भी हो, तोभी पाथेय वाँधकर, श्रद्धालु कुल-पुत्रको (उनके) दर्शनार्थ जाना चाहिये। तो भो! (चलो) हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेगे।"

तव कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ अम्वलट्ठिका थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्‌के साथ समोदन किया । खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोमे कोई-कोई भग-वान्‌को अभिवादन कर, एक ओर वैठ गये। कोई-कोई समोदन कर ०, ० जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०, ० चुपचाप एक ओर वैठ गये।

एक ओर वैठे हुए कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम! मैने सुना है कि—श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदाको जानते है। भो! मै सोलह परिष्कार-सहित यज्ञ-सम्पदाको नही जानता। मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदाका मुझे उपदेश करे।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरहसे मनमे करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा। भगवान् बोले—

२—अहिंसामय यज्ञ (महाविजित-जातक)

(१) वहुसामग्रीका यज्ञ

१—राज्य-यद्ध—"पूर्व-कालमे ब्राह्मण! महाधनी, महाभोगवान्, वहुत सोना चाँदीवाला, वहुत वित्त उपकरण (=साधन)वाला, वहुधन-धान्यवान् भरे-कोश-कोष्ठागारवाला, **महाविजित** नामक राजा था। ब्राह्मण! (उस) राजा महाविजितको एकान्तमे विचारते चित्तमे यह ख्याल उत्पन्न हुआ—'मुझे मनुष्योके विपुल भोग प्राप्त है, (मै) महान् पृथ्वीमडलको जीनकर, शासन करता हूँ। क्यो न मै महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' तव ब्राह्मण! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको वुलाकर कहा—'ब्राह्मण! यहाँ एकान्तमे वैठ विचारते, मेरे चित्तमे यह ख्याल उत्पन्न हुआ—० क्यो न मै महायज्ञ करूँ ०। ब्राह्मण! मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करे, जो चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' ऐसा कहनेपर ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितसे कहा—'आप का देश सकटक, उत्पीळा-सहित है। (राज्यमे) ग्राम-घात (=गाँवोकी लूट) भी दिखाई पळते है, वटमारी भी देखी जाती है। आप ऐसे सकटक उत्पीळा-सहित देशसे वलि (=कर) लेते है। इससे आप इस (देश)के अकृत्य-कारी है। शायद आप का (विचार) हो, दस्युओ (=डाकुओ) के कीलको हम वध, वन्धन, हानि, निन्दा, निर्वासनसे उखाळ देगे। लेकिन इस दस्यु-कील (=लूट-पाट रूपी कील)को, इस तरह भलीभाँति नही उखाळा जा सकता। जो मारनेसे वच रहेगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेगे। ऐसे दस्युकीलका इस उपायसे भली प्रकार उन्मूलन हो सकता है, कि राजन्! जो कोई आपके जनपदमे कृपि गोपालन करनेका उत्साह रखते है, उनको आप वीज और भोजन प्रदान करे। ० वाणिज्य करनेका उत्साह रखते है, उन्हे आप पूँजी (=प्राभृत) दे। जो राजपुरुपाई (=राजाकी नोकरी) करनेका उत्साह रखते है, उन्हे आप भत्ता-वेतन (=भत्त-वेतन) दे। (इस प्रकार) वह लोग

अपने काममे लगे, राजाके जनपदको नही सतायेगे। आप को महान् (धन-धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीडा-रहित, कटक-रहित क्षेम-युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमे पुत्रोको नचातेसे, खुले घर विहार करेगे।'

"राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको—'अच्छा भो ब्राह्मण!' कहा। राजाके जनपदमे जो कृषि-गो-रक्षा करना चाहते थे, उन्हे राजाने बीज-भत्ता सम्पादित किया। जो राजाके जनपदमे वाणिज्य करनेके उत्साही थे, उन्हे पूँजी सम्पादित की। जो राजाके जनपदमे राज-पुरुषाईमे उत्साही हुए, उनका भत्ता-वेतन ठीक कर दिया। उन मनुष्योने अपने अपने काममे लग, राजाके जनपदको नही सताया। राजाको महाधनराशि प्राप्त हुई। जनपद अकटक अपीडित क्षेम-युक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमे पुत्रोको नचातेसे खुले घर विहार करने लगे।

"ब्राह्मण! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'भो! मैने दस्युकील उखाळ दिया। मेरे पास महाराशि है०। हे ब्राह्मण! मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करे, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'।

२—**होम-यज्ञ** 'तो आप! जो आपके जनपदमे जानपद (=ग्रामीण), नैगम (=शहरके) **अनुयुक्तक** क्षत्रिय है, आप उन्हे कहे—'मै भो! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (=आज्ञा) करे, जो कि मेरे चिरकाल तक हित-सुखके लिये हो'। जो आपके जनपदमे जानपद या नैगम अमात्य पारिषद्य (=सभासद्)०। जनपदमे जानपद या नैगम ब्राह्मण महाशाल (=धनी)०।० जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नेचयिक (=धनी)०। राजा महाविजितने ब्राह्मण पुरोहितको—'अच्छा भो' कहकर, जो राजाके जनपदमे ० अनुयुक्तक क्षत्रिय ०' अमात्य पारिषद्य ०, ० ब्राह्मण महा-शाल ०, ० गृहपति नेचयिक थे, उन्हे राजा महाविजितने आमत्रित किया—'भो! मै महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करे, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'राजा! आप यज्ञ करे महाराज यह यज्ञका काल है।' ब्राह्मण! यह चारो अनुमति-पक्ष उसी यज्ञके (चार) परिष्कार होते है।

"(वह) राजा महाविजित आठ अगोसे युक्त था। (१) दोनो ओरसे सुजात ०। (२) अभि-रूप=दर्शनीय ० ब्रह्मवर्णी=ब्रह्मवृद्धि, दर्शनके लिये अवकाश न रखनेवाला। (३) ० शीलवान् ०। (४) आढय महाधनवान् महाभोगवान्, बहुत चाँदी सोनेवाला, बहुत वित्त-उपकरणवाला, बहुत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण-कोश-कोष्ठागारवाला, (५) बलवती चतुरगिनी सेनासे युक्त, आश्रयके लिये अपवाद-प्रतिकार (=ओवाद्-पटिकार)के लिये यशसे मानो शत्रुओको तपातासा था। (६) श्रद्धालु, दायक=दानपति श्रमण-ब्राह्मण दरिद्र-आर्थिक (=मँगता) वन्दीजन (=वणिब्बक) याचकोके लिये खुले-द्वार-वाला प्याउ-सा हो, पुण्य करता था। (७) बहुश्रुत, सुने हुओ, कहे हुओका अर्थ जानता था—'इस कथनका यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है'। (८) पडित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य-वर्तमानसबधी बातोको सोचनेमे समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अगोमे युक्त (था)। यह आठ अग उसी यज्ञके आठ परिष्कार होते है।

"पुरोहित ब्राह्मण चार अगोसे युक्त (था)। (१) दोनो ओरसे सुजात ०। (२) अध्यायक मत्र-धर ० त्रिवेद-पारगत ०। (३) शीलवान् ०। (४) पडित=व्यक्त मेधावी ० सुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करनेवालोमे प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अगोसे युक्त (था)। वह चार अग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते है।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधियोका उपदेश किया। (१) यज्ञ करनेकी इच्छावाले आप को शायद कही अफसोस हो—'बळी धनराशि चली

जायगी', सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुए आप राजाको शायद कही अफसोस हो—० चली जा रही है ०। (३) यज्ञ कर चुकनेपर आप राजाको शायद कही अफसोस हो—'बळी धन-राशि चली गई', सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये। ब्राह्मण ! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको यज्ञ (करने)से पहले तीन विधियाँ बतलाई।

"तब ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकोके प्रति (उत्पन्न होनेवाले) दश प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये—(१) आपके यज्ञमे प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आवेगे, प्राणातिपात-विरत (=अ-हिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हीके लिये हैं, जो वह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करे, मोदन करे, आप उनके चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करे। (२) आपके यज्ञमे चोर भी आवेगे, अ-चोर भी। जो वहाँ चोर हैं, वह अपने लिये है, जो वहाँ अ-चोर हैं, उनके प्रति आप यजन करे, मोदन करे, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करे। (३) ० व्यभिचारी ०, अ-व्यभिचारी भी ०। (४) ० मृषावादी (=झूठे) ०, मृषावाद-विरत भी ०। (५) ० पिशुनवाची (=चुगुल-खोर) ०, पिशुन-वचन-विरत भी ०। (६) ० परुषवाची (=कटुवचनवाले) ०, परुष-वचनविरत भी ०। (७) ० सप्रलापी (=बकवादी) ०,सप्रलाप-विरत भी ०। (८) ० अभिध्यालु (=लोभी) ०, अभिध्या-विरत ०। (९) ०—व्यापन्न-चित्त (=द्रोही) अ-व्यापन्नचित्त-भी ०। (१०) ० मिथ्यादृष्टि (=झूठे मत वाले) ०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्यमतवाले) भी। जो वहाँ मिथ्या दृष्टि हैं, वह अपनेही लिये है, जो वहाँ सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करे, मोदन करे, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करे। ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहको (=दान लेनेवालो)के प्रति (उत्पन्न होनेवाले), इन दस प्रकारके विप्रतिसार (=चित्त-विकार) अलग कराये।

"तब ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह प्रकारसे सदर्शन=समादपन=समुत्तेजन सप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करते वक्त आप राजाको (कोई) बोलनेवाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किन्तु उसने नैगम-जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियो (=माडलिक या जागीरदार राजाओ)को आमन्त्रित नही किया, तो भी यज्ञ कर रहा है। (सो अब) ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नही है। आप नैगम (=शहरी), जानपद (=देहाती) अनुयुक्तक क्षत्रियोको आमन्त्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जाने। आप यजन करे, आप मोदन करे, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करे। (२) शायद ० कोई बोलनेवाला हो—० नैगम जानपद अमात्यो (=अधिकारी), पार्षदो (=सभासद्)को आमन्त्रित नही किया ०। (३) ० ० ब्राह्मण महा-शालो ०। (४) ० ० नेचयिक गृहपतियो (=धनी वैश्यो)को ०। (५) शायद कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किन्तु वह दोनो ओरसे सुजात नही हैं ०। तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलने वाला नही है। आप दोनो ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जाने। आप यजन करे, आप मोदन करे, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करे। (६) ० ० अभिरूप=दर्शनीय ०।०। (७) ० ० शीलवान् ० ०। (८) ० ० आढ्य महा भोगवान् बहुत सोना चाँदी वाले, बहुत वित्त-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण ० ०। (९) ० ० बलवती चतुरगिनी सेनासे ०" (१०) ० ० श्रद्धालु दायक ० ०। (११) ० ० बहुश्रुत ० ०। (१२) ० ० पण्डित=व्यक्त मेधावी ० ०। (१३) ० ० पुरोहित दोनो ओरसे सुजात ० ०। (१४) ० ० पुरोहित ० अध्यायक मन्त्रधर ० ०। (१५) ० ० पुरो-हित ० शीलवान् ० ०। (१६) पुरोहित ० पडित=व्यक्त ० ०। ब्राह्मण ! महायज्ञ यजन करते हुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोलह विधियोसे समुत्तेजित किया।

"ब्राह्मण ! उस यज्ञमे गाये नही मारी गई, बकरे-भेळे नही मारी गई, मुर्गे सुअर नही मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न यूप (=यज्ञ-स्तभ)के लिये वृक्ष काटे गये। न पर-हिसाके लिये दर्भ (=कुश) काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होने भी दण्ड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुये सेवा नही की। जिन्होने चाहा उन्होने किया, जिन्होने नही चाहा उन्होने नही किया। जिसे चाहा उसे किया, जिसे नही चाहा उसे नही किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाड(=फाणित)से वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

"तब ब्राह्मण ! नैगम-जानपद अनुयुक्तक-क्षत्रिय, ० अमात्य-पार्षद, ० महाशाल (=धनी) ब्राह्मण, ० नेचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्य ले, राजा महाविजितके पास जाकर, बोले—'देव ! यह बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये है, इसे देव स्वीकार करे'। 'नही भो ! मेरे पास भी यह बहुत सा धर्मसे उपार्जित सापतेय्य है। यह तुम्हारे ही पास रहे, यहाँसे भी और ले जाओ। राजाके इन्कार करनेपर एक ओर जाकर, उन्होने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नही, कि हम इस धन-धान्यको फिर अपने घरको लौटा ले जाये। राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, हन्त ! हम भी इसके अनुगामी हो पीछे पीछे यज्ञ करनेवाले होवे।

"तब ब्राह्मण ! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्व ओर नैगम जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियोने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर ० अमात्य-पार्षदोने ०। पश्चिम ओर ० ब्राह्मण महाशालोने ०। ० उत्तर ओर ० नेचयिक वैश्योने ०। ब्राह्मण ! उन (अनु)यज्ञोमे भी गाये नही मारी गई ०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँळसे ही वह यज्ञ सम्पादित हुये।

"इस प्रकार चार अनुमति-पक्ष, आठ अगोसे युक्त राजा महाविजित, चार अगोसे युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधियाँ हुई। ब्राह्मण ! इसे ही त्रिविध यज्ञ-सपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है।"

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण उन्नाद उच्चशब्द = महाशब्द करने लगे—'अहो यज्ञ ! अहो ! यज्ञ-सपदा ! !' कुटदन्त ब्राह्मण चुपचाप ही बैठा रहा। तब उन ब्राह्मणोने कुटदन्त ब्राह्मणसे यह कहा—

"आप कुटदन्त किसलिये श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदित नही कर रहे है?"

"भो ! मै, श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अन्-अनुमोदन नही कर रहा हूँ। शिर भी उसका फट जायगा, जो श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदन नही करेगा। मुझे यह (विचार) हो रहा है, कि श्रमण गौतम यह नही कहते—'ऐसा मैने सुना', या ऐसा हो सकता है'। बल्कि श्रमण गौतमने—'ऐसा तब था, इस प्रकार तब था', कहा है। तब मुझे ऐसा होता है—'अवश्य श्रमण गौतम उस समय (यातो) यज्ञ-स्वामी राजा महाविजित थे, या यज्ञके करानेवाले पुरोहित ब्राह्मण थे। क्या जानते है, आप गौतम ! इस प्रकारके इस यज्ञको करके या कराके, (मनुष्य) काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग-लोकमे उत्पन्न होता है?"

"ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके यज्ञ ०। मै उस समय उस यज्ञका याजयिता पुरोहित ब्राह्मण था।"

(२) अल्पसामग्रीका महान यज्ञ

"हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-सपदासे भी कम सामग्री (=अर्थ) वाला, कम क्रिया (=समारभ)-वाला, किन्तु महाफल-दायी कोई यज्ञ है?"

"है, ब्राह्मण ! इस ० से भी ० महाफलदायी।"

"हे गौतम ! वह इस ० से भी ० महाफलदायी यज्ञ कौन है?"

१—**दान-यज्ञ**—"ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुलमे शीलवान् (=सदाचारी) प्रव्रजितोके लिये नित्य दान दिये जाते है। ब्राह्मण ! वह यज्ञ इस० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्य दान इस ० से भी ० महाफलदायी है?"

"ब्राह्मण ! इस प्रकारके (महा)यज्ञोमे अर्हत् (=मुक्तपुरुष), या अर्हत्-मार्गारूढ नही आते। सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! यहाँ दण्ड-प्रहार और गल-ग्रह (=गला पकळना) भी देखा जाता है। इस लिये इस प्रकारके यज्ञोमे अर्हत् ० नही आते। जोकि वह नित्य-दान ० है, इस प्रकारके यज्ञमे ब्राह्मण ! अर्हत् ० आते है। सो किस हेतु ? वहाँ ब्राह्मण ! दड-प्रहार, गल-ग्रह नही देखा जाता। इसलिये इस प्रकारके यज्ञमे ०। ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्य-दान ० उस ० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह-परिष्कार-त्रिविध-यज्ञसे भी अधिक फलदायी, इस नित्यदान ० से भी अल्प-सामग्री-वाला अल्पसमारम्भवाला और महाफलदायी, महामाहात्म्यवाला है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! वह यज्ञ कौन सा है, (जो कि) इस सोलह ० ?"

"ब्राह्मण ! जो कि यह चारो दिशाओके सघके लिये (=चातुद्दिस सघ उद्दिस्स) विहारका बनवाना है। यह ब्राह्मण ! यज्ञ, इस सोलह ०।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ०, इस नित्यदान ० से भी, इस विहार-दानसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प-क्रियावाला, और महाफलदायी महामाहात्म्यवाला है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौन सा है ० ?"

२—**त्रिशरण-यज्ञ**—"ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध (परम-ज्ञानी)की शरण जाना है, धर्म (=परम-तत्व) की शरण जाना है, सघ (=परम तत्व-रक्षक-समुदाय)की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ० ०।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ०इन शरण-गमनोसे भी अल्प-सामग्रीक, अल्प-क्रियावान् और महाफलदायी, महामाहात्म्यवान् है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौनसा है, ० ?"

३—**शिक्षापद-यज्ञ**—"ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (=स्वच्छ)-चित्त (हो) शिक्षापदो (=यम-नियमो)का ग्रहण करना है—(१) अ-हिसा, (२) अ-चोरी, (३)अव्यभिचार, (४) झूठ-त्याग, (५) सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थान-विरमण (=नशा-त्याग)। यह यज्ञ ब्राह्मण ! ० ० इन शरण-गमनोसे भी ० महा-माहात्म्यवान् है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शिक्षापदोसे भी ० महामाहात्म्यवान् है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौनसा है० ?"

४—**शील-यज्ञ**—"ब्राह्मण ! जब लोकमे तथागत उत्पन्न होते है ? ०[1]। इस प्रकार ब्राह्मण शील-सम्पन्न होता है ०।

---

[1]देखो पृष्ठ २३-२९।

५—**समाधि-यज्ञ**—० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह यज्ञ पूर्वके यज्ञोसे अल्प-सामग्रीक ० और महामाहात्म्यवान् है।"

"क्या है, हे गौतम! ० ० इस प्रथम ध्यानसे भी ०[1]?"

"है ०।" "कौन है ०?"

"० ० द्वितीय-ध्यान ० ०।" "तृतीय-ध्यान ० ०।" "० ० चतुर्थ-ध्यान ० ०।" "ज्ञान दर्शनके लिये चित्तको लगाता, चित्तको झुकाता है ० ०।"

६—**प्रज्ञा-यज्ञ**—"० ० ० नही अब दूसरा यहॉके लिये है, जानता है ० ०। यह भी ब्राह्मण! यज्ञ पूर्वके यज्ञोसे अल्प-सामग्रीक ० और ० महामाहात्म्यवान् है। ब्राह्मण! इस यज्ञ-सपदासे उत्तरितर (=उत्तम) प्रणीततर दूसरी यज्ञ-सपदा नही है।'

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम! अद्भुत! हे गौतम! ०[2] मै भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु सघकी भी। आप गौतम आजसे मुझे अजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करे। हे गौतम! यह मै सात सौ बैलो सात सौ बछळो, सात सौ बकरो, सात सौ भेळोको छोळवा देता हूँ, जीवन-दान देता हूँ, (वह) हरी घासे चरे, ठडा पानी पीवे, ठडी हवा उनके (लिये) चले।"

तब भगवान्ने कुटदन्त ब्राह्मणको आनुपूर्वी-कथा कही ०[3]। कुटदन्त ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल=धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशमान है'। तब कुट-दन्त ब्राह्मणने दृष्टधर्म ० हो भगवान्से कहा—

"भिक्षु-सघके साथ आप गौतम कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान् ने मौनसे स्वीकार किया। तब कुटदन्त ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब कुटदन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञवाट (=यज्ञमडप) मे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को काल सूचित कराया ०[4]। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षु-सघके साथ, जहॉ कुटदन्त ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहॉ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। कुटदन्त ब्राह्मणने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सन्तर्पित=सप्रवारित किया। भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, कुटदन्त ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ हुये, कुटदन्त ब्राह्मणको भगवान्, धार्मिक कथासे सदर्शित=समादपित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित कर, आसनसे उठकर चले गये।

---

[1] पृष्ठ २९। [2] पृष्ठ ३२। [3] देखो पृष्ठ ४३। [4] देखो पृष्ठ ४७।

६—महालि-सुत्त (१।६)

भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत-कथा)—(१) समाधिके चमत्कार नही। (२) निर्वाणका साक्षात्कार। (३) आत्मवाद (मडिस्स-कथा)। (४) निर्वाण साक्षात्कारके उपाय (शील, समाधि, प्रज्ञा)।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **वैशाली** मे **महावन** की **कूटागारशाला** मे विहार करते थे।

उस समय वहुतसे **कोसलवासी** ब्राह्मण-दूत, **मगधवासी** ब्राह्मण-दूत वैशालीमे किसी कामसे वास करते थे। उन कोसल-मगध-वासी ब्राह्मण-दूतोने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण-गौतम वैशालीमे महावनकी कूटागारशालामे विहार करते है। उन आप गौतमका ऐसा मगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है— ०[1]। इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-ब्राह्मणदूत जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् **नागित** भगवान्‌के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब वह ब्राह्मण-दूत जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् नागितसे बोले।—

"हे नागित! इस वक्त आप गौतम कहाँ विहरते है? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते है।"

"आवुसो! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नही है। भगवान् ध्यानमे है।"

तब वह ० ब्राह्मणदूत वही एक ओर बैठ गये—'हम उन आप भगवान्‌का दर्शन करके ही जावेगे'। **ओट्ठद्ध** (=आधे ओठवाला) **लिच्छवि** भी, बळी भारी लिच्छवि-परिषद्‌के साथ, जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुये ओट्ठद्ध लिच्छविने आयुष्मान् नागितसे कहा—

"भन्ते नागित! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे है।"

"महालि! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नही है। भगवान् ध्यानमे है।"

ओट्ठद्ध लिच्छवि भी वही एक ओर बैठ गया—'उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धका दर्शन करके ही जायेगे'।

तब **सिंह** श्रमणोद्देश जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ आया। आकर आयुष्मान् नागित को अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। ० यह बोला—

"भन्ते काश्यप! यह बहुतसे ०ब्राह्मण-दूत भगवान्‌के दर्शनके लिये यहाँ आये है। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी महती लिच्छवि-परिषद्‌के साथ भगवान्‌के दर्शनके लिय यहाँ आया है। भन्ते काश्यप! अच्छा हो, यदि यह जनता भगवान्‌का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! तू ही जाकर भगवान्‌से कह।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४८।

आयुष्मान् नागित को "अच्छा भन्ते !" कह, सिह श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हो ० भगवान्से बोला—

"भन्ते ! यह बहुतसे ०, अच्छा हो यदि यह परिषद् भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो सिह ! विहारकी छायामे आसन बिछा।"

"अच्छा भन्ते !" कह, सिह श्रमणोद्देशने विहारकी छायामे आसन बिछाया। तब भगवान् विहारसे निकलकर, विहारकी छायामे बिछे आसनपर बैठे।

तब वह ० ब्राह्मण-दूत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्के साथ समोदन कर ०। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि-परिषद्के साथ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, ओट्ठद्ध लिच्छविने भगवान्से कहा—

१—भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत्त-कथा)

"पिछले दिनो (=पुरिमानि दिवसानि पुरिमतराणि) **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्त जहाँ मै था, वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—'महालि ! जिसके लिये मै भगवान्के पास अन्-अधिक तीन वर्ष तक रहा कि प्रिय कमनीय रजनीय दिव्य शब्द सुनूँगा, किन्तु प्रिय कमनीय रजनीय दिव्य शब्द मैने नही सुना।' भन्ते ! क्या सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र ने विद्यमान ही ० दिव्य शब्द नही सुने, या अविद्यमान ?"

"महालि ! विद्यमान ही ० दिव्य शब्दोको सुनक्खत्त० ने नही सुना, अ-विद्यमानको नही।"

"भन्ते ! क्या हेतु-प्रत्यय है, जिससे कि ० दिव्य शब्दोको सुनक्खत्त ० ने नही सुना ० ?"

(१) समाधिके चमत्कार नहीं

"महालि ! एक भिक्षुको पूर्व दिशामे ० दिव्य रूपोके दर्शनार्थ एकागी समाधि प्राप्त होती है, किन्तु ० दिव्य-शब्दोके श्रवणार्थ नही। वह पूर्व-दिशामे ० दिव्य-रूपको देखता है, किन्तु ० दिव्य-शब्दोको नही सुनता। सो किस हेतु ? महालि ! पूर्व-दिशामे एकाश एकागी समाधि प्राप्त होनसे ० दिव्य रूपोके दर्शनके लिये होती है ०, दिव्य-शब्दोके श्रवणके लिये नही। और फिर महालि ! भिक्षुको दक्षिण-दिशा ०, ० पश्चिम-दिशा, ० उत्तर-दिशा ०, ० ऊपर ०, ० नीचे ० ० तिर्छे रूपोके दर्शनार्थ एकागी समाधि प्राप्त होती है ०। महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामे ० दिव्य-शब्दोके श्रवणार्थ ०। ० दक्षिण-दिशामे ०। ० पश्चिम-दिशामे ०। ० उत्तर-दिशामे ०। महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामे ० दिव्य-रूपोके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोके श्रवणार्थ उभयाश (=दो-तरफी) समाधि प्राप्त होती है। वह उभयाश समाधिके प्राप्त होनसे पूर्व-दिशामे ० दिव्य रूपोको देखता है, ० दिव्य-शब्दोको सुनता है । ० ०। ० उत्तर-दिशामे ०। ० ऊपर ०। ० नीचे ०। ० तिर्छे ० ।

"भन्ते ! इन समाधि-भावनाओके साक्षात्कार (=अनुभव)के लिये ही, भगवान्के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य-पालन करते है ?"

"नही महालि ! इन्ही ० के लिये (नही) ०। महालि ! दूसरे इनसे बढकर, तथा अधिक उत्तम धर्म है, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते है"।

"भन्ते ! कौनसे इनसे बढकर तथा अधिक उत्तम धर्म है, जिनके ० लिये ० ?"

(२) निर्वाण साक्षात्कारके लिये ?

"महालि ! तीन **संयोजनो** (=बंधनो)के क्षयसे (पुरुष) फिर न पतित होनेवाला, नियत सबोधि (=परमज्ञान)की ओर जानेवाला, **स्रोत-आपन्न** होता है। महालि ! ० यह भी धर्म है ०। और फिर महालि ! तीनो सयोजनोके क्षीण होनेपर, राग, द्वेष, मोहके निर्बल (=तनु) पळनेपर, **सकृदागामी** होता है, एक ही बार (=सकृद् एव) इस लोकमे फिर आ (=जन्म)कर, दु:खका अन्त

करता (=निर्वाण-प्राप्त होता) है। ० यह भी महालि ! ० धर्म है ०। और फिर महालि भिक्षु पाँचो अवरभागीय (=ओरभागिय=यही आवागमनमे फँसा रखनेवाले) सयोजनोके क्षीण होनेसे औपपातिक (=देव) बन वहाँ (=स्वर्ग-लोकमे) निर्वाण पानेवाला =(फिर यहाँ) न लौटकर आनेवाला होता है। ० यह भी महालि ! ० धर्म है ०। और फिर महालि ! आस्रवो (=चित्तमलो)के क्षीण होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्तिके ज्ञानद्वारा इसी जन्ममे (निर्वाणको) स्वय जानकर=साक्षात्कार कर=प्राप्त कर विहार करता है। ० यह भी महालि ! ० धर्म है ०। यह है महालि ! ०अधिक उत्तम धर्म, जिनके साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।"

"क्या भन्ते ! इन धर्मोके साक्षात् करनेके लिये मार्ग=प्रतिपद् है ?"

"है, महालि ! मार्ग=प्रतिपद् ०।"

"भन्ते ! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है ०।"

"यही आ र्य-अ ष्टा गि क मार्ग, जैसे कि-(१) सम्यक्-दृष्टि, (२) सम्यक्-सकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति, (८) सम्यक्-समाधि। महालि ! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है, इन धर्मोके साक्षात् करनेके लिये०।"

(३) (आत्मवाद नहीं) मण्डिस्स कथा

"एक बार महालि ! मै **कौशाम्बीमे** घो षि ता रा म मे विहार करता था। तब दो प्रव्रजित (=साधु) **मण्डिस्स** परिव्राजक, तथा दा रु पा त्रि क का शिष्य **जालिय**—जहाँ मै था, वहाँ आये। आकर मेरे साथ समोदन कर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुये उन दोनो प्रव्रजितोने मुझसे कहा—'आवुस ! गौतम ! क्या वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?' 'तो आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमे करो, कहता हूँ।' 'अच्छा आवुस !'—कह उन दोनो प्रव्रजितोने मुझे उत्तर दिया। तब मैने कहा—

(४) निर्वाण साक्षात्कार के उपाय

१—**शील**—'आवुसो ! लोकमे तथागत उत्पन्न होता है०[1], इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है।

२—**समाधि**—०[2] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ? आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—वही जीव है ० ? मै आवुसो ! इसे ऐसा जानता हूँ०, तो भी मै नही कहता—वही जीव है, वही शरीर है, या ०'। [2]० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०[2] चतुर्थ-ध्यानको० प्राप्त हो विहरता है। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।

३—**प्रज्ञा**—"ज्ञान= दर्शन केलिये चित्तको लगाता=झुकाता है ०। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।०[3] और अब यहाँ करनेके लिये नही रहा—जानता है। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०। क्या उसको यह कहने की जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?' आवुसो ! जो ० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नही है— ०। मै आवुसो ! ऐसे जानता हूँ ०, तो भी मै नही कहता—'वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है।"

भगवान्‌ने यह कहा—**ओट्ठद्ध** लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनुमोदित किया।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२८। [2] पृष्ठ २९। [3] पृष्ठ ३२।

७—जालिय-सुत्त (१।७)

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन अयुक्त—(१) शीलसे; (२) समाधिसे, (३) प्रज्ञासे।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् **कौशाम्बी** के घोपितारामने विहार करते थे। उस समय माण्डिस्स परिव्राजक और दारुपात्रिकके शिष्य **जालिय**—दो साधु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ लेनेके बाद वे एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे उन साधुओ ने भगवान्से कहा—"आवुस ! गौतम ! वही जीव है, वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है ?"

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन व्यर्थ

(भगवान्ने कहा—) "आवुसो ! आप लोग मन लगाकर सुने, मै कहता हूँ"।

"हाँ आवुस" कह उन साधुओने भगवान्को उत्तर दिया।

१—शीलसे भगवान् बोले—"आवुसो ! जब ससारमे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1] उत्पन्न होते है। आवुसो ! भिक्षु इस प्रकार शील-सम्पन्न होता है।

२—समाधिसे ०[2] प्रथम ध्यानको प्राप्त हो कर विहार करता है। आवुसो ! जब वह भिक्षु इस तरह जानता है, इस तरह देखता है, तो क्या उसके लिये यह कहना ठीक है 'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है ?' आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका यह कहना ठीक ही है 'वही जीव ०।' "आवुसो ! मै तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अत मै नही कहता हूँ—वही जीव ०।०[2] द्वितीय ध्यान ०।०[2] तृतीय ध्यान ०।०[2] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह आवुसो ! भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका ऐसा कहना ठीक है—'वही जीव ० ? आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नही है 'वह जीव ०।'

३—प्रज्ञासे "आवुसो ! मै तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अत मै नही कहता हूँ—'वही जीव ०—ज्ञानप्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना क्या ठीक है, 'वही जीव' ? आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नही है—'वही जीव ०।"

"आवुसो ! मै तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ, अत मै नही कहता हूँ—'वही जीव ०'। आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका ऐसा कहना ठीक है, 'वही

---

[1] देखो पृष्ठ २३–२८। [2] देखो पृष्ठ २९।

जीव ० ?' आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नही, 'वही जीव ० ।

"आवुसो ! मै तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ, अत मै नही कहता हूँ 'वही' जीव० ।"

भगवान्‌ने यह कहा। उन साधुओने प्रसन्नता-पूर्वक भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन किया।

८—कस्सप-सीहनाद-सुत्त (१।८)

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नही। २—सच्ची धर्मचर्या मे सहमत। ३—झूठी शारीरिक तपस्यायें। ४—सच्ची तपस्यायें—(१) शील-सम्पत्ति, (२) चित्त-सम्पत्ति, (३) प्रज्ञा-सम्पत्ति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् उजुञ्ञाके पास कण्णकत्थल मिगदायमे विहार करते थे। तब अचेल (=नगा) काश्यप जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ वह एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा हो, अचेल काश्यपने भगवान्से कहा—'हे गौतम! ऐसा सुना है कि श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोकी कठोरताको बिलकुल बुरा और अनुचित बतलाता है। जो ऐसा कहते हैं क्या वह आपके प्रति ठीक कहनेवाले है? आपको असत्य=अभूतसे निन्दा तो नही करते? धर्मके अनुकूल तो कहते है? वैसा कहनेसे किसी धर्मानुकूल वादका परित्याग या निन्दा तो नही होती? हम आप गौतमकी निन्दा नही चाहते।"

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं

"काश्यप! जो लोग ऐसा कहते है—'श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोकी कठोरताको बिल्कुल बुरा बतलाता है'—ऐसा कहनेवाले मेरे बारेमे ठीकसे कहनेवाले नही है, मेरी झूठी निदा करते है। काश्यप! मै किन्ही किन्ही कठोर जीवनवाले तपस्वियोको विशुद्ध और अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०काया छोळ मरनेके बाद नरकमे उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! मै किन्ही किन्ही कठोर जीवनवाले तपस्वियोको मरनके बाद स्वर्गलोकमे उत्पन्न और सुगतिको प्राप्त देखता हूँ। किन्ही किन्ही कम कठोर जीवनवाले तपस्वियोको मरनेके बाद नरकमे उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! किन्ही किन्ही ० को ० मरनेके बाद स्वर्गलोकमे उत्पन्न सुगतिको प्राप्त देखता हूँ।

"जब मै काश्यप! इन तपस्वियोकी इस प्रकारकी अगति, गति, च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति-को ठीकसे जानता हूँ। फिर मै कैसे सब तपश्चरणोकी निन्दा करूँगा? सभी कठोर जीवनवाले तपस्वियोकी बिल्कुल निन्दा, शिकायत करूँगा?

२—सच्ची धर्मचर्यामें सहमत

"काश्यप! कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, शास्त्रार्थमे विजय पाये हुये (और) बालकी खाल उतारनेवाली अपनी बुद्धिसे दूसरोके मतोको छिन्न-भिन्न करते-से दीखते है। वह भी किन्ही किन्ही बातोमे मुझसे सहमत है, किन्ही किन्ही बातोमे सहमत नही। कुछ बाते जिन्हे वे ठीक कहते है, उन्हे हम भी ठीक कहते है। कुछ बाते जिन्हे वे ठीक नही कहते, हम भी उन्हे ठीक नही कहते।

(किन्तु) कुछ वाते जिन्हे वे ठीक नही कहते, उन्हे हम ठीक कहते है। कुछ वाते जिन्हे हम ठीक कहते है, उन्हे वे ठीक कहते है, कुछ वाते जिन्हे हम ठीक नही कहते, उन्हे वे भी ठीक नही कहते, कुछ वाते जिन्हे हम नही—ठीक कहते, उन्हे वे ठीक कहते है, जिन्हे हम ठीक कहते है, उन्हे वे ठीक नही कहते। उनके पास जाकर मे ऐसा कहता हूँ—'आवुसो! जिन वातोमे हम लोग सहमत नही है, उन वातोको अभी जाने दे। जिन वातोमे हम लोग सहमत है, उन्हे ही वुद्धिमान् लोग अच्छी तरहसे (एक) शास्तासे (दूसरे) शास्ताको, एक सघसे (दूसरे) सघको पूछे, चर्चा करे, विचार करे—क्या जो वाते बुरी बुरी मानी गई, सदोप सदोप मानी गई, असेवनीय असेवनीय मानी गई, निकृष्ट निकृष्ट मानी गई, काली काली मानी गई है, उन वातोको किसने बिलकुल छोळ दिया है, श्रमण गौतमने या दूसरे आप गणाचार्योने? काश्यप! जव वुद्धिमान् ० विचारते है—फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके मेरी ही अधिक प्रशसा करेगे।

"और फिर काश्यप! वुद्धिमान् लोग ० विचारते है—जो ये वाते अच्छी अच्छी मानी गई, निर्दोप निर्दोप मानी गई, सेवनीय सेवनीय मानी गई, श्रेष्ठ श्रेष्ठ मानी गई, शुक्ल शुक्ल मानी गई है, उन वातोका कौन ठीकसे पालन करता है, श्रमण गौतम या दूसरे आप गणाचार्य? ०। ० काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके मेरी ही अधिक प्रशसा करेगे।

"और फिर काश्यप! वुद्धिमान् ० विचारते है—०जो वाते वुरी ० है, उन्हे विल्कुल छोळ दिया है, श्रमण गौतमकी शिष्य-मडलीने या दूसरे आप गणाचार्योकी शिष्य-मडलीने? ० फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके हमारी ही अधिक प्रशसा करेगे।

"और फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचारते है—जो ये वाते अच्छी अच्छी मानी गई है, कौन इन वातोका ठीकसे पालन करता है? श्रमण गोतमकी शिष्य-मडली या दूसरे आप गणाचार्योकी शिष्य-मडली? ० फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके हमारी ही अधिक प्रशसा करेगे।

"काश्यप! यह मार्ग (=उपाय) है, यह प्रतिपद् है, जिसके द्वारा (कोई भी) स्वय जान लेगा, स्वय देख लेगा कि श्रमण गौतम समयोचित वात वोलनेवाला, सच्ची बात वोलनेवाला, सार्थक वात बोलनेवाला, धर्मकी वात बोलनेवाला (और) विनयकी वात बोलनेवाला (है)। काश्यप! वह कोन-सा मार्ग है, कौन-सी प्रतिपदा है, जिससे (पुरुष) स्वय जान लेगा (और) स्वय देख लेगा कि, श्रमण गौतम समयोचित ०? वे ये है—सम्यग्-दृष्टि (=ठीक सिद्धान्त), ठीक सकल्प, ठीक वचन, ठीक कारवार, ठीक व्यवसाय, ठीक उद्योग (=व्यायाम), ठीक स्मृति, और ठीक समाधि।

३—झूठी शारीरिक तपस्यायें

"काश्यप! यही मार्ग है, यही प्रतिपद् है जिससे स्वय ०।

ऐसा कहनेपर अचेल काश्यपने भगवान्से कहा—"आवुस गौतम! उन श्रमणो ओर ब्राह्मणोकी ये **तपस्यायें** उनके श्रमण और ब्राह्मण-भाव-के द्योतक है, जैसे कि—नगा रहना, सभी आचार विचारोको छोळ देना, हथचट्टा व्रत, बुलाई भिक्षाका त्याग, ठहरिये-कहकर दी गई भिक्षाका त्याग, अपने लिये लाई भिक्षाका त्याग, अपने लिये पकाये भोजनका त्याग, हाळीके भिक्षाका त्याग, ओखलके मुँहसे निकाली भिक्षाका त्याग, पटरा, दण्ड या मुँहसे निकाली मूसलके वीचसे लाई भिक्षाका त्याग, निमन्त्रणका त्याग, दो भोजन करने वालोके वीचसे लाई ०, गर्भिणी स्त्री द्वारा लाई ०, दूध पिलाती स्त्री द्वारा लाई ०, अन्य पुरुषके पास गई स्त्री द्वारा लाई ०, चन्दावाली भिक्षाका त्याग, वहाँसे भी नही (लेता) जहाँ कोई कुत्ता खळा हो, वहाँ मे भी नही जहाँ मक्खियाँ भन-भन कर रही हो, न माँस, न मछली, न सुरा, न कच्ची शराब, न

चावलकी शराब (=तुषोदक) ग्रहण करता है। वह एक ही घरसे जो भिक्षा मिलती है लेकर लौट जाता, एक ही कौर खानेवाला होता है, दो घरसे जो भिक्षा०, दो ही कौर खानेवाला, सात घर० सात कौर०। वह एक ही कलछी खाकर रहता है, दो०, सात०। वह एक एक दिन वीच दे करके भोजन करता है, दो दो दिन०, सात सात दिन,०। इस तरह वह आधे आधे महीने पर भोजन करते हुये विहार करता है।

"आवुस गौतम! कुछ श्रमण और ब्राह्मणोके ये भी तपस्या करनेके तरीके है, जिनसे उनका श्रमण-ब्राह्मण-भाव द्योतित होता है। वह साग मात्र खाता है० केवल सामा खाकर रहता है या केवल नीवार (=तिन्नी) ०। चमळा खाकर रहता है, सेवाल०, कण०, कॉजी०, खली०, तृण०, गोवर०, या जगलके फल-फूल, या वृक्षसे स्वय गिरे फलको खाकर रहता है।

"आवुस गौतम! कुछ श्रमणो और ब्राह्मणोके ये भी०। वह सनका वना कपळा धारण करता है, श्मशानके वस्त्रोको धारण०, कफन०, फेके चिथळे०, वल्कल०, मृगचर्म०, मृगके चमळेको वीचमे छेद करके उसमे शिर डालकर धारण०, कुशके बनाये वस्त्र०, चटाई०, मनुष्यके केशके कम्बल०, घोळेके वालके कम्बल०, उल्लूके पख०। शिर और दाढीके वालोको नोचनेवाला होता है, शिर और दाढीके वालोको नुचवाता है। आसनको छोळकर सदा ठळेसरी रहता है। उकळूँ बैठनेवाला (हो) सदा उकळूँ ही बैठता है। कॉटोपर (ही) बैठता या सोता है। तख्तेपर सोता है। जमीनपर सोता है। एक ही करवटसे सोता है। शरीरपर धूल और गर्दा लपेटे रहता है। केवल खुली ही जगहपर रहता है। जहाँ पाता है वही बैठ जाता है। मैला खाता है। केवल गरम पानी पीता है। सुबह-दोपहर ओर शाम तीन वार जल शयन-करता है।"

४—सच्ची तपस्यायें

"काश्यप! जो नगा रहता है, आचार-विचारको छोळ देता है०। वह शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञासम्पत्तिकी भावना नही कर पाता और वह उनका साक्षात्कार भी नही कर पाता। अत वह श्रामण्य और ब्राह्मण्यसे बिल्कुल दूर है। काश्यप! जब भिक्षु वैर और द्रोहसे रहित होकर मैत्री-भावना करता है। चित्त-मलोके क्षय होनसे निर्मल चित्तकी मुक्ति ओर प्रज्ञाकी मुक्तिको इसी जन्ममे स्वय जान कर साक्षात् कर प्राप्तकर विहार करता है। काश्यप! (यथार्थमे) वही भिक्षु श्रमण या ब्राह्मण कहलाता है।

"काश्यप! साग मात्र खानेवाला० है। वह शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्तिकी भावना नही कर पाता०।

"काश्यप! जो सनका वना कपळा धारण करता है०।"

ऐसा कहनेपर अचेलक काश्यपने भगवान्से यह कहा—"हे गोतम! श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है।"

"काश्यप! ससारमे लोग ऐसा कहते है—श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है। काश्यप! जो नगे रहते है, आचार विचारको छोळ देते है०। इतने मात्रमे श्रामण्य और ब्राह्मण्य दुष्कर, सुदुष्कर होता तो श्रामण्य ब्राह्मण्यको दुष्कर ओर सुदुष्कर कहना उचित नही।

"काश्यप! चूँकि इस प्रकारकी तपश्चर्य्यासे विल्कुल भिन्न होने हीके कारण श्रामण्य और ब्राह्मण्य दुष्कर है, इसी लिये यह कहना ठीक है—'श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है'। काश्यप! जब भिक्षु०[1] वैर-रहित०। काश्यप! (यथार्थमे) वही भिक्षु०।

---

[1] पृष्ठ ९१ (मैत्री भावना)।

"काश्यप ! कच्चा साग खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना कपळा धारण करता है ०।

० अचेल काश्यपने ० कहा—"हे गौतम ! श्रामण्य दुर्ज्ञेय है, ब्राह्मण्य दुर्ज्ञेय है।"

"० नगे रहते है ०। काश्यप ! यदि इस प्रकारकी कठोर तपस्या करनेसे ०। यदि इतने मात्रसे ० दुर्ज्ञेय ० होता। इन्हे तो ० पनिहारी तक भी जान सकती है। ०।

"काश्यप ! साग मात्र खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना वस्त्र धारण करता है ०।"

ऐसा कहनेपर अचेल काश्यपने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! वह शीलसम्पत्ति कौनसी है, वह चित्तसम्पत्ति कौनसी है, वह प्रज्ञासम्पत्ति कौनसी है ?"

(१) शील-सम्पत्ति

"काश्यप ! जब ससारमे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ० उत्पन्न होते है०[१]। आचार-नियमो (=शिक्षापदो)को मानता है और उनके अनुकूल चलता है, काया और वचनसे अच्छे कर्म करनेमे लगा रहता है। सदाचारी, परिशुद्ध, अपनी इन्द्रियोको वशमे रखनेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और सतुष्ट (रहता है)। काश्यप ! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है ? काश्यप ! भिक्षु हिसाको छोळ हिसासे विरत रहता है, दण्ड और शस्त्रको छोळ देता है। सकोची, दयालु, और सभी जीवोकी ओर स्नेह दिखाते हुए विहार करता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति होती है। ०[२]। जैसे, कितने ही श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर इस प्रकारकी बुरी जीविकासे जीवन व्यतीत करते है, जैसे—शान्ति-कर्म (=मिन्नत मानना), प्रणिधि-कर्म (=मिन्नत पूरा करना) ०[३] वैद्य-कर्म। इस या इस प्रकारकी दूसरी बुरी जीविकाओसे विरत रहता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति है।

"काश्यप ! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो, शीलसवरके कारण कहीसे भय नही देखता। जैसे काश्यप ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, शत्रुओको बिल्कुल दमन करनेके बाद कही भी शत्रुओसे भय नही देखता। काश्यप ! इसी प्रकार शीलसवरके कारण भिक्षु कहीसे भय नही खाता है, जो यह ०। वह इस आर्य शीलस्कन्ध (=शुद्ध शीलपुज)से युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। काश्यप ! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है। काश्यप ! यह शीलसम्पत्ति है।

(२) चित्त-सम्पत्ति

"०[४]प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है। ० दूसरे ध्यान। ० तीसरे ध्यान, ०। ० चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है।

(३) प्रज्ञा-सम्पत्ति

"वह इस प्रकार समाहित एकाग्रचित्त हो ०[५] ज्ञा न-द र्श न की ओर अपने चित्तको लगाता है। ०[५] यह उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है ० आवागमनके किसी कारणको नही देखता। यह भी उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है। काश्यप ! यही प्रज्ञा-सम्पत्ति है।

"काश्यप ! इस शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्तिसे अच्छी और सुन्दर दूसरी शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति नही है।

---

[१] पृष्ठ २३-२४। [२] पृष्ठ २४। [३] पृष्ठ २४-२७। [४] पृष्ठ २९। [५] पृष्ठ ३०।

"काश्यप ! कोई-कोई श्रमण और ब्राह्मण है जो शीलवादी है। वे अनेक तरहसे शील (=सदाचार)की प्रशसा करते है। काश्यप ! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परमशील (का सबध) है वहाँ तक मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नही देखता, अधिकका तो कहना ही क्या ! अत वहाँ इस शीलके विषयमें मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण है जो तपस्याको बुरा समझते है। वे अनेक प्रकारसे तपस्याको बुरा माननेकी ही तारीफ करते है। काश्यप ! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परम तपस्याको बुरा मानना है, वहाँ मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नही देखता ०।

"काश्यप ! कोई कोई ० प्रज्ञावादी (=ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है ऐसा समझनेवाले) है। वे अनेक प्रकारसे प्रज्ञाहीकी प्रशसा करते है। काश्यप ! जहाँ तक ० प्रज्ञा है वहाँ तक ०। अत ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप ! कोई कोई ० विमुक्तिवादी है। वे अनेक प्रकारसे विमुक्तिहीकी प्रशसा ०। काश्यप ! जहाँ तक ० विमुक्ति है वहाँ तक ०। अत ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

५—बुद्धका सिंहनाद

"काश्यप ! हो सकता है दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहे—'श्रमण गोतम सिंहनाद करता है। (किन्तु) उस सिंहनादको वह सूने घरमे करता है, परिषद्मे नही'। उन्हे कहना चाहिये—'ऐसी बात नही है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, और परिषद्मे करता है।' काश्यप ! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहे—'श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्मे (भी) करता है, किन्तु निर्भय होकर नही करता'। उन्हे कहना चाहिये—'ऐसी बात नही है। श्रमण गोतम सिंहनाद ० और निर्भय होकर करता है। ० उन्हे ऐसा कहना चाहिये।—काश्यप ! हो सकता है ० ऐसा कहे—'श्रमण गौतम सिंहनाद ० किन्तु उसे कोई प्रश्न नही पूछता।' ० उसे प्रश्न भी पूछते है। ० ऐसी बात भी नही है कि प्रश्नोके पूछे जानेपर वह उनका उत्तर नही दे सकता है। प्रश्नोके पूछे जानेपर वह उनका (ठीक ठीक) उत्तर भी दे देता है। ० ऐसी बात भी नही है कि प्रश्नोके उत्तर नही जँचते हो, प्रश्नोके उत्तर जँचते भी है। ० ऐसी बात भी नही कि (उसका उत्तर) सुननेके योग्य नही होता है, वह सुननेके योग्य होता है। ० ऐसी बात भी नही कि उनके सुननेवाले प्रसन्न नही होते है, प्रसन्न होते है। ० ऐसी बात भी नही कि वे प्रसन्नताको नही प्रगट करते है, वे प्रसन्नताको प्रकट करते है। ० ऐसी बात भी नही है कि (उसका) वह (उत्तर) सत्यका दिखानेवाला नही होता, वह सत्यका दिखानेवाला होता है।

"० उन्हे कहना चाहिये—'ऐसी बात नही है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्मे ०, निर्भय ०, उसे लोग प्रश्न पूछते है, पूछे हुए प्रश्नोका उत्तर देता है, वह उत्तर चित्तको जँचता है, सुननेके योग्य होता है, सुननेवाले प्रसन्न हो जाते है, प्रसन्नताको वे प्रगट करते है, वह उत्तर सत्यको दिखानेवाला होता है, वे (सत्य को) प्राप्त करते है। काश्यप ! उन्हे ऐसा कहना चाहिये।

"काश्यप ! एक समय मैं रा ज गृ ह मे गृध्रकूट पर्वतपर विहरता था। वहाँ मुझे न्य ग्रो ध[1] तपब्रह्मचारीने प्रश्न पूछा। प्रश्नका उत्तर मैंने दे दिया। मेरे उत्तर देनेपर वह अत्यन्त सतुष्ट हुआ।"

"भला, भगवान्के धर्मको सुनकर कौन अत्यन्त सतुष्ट नही होगा ! भन्ते ! मैं आपके धर्मको सुनकर अत्यन्त सतुष्ट हूँ। भन्ते ! आपने खूब कहा है, आपने खूब कहा है। भन्ते ! जैसे उलटे हुएको सीधा कर दे, ढकेको खोल दे, भटके हुएको मार्ग दिखा दे, अन्धकारमे तेलका दीपक

---

[1] मिलाओ उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त २५ (पृष्ठ २२७)।

रख दे, जिसमे कि आँखवाले रूप देख ले, इसी प्रकार भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते ! यह मै आपकी शरण जाता हूँ, धर्मकी और भिक्षुसघकी भी। भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

"काश्यप ! जो दूसरे मतके परिव्राजक इस (मेरे) धर्ममे प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते है, वह चार महीने परिवास (=परीक्षार्थ वास) करते है। चार महीनोके बीतनेपर (यदि) वे (उससे) सतुष्ट रहते है, तो भिक्षु प्रव्रज्या देते है, और भिक्षु-भावके लिये उपसम्पदा देते है। अभी तो मै केवल इतनाही जानता हूँ कि तुम कोई मनुष्य हो (अभी तो तुमसे परिचयही हुआ है)।"

"भन्ते ! यदि दूसरे मतवाले परिव्राजक, जब इस धर्ममे प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते है, तो (भिक्षु उन्हे) चार महीनोके लिये परिवास देते है, चार महीनोके बाद ०। (तो) मै चार साल तक परिवास करूँगा, चार सालके बीतनेपर यदि भिक्षु लोग मुझसे प्रसन्न हो, तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देगे।"

अचेल काश्यपने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके बाद आयुष्मान् काश्यप एकान्तमे प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते थोळेही समयमे जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो साधु होते है, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके छोर (=निर्वाण)को इसी जन्ममे स्वय जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर विहार करने लगे। "आवागमन छूट गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और यहाँ कुछ करनेको (शेष) नही रहा"—जान लिया। आयुष्मान् काश्यप अर्हतोमेसे एक हुये।[1]

---

[1] "इस सूत्रका दूसरा नाम महासीहनाद भी है।"

९—पोट्ठपाद-सुत्त (१।९)

१—व्यर्थकी कथायें। २—संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे—(१) शील; (२) समाधि। ३—सज्ञा और आत्मा—(१) अव्याकृत वस्तुयें, ; (२) आत्मवाद; (३) तीन प्रकारके शरीर; (४) वर्तमान शरीर ही सत्य।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे।

१—व्यर्थकी कथायें

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान्को यह हुआ—'श्रावस्तीमे भिक्षाटनके लिये बहुत सवेरा है, क्यो न मैं स म य प्र वा द क (=भिन्न भिन्न मतोके वादका स्थान) ए क शा ल क (=एक शालावाले) मल्लिका (कोसलेश्वर-महिषी)के आराम ति न्दु का ची र[1]मे, जहाँ पोट्ठपाद परिब्राजक है, वहाँ चलूँ।' तब भगवान् जहाँ ० तिन्दुकाचीर था, वहाँ गये। उस समय पो ट्ठ (=प्रोष्ठ)पा द परिब्राजक, राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गन्ध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति(=कुल)-कथा, यान(=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जन-पद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा(=चौरस्ता)-कथा, कुम्भ-स्थान(=पनघट)-कथा, पूर्व-प्रेत (=पहिले मरोकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नही हुआ)-कथा—आदि निरर्थक कथाये कहता, नाद करता, शोर मचाता, बळी भारी परिब्राजक-परिषद्के साथ बैठा था। पोट्ठ-पाद परिब्राजकने दूरहीसे भगवान्को आते देखा, देखकर अपनी परिषद्से कहा—"आप सब नि शब्द हो, आप सब शब्द मत करे। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् नि शब्द-प्रेमी, नि (=अल्प)-शब्द-प्रशसक है। परिषद्को नि शब्द देख, सम्भव हैं (इधर) आये।" ऐसा कहनेपर (वे) परिब्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ पोट्ठपाद परिब्राजक था, वहाँ गये। पोट्ठपाद परिब्राजकने भगवान्से कहा—

"आइये भन्ते! भगवान्! स्वागत है भन्ते! भगवान्! चिर (काल) के बाद भगवान् यहाँ आये, बैठिये भन्ते! भगवान् यह आसन बिछा हैं।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। पोट्ठपाद परिब्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए पोट्ठपाद परिब्राजकसे भगवान्ने कहा—

"पोट्ठ-पाद! किस कथामे इस समय बैठे थे, क्या कथा बीचमें चल रही थी?"

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिब्राजकने भगवान्से कहा—

---

[1] वर्तमान चीरेनाथ (सहेट-महेट)।

२—संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे

"जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामे हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा, भन्ते ! भगवान्‌को पीछे भी सुननेको दुर्लभ न होगी। पिछले दिनोके पहिले भन्ते ! कु तू ह ल शा ला मे जमा हुए, नाना तीर्थो (=पन्थो)के श्रमण-ब्राह्मणोमे अभिसज्ञा-निरोध (=एक समाधि)पर कथा चली—'भो ! अभिसज्ञा-निरोध कैसे होता है ?' वहाँ किन्हीने कहा— 'विना हेतु=विना प्रत्यय ही पुरुषकी सज्ञा (=चेतना) उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है । वह उस समय सज्ञा-रहित (=अ-सज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-सज्ञा-निरोधका प्रचार करते है।' उससे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नही हो सकता। सज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय सज्ञा-वान् (=सज्ञी) होता है, जिस समय जाता है, उस समय सज्ञा-रहित (=अ-सज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-सज्ञा-निरोध बतलाते है।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नही होगा। (कोई कोई) श्रमण ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् है। वह इस पुरुषकी सज्ञाको (शरीरके भीतर) डालते भी है, निकालते भी है। जिस समय डालतेहै, उस समय सज्ञी होता है। जिस समय निकालते है, अ-सज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-सज्ञा-निरोध बतलाते है।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा न होगा । (कोई कोई) देवता-महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् है। वह इस पुरुषकी सज्ञाको डालते भी है, निकालते भी है ०। इस प्रकार कोई कोई अभि-सज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' तब मुझको भन्ते ! भगवान्‌के बारेमे ही स्मरण आया—'अहो ! अवश्य वह भगवान् सुगत है जो इन धर्मोमे चतुर है । भगवान् अभि-सज्ञा-निरोधके प्रकृतिज्ञ (=स्वभावज्ञ) है।' कैसे भन्ते ! अभि-सज्ञा-निरोध होना है ?"

"पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते है—विना हेतु=बिना प्रत्यय ही पुरुषकी सज्ञाये उत्पन्न होती है, निरुद्ध भी होती है। आदिको लेकर उन्होने भूल की। सो किस लिये ? स-हेतु (=कारणसे)=स-प्रत्यय पोट्ठ-पाद-पुरुषकी सज्ञाये उत्पन्न होती है, निरुद्ध भी होती है । शिक्षासे कोई कोई सज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई सज्ञा निरुद्ध होती है।" "और शिक्षा क्या है ?"

(१) शील-सम्पत्ति

"पोट्ठ-पाद ! जब ससारमे तथागत, अर्हत्, सम्यक्-सबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक, बुद्ध भगवान्, उत्पन्न होते है।०[१] (२५) हाथ-पैर काटने, मारने, बाँधने, लूटने और डाका डालनेसे विरत होती है। इस प्रकार पोट्ठ-पाद ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। ०[२]। उसे इन पाँच नीवरणोसे मुक्त हो, अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीति-सहित चित्तवालेकी काया अ-चचल (=प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-कायवाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त एकाग्र होता है।

(२) समाधि-सम्पत्ति

वह काम-भोगोसे पृथक् हो, बुरी बातोसे पृथक् हो, वितर्क और विवेक सहित उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले **प्रथम ध्यान**को प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-सज्ञा है, वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा उस समय होती है, जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-सज्ञी होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई सज्ञाये उत्पन्न होती है, कोई कोई निरुद्ध होती है।

"और भी पोट्ठपाद ! भिक्षु वितर्क विचारके उपशान्त होनेपर, भीतरके सम्प्रसाद (=प्रसन्नता)

---

[१] देखो पृष्ठ २४। [२] पृष्ठ २९।

=चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले **द्वितीय ध्यानको**, प्राप्त हो विहरताहै। उसकी जो वह पहिली विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञासे युक्त ही वह उस समय होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई सज्ञा उत्पन्न होती है, कोई कोई सज्ञा निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु प्रीति और विराग द्वारा उपेक्षायुक्त हो ० **तृतीय ध्यानको** प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सु ख-वाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा (ही) उस समय होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-सज्ञा ही वह उस समय होती है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई सज्ञाये उत्पन्न होती है, कोई कोई सज्ञाये निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु सुख और दु खके विनाशसे **चतुर्थ-ध्यानको** प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह जो पहलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है। सुख और दु खसे परे सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा, उस समय होती है। उस समय सुख-दु ख-रहित सूक्ष्म-सत्य-सज्ञावाला ही वह होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई सज्ञाये उत्पन्न होती है, कोई कोई सज्ञाये निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु रूप-सज्ञाओके सर्वथा छोळनेसे, प्रतिघ(=प्रतिहिसा)-सज्ञाओके अस्त हो जानसे, नानापन (=नानात्व)की सज्ञाओको मनमे न करनेसे, 'अनन्त आकाश'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो पहलेकी रूप-सज्ञा थी, वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा उस समय होती है। आकाश-आनन्त्य-आयतन सूक्ष्म-सत्य-सज्ञावाला ही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी ०।

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु आकाश-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहलेकी आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा नष्ट होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा उस समय होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-सज्ञावाला ही (वह) उस समय होता है।०।

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षुविज्ञान-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नही है'—इस आकिचन्य (=न-कुछ-पना)-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है। उसकी वह पहलेकी विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा नष्ट हो जाती है, आकिचन्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-सज्ञा ही ० वह आकिचन्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-सज्ञावाला ही उस समय होता है।०।

"चूँकि पोट्ठपाद ! भिक्षु स्वक-सज्ञी (=अपनीही सज्ञा ग्रहण करनेवाला) होता है, (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमश श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर सज्ञाको प्राप्त (=स्पर्श) करता है। श्रेष्ठतर-सज्ञा-पर स्थित हो, उसको यह होता है—'मेरा चितन करना बहुत बुरा(=पापीयस्)है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा(=श्रेयस्)है। यदि मै न चितन करूँ=न अभिसस्करण करूँ, तो मेरी यह सज्ञाये नष्ट हो जावेगी, और और भी विशाल(=उदार)सज्ञाये उत्पन्न होगी। क्यो न मै न चितन करूँ, न अभिसस्करण करूँ।' उसके चितन न करने, अभिसस्करण न करनेसे, वह सज्ञाये नष्ट हो जाती है, और दूसरी उदार सज्ञाये उत्पन्न नही होती। वह निरोधको प्राप्त करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमश अभिसज्ञा (=सज्ञाकी चेतना) निरोधवाली सप्रज्ञात-समापत्ति(=सपजान-समापत्ति) उत्पन्न होती है।

"तो क्या मानते हो, पोट्ठपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमश अभिसज्ञा-निरोध सप्रज्ञात-समापत्ति सुनी थी ?"

"नही, भन्ते ! भगवान्के भाषण करनसे ही मै इस प्रकार जानता हूँ।"

"चूँकि पोट्ठपाद ! भिक्षु यहाँ स्वक-संज्ञी होता है। (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमश सज्ञाके अग्र (=अन्तिम स्थान)को प्राप्त (=स्पर्श) करता है। सज्ञाके अग्रपर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चितन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है ०।' वह निरोध-को स्पर्श करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमश अभिसज्ञा-निरोध सप्रज्ञात-समाधि होती है। ऐसे पोट्ठपाद ! ०"

३–संज्ञा और आत्मा

"भन्ते ! भगवान् क्या एकहीको सज्ञा-अग्र (=सज्ञाओमे सर्वश्रेष्ठ) वतलाते है, या पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको (वैसा) कहते है ?"

"पोट्ठपाद ! मै एक भी सज्ञाग्र वतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको वतलाता हूँ। पोट्ठपाद ! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त करता है, वैसे वैसे सज्ञा-अग्रको मै कहता हूँ। इस प्रकार पोट्ठपाद ! मै एक भी सज्ञाग्र वतलाता हूँ, ओर पृथक् पृथक् भी सज्ञाग्रोको वतलाता हूँ।"

"भन्ते ! सज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान , या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है, पीछे सज्ञा , या सज्ञा और ज्ञान न-पूर्व न-पीछे उत्पन्न होते है ?"

"पोट्ठपाद ! सज्ञा पहले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान। सज्ञाकी उत्पत्तिसे (ही) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। वह यह जानता है—इस कारण (=प्रत्यय)से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। पोट्ठपाद ! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, सज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे, सज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।"

"सज्ञा (ही) भन्ते ! पुरुपका आत्मा है, या सज्ञा अलग है, आत्मा अलग ?"

"किसको पोट्ठपाद ! तू आत्मा समझता है ?"

"भन्ते ! मै आत्माको स्थूल (=औदारिक) रूपी=चार महाभूतोवाला,=कौर-कौर करके खानेवाला (=कवलिकार-आहार) मानता हूँ।"

"तो पोट्ठपाद ! तेरा आत्मा यदि स्थूल ०, रूपी = चतुर्महाभौतिक, कवलिकार-आहार-वान् है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद ! सज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद ! जानना चाहिये, कि सज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद ! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल ० है, (इस)के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही सज्ञाये उत्पन्न होती है, दूसरी ही सज्ञाये निरुद्ध होती है। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद ! जानना चाहिये, सज्ञा दूसरी है, आत्मा दूसरा।"

"भन्ते ! मै आत्माको समझता हूँ—मनोमय सव अग-प्रत्यगवाला, इन्द्रियोसे परिपूर्ण।"

"ऐसा होनेपर भी पोट्ठपाद ! तेरी सज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद ! जानना चाहिये, (कि) सज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद ! (जव) सर्वाग-प्रत्यग युक्त इन्द्रियोसे परिपूर्ण मनोमय आत्मा है, तभी इस पुरुपकी कोई कोई सज्ञाये उत्पन्न होती है, कोई कोई सज्ञाये निरुद्ध होती है। इस कारणसे भी पोट्ठपाद ! ०।"

"भन्ते ! मै आत्माको रूप-रहित सज्ञा-मय समझता हूँ।"

"यदि पोट्ठपाद ! तेरा आत्मा रूप-रहित सज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद ! (इस) कारणसे जानना चाहिये, कि सज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद ! जव रूप-रहित सज्ञा-मय आत्मा है, तभी इस पुरुपकी ०।"

"भन्ते ! क्या मै यह जान सकता हूँ—कि सज्ञा पुरुपकी आत्मा है, या सज्ञा दूसरी (चीज है,) आत्मा दूसरी (चीज) ?"

"पोट्ठपाद ! भिन्न दृष्टि(=धारणा)-वाले भिन्न क्षान्ति(=चाह)-वाले, भिन्न रुचिवाले, भिन्न-आयोग-वाले, भिन्न-आचार्य-रखनेवाले तेरे लिये—'सज्ञा पुरुपकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है।"

"यदि भन्ते ! भिन्न-दृष्टिवाले ० मेरे लिये—'सज्ञा पुरुपकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है। तो फिर क्या भन्ते ! 'लोक नित्य (=शाश्वत) है,' यही सच है, दूसरा (अनित्यताका विचार) निरर्थक (=मोघ) है ?"

(९) अव्याकृत (=अनिर्वचनीय)

"पोट्ठपाद! —'लोक नित्य है' यही सच है, और दूसरा (वाद) निरर्थक है—इसे मैंने अ-व्याकृत (=कथनका अ-विषय) कहा है।"

"क्या भन्ते! —'लोक अ-शाश्वत (=अ-नित्य) है', यही सच और सब (वाद) निरर्थक है ?"

"पोट्ठपाद! ० इसे भी मैंने अ-व्याकृत कहा है।"

"क्या भन्ते! —'लोक अन्तवान् है' ० ?"

"पोट्ठपाद! ० इसे भी मैंने अ-व्याकृत ०।"

"क्या भन्ते! —'लोक-अन्-अन्त है ० ?"

"पोट्ठपाद! ० इसे भी मैंने अव्याकृत ०।"

"० 'वही जीव है, वही शरीर है' ० ?"

"० इसे भी मैंने अव्याकृत कहा है।"

"० 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके वाद तथागत फिर (पैदा) होता है ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके वाद फिर तथागत नही होता' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० '० होता है, ओर नही भी होता है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके वाद तथागत न होता है, न नही होता है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"किसलिये भन्ते! भगवान्‌ने इसे अ-व्याकृत कहा है ?"

"पोट्ठपाद! न यह अर्थ-युक्त (=स-प्रयोजन) है, न धर्म-युक्त, न आदि-ब्रह्मचर्यके उपयुक्त, न निर्वेद (=उदासीनता)के लिये, न विरागके लिये, न निरोध (=क्लेश-विनाश)के लिये, न उपशम (=शान्ति)के लिये, न अ भि ज्ञा के लिये, न सवोधि (=परमार्थ-ज्ञान)के लिये, न निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने इसे अ-व्याकृत कहा है।"

"भन्ते! भगवान्‌ने क्या क्या व्याकृत किया है ?"

"पोट्ठपाद! 'यह दु ख है' (इसे) मैंने व्याकृत किया है। 'यह दु खका हेतु है' मैंने व्याकृत किया है। 'यह दु ख-निरोध है' ०। 'यह दु ख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् (=मार्ग) है' ०।"

"भन्ते! भगवान्‌ने इसे क्यो व्याकृत किया है ?"

"पोट्ठपाद! यह सार्थक, धर्म-उपयोगी, आदि-ब्रह्म-चर्य-उपयोगी है। यह निर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये, उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, सवोधके लिये, निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने इसे व्याकृत किया।"

"यह ऐसा ही है, भगवान्! यह ऐसा ही है, सुगत! अव भन्ते! भगवान् जिसका काल समझते हो (करें)।"

तव भगवान् आसनसे उठकर चल दिये।

तव परिव्राजकोने भगवान्‌के जानेके थोळी ही देर वाद, पोट्ठ-पाद परिव्राजकको चारो ओरसे वाग्-वाणोद्वारा जर्जरित करना शुरू किया—"इसी प्रकार आप पोट्ठपाद, जो जो श्रमण गौतम कहता (रहा), उसीको अनुमोदन करते (रहे) 'यह ऐसा ही है भगवान्! यह ऐसा ही है सुगत!" हम तो

श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एक-सा नही देखते, कि—'लोक शाश्वत है', 'लोक-अशाश्वत है', 'लोक अन्तवान् है', 'लोक-अन्-अन्त है', 'वही जीव है, वही शरीर है', 'दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है', 'तथागत मरनेके बाद होता है', 'तथागत मरनेके बाद नही होता' 'तथागत मरनेके बाद होता भी है, नही भी होता है।' 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नही होता है।' "

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने उन परिव्राजकोसे यह कहा—"मै भी भो! श्रमण गौतम-का कहा कोई धर्म एक-सा नही देखता . 'लोक शाश्वत है ०। बल्कि श्रमण गौतम 'भूत=तथ्य (=यथार्थ) धर्ममे स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपद् (=०मार्ग, ज्ञान)को कहता है। (तो फिर) मेरे जैसा जानकार, श्रमण गौतमके सुभापितका सुभापितके तौरपर कैसे अनुमोदन न करेगा?"

तब दो तीन दिनके बीतनेपर, चित्त हत्थिसारिपुत्त और पोट्ठ-पाद परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर चित्त हत्थिसारिपुत्त भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पोट्ठपाद परिव्राजकभी भगवान्के साथ समोदनकर , एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"उस समय भन्ते! भगवान्के चले जानेके थोळी ही देर बाद (परिव्राजक) मुझे चारो ओरसे वाग्बाणोद्वारा जर्जरित करने लगे—'इसी प्रकार आप पोट्ठ-पाद! ०।० मेरे जैसा जानकार० सुभापितको ० कैसे अनुमोदन नही करेगा?"

"पोट्ठ-पाद! वह सभी परिव्राजक अन्धे=आँखबिना है। तूही एक उनमे आँखवाला है। पोट्ठ-पाद! मैने (कितनेही) धर्म एकाशिक कहे है=प्रज्ञापित किये है। कितने ही धर्म अन्-एकाशिक भी कहे है ०। पोट्ठ-पाद! मैने कौनसे धर्म अन्-एकाशिक कहे है० ? 'लोक शाश्वत है' इसको मैने अनैकाशिक धर्म कहा है०। 'लोक अ-शाश्वत है'० अनैकाशिक धर्म०।०। 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नही होता है' मैने अनैकाशिक धर्म कहा है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद! न सार्थक है, न धर्म-उपयोगी है, न आदि-ब्रह्मचर्य-उपयोगी है। न निर्वेदके लिये०, न वैराग्यके लिये०। इसलिये इन्हे मैने अन्-एकाशिक कहा ०।

"पोट्ठ-पाद! मैने कौनसे एक-आशिक धर्म कहे है=प्रज्ञापित किये है? 'यह दुख है' ०।० "यह दुख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है" इसे पोट्ठपाद! मैने एकाशिक धर्म बतलाया है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद! सार्थक है ०। इसलिये मैने इन्हे एकाशिक धर्म कहा है, प्रज्ञापित किया है।

(२) आत्मवाद

"पोट्ठपाद! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (=मत)-वाले ऐसी दृष्टिवाले है—'मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्तसुखी (=केवल सुखी) होता है'। उनसे मै यह कहता हूँ—'सच-मुच तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त सुखी होता है? ऐसा पूछनेपर वह 'हाँ' कहते है। तब उनसे मै यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् उस एकान्त सुखवाले लोकको जानते, देखते, विहरते हो'? ऐसा पूछनेपर 'नही' कहते है। उनसे मै यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जानते हो'? यह पूछनेपर 'नही' कहते है। उनसे मै यह कहता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जानते है, यही मार्ग=यही प्रतिपद् एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये है? ऐसा पूछनेपर 'नही' कहते है। उनसे मै यह पूछता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जो वह देवता एकान्त-सुखवाले लोकमे उत्पन्न है, उनके कहे शब्दको एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये सुनते है—'मार्ष! ठीक मार्गपर आरूढ हो, मार्ष! सरल मार्गपर आरूढ हो, हम भी मार्ष! ऐसे ही मार्गारूढ हो, एकान्त-सुखवाले लोकमे उत्पन्न हुए है?' ऐसा पूछनेपर 'नही' कहते है। तो क्या मानते हो पोट्ठपाद! क्या ऐसा होनेसे उन श्रमण ब्राह्मणोका कथन प्रमाण(=प्रतिहरण)-रहित नही होता?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उन श्रमण ब्राह्मणोका कथन प्रमाण-रहित होता है।"

"जैसे कि पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष ऐसा कहे—'इस जनपद (=देश) मे **जो जनपदकल्याणी** (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मै उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ'। उसको यदि (लोग) ऐसा कहे—हे पुरुष जिस जन-पद कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्री है' ? ऐसा पूछनेपर 'नही' बोले, तब उसको यह कहे—'हे पुरुष ! जिस जन-पद-कल्याणीको तू चाहता है० जानता है० (वह) अमुक नामवाली अमुक गोत्रवाली है, लम्बी, छोटी या मझोले कदकी, काली, श्यामा या, मद्गुर (=मगुर मछली) के वर्ण की है, इस ग्राम-निगम या नगर, मे (रहती) है ?' ऐसा पूछनेपर 'नही' कहे तब उसको यह कहे—'हे पुरुष जिसको तू नही जानता, जिसको तूने नही देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है' ? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नही हो जाता ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित हो जाता है।"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरहके वादवाले=दृष्टिवाले है—'मरने-के बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है', उनको मै यह कहता हूँ—'सचमुच तुम सब आयुष्मान्० ।० पोट्ठ-पाद ! क्या ० उन श्रमण-ब्राह्मणोका कथन प्रमाण-रहित नही है ?"

"अवश्य ! भन्ते ०।"

"जैसे पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष महलपर चढनेके लिये चौरस्ते (=चातुर्महापथ)पर, सीढी बनावे। तब उसको (लोग) यह कहे—'हे पुरुष ! जिस (प्रासाद)के लिये तू सीढी बनाता है, जानता, है वह प्रासाद पूर्व दिशामे है, दक्षिण दिशामे, पश्चिम दिशामे, (या) उत्तर दिशामे है ?, ऊँचा, नीचा (या) मझोला है ?' ऐसा पूछनेपर 'नही ' कहे। उसको यह कहे—'हे पुरुष ! जिसको तू नही जानता, तूने नही देखा, उस प्रासादपर चढने के लिये सीढी बना रहा है ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नही हो जाता ?"

"अवश्य भन्ते ! ०"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण० 'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्तसुखी होता है०।०—"अवश्य भन्ते ! ०"

३—तीन प्रकारके शरीर

"पोट्ठ-पाद ! तीन शरीर-ग्रहण है, स्थूल (=औदारिक) शरीर-ग्रहण, मनोमय शरीर-ग्रहण, अ-रूप(=अभौतिक) शरीर-ग्रहण। पोट्ठ-पाद ! स्थूल शरीर-ग्रहण क्या है ? रूपी=चार महाभूतोसे बना कवलिंकार (=ग्रास ग्रास करके) आहार करनेवाला, यह स्थूल शरीर-ग्रहण है। मनोमय आत्म-प्रतिलाभ क्या है ? रूपी मनोमय सर्व-आहार सर्व अग-प्रत्यग-वाला, इन्द्रियोसे परिपूर्ण, यह मनोमय शरीर-ग्रहण है। अ-रूप (=अभौतिक) शरीर-ग्रहण क्या है ? अ-रूप (देवलोकमे) सज्ञामय होना, यह अ-रूप शरीर-ग्रहण है। पोट्ठ-पाद ! मै स्थूल शरीर-परिग्रहसे छूटनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ हुओके चित्तमल उत्पन्न करनेवाले (=सक्लेशिक) धर्म छूट जायँगे। शोधक (=व्यवदानीय) धर्म, प्रज्ञाकी परिपूर्णता, विपुलताको प्राप्त होगे, (और वह पुरुष) इसी जन्ममे स्वय जानकर साक्षात्- कर, प्राप्त कर विहरेगा। शायद पोट्ठ-पाद ! तुम्हे (यह विचार) हो—'सक्लेशिक धर्म छूट जायेगे ०, इसी जन्ममे ० प्राप्त कर विहरेगा, (किन्तु) वह विहरना कठिन (=दुख) होगा।' पोट्ठ-पाद ! ऐसा नही समझना चाहिये, ०। उसे प्रामोद्य (=प्रमोद) भी होगा, प्रीति, निश्चलता (=प्रश्रब्धि), स्मृति, सम्प्रजन्य और सुख विहार भी होगा।"

"पोट्ठ-पाद ! मैं मनोमय शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी धर्म उपदेश करता हूँ ! जिससे कि मार्गारूढ होनेवालोंके संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे ०।०।० सुख विहार भी होगा।

"अ-रूप शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठ-पाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ।०।० सुख विहार भी होगा।"

"यदि पोट्ठ-पाद ! दूसरे लोग हमे पूछे—'क्या है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह जिससे छूटनेके लिये तुम धर्म उपदेश करते हो, और जिस प्रकार मार्गारूढ हो०, इसी जन्ममें स्वयं जानकर विहरोगे ?' उसके ऐसा पूछनेपर हम उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिससे छूटनेके लिये हम धर्म उपदेश करते हैं।०।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठ-पाद ! हमे पूछे—क्या है आवुसो ! मनोमय शरीर-परिग्रह ०।० विहरेंगे ?

"यदि पोट्ठ-पाद ! दूसरे लोग हमे पूछे—क्या है आवुसो ! अ-रूप शरीर-परिग्रह ० ? ०।०।

"जैसे पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष प्रासादपर चढनेके लिये उसी प्रासादके नीचे सीढी बनावे। उसको यह पूछे—'हे पुरुष ! जिस प्रासादपर चढनेके लिये तुम सीढी बनाते हो, जानते हो, वह प्रासाद पूर्व दिशामे है, या दक्षिण ०, ऊँचा है या नीचा या मझोला ?।' वह यदि कहे—'यह है आवुसो ! वह प्रासाद, जिसपर चढनेके लिये, उसीके नीचे मै सीढी बनाता हूँ।' तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा।"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! यदि दूसरे हमे पूछे—आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह क्या है०।०।

"०आवुसो ! वह मनोमय शरीर-परिग्रह क्या है ० ? ०।

"० आवुसो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्या है, जिसके (परित्यागके) लिये, तुम धर्म उपदेश करते हो, ०, ० ? उनके ऐसा पूछने पर हम यह उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह अ-रूप-शरीर-परिग्रह ०।० तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ०"

४—वर्तमान शरीर ही सत्य

ऐसा कहनेपर चित्त हत्थिसारिपुत्तने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय-शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोघ (=मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! मनोमय-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय-शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! अ-रूप-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल-शरीर-परिग्रह तथा मनोमय-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ-रूप-शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है।"

"जिस समय चित्त ! स्थूल-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'मनोमय-शरीर-परिग्रह है' नही समझा जाता। न 'अ-रूप-शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। 'स्थूल-शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय-शरीर-परिग्रह ०। जिस समय अ-रूप-शरीर-परिग्रह ०। यदि चित्त ! तुझे यह पूछे—तू भूत कालमे था, नही तो तू न था ? भविष्यकालमें तू होगा (=रहेगा), नही तो तू न होगा ? इस समय तू है, नही तो तू नही है ?' ऐसा पूछनेपर चित्त ! तू कैसे उत्तर देगा ?"

"ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूंगा—'मै भूतकालमे था, मै नही तो न था। भविष्य-

कालमे मैं होऊँगा, नही तो मैं न होऊँगा। इस समय मैं हूँ, नही तो मैं नही हूँ'। वैसा पूछनेपर भन्ते! म इस प्रकार उत्तर दूँगा।"

"यदि चित्त! तुझे यह पूछे—जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था, वही तेरा शरीर-परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है? जो तेरा भविष्यमे होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है? जो इस समय तेरा वर्तमानका शरीर-परिग्रह है, वही तेरा शरीर-परिग्रह सच्चा है, भूत और भविष्यका (क्या) मिथ्या है? ऐसा पूछनेपर चित्त! तू कैसे उत्तर देगा?"

"यदि भन्ते! मुझे ऐसा पूछेगे 'जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था ०।' ऐसा पूछनेपर भन्ते! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—'जो मेरा भूतका शरीर-परिग्रह था, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके ० असत्य थे। जो मेरा, भविष्यमे अन्-आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा, भूत और वर्तमानके शरीर-परिग्रह असत्य होगे। जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही शरीर-परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर-परिग्रह असत्य है।' ऐसा पूछनेपर भन्ते! मैं यह उत्तर दूँगा।"

"ऐसे ही चित्त! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय-शरीर-परिग्रह नही कहा जाता, न उस समय अ-रूप-शरीर-परिग्रह कहा जाता है, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय कहा जाता है। जिस समय चित्त! मनोमय-शरीर-परिग्रह ०। जिस समय चित्त! अरूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' नही कहा जाता, न 'मनोमय-शरीर-परिग्रह है', कहा जाता है। 'अरूप-शरीर-परिग्रह है' यही कहा जाता है। जैसे चित्त! गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (=नेनू), नवनीतसे घी (=सर्पिष), सर्पिप्से सर्पिष्-मण्ड (=घीका सार) होता है। जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत ०, न सर्पिप् ०, न सर्पिष्-मड ०, दूध ही उस समय उसका नाम होता है। जिस समय दही ०। ० नवनीत ०। ० सर्पिप् ०। सर्पिप्-मड ०। ऐसे ही चित्त! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है ०। ० मनोमय ०। ० अ-रूप ०। चित्त! यह लौकिक सज्ञाये है—लौकिक निरुक्तियाँ है—लौकिक व्यवहार है—लौकिक प्रज्ञप्तियाँ है, तथागत विना लिप्त हुये उन्हे व्यवहार करते है।"

"ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ०[1] आजसे आप गौतम मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करे।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्त (=चित्र हस्ति-सारि-पुत्र)ने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ०। भन्ते! मैं भगवान्का शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षु-सघका भी। भन्ते! भगवान्के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसपदा मिले।"

चित्त-हत्थि-सारि-पुत्तने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसपदा पाई। आयुष्मान् चित्त-हत्थि-सारि-पुत्त उपसपदा प्राप्त करनेके थोळे ही दिनो बाद, एकाकी, एकातवासी, प्रमाद-रहित, उद्योगी, आत्म-सयमी हो, विहार करते हुये, जल्दी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे वेघर हो प्रव्रजित होते है, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममे जानकर=साक्षात् कर=पाकर, विहार करने लगे 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, और कुछ करनेको (बाकी) नही रहा।' यह जान गये। आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि-पुत्त अर्हतोमेंसे एक हुये।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

१०—सुभ-सुत्त (१।१०)

धर्म के तीन स्कध—(१) शील-स्कध। (२) समाधि-स्कंध। (३) प्रज्ञा-स्कंध।

ऐसा मैंने सुना—एक समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के परिनिर्वाणके कुछ ही दिन वाद श्रावस्तीमे अनाथ-पिण्डिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे, ।

उस समय किसी कामसे तो दे य्य पुत्त शु भ नामक माणवक भी श्रावस्तीहीमे वास करता था। तव तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकने किसी दूसरे माणवकसे कहा—"हे माणवक, सुनो। जहाँ आयुष्मान् आनन्द है वहाँ जाओ, जाकर आयुष्मान् आनन्दको मेरी ओरसे कुशल समाचार पूछो—'तोदेय्यपुत्त शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है'। और ऐसा कहो, आप कृपाकर तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकके घरपर चले।"

"वहुत अच्छा" कहकर वह माणवक ० शुभ माणवकके कहे हुयेको स्वीकारकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके शब्द कहे। स्वागतके शब्द कहकर वह एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे हुये उस माणवकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—"शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है, और ऐसा कहता है,—'आप कृपाकर वहाँ चले, जहाँ ० शुभ माणवकका घर है।"

उसके ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने उस माणवकसे कहा,—"माणवक! यह समय नही है, आज मैंने जुलाव लिया है, कल उचित समय देखकर आऊँगा।"

"वह माणवक आयुष्मान् आनन्दके कहे हुयेको मान "वहुत अच्छा" कह आसनसे उठकर वहाँ गया जहाँ ० शुभ माणवक था। जाकर ० शुभसे यह कहा—"श्रमण आनन्दको मैंने आपकी ओर-से कहा—शुभ ० आप आनन्द ०। और ऐसा कहा—आप कृपाकर ०। ऐसा कहनेपर श्रमण आनन्दने मुझे यह कहा—'माणवक! यह समय ०।' इतना पर्याप्त है (क्योकि इतनेसे) आप आनन्दने कल आनेको स्वीकारकर लिया।"

तव आयुष्मान् आनन्द उस रातके बीत जानेपर सुवह ही तैयार हो, पात्र और चीवर ले चेतक भिक्षुको साथ ले जहाँ ० शुभ माणवकका घर था, वहाँ गये। जाकर विछे आसनपर वैठ गये।

तव ० शुभ माणवक जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके वचन कहे। स्वागतके वचन कहनेके वाद एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे ० शुभ माण-वकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—'आप (आनन्द) भगवान् गौतमके वहुत दिनो तक सेवक और पासमे रहनेवाले रह चुके है। आप आनन्द जानते है जिन धर्मोकी प्रशसा भगवान् गौतम किया करते थे, जिन (धर्मो)को वे जनताको सिखाते पढाते और (जिनमे) प्रतिष्ठित करते थे। हे आनन्द! भगवान् गौतम किन धर्मोकी प्रशसा किया करते थे, किन (धर्मो)को वे जनताको सिखाते पढाते और (उनमे) प्रतिष्ठित करते थे?"

धर्मके तीन स्कन्ध

"वे भगवान् तीन स्कन्धो[1] (=समूहो)की प्रशसा करते थे। जिससे वे जनता ०। किन तीनो की? आर्य शीलस्कन्ध (=उत्तम सदाचार-समूह)की, आर्य समाधिस्कन्धकी, (और) आर्य प्रज्ञा-स्कन्धकी। हे माणवक! भगवान् इन्ही तीन स्कन्धोकी प्रशसा किया करते थे, जिससे वे जनता ०।"

१—शील-स्कन्ध

"हे आनन्द! वह आर्य शील-स्कन्ध कौन-सा है जिसकी भगवान् प्रशसा करते थे, और जिसको वे जनता ०?"

"हे माणवक! जब ससारमे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०[2] उत्पन्न होते है। ० शील-सम्पन्न, ०। इन्द्रियोको वशमे रखनेवाला, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान ओर सतुष्ट रहता है।

"माणवक! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न (=सदाचारयुक्त) होता है?

"माणवक! भिक्षु हिसाको छोळ ०[3]—वह इस उत्तम सदाचार-समूह (=आर्य शील-स्कन्ध)से युक्त हो अपने भीतर निर्दोप सुखको अनुभव करता है। माणवक! इस तरह भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। माणवक! यही शील-स्कन्ध है जिसकी प्रशसा भगवान् करते थे और जिससे जनता ०। (किन्तु) इससे और ऊपर भी करना हे।"

"हे आनन्द! आश्चर्य है, हे आनन्द अद्‌भुत है! हे आनन्द! वह आर्य-शील-स्कन्ध पूर्ण है अपूर्ण नही है। हे आनन्द! इस प्रकारका परिपूर्ण आर्य-शील-स्कन्ध मै तो इस (धर्म)के बाहर और किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मणमे नही देखता! हे आनन्द! इस प्रकारके परिपूर्ण आर्य-शील-स्कन्ध इसके बाहर दूसरे श्रमण और ब्राह्मण यदि अपनेमे देखे तो वे इतनेसे सतुप्ट हो जावे—'बस, इतना काफी है, श्रमण-भावके लिये इतना पर्याप्त है, अब और कुछ करना बाकी नही है'। किन्तु आप आनन्दने तो कहा है—'इसके ऊपर और करना है'।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२—समाधि-स्कन्ध

"हे आनन्द! वह श्रेष्ठ समाधि-समूह (=आर्य समाधि-स्कन्ध) कोन-सा है, जिसकी प्रशसा भगवान् किया करते थे, जिसको वे जनता ०?"

३—प्रज्ञा-स्कन्ध

"हे माणवक! भिक्षु कैसे इन्द्रियोको वशमे रखनेवाला होता है? माणवक! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर ० ०[4]—अब यहाँ करनेके लिये नही रहा।"

"आनन्द! आश्चर्य है, आनन्द! अद्‌भुत है! यह आर्य-प्रज्ञा-स्कन्ध परिपूर्ण ०।

"आश्चर्य है हे आनन्द! अद्‌भुत है हे आनन्द! जैसे उलटेको सीधा करदे[5]०। इसी तरहसे आप आनन्दने अनेक प्रकारसे धर्म प्रकाशित किया। हे आनन्द! यह मै भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। हे आनन्द! आजसे आप मुझे जन्म भरकेलिये अजलिवद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करे।"

---

[1] उपनिषद्‌में—त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं, दानमिति।

[2] देखो पृष्ठ २३-२४। [3] पृष्ठ २४। [4] पृष्ठ २७-३२। [5] पृष्ठ ३२।

११—केवट्ट-सुत्त (१।११)

१—ऋद्धियो का दिखाना निषिद्ध । २—तीन ऋद्धि भी अन-प्राति हार्य । ३—चारो भूतोका निरोध कहाँ पर ?—(१) सारे देवता अनभिज्ञ; (२) अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्म-वचना; (३) बुद्धही जानकार

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् ना ल न्दाके पास पा वा रि क आम्रवनमे विहार करते थे।

तव केवट्ट गृहपतिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर वैठ गया। एक ओर बैठ केवट्ट गृहपति-पुत्रने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण, और वहुत घनी वस्तीवाली है। यहाँके मनुष्य आपके प्रति वहुत श्रद्धालु है। भगवान् कृपया एक भिक्षुको कहे कि अलौकिक ऋद्धियोको दिखावे। इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्‌के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायेगे।"

१—ऋद्धियोंका दिखाना निषिद्ध

ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने केवट्ट० से यह कहा—"केवट्ट! मै भिक्षुओको इस प्रकारका उपदेश नही देता हूँ कि—भिक्षुओ! आओ, तुम लोग उजले कपळे पहननेवाले गृहस्थोको अपनी ऋद्धि दिखलाओ।"

दूसरी वार भी केवट्ट० ने भगवान्‌से यह कहा—"मै भगवान्‌को छोटा दिखाना नही चाहता हूँ किन्तु ऐसा कहता हूँ—'भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध० इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्‌के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायँगे।"

दूसरी वार भी भगवान्‌ने केवट्ट० से यह कहा—"केवट्ट! मै भिक्षुओको०।

तीसरी वार भी केवट्ट० ने भगवान्‌से यह कहा—"मै भगवान्‌को०। किंतु ऐसा कहता हूँ—भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध० इससे नालन्दाके लोग०।"

२—तीन ऋद्धि प्रातिहार्य

"केवट्ट! तीन प्रकारके ऋद्धि-बल (ऋद्धियाँ=दिव्यशक्तियाँ) है, जिन्हे मैने जानकर और साक्षात्कर वतलाया है। वे कौन से तीन? ऋद्धिप्रातिहार्य (=ऋद्धियोका प्रदर्शन), आदेशना-प्रातिहार्य, अनुशासनी-प्रातिहार्य।

"(१) केवट्ट! ऋद्धि-प्रातिहार्य कौन सा है? केवट्ट! भिक्षु अपने ऋद्धिवलसे अनेक प्रकारके रूप धारण करता है—एक होकर वहुत हो जाता है, वहुत होकर एक हो जाता है०।[1]

---

[1] देखो पृष्ठ ३०

उसे देखकर वह श्रद्धालु=प्रसन्न हो, दूसरे श्रद्धारहित=अप्रसन्न पुरुषको कहता है—'अरे! आश्चर्य, है, अद्भुत है, श्रमणका ऋद्धिवल और उसकी महानुभावता। मैंने भिक्षुको अनेक प्रकारसे अपने ऋद्धिवल दिखाते हुये देखा—एक होकर अनेक०। श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कह सकता है—'हाँ! गा न्धा री नामक एक विद्या है, उसीसे भिक्षु अनेक तरहके ऋद्धिवल दिखाता है—एक होकर०। तव केवट्ट! क्या समझते हो, वह श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कहेगा या नही ?"

"भन्ते! वह ऐसा कहेगा।" "अत केवट्ट! ऋद्धिवलके दिखानेमे मै इसी दोपको देखकर ऋद्धिवलके दिखानेसे हिचकता हूँ, सकोच करता हूँ, और घृणा करता हूँ।

(२) "केवट्ट! **आदेशना-प्रतिहार्य** कोन सा है? केवट्ट! भिक्षु दूसरे जीवो और मनुष्योके चित्तको वतला देता है०[1] 'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा चित्त ऐसा है'। कोई श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य उस भिक्षुको दूसरे जीवो और मनुष्योके चित्त० को वतलाते देखता है। वह श्रद्धालु० दूसरे श्रद्धारहित० से कहता है—'अहो आश्चर्य है! अहो अद्भुत है, श्रमणके इस वळे ऋद्धिवल और उसकी महानुभावताको। मैंने भिक्षुको दूसरेके० चित्त० को वतलाते देखा है। वह श्रद्धा-रहित० उस श्रद्धालु० को ऐसा कहे—'हाँ चि न्ता म णि नामकी एक विद्या है, उसीसे भिक्षु दूसरे जीवो और मनुष्योके चित्त० को वतला देता है'। केवट्ट! तव तुम क्या समझते हो—वह श्रद्धारहित० श्रद्धालु० को ऐसा क्या नही कहेगा?" "भन्ते! कहेगा।"

"केवट्ट! आदेशना-प्रातिहार्यके इसी दोपको देखकर मैं आदेशना-प्रातिहार्यसे हिचकता०।

(३) "केवट्ट! कौन सा **अनुशासनी-प्रातिहार्य** है? भिक्षु ऐसा अनुशासन करता है—'ऐसा विचारो, ऐसा मत विचारो, ऐसा मनमें करो, ऐसा मनमे मत करो, इसे छोळ दो, इसे स्वीकार कर लो। केवट्ट! यही अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है। केवट्ट! जव ससारमे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध०[1], उत्पन्न होते है, ० केवट्ट! इस तरहसे भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।०[1] प्रथम ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी प्रातिहार्य कहलाता है। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है। ० ज्ञानदर्शनके लिये अपने चित्तको नवाता है०[1] केवट्ट! यह भी ०। आवागमनके और किसी कारणको नही देखता है ० केवट्ट! यह भी ०।—केवट्ट! इन तीन ऋद्धि-वलोको मैंने जानकर और साक्षात् कर वतलाया है।

३—चारों भूतोंका निरोध कहाँ पर?

(१) सारे देवता अनभिज्ञ

"केवट्ट! वहुत पहले इसी भिक्षु-सघमे एक भिक्षुके मनमे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ—'ये चार महाभूत—पृथ्वी-धातु, जल-धातु, तेजो-धातु, वायुधातु—कहाँ जाकर विल्कुल निरुद्ध हो जाते है?' तव केवट्ट! उस भिक्षुने उस प्रकारकी समाधिको प्राप्त किया जिसमे कि समाहित चित्त होनेपर उसके सामने देवलोक जानेवाले मार्ग प्रकट हुये। केवट्ट! तव वह भिक्षु जहाँ चातुर्महाराजिक देवता रहते है, वहाँ गया; जाकर चातुर्महाराजिक देवताओसे यह वोला—'आवुसो! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर विल्कुल निरुद्ध हो जाते है?' केवट्ट! (उस भिक्षुके) ऐसा कहनेपर चातुर्महाराजिक देवताओ

---

[1] देखो पृष्ठ २३-३०।

ने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नही जानते है कि कहाँ जाकर ये चार महाभूत—० विल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। हे भिक्षु ! हमसे भी वढ चढकर चार महाराजा हैं। वे शायद इसे जानते हो, कि कहाँ जाकर कि ये चार महाभूत—०।' ।

"केवट्ट ! तव वह भिक्षु जहाँ चार महाराज थे, वहाँ गया, जाकर चारो महाराजोसे यह पूछा,—'ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर ०? केवट्ट ! (उसके) ऐसा पूछनेपर चार महाराजोने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नही जानते ! हे भिक्षु ! हम लोगोंमे भी वढ-चढकर त्रायस्त्रिंश नामक देवता हैं। वे शायद ०।'—

"केवट्ट ! तव वह भिक्षु जहाँ त्रायस्त्रिंश देवता थे, वहाँ गया। जाकर त्रायस्त्रिंश देवताओंसे यह पूछा—'ये चार महाभूत—०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! ऐसा पूछनेपर उन त्रायस्त्रिंश देवताओंने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नही जानते ! ० हम लोगोंसे वढ०देवताओका अधिपति शक्र है। वह शायद जान सके ०।'

"केवट्ट ! तव वह भिक्षु जहाँ देवताओका अधिपति शक्र था वहाँ गया। जाकर शक्र ० से यह पूछा—'ये चार महाभूत— ० कहाँ जाकर ० ?' उसके ऐसा पूछनेपर ० शक्रने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं भी नही जानता ०। हे भिक्षु ! हमसे भी वढ० याम नामक देवता हैं। वे शायद ०।"

"केवट्ट ! तव वह भिक्षु जहाँ याम देवता थे ०।—० जहाँ सुयाम नाम देवपुत्र था ०।—० जहाँ तुषित नामक देवता थे ०।—० जहाँ सतुषित नामक देवपुत्र था ०।।—० जहाँ निर्म्माण-रति नामक देवता थे ०।—० जहाँ सुनिर्म्मित नामक देवपुत्र था।०—० जहाँ परनिर्म्मितवशवर्त्ती नामक देवता थे ०।—० जहाँ वशवर्ती नामक देवपुत्र था ०।—० जहाँ ब्रह्मकायिक नामक देवता थे ०—"० हे भिक्षु ! हमसे वहुत वढ चढकर ब्रह्मा है, (वे) महाब्रह्मा, विजयी (=अभिभू), अपराजित (=अनभिभूत), परार्थ-द्रष्टा, वशी, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, और सभी हुए और होनेवाले (पदार्थो)के पिता (हैं)। शायद वे जान सके, कि ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर विल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? (भिक्षुने कहा—) 'तो आवुसो ! वे ब्रह्मा अभी कहाँ हैं ?'—'हे भिक्षु ! हम नही जानते हे कि वह ब्रह्मा कहाँ रहते हैं। किन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि वहुत आलोक और प्रभाके प्रकट होनेके वाद ब्रह्मा प्रकट होते हैं। ब्रह्माके प्रकट होनेके ये पूर्व-लक्षण है, कि (उस समय) वहुत प्रकाश होता है और वळी भारी प्रभा उत्पन्न होती हैं'।

२—अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्मवंचना

"केवट्ट ! इसके वाद शीघ्र ही महाब्रह्मा भी प्रकट हुआ। केवट्ट ! तव वह भिक्षु जहाँ महाब्रह्मा था वहाँ गया। जाकर (उसने) महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! ये चार महाभूत ०? ' केवट्ट ! ऐसा कहने पर महाब्रह्माने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर०पिता हूँ'। केवट्ट ! दूसरी वार भी उस भिक्षुने उस महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! मैं तुमसे यह नही पूछता हूँ कि तुम ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हो। आवुसो ! मैं तुमसे यह पूछता हूँ—ये चार महाभूत—० कहाँ ० ?' केवट्ट ! दूसरी वार भी उस महाब्रह्माने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हूँ।' केवट्ट ! तीसरी वार भी ०।

"केवट्ट ! तव उस महाब्रह्माने उस भिक्षुकी वाँह पकळ, एक ओर ले जाकर उस भिक्षुसे कहा—'हे भिक्षु ! ये ब्रह्मलोकके देवता मुझे ऐसा समझते हैं—ब्रह्मासे कुछ अज्ञात नही है, ब्रह्मासे कुछ अदृष्ट नही है, ब्रह्मासे कुछ अविदित नही है, ब्रह्मासे कुछ असाक्षात्कृत नही है, इसी लिय मैंने उन लोगोके सामने नही कहा। भिक्षु ! मैं भी नही जानता हूँ, जहाँ कि ये चार महाभूत ०। अत हे भिक्षु ! यह

तुम्हारा ही दोष है, यह तुम्हारा ही अपराध है कि तुम भगवान्‌को छोळकर बाहरमे इस वातकी खोज करते हो। हे भिक्षु ! उन्ही भगवान्‌के पास जाओ, जाकर यह प्रश्न पूछो। जेसा भगवान् कहे वैसा ही समझो'।

३—बुद्धही जानकार

"केवट्ट ! तव वह भिक्षु जैसे कोई बलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकमे अन्तर्धान होकर मेरे सामने प्रकट हुआ। केवट्ट ! तव वह भिक्षु मुझे प्रणामकर एक ओर बैठ गया। केवट्ट ! एक ओर बैठकर उस भिक्षुने मुझसे यह कहा—'भन्ते ! ये चार महाभूत—०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! (उस भिक्षुके) ऐसा पूछने पर मैंने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! पूर्व समयमे कुछ सामुद्रिक व्यापारी किनारा देखनेवाले पक्षीको साथ ले, नावपर चढ समुद्रके बीच गये। नावसे तट नही दिखाई देनेके कारण उन्होने तट देखनेवाले पक्षीको छोळा। (वह पक्षी) पूर्व-दिशाकी ओर गया, दक्षिण ०, पश्चिम ०, उत्तर ०, ऊपर ०, अनुदिशाओमे ०। यदि वह कही तट देखता तो वही चला जाता। चूँकि किसी ओर उसने तट नही देखा, इस लिये फिर उसी नाव पर चला आया। भिक्षु ! तुम भी इसी तरह इस प्रश्नको सुलझानेके लिये ब्रह्मलोक तक खोजते हुये गये, फिर मेरे ही पास चले आये।

"भिक्षु ! यह प्रश्न ऐसे नही पूछना चाहिये— ० भन्ते ! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर विल्कुल निरुद्ध हो जाते है। भिक्षु ! यह प्रश्न इस प्रकार पूछना चाहिये—

कहाँ जल, पृथ्वी, तेज और वायु नही स्थित रहते है ?

कहाँ दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, (और) शुभ, अशुभ, नाम और रूप विल्कुल खतम हो जाते हैं ? ॥१॥

"इसका उत्तर यह है —

"अनिदर्शन (उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी जहाँ बात नही है), अनन्त, और अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है, वहाँ, जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नही रहते ॥२॥

"वहाँ दीर्घ-ह्रस्व, अणु-स्थूल, शुभ-अशुभ, नाम और रूप विल्कुल खतम हो जाते हैं। विज्ञान के निरोधसे सभी वहाँ खतम हो जाते है ॥३॥"

भगवान्‌ने यह कहा। केवट्ट गृहपतिपुत्रने प्रसन्नचित्त हो भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

१२—लोहिच्च-सुत्त (१।१२)

१—धर्मोपर आक्षेप। २—सभीपर आक्षेप ठीक नही। ३—झूठे गुरु। ४—सच्चे गुरु—
(१) शील; (२) समाधि; (३) प्रज्ञा।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् पांच सौ भिक्षुओके बळे भिक्षुसघके साथ को स ल (देश) मे चारिका करते हुए जहाँ सा ल व ति का थी वहाँ पहुँचे। उस समय लो हि च्च (लौहित्य) ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसल द्वारा प्रदत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न राज्य-भोग्य सालवतिकाका स्वामी होकर रहता था।

१—धर्मोपर आक्षेप

उस समय लोहिच्च ब्राह्मणको यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी। 'ससारमे (ऐसा कोई) श्रमण या ब्राह्मण नही, जो अच्छे धर्मको जाने, (और) जानकर अच्छे धर्मको दूसरेको समझावे। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा? जैसे एक पुराने बन्धनको काटकर दूसरा एक नया बन्धन डाल दे, इसी प्रकार मै इस (श्रमणो या ब्राह्मणोके समझाने)को पाप(=बुरा) और लोभकी बात समझता हूँ। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा?"

लोहिच्च ब्राह्मणने सुना—'श्रमण गौतम, शाक्यपुत्र, शाक्यकुलसे प्रव्रजित हो पाँच सौ भिक्षुओके बळे भिक्षुसघके साथ ० सालवतिकामे आये हुए है। उन गौतमकी ऐसी कल्याणकारी कीर्ति फैली हुई है—'वे भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1]। इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है।'

तब लोहिच्च ब्राह्मणने रोसिक नामक नाईको बुलाकर कहा—"सुनो भद्र रोसिक! जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ जाओ। जाकर मेरी ओरसे श्रमण गौतमका कुशल क्षेम पूछो—'हे गौतम! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान् गौतमका कुशल मगल पूछता है', और ऐसा कहो—'भगवान् अपने भिक्षुसघके साथ कल लोहिच्च ब्राह्मणके घरपर भोजन करना स्वीकार करे।'"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान—'बहुत अच्छा' कह जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोसिक नाईने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्का कुशल मगल पूछता है, और यह कहता है—'भगवान् अपने भिक्षु-सघके साथ ० स्वीकार करे।'

भगवान्ने मौन रह स्वीकार कर लिया। तब रोसिक नाई भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ लोहिच्च ब्राह्मण था वहाँ गया। जाकर

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

लोहिच्च ब्राह्मणसे बोला—'मैंने आपकी ओरसे भगवान्से कहा—'भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्का ०। भगवान् अपने भिक्षु-सघके साथ ०।' और भगवान्ने स्वीकार कर लिया।"

तब लोहिच्च ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमे अच्छी अच्छी खाने पीनेकी चीजे तैयार कराके रोसिक नाईको बुलाकर कहा—'सुनो भद्र रोसिक ! जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ जाओ, जाकर श्रमण गौतमको समयकी सूचना दो—'हे गौतम ! (भोजनका) समय हो गया। भोजन तैयार है।"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा हो रोसिक नाईने भगवान्से कहा—'भन्ते ! समय हो गया, भोजन तैयार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय तैयार हो, पात्र और चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ सालवतिका थी, वहाँ गये। उस समय रोसिक नाई भगवान्के पीछे पीछे आ रहा था।

तब रोसिक नाईने भगवान्से कहा,—"भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मणको इस प्रकारकी बुरी धारणा (=पापदृष्टि) उत्पन्न हुई है—यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नही, जो अच्छे धर्मको जाने०। भन्ते ! भगवान् लोहिच्च ब्राह्मणको इस पापदृष्टिसे अलग करा दे।"

"ऐसा ही हो रोसिक ! ऐसा ही हो रोसिक !"

तब भगवान् जहाँ लोहिच्च ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब लोहिच्च ब्राह्मणने बुद्धसहित भिक्षुसघको अपने हाथसे अच्छी अच्छी खाने और पीनेकी चीजे परोस परोसकर खिलाई। तब लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्के भोजन समाप्तकर पात्रसे हाथ हटा लेनेके बाद स्वय एक दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे लोहिच्च ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

२—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं

"लोहिच्च ! क्या यह सच्ची बात है कि तुम्हे इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई है—'यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नही, जो अच्छे धर्मको जाने ० दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?"

"हे गौतम ! हाँ ऐसीही बात है।"

"लोहिच्च ! तब क्या समझते हो तुम सालवतिकाके स्वामी हो न ?" "हाँ, हे गौतम।"

"लोहिच्च ! जो कोई ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण सालवतिकाका स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च ब्राह्मण अकेला ही उपभोग करे, दूसरोको (कुछ) नही देवे।' तो ऐसा कहनेवाला मनुष्य, जो लोग तुमपर आश्रित होकर जीते हैं, उनका हानिकारक है या नही ?"

"हाँ, वह हानिकारक है, हे गौतम !"

"हानिकारक होनेसे वह उनका हित चाहनेवाला होता है या अहित चाहनेवाला ?"

"अहित चाहनेवाला, हे गौतम !"

"अहित चाहनेवालेके मनमे उनके प्रति मित्रताका भाव रहता है या शत्रुताका ?"

"शत्रुताका, हे गौतम !"

"शत्रुताका भाव रहनेमे बुरी धारणा (=मिथ्या-दृष्टि) रहती है या अच्छी धारणा (=सम्यग्-दृष्टि) ?" "मिथ्या दृष्टि, हे गौतम !"

"हे लोहिच्च ! मिथ्या-दृष्टि रखनेवालेकी दो ही गतियाँ होती है, तीसरी नहीं—नरक या नीच योनिमे जन्म।"

"लोहिच्च ! तव क्या समझते हो, राजा प्रसेनजित् कोसल और काशी कोसल (देशो)का स्वामी है कि नही ?"

"हाँ, हे गौतम !"

"लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'राजा प्रसेनजित् काशी और कोसलका स्वामी है। काशी और कोसलकी जो आय है ०।

"अत लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण सालवतिकाका स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च अकेला ही उपभोग करे, किसी दूसरेको नही देवे। ऐसा कहनेवाला वह जो उसके आश्रित होकर जीते है उनका हानिकारक होता है। हानिकारक होनेसे अहित चाहनेवाला होता है, अहित चाहनेसे शत्रुताके भाव उत्पन्न होते हैं, (और) शत्रुताके भाव उत्पन्न होनेसे वह मिथ्यादृष्टि होती है।

"इसी तरहसे, लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नही, जो कुशल धर्म जाने, और कुशल धर्म जानकर दूसरेको कहे। भला ! दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ? जैसे पुराने वन्धनको काटकर नया वन्धन दे दे। मै इसको उनका पाप और लोभधर्म समझता हूँ। (भला !) दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोका हानिकारक होता है ,जो (कुलपुत्र कि) ससार (=भव)से निवृत्त होनेके लिये तथागतके बताये गये धर्ममे आकर इस प्रकारकी विशारदताको पाते है—स्रोतआपत्तिफलका साक्षात्कार करते है, सकृदागामीफलका साक्षात्कार करते है, अनागामी-फलका साक्षात्कार करते है, अर्हत्वका भी साक्षात्कार करते है, और दिव्यगर्भका परिपाक करते है। हानिकारक होनेसे वह अहित चाहनेवाला होता है ० मिथ्यादृष्टिवालोकी दो ही गतियाँ होती है ०। "लोहिच्च ! उसी तरह जो कोई, राजा प्रसेनजित कोसलको काशी और कोसल०। वह उनका हानिकारक ०। हानिकारक होनेसे उनका अहित चाहनेवाला० मिथ्यादृष्टिवाला होता है।

"लोहिच्च ! इसी तरह जो ऐसा कहे—यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नही जो अच्छे धर्म जाने०।' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोका ०। हानिकारक होनेसे० मिथ्यादृष्टिवाला होता है। मिथ्यादष्टि-वालोकी दोही गतियाँ ०।

३–झूठे गुरु

"लोहिच्च ! तीन प्रकारके ही गुरु (=शास्ता) ससारमे कहे सुने जा सकते है जिनके ऊपर यदि आक्षेप लगावे, तो वह आक्षेप सत्य, यथार्थ, धर्मानुकूल और निर्दोष होता है। वे कौनसे तीन ?—लोहिच्च ! कितने शास्ता यशके लिये घरसे बेघर होकर साधु (=प्रव्रजित) होते है, यह श्रमण-भावके लिये उचित नही है। वे श्रमण भावको विना प्राप्त किये श्रावको(=शिष्यो)को धर्मोपदेश करते है—यह (तुम्हारे) हितके लिये है, यह सुखके लिये है। उनके श्रावक उसे सुननेकी चाह (=सुश्रूषा) नही करते, कान नही देते, चित्त नही लगाते, और उनके उपदेश (=शासन)से विरत रहते है। उसे ऐसा कहना चाहिये—आपने जिस निमित्तसे प्रव्रज्या ली थी वह श्रमणभावके लिये नही है, और आप श्रमणभावको विना प्राप्त किये श्रावकोको उपदेश देते है,—'यह हितके लिये०।' इसीलिये आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नही०। जैसे, दूर हट गयेको उत्सुक बनानेकी कोशिश करे, मुँह फेर लिये मनुष्यको आलिङ्गन करे। ऐसा करनेको मै पापपूर्ण लोभकी बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेको क्या करेगा ?—लोहिच्च ! यह पहले प्रकारका शास्ता है। उस शास्ताके लिये इस प्रकार कहना, सत्य, यथार्थ, धर्मानुसार और निर्दोष कथन है।

"और फिर लोहिच्च! (दूसरे) कितने शास्ता यशके लिये घरसे बेघर हो०। वे श्रमणभावको बिना पाये हुए ०। उनके श्रावक उसके प्रति सुश्रुषा नही०।—उस (शास्ताको) ऐसा कहना चाहिये —'आप जिस निमित्तसे०। आप श्रमणभाव बिना प्राप्त किये०—यह हितके लिये० अत आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नही ०।—जैसे कोई अपने खेतको छोळकर दूसरेके खेतके घासपातको साफ करे, इसे मै पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेका ०? (उस) शास्ताको जो इस प्रकार कहना, वह निर्दोष, सत्य, यथार्थ, और धार्मिक कथन है।

"लोहिच्च! फिर भी कितने (दूसरे) शास्ता यशके लिये घरसे बेघर हो०[1]।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा,—"हे गौतम! ससारमे ऐसे भी कोई शास्ता है जो कहे सुने जानेके योग्य नही है (जिनपर कोई आक्षेप नही किया जा सकता है)?"

"लोहिच्च! ऐसे शास्ता है जिन्हे कोई ऐसा नही कह सकता।"

"हे गौतम! वे कौनसे शास्ता है जिन्हे कोई ०?

४—सच्चे गुरु

१—शील—"लोहिच्च! जब ससारमे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[2] उत्पन्न होते है, लोहिच्च! इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।

२—समाधि—०[3] प्रथम ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। लोहिच्च! जिस शास्ताके धर्म(=शासन)मे श्रावक विशारदताको पाता है, लोहिच्च! वही शास्ता है जिसे कोई नही ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये कुछ कहना सुनना है, वह कहना असत्य, अयथार्थ, अधार्मिक और दोपपूर्ण है। "लोहिच्च! और फिर भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेके बाद अपने भीतरकी शान्ति (=सप्रसाद), चित्तकी एकाग्रतासे वितर्क और विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुखवाले दूसरे ध्यान ० तीसरे ध्यान और ०[4] चोथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। लोहिच्च! जिस शास्ताके धर्ममे श्रावक इस प्रकारकी विशारदताको पाते है, वह भी लोहिच्च! शास्ता है जिसे कोई नही ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

३—प्रज्ञा—"वह इस प्रकारके समाहित परिशुद्ध, स्वच्छ, पराहित, क्लेशोसे रहित, मृदु, सुन्दर और एकाग्र हुए चित्तसे अपने चित्तको ज्ञानदर्शनकी ओर नवाता है। लोहिच्च! जिस शास्ताके धर्ममे श्रावक ० यह भी लोहिच्च! शास्ता है जिसके लिये कोई नही ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।—वह इस प्रकार समाहित परिशुद्ध ० आस्रवोके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको ०। वह 'यह दु ख है' अच्छी तरह जानता है ०[5] आवागमनके किसी कारण-को नही देखता हे। लोहिच्च! जिस शास्ताके धर्ममे ०। लोहिच्च! यह भी शास्ता है जिसे कोई नही०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—"हे गौतम! जैसे कोई पुरुप नरक-प्रपात (नरकके खड्ड)मे गिरते किसी पुरुपको उसका केश पकळकर ऊपर खीच ले और भूमिपर रख दे, उसी तरहसे मै आप गौतमके द्वारा नरक-प्रपातमे गिरते हुए ऊपर खीचा जाकर भूमिपर रख दिया गया। आश्चर्य हे गौतम! अद्भुत हे गौतम! जैसे उलटेको सीधा कर दे ०[5]। इस तरह अनेक प्रकारसे आप गौतमने धर्म प्रकाशित किया। यह मै भगवान्की शरण०[5]। आजसे जीवन भरके लिये मुझे उपासक ०[5]।

---

[1] देखो पृष्ठ २३। [2] देखो पृष्ठ २३-२८। [3] देखो पृष्ठ २९। [4] पृष्ठ २९। [5] देखो पृष्ठ ३२।

१३—तेविज्ज-सुत्त (१।१३)

ब्रह्मा की सलोकताका मार्ग १—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ। २—बुद्धका बतलाया मार्ग—(१) मैत्री भावना; (२) करुणा०; (३) मुदिता०, (४) उपेक्षा०।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओके महाभिक्षु-संघके साथ कोसल देशमे विचरते, जहाँ मनसाकट नामक कोसलोका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् मनसाकटमे, मनसाकटके उत्तर तरफ अ चि र व ती नदीके तीर आम्रवनमे विहार करते थे।

उस समय बहुतसे अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) अभिजात महा-धनिक (=महाशाल) ब्राह्मण मनसाकटमे निवास कर रहे थे, जैसे कि—चंकि ब्राह्मण, तारुक्ख (=तारुक्ष) ब्राह्मण, पोक्खर-साति (=पौष्करसाति) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल।

ब्रह्माकी सलोकताका मार्ग

तब चहलकदमीके लिये रास्तेमे टहलते हुए, विचरते हुए, वाशिष्ट और भारद्वाज दो माणवको (=ब्राह्मण तरुणो)मे बात उत्पन्न हुई। वाशिष्ट माणवकने कहा—

"*यही मार्ग (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है*, जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है।"

भारद्वाज माणवकने कहा—"यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नही समझ सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझ सका। तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकसे कहा—

"भारद्वाज! यह शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटमे, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (=राप्ती) नदीके तीर, आम्रवनमे विहार करते है। उन भगवान् गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् ०[1] बुद्ध भगवान् है। चलो भारद्वाज! जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ चले। चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछे। जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे।"

"अच्छा भो!" कह भारद्वाज माणवकने उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनो) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्के साथ समोदनकर (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

"हे गौतम ! ० रास्तेमे हम लोगोमे यह बात उत्पन्न हुई ०। यहाँ हे गौतम ! विग्रह है, विवाद है, नानावाद है।"

१—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ

"क्या वाशिष्ट ! तू ऐसा कहता है—'यही मार्ग ० है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है ?' और भारद्वाज माणवक यह कहता है—० जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है। तब वाशिष्ट ! किस विषयमें तुम्हारा विग्रह ० है ?"

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके सबन्धमे ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण, छन्दावा ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते है। तो भी वह (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते है। जैसे हे गौतम ! ग्राम या कस्बेके पास (अ-दूरे) बहुतसे नानामार्ग होते है, तो भी वे सभी ग्राममे ही जानेवाले होते है। ऐसे ही हे गौतम ! ० ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते है, ०। ० ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते है।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते है' कहते हो ?" " 'पहुँचाते है' कहता हूँ।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते है०' कहते हो ?"

"पहुँचाते है ०।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते है' कहते हो ?"

"पहुँचाते है ०।"

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोमे क्या एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोका एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोका एक भी आचार्य-प्राचार्य है ० ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोके आचार्योकी सातवी पीढी तकमें कोई है ० ?"

"नही, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! जो त्रैविद्य ब्राह्मणोके पूर्वज, मत्रोके कर्ता, मत्रोके प्रवक्ता ऋषि (थे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मत्र-पदको आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान, अनुभाषण करते हैं, भाषितका अनुभाषण करते है, वाचेका अनुवाचन करते है, जैसे कि अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु। उन्होने भी (क्या) यह कहा—जहाँ ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमे ब्रह्मा है, हम उसे जानते है, हम उसे देखते है ?"

"नही, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोमे एक ब्राह्मण भी नही, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो। ० एक आचार्य भी ०। एक आचार्य-प्राचार्य भी ०। ० सातवी पीढी तकके आचार्योमे भी ०। जो त्रैविद्य ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषि ०। और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते है !—'जिसको न जानते है, जिसको न देखते है, उसकी सलोकताके लिये हम मार्ग उपदेश करते है—यही मार्ग ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, है !!' तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन क्या अ-प्रामाणिकताको नही प्राप्त हो जाता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन अ-प्रामाणिकताको प्राप्त हो जाता है।"

"अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते है, जिसको न देखते है, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते है ! !—'यही ० सीधा मार्ग है'—यह उचित नही है। जैसे वाशिष्ट ! अन्धोकी पांती एक दूसरेसे जुळी हो, पहलेवाला भी नही देखता, बीचवाला भी नही देखता, पीछेवाला भी नही देखता। ऐसे ही वाशिष्ट ! अन्ध-वेणीके समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन है, पहलेवालेने भी नही देखा ०। (अत) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन प्रलाप ही ठहरता है, व्यर्थ ०, रिक्त ०=तुच्छ ठहरता है। तो वाशिष्ट ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसरे बहुतसे जनोको देखते है, कि कहाँसे वह उगते है, कहाँ डूबते है, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते है, स्तुति करते है, हाथ जोळ नमस्कार कर घूमते है ?"

"हाँ, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र, सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोको देखते है। ०"

"तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र, सूर्य या दूसरे बहुत जनोको, देखते है, कहाँसे ०। क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र-सूर्यकी सलोकता (=सहव्यता=एक स्थान निवास) के लिये मार्ग-का उपदेश कर सकते है—'यही वैसा करनेवाले को, चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये ० सीधा मार्ग है ? ।"

"नही, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते है,० प्रार्थना करते है ०। उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नही कर सकते, कि ० यही सीधा मार्ग है', तो फिर ब्रह्माको—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोने अपनी आँखोसे देखा, ० ० न त्रैविद्य ब्राह्मणोके पूर्वज ऋषियोने ०। तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोका कथन अ-प्रामाणिक (=अप्पाटिहीरक) नही ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते है, जिसे न देखते है, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते है—० यही सीधा मार्ग है'। ० यह उचित नही। जैसे कि वाशिष्ट ! पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) मे जो जनपद-कल्याणी (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मै उसको चाहता हूँ उसकी कामना करता हूँ। उससे यदि (लोग) पूछे—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, कामना करता है, जानता है, वह क्षत्राणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य स्त्री है, या शूद्री है' ? ऐसा पूछने पर 'नही' कहे। तब उससे पूछे—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, जानता है, वह अमुक नामवाली, अमुक गोत्रवाली है ? लम्बी, छोटी या मझोली है ? काली, श्यामा या मगुर (मछलीके) वर्णकी है ? अमुक ग्राम, निगम या नगर मे रहती है ?' ऐसा पूछने पर 'नही' कहे। तब उससे यह पूछे—'हे पुरुष ! जिसको तू नही जानता, जिसको तूने नही देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है' ? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण अ-प्रामाणिक नही ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"ऐसे ही हे वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोने ब्रह्माको अपनी आँखसे नही देखा०। अहो ! वह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते है—'जिसे हम नही जानते ० उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते है०'। तो क्या वाशिष्ट ! ० भाषण अ-प्रामाणिक नही होता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको नही जानते० उपदेश करते है। यह युक्त नही। जैसे वाशिष्ट ! कोई पुरुष चौरस्तेपर महलपर चढनेके लिये सीढी बनावे। उससे

(लोग) पूछे—'हे पुरुष ! जिस महलपर चढनेके लिये सीढी बना रहा है, जानता है वह महल पूर्व दिशामें है या दक्षिण दिशामे, पश्चिम दिशामे है या उत्तर दिशामे, ऊँचा या नीचा, या मझोला है ?' ऐसा पूछनेपर 'नही' कहे। उससे ऐसा पूछें—'हे पुरुष ! जिसे तू नही जानता, नही देखता, उस महलपर चढनेके लिये सीढी बना रहा है ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो वाशिष्ट ! ०।"

"अवश्य, हे गौतम ! ०"

"साधु, वाशिष्ट ! ०। यह युक्त नही। जैसे वाशिष्ट ! इस अचिरवती (=राप्ती) नदीकी धार उदकसे पूर्ण (=समतित्तिक) काकपेया (=करारपर बैठकर कोआ भी जिससे पानी पी ले) हो, तब पार-अर्थी=पारगामी=पार-गवेषी=पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे, वह इस किनारेपर खळे हो दूसरे तीरको आह्वान करे—'हे पार इस पार चले आओ।' 'हे पार ! इस पार चले आओ', तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! क्या उस पुरुषके आह्वानके कारण, याचनाके कारण, प्रार्थनाके कारण, अभिनन्दनके कारण अचिरवती नदीका पारवाला तीर इस पार आ जायगा ?"

"नही, हे गौतम !"

"इसी प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण—जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है उनको छोळकर जो अ-ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है, उनसे युक्त होते हुए कहते है—'(हम) इन्द्रको आह्वान करते है, ईशानको आह्वान करते है, प्रजापतिको आह्वान करते है, ब्रह्माको आह्वान करते है, महर्द्धिको आह्वान करते है, यमको आह्वान करते है।' वाशिष्ट ! अहो ! त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है० उनको छोळकर, आह्वानके कारण० काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त हो जायेंगे, यह संभव नही है।

"जैसे वाशिष्ट ! इस अचिरवती नदीकी धार उदक-पूर्ण, (करारपर बैठे) कौवेको भी पीने लायक हो। ० पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे। वह इसी तीरपर दृढ साकलसे पीछे बाँह करके मजबूत बन्धनसे बँधा हो। वाशिष्ट ! क्या वह पुरुष अचिरवतीके इस तीरसे परले तीर चला जायेगा ?"

"नही, हे गौतम !"

"इसी प्रकार वाशिष्ट ! यह पाँच काम-गुण (=कामभोग) आर्य-विनय (=बुद्धधर्म) में जजीर कहे जाते है, बधन कहे जाते है। कौनसे पाँच ? (१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कात=मनाप=प्रिय कामना-युक्त, रूप रागोत्पादक है। (२) श्रोत्रसे विज्ञेय शब्द०। घ्राणसे विज्ञेय० गध। (३) जिह्वासे विज्ञेय रस०। (४) काय (=त्वक्)से विज्ञेय० स्पर्श। वाशिष्ट ! ये पाँच काम-गुण० बधन कहे जाते है। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच काम-गुणोसे मूर्च्छित, लिप्त, अ-परिणाम-दर्शी है, इनसे निकलनेका ज्ञान न करके (=अनिस्सरणपञ्ञ) भोग कर रहे है। वाशिष्ट ! अहो ! ! यह त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म है, उन्हे छोळकर ०, पाँच काम-गुणोको० भोगते हुए, कामके बधनमे बँधे हुए, काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माओकी सलोकताको प्राप्त होगे, यह संभव नही।

"जैसे वाशिष्ट ! इस अचिरवती नदीकी धार०, पुरुष आवे, वह इस तीरपर मुँह ढाँककर लेट जावे। तो० परले तीर चला जायेगा ?"

"नही, हे गौतम !"

"ऐसे ही, वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आर्य-विनय (=आर्य-धर्म, बौद्ध-धर्म) मे आवरण भी कहे जाते है, नीवरण भी कहे जाते है, परि-अवनाह (=बधन) भी कहे जाते है। कौनसे पाँच ? (१) कामच्छन्द (=भोगकी इच्छा) नीवरण, (२) व्यापाद (=द्रोह)०, (३) स्त्यान-मृद्ध (=आलस्य)०, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धतपना, खेद)०, (५) विचिकित्सा (=दुविधा)०।

वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आर्य-विनयमे आवरण भी ० कहे जाते है। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरणो (से) आवृत (=ढँके)=निवृत, अवनद्ध=पर्यवनद्ध (=बँधे) है। वाशिष्ट ! अहो ! ! त्रैविद्य ब्राह्मण जो ब्राह्मण बनानेवाले ०। पाँच नीवरणोसे आवृत० बँधे०, मरनेके बाद ब्रह्माओकी सलोकताको प्राप्त होगे, यह सभव नही।

"तो वाशिष्ट ! क्या तुमने ब्राह्मणोके वृद्धो=महल्लको आचार्य-प्राचार्योको कहते सुना है—ब्रह्मा स-परिगृह (=बटोरनेवाला) है, या अ-परिग्रह ?"

"अ-परिग्रह, हे गौतम !"

"स-वैर-चित्त, या वैर-रहित चित्तवाला ?"

"अवैर-चित्त, हे गौतम !"

"स-व्यापाद (=द्रोहयुक्त) या अ-व्यापाद चित्तवाला ?"

"अव्यापाद-चित्त, हे गौतम !"

"सक्लेश (=चित्त-मल)-युक्त या सक्लेश-रहित चित्तवाला ?"

"सक्लेश-रहित चित्तवाला, हे गौतम !"

"वशवर्त्ती (=अपरतत्र, जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्त्ती ?"

"वशवर्त्ती, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह है या अ-परिग्रह ?"

"स-परिग्रह, हे गौतम !"

"० सवैर-चित्त ० ? ०। ? ० सव्यापाद-चित्त ० ? ०। ? ० सक्लेश-युक्त चित्त० ? ०।० वशवर्त्ती ० ?" "अ-वशवर्त्ती, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह है, और ब्रह्मा अ-परिग्रह है। क्या स-परिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मणोका परिग्रह-रहित ब्रह्माके साथ समान होना, मिलना, हो सकता है ?"

"नही, हे गौतम !"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! ! सपरिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मण काया छोळ मरनेके बाद परिग्रह-रहित ब्रह्माके साथ सलोकताको प्राप्त करेगे, यह सभव नही।"

"० स-वैर-चित्त त्रैविद्य ब्राह्मण ०, अवैर-चित्त ब्रह्माके साथ सलोकता ० सभव नही। ० सव्यापाद-चित्त ०। ० सक्लेश-युक्त चित्त ०। ० अवशवर्त्ती ०।

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण बे-रास्ते जा फँसे है, फँसकर विषादको प्राप्त है, सूखेमे जैसे तैर रहे है। इसलिये त्रैविद्य ब्राह्मणोकी त्रिविद्या वीरान (=कातार) भी कही जा(सक)ती है, विपिन (=जगल) भी कही जा(सक)ती है, व्यसन (=आफत) भी कही जा (सकती) है।"

२—बुद्धका बतलाया मार्ग

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—"मैंने यह सुना है, हे गौतम ! कि श्रमण गौतम ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग जानता है ?"

"तो वाशिष्ट ! मनसाकट यहाँसे समीप है, मनसाकट यहाँसे दूर नही है न ?"

"हाँ, हे गौतम ! मनसाकट यहाँसे समीप है ०, यहाँसे दूर नही है।"

"तो वाशिष्ट ! यहाँ एक पुरुष है, (जो कि) मनसाकटहीमे पैदा हुआ है, बढा है। उससे मनसाकटका रास्ता पूछे। वाशिष्ट ! मनसाकटमे जन्मे, बढे, उस पुरुषको, मनसाकटका मार्ग पूछनेपर (उत्तर देनेमे) क्या देरी या जळता होगी ?"

"नही, हे गौतम !"

"सो किस कारण ?"

"हे गौतम ! वह पुरुष मनसाकटमे उत्पन्न और बढा है, उसको मनसाकटके सभी मार्ग सु-विदित है।"

"वाशिष्ट ! मनसाकटमे उत्पन्न और वढे हुए उस पुरुषको मनसाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जळता हो सकती है, किन्तु तथागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछनेपर, देरी या जळता नही हो सकती। वाशिष्ट ! मै ब्रह्माको जानता हूँ, ब्रह्मलोकको, और ब्रह्मलोक-गामिनी-प्रतिपद् (=ब्रह्मलोकके मार्ग)को भी, और जैसे मार्गारूढ होनेसे ब्रह्मलोकमे उत्पन्न होता है, उसे भी जानता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम ! मैने सुना है, श्रमण गौतम ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग उपदेश करता है । अच्छा हो आप गौतम हमे ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करे, हे गौतम ! आप (हम) ब्राह्मण-सतानका उद्धार करे।"

"तो वाशिष्ट ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमे (धारण) करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—"वाशिष्ट ! यहाँ ससारमे तथागत उत्पन्न होते है।०[1] इस प्रकार भिक्षु-शरीरके चीवर, और पेटके भोजनसे सतुष्ट होता है। इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। ० वह अपनेको इन पाँच नीवरणोसे मुक्त देख, प्रमुदित होता है। प्रमुदित हो प्रीति प्राप्त करता है, प्रीति-मान्का शरीर स्थिर, शान्त होता है। प्रश्रब्ध (=शान्त) शरीरवाला सुख अनुभव करता है, सुखितका चित्त एकाग्र होता है।

(१) *मैत्री भावना*

"वह मैत्री (=मित्र-भाव) युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० दूसरी दिशा ०, ० तीसरी दिशा ०, ० चौथी दिशा० इसी प्रकार ऊपर नीचे आळे वेळे सम्पूर्ण मनसे, सवके लिये, मित्र-भाव (०मैत्री=)-युक्त, विपुल, महान्=अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करता विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! वलवान् शख-ध्मा (=शख वजानेवाला) थोळी ही मिहनतसे चारो दिशाओको गुंजा देता है। वाशिष्ट ! इसी प्रकार मित्र-भावनासे भावित, चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणमे काम किया गया है, वह वही अवशेष=खतम नही होता। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग है।

(२) *करुणा भावना*

"और फिर वाशिष्ट ! करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको ०।

(३) *मुदिता भावना*

मुदिता-युक्त चित्तसे ० ०,

(४) *उपेक्षा भावना*

उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० विपुल, महान्, अप्रमाण, वैररहित, द्रोह-रहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करके विहरता है। जैसे वाशिष्ट ! वलवान् शख-ध्मा ०। वाशिष्ट ! इसी प्रकार उपेक्षासे

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२७।

भावित चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणमे काम किया गया है, वही अवशेप=खतम नही होता । यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओकी सलोकताका मार्ग है ।

"तो वाशिष्ट ! इस प्रकारके विहारवाला भिक्षु, स-परिग्रह है, या अ-परिग्रह ?" "अ-परिग्रह, हे गौतम !"

"स-वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त ?" "अ-वैर-चित्त, हे गौतम !"

"स-व्यापाद-चित्त या अ-व्यापाद-चित्त ?"

"अ-व्यापाद-चित्त, हे गौतम !"

"सक्लिष्ट(=मलिन)-चित्त या अ-सक्लिष्ट-चित्त ?"

"अ-सक्लिष्ट-चित्त, हे गौतम !"

"वश-वर्ती(=जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्ती ?"

"वश-वर्ती, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु अ-परिग्रह है, ब्रह्मा अ-परिग्रह है, तो क्या अ-परिग्रह भिक्षुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, मेल है ?"

"हाँ, हे गौतम !"

"साधु, वाशिष्ट ! वह अ-परिग्रह भिक्षु काया छोळ मरनेके वाद, अ-परिग्रह ब्रह्माकी सलोकता-को प्राप्त होगा, यह सभव है । इस प्रकार भिक्षु अ-वैर-चित्त है०।० वश-वर्ती भिक्षु काया छोळ मरनेके वाद वश-वर्त्ती ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होगा, यह सभव है ।"

ऐसा कहने पर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकोने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य हे गौतम ! अद्‌भुत हे गौतम ! ०[1] आजसे आप गौतम हम (लोगोको) अजलिवद्ध शरणागत उपासक धारण करे !"

(इति सीलक्खन्ध-वग्ग ॥१॥)

---

[1] देखो पृष्ठ ३२

२—महावग्ग

१४—महापदान-सुत्त (२।१)

१—विपश्यी आदि पुराने छै बुद्धोकी जाति आदि। २—विपस्सी बुद्धकी जीवनी—(१) जाति गोत्र आदि, (२) गर्भमें आनेके लक्षण, (३) बत्तीस शरीर-लक्षण; (४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण—वृद्ध, रोगी, मृत और सन्यासीका देखना; (५) सन्यास, (६) बुद्धत्व-प्राप्ति; (७) धर्मचक्र प्रवर्तन; (८) शिष्यो द्वारा धर्मप्रचार; (९) देवता साक्षी। देवतागण।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनकी **करेरी** कुटीमे विहार करते थे।

तब भिक्षासे लौट भोजन कर लेनेके बाद करेरी (कुटी) की पर्णशाला (=बैठक) मे इकट्ठे होकर बैठे बहुतसे भिक्षुओके बीच पूर्वजन्मके विषयमे धार्मिक-कथा चली—पूर्वजन्म ऐसा होता है, वैसा होता है। भगवान्ने विशुद्ध और अलौकिक दिव्य-श्रोत्रसे उन भिक्षुओकी इस बातचीतको सुन लिया। तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ **करेरी** पर्णशाला (=मडलमाल) थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्ने उन भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमे आकर रुक गये?"

ऐसा कहनेपर उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! भिक्षासे लौटे० हम भिक्षुओ-के बीच पूर्व-जन्मके विषयमे धार्मिक-कथा चल रही थी—पूर्व जन्म ऐसा है, वैसा है। भन्ते! यही बात-हममे चल रही थी, कि भगवान् चले आये।"

"भिक्षुओ! पूर्व-जन्म-सबधी धार्मिक-कथाको क्या तुम सुनना चाहते हो?"

"भगवान्! इसीका काल है। सुगत! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्व-जन्म-सबधी धार्मिक-कथा कहे। भगवान्की बातको सुनकर भिक्षु लोग धारण करेगे।"

"भिक्षुओ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमे करो। कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते"—कह उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दिया।

१—विपश्यी आदि छै बुद्धोंकी जाति आदि

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! आजसे इकानबे कल्प पहले **विपस्सी** (=विपश्यी) भगवान्, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध ससारमे उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! आजसे एकतीस कल्प पहले **सिखी** (=शिखी) भगवान्०। भिक्षुओ! उसी एकतिसवे कल्पमे **वेस्सभू** (=विश्वभू) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी भद्रकल्प (वर्तमान कल्प) मे "**ककुसन्ध** (=ककुच्छन्द) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी भद्रकल्पमे **कोणागमन** भगवान्०। भिक्षुओ! इसी०मे **कस्सप** (=काश्यप) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी०मे मै अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ससारमे उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० क्षत्रिय जातिके थे, क्षत्रिय कुलमे उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! सिखी भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! ककुसन्ध भगवान्०

ब्राह्मण ०। भिक्षुओ ! कोणागमन भगवान्० ब्राह्मण०। भिक्षुओ ! कस्सप भगवान्० ब्राह्मण०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध क्षत्रिय जातिका, क्षत्रिय कुलमे उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्०कोण्डञ्ञ (=कौडिन्य) गोत्रके थे।०सिखी भगवान्० कौण्डिन्य गोत्र०।० वेस्सभू भगवान्० कौण्डिन्य गोत्र०।० ककुसन्ध भगवान्० काश्यप गोत्रके थे।० कोणागमन भगवान्० काश्यप गोत्र०।० कस्सप भगवान्० काश्यप गोत्र०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध गोतम गोत्रका हूँ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० का आयुपरिमाण अस्सी हज़ार वर्षका था।० सिखी भगवान्० सत्तर हजार वर्ष०।० वेस्सभू भगवान्० साठ हजार वर्ष०।० ककुसन्ध भगवान्० चालीस हजार वर्ष०।० कोणागमन भगवान्० तीस हज़ार वर्ष०।० कस्सप भगवान्० वीस हजार वर्ष०। भिक्षुओ ! और मेरा आयुप्रमाण वहुत कम और छोटा है, (इस समय) जो वहुत जीता है वह कुछ कम या अधिक सौ वर्ष (जीता है)।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० पाडर वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध (=बुद्धत्वको प्राप्त) हुये थे।० सिखी० भगवान्० पुण्डरीकके नीचे ०।० वेस्सभू भगवान्० साल वृक्ष०।० ककुसन्ध भगवान्० सिरीस वृक्ष०।० कोणागमन भगवान्० गूलर वृक्ष०।० कस्सप भगवान्० वर्गद०। भिक्षुओ ! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध पीपल वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध हुआ।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के **खण्ड** और **तिस्स** नामक दो प्रधान शिष्य हुये।० सिखी भगवान्० के **अभिभू** ओर **सम्भव** नामक०।० वेस्सभू भगवान्० के **सोण** और **उत्तर** नामक०।० ककुसन्ध भगवान्० के **विधुर** और **सञ्जीव** नामक०।० कोणगमन भगवान्० के **भीयोसु** और **उत्तर** नामक०।० कस्सप भगवान्० के **तिस्स** और **भारद्वाज** नामक०। भिक्षुओ ! और मेरे **सारिपुत्त** और **मोग्गलान** नामक दो प्रधान शिष्य है।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुये। अळसठ लाख भिक्षुओका एक शिष्य-सम्मेलन था। एक लाख भिक्षुओका एक०। (और) अस्सी हजार भिक्षुओका एक०। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० के यही तीन शिष्य-सम्मेलन थे, सभी (भिक्षु) अर्हत् थे।० सिखी भगवान्० के तीन०। एक लाख भिक्षुओका एक०। अस्सी हजार भिक्षुओका एक०। सत्तर हजार भिक्षुओका एक०। भिक्षुओ ! सिखी भगवान्० के यही तीन० सभी अर्हत्०।—० वेस्सभू भगवान्० के तीन०। अस्सी हजार०। सत्तर हजार०। साठ हजार०। भिक्षुओ ! वेस्सभू भगवान्० के यही तीन०। ककुसन्ध भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन चालीस हजार भिक्षुओका था। भिक्षुओ ! ककुसन्ध भगवान्० के यही एक०।० कोणागमन भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन तीस हजार भिक्षुओका था। भिक्षुओ ! कोणागमन० का यही एक०।० कस्सप भगवान् ० वीस हजार०।० कस्सपका यही०— भिक्षुओ ! और मेरा एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ, वारह सौ पचास भिक्षुओका। भिक्षुओ ! मेरा यही एक शिष्य-सम्मेलन० अर्हत्०।

"भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्० का **अशोक** नामक भिक्षु उपस्थाक (=सहचर सेवक) प्रधान उपस्थाक था।० सिखी भगवान्० का **खेमकर** भिक्षु उपस्थाक०।० वेस्सभू भगवान्० का **उपसन्त**०।० ककुसन्ध भगवान्० का **बुद्धिज**०।० कोणागमन भगवान्० का **सोत्थिज**०।० कस्सप भगवान्० का **सर्वमित्र**०। भिक्षुओ ! और मेरा **आनन्द** नामक भिक्षु उपस्थाक० हुआ।

"भिक्षुओ ! **विपस्सी** भगवान्० के **बन्धुमान्** नामक राजा पिता (और) **बन्धुमती** देवी नामकी माता थी। वन्धुमान् राजाकी राजधानी **बन्धुमती** नामक नगरी थी। ० **सिखी** भगवान्० के **अरुण** नामक राजा पिता और **प्रभावती** देवी नामकी माता०। अरुण राजाकी राजधानी **अरुणवती** नामक नगरी थी।० **वेस्सभू** भगवान्० के **सुप्रतीत** नामक राजा० **यशोवती** देवी नामक०। सुप्रतीत राजाकी राजधानी **अनोमा**०।० **ककुसन्ध** भगवान्० के **अग्निदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **विशाखा** नामक ब्राह्मणी

माता०। भिक्षुओ ! उस समय **खेम** नामक राजा था। खेम राजाकी राजधानी **खेमवती** नामक नगरी थी। ० **कोणागमन** भगवान्० **यज्ञदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **उत्तरा** नामक ब्राह्मणी माता०। भिक्षुओ ! उस समय **सोभ** नामक राजा था। सोभ राजाकी राजधानी **सोभवती** नामक नगरी थी।० **कस्सप** भगवान्० **ब्रह्मदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **धनवती** नामक ब्राह्मणी माता०। उस समय **किकी** नामक राजा था। भिक्षुओ ! किकी राजाकी राजधानी **वाराणसी** (=बनारस) थी। भिक्षुओ ! और मेरा **शुद्धोदन** नामक राजा पिता, **मायादेवी** नामक माता०। **कपिलवस्तु** नामक नगरी राजधानी रही।

भगवान्‌ने यह कहा। सुगत इतना कह आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌के जाते ही उन भिक्षुओमे यह बात चली—"आवुसो ! आश्चर्य है, आवुसो ! अद्भुत है—तथागतका ऐश्वर्य्य और उनकी महानुभावता, कि (इस तरह) तथागतोने अतीत कालमे निर्वाण प्राप्त किया, ससारके प्रपञ्चपर विजय प्राप्त किया, अपने मार्गको समाप्त किया, और सब दु खोका अन्त कर दिया। (वह) बुद्धोको जन्मसे भी स्मरण करते है, नामसे भी स्मरण करते है, गोत्रसे भी स्मरण करते है, आयु-परिप्रमाणसे भी०, प्रधान शिष्यके पुद्गल (=व्यक्ति)से भी०, शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात)से भी। वे भगवान् इस जातिके थे यह भी, इस नामके, इस गोत्रके, इस शीलके, इस धर्मके, इस प्रज्ञाके, इस प्रकार रहनेवाले, इस प्रकार विमुक्त थे यह भी।

"तो आवुसो ! क्या यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न हो तथागत अतीतमे निर्वाण प्राप्त किये, ससारके प्रपञ्चो० बुद्धोको जन्मसे भी, नामसे भी०, वे भगवान् इस जन्मके०? या देवता तथागतको यह सब कह देते है, जिससे तथागत अतीत कालमे निर्वाण प्राप्त किये० बुद्धोको जन्मसे, नामसे० वे भगवान् इस जातिके०।—यही बात उन भिक्षुओमे चल रही थी।

तब भगवान् सध्या समय ध्यानसे उठ कर जहाँ **कारेरी**की पर्णशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ ! क्या बात चल रही थी, किस बातमे आकर रुक गये?"

ऐसा पूछेनेपर उन भिक्षुओने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान्‌के जाते ही हम लोगोके बीच यह बात चली—आवुसो ! तथागतका ऐश्वर्य और उनकी महानुभावता, आश्चर्य है, आवुसो ! अद्भुत है, कि तथागत अतीत कालमे निर्वाण प्राप्त किये ० बुद्धोको जन्मसे ०, 'वे भगवान् इस जातिके थे ०'। तो आवुसो ! क्या यह तथागतकीही शक्ति ०। या देवता तथागतको यह सब कह देते है जिससे तथागत अतीत कालमे ०'। भन्ते ! हम लोगोके बीच यही बात चल रही थी, कि भगवान् आ गये।"

"भिक्षुओ ! यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न होकर तथागत अतीत कालमे निर्वाण पाये ० बुद्धोको जन्मसे ०, 'वे भगवान् इस जातिके ०' यह भी। देवताने भी तथागतको कह दिया था जिससे तथागत अतीत कालमे ० बुद्धोको जन्मसे स्मरण ०, वे भगवान् इस जन्मके ० यह भी। भिक्षुओ ! क्या तुम पूर्वजन्म-सम्बन्धी धार्मिक कथाको अच्छी तरह सुनना चाहते हो?"

"भगवान् ! इसीका काल है। सुगत ! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्वजन्म-सम्बन्धी धार्मिक कथा अच्छी तरह कहे, भगवान्‌की बातोको सुनकर भिक्षु लोग उसे धारण करेगे।"

"भिक्षुओ ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमे करो, कहता हूँ।" "अच्छा भन्ते" उन्होने उत्तर दिया।

२—विपस्सी बुद्धकी जीवनी

(१) जाति गोत्र आदि

भगवान्‌ने यह कहा—"आजसे इक्कानवे कल्प पहले (१) **विपस्सी** भगवान् ० क्षत्रिय जाति ०। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान् अर्हत् ० कौण्डिन्य गोत्रके थे। ० विपस्सी भगवान् ० का आयुपरिमाण अस्सी हजार वर्षोका था। ० विपस्सी भगवान् ० पाटलि वृक्षके नीचे बुद्ध हुए थे। ० विपस्सी भगवान् ०

के खण्ड और तिस्स नामक दो प्रधान श्रावक (=शिष्य) थे। ० विपस्सी भगवान् ० के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। एक शिष्यसम्मेलन अळसठ लाख भिक्षुओका था। एक ० एक लाख भिक्षुओका ०। एक ० अस्सी हजार भिक्षुओका। विपस्सी भगवान्के यही तीन शिष्य-सम्मेलन हुए, जिनमे सभी अर्हत् (भिक्षु) थे। विपस्सी भगवान्०का अशोक नामक भिक्षु प्रधान उपस्थाक था। ० विपस्सी भगवान्०का वन्धुमान् नामक राजा पिता और वन्धुमती नामको देवी माता थी। बन्धुमान् राजाकी राजधानी वन्धुमती नामक नगरी थी।

(२) गर्भमे आनेके लक्षण

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व तुषित नामक देवलोकसे च्युत होकर होशके साथ अपनी माताकी कोखमें प्रविष्ट हुए। उसके ये (पूर्व-)लक्षण हैं। (१) भिक्षुओ! लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत होकर माताकी कोखमे प्रविष्ट होते है तब देवता, मार और ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण, और देव मनुष्य सहित इस लोकमे देवोके देवतेजसे भी बढकर बळा भारी प्रकाश होता है। नीचेके नरक—जो अन्धकारसे, अन्धकारकी कालिमासे परिपूर्ण है, जहाँ बळी ऋद्धि=बळे महानुभाववाले ये चाँद और सूरज भी अपनी रोशनी नही पहुँचा सकते, वहाँ भी—देवोके देवतेजसे बढकर भारी प्रकाश होता है। जो प्राणी वहाँ उत्पन्न हुए है, वे भी उस प्रकाशमे एक दूसरेको देखते है—'अरे! यहाँ दूसरे भी प्राणी उत्पन्न हैं'। यह दस हजार लोक-धातु (=ब्रह्माड) कँपने और हिलने लगती है। ससारमे देवोके देवतेजसे भी वढकर वळा भारी प्रकाश फैल जाता है, यह लक्षण होता है।

"भिक्षुओ! (२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमे प्रविष्ट होते हैं, तब चारो देव-पुत्र उन्हे चारो दिशाओसे रक्षा करनेके लिये आते हैं, जिसमे कि बोधिसत्वको या बोधिसत्वकी माताको कोई मनुष्य या अमनुष्य न कष्ट दे सके। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमे प्रविष्ट होते है, तब वोधिसत्वकी माता प्रकृतिसे ही शीलवती होती है। हिंसासे विरत रहती है। चोरीसे ०। दुराचार-से ०। मिथ्या-भाषणसे ०। सुरा या नशीली वस्तुओके सेवनसे ०। यह भी लक्षण है।"

"भिक्षुओ! (४) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तव बोधिसत्वकी माताका चित्त पुरुषकी ओर आकृष्ट नही होता। कामवासनाओके लिये, बोधिसत्वकी माता किसी पुरुषके द्वारा रागयुक्त चित्तसे जीती नही जा सकती। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (५) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब वोधिसत्वकी माता पाँच भोगो (=काम-गुणो)को प्राप्त करती हे, वह पाँच भोगोमे समर्पित और सेवित रहती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (६) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नही उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सूखपूर्वक रहती है। बोधिसत्वकी माता अ-क्लान्त शरीर-वाली रह अपनी कोखमे स्थित, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गमे पूर्ण (=अहीनेन्द्रिय) बोधिसत्वको देखती है। भिक्षुओ! जैसे अच्छी जातिवाली, आठ पहलुओवाली, अच्छी खरादी शुद्ध, निर्मल (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि (=हीरा) (हो)। उसमेका सूत्र उजला, नीला, या पीला, या लाल, या धूसर (हो) उसे आँखवाला मनुष्य हाथमे लेकर देखे—'यह ० वैदूर्यमणि, ०। यह इसमेका सूत्र ०। भिक्षुओ! उसी तरह जब बोधिसत्व माताकी कोखमे प्रविष्ट होते हैं तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नही उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सुख-पूर्वक रहती है ० बोधिसत्वको देखती है ०। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (७) लक्षण यह है कि बोधिसत्वके उत्पन्न होनेके एक सप्ताह बाद बोधि-सत्वकी माता मर जाती है, और तुषित देवलोकमे उत्पन्न होती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (८) लक्षण यह है कि जैसे दूसरी स्त्रियाँ नव या दस महीना कोखमे बच्चे-

को रखकर प्रसव करती है, वैसे बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको नही प्रसव करती। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको पूरे दस महीने कोखमे रखकर प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (९) लक्षण यह है कि जैसे और स्त्रियाँ बैठी या सोई प्रसव करती है, वैसे बोधिसत्वकी माता ० नही ०। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको खळी खळी प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१०) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखसे बाहर आते है, (तो उन्हे) पहले पहल देवता लोग लेते है, पीछे मनुष्य लोग। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (११) लक्षण यह है कि बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलकर पृथ्वीपर गिरने भी नही पाते, कि चार देवपुत्र उन्हे ऊपरसे लेकर माताके सामने रखते है, (और कहते है—) प्रसन्न होवे, आपको बळा भग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलते है तब, बिलकुल निर्मल पानीसे अलिप्त, कफसे अलिप्त, रुधिरसे अलिप्त, और किसी भी अशुचिसे अलिप्त, शुद्ध=विशद निकलते है। जैसे भिक्षुओ! मणिरत्न काशीके वस्त्रसे लपेटा हुआ हो, तो न (वह) मणिरत्न काशीके वस्त्रमे चिपट जाता है और न काशीका वस्त्र मणिरत्नमे चिपट जाता है। सो क्यो? दोनोकी शुद्धताके कारण। इसी तरहसे भिक्षुओ! जब ० निकलते है, ० विशद ही निकलते है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ० निकलते है तब आकाशसे दो जल-धाराये छूटती है, एक शीत (जल)की, एक उष्ण (जल)की, जिनसे बोधिसत्व और माताका प्रक्षालन (=उदककृत्य) होता है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१४) लक्षण यह है कि बोधिसत्व उत्पन्न होते ही, समान पैरोपर खळे हो उत्तरकी ओर मुँह करके सात पग चलते है। श्वेत छत्रके नीचे सभी दिशाओको देखते है, और इस श्रेष्ठ वचनको घोषित करते है—'इस लोकमे मै श्रेष्ठ हूँ। इस लोकमे मै अग्र हूँ। इस लोकमे मै सबसे ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब (मेरा) फिर जन्म नही होगा।' यह ही लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१५) लक्षण यही है कि जब बोधिसत्व ० निकलते है तब, देव, मार ०[1] लोकमे ० अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाश होता है। ससारकी बुराइयाँ दूर हो जाती है, अन्धकारकी कालिमा हट जाती है, जहाँ इन चाँद-सूरज ० वहाँ भी देवोके ०। जो वही उत्पन्न हुए प्राणी ०, 'दूसरे भी प्राणी ०।' यह दस हजार लोकधातु (=ब्रह्माण्ड) कँपता ०। ०। यह भी लक्षण है।

(३) बत्तीस शरीर-लक्षण

"भिक्षुओ! उत्पन्न होनेपर विपस्सी कुमारने बन्धुमान् राजासे यह कहा—'देव! आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव, आप उसे देखे।। भिक्षुओ! बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारको देखा। देखकर ज्योतिषी (=नैमित्तिक) ब्राह्मणोको बुलाकर यह कहा—'आप लोग ज्योतिषी ब्राह्मण (मेरे) कुमारके लक्षण देखे।' उन ज्योतिषी ब्राह्मणोने लक्षण विचारा। गणना देखकर बन्धुमान् राजासे यह कहा—'देव! प्रसन्न होवे। आपका पुत्र बळा भाग्यवान् है। महाराज आपको बळा लाभ है, कि आपके कुलमे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव! यह कुमार महापुरुषोके बत्तीस लक्षणोसे युक्त है, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोही गतियाँ होती है, तीसरी नही—(१) यदि वह घरमे रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारो ओर विजय पानेवाला, शांति स्थापित करनेवाला (और) सात रत्नोसे युक्त चक्रवर्ती

---

[1] देखो पृष्ठ ९७।

राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते है—चक्र-रत्न,-हस्ति रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न, गृहपति रत्न, और सातवॉ पुत्र रत्न। एक हजारसे भी अधिक सूर, वीर, शत्रुकी सेनाओको मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते हैं। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके-बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) ससारके आवरणको हटा सम्यक् सम्बुद्ध अर्हत् होता है।

"देव! यह कुमार महापुरुपोके किन, वत्तीस लक्षणो[1]से युक्त है, जिनसे युक्त होनसे० ? यदि वह घरमे रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाता है०। (१) देव! यह कुमार **सुप्रतिष्ठित-पाद** (जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी देव! इस कुमारके महापुरुष लक्षणोमे एक है। (२) देव! इस कुमारके नीचे पैरके तलवेमे सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=घुट्ठी)-युक्त सहस्र आरोवाले चक्र है। (३) देव! यह कुमार **आयत-पार्ष्णि** (=चौळी घुट्ठीवाला) है। (४) ० **दीर्घ-अगुल** ०। (५) ० मृदु तरुण हस्त-पाद०। (६) ० जाल-हस्त-पाद (=अगुलियोके बीच कही छेद नही दिखाई देता) ०। (७) ० उस्सखपाद (=गुल्फ जिस पादमे ऊपर अवस्थित है) ०। (८) ० एणी-जघ (=पेंडुलीवाला भाग मृग जैसा जिसका हो) ०। (९) (सीधे) खळे बिना झुके देव! यह कुमार दोनो घुटनोको अपने हाथके तलवेसे छूता है (=आजानुवाहु) ०। (१०) कोपाच्छादित (=चमळेसे ढंकी) वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) ०। (११) सुवर्ण वर्ण० काचन समान त्वचावाले०। (१२) सूक्ष्मछवि (छवि=ऊपरी चमळा) है० जिससे कायापर मैल-धूल नही चिपटती०। (१३) एकैकलोम, एक एक रोम कूपमे एक एक रोम है०। (१४) ० ऊर्ध्वाग्र-लोम० अजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (वायेसे दाहिनी ओर)से कुडलित लोमोके सिरे ऊपरको उठे है ०। (१५) ब्राह्म-ऋजु-गात्र (=लम्बे अकुटिल शरीरवाला) ०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातो अगोमे पूर्ण आकारवाला) ०। (१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिहकी भॉति जिसका विशाल हो) ०। (१८) चितान्तरास (दोनो कधोका विचला भाग जिसका चित=पूर्ण हो) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमडल है० जितनी शरीरकी उँचाई, उतना व्यायाम (=चौळाई), (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कधेवाला) ०। (२१) रसग्ग-सग्ग (=सुन्दर गिराओवाले) ०। (२२) सिह-हनु (=सिह समान पूर्ण ठोळीवाला) ०। (२३) चव्वालीस-दन्त०। (२४) सम-दन्त०। (२५) अविवर-दन्त (=दॉतोके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ (=खूब सफेद दाढवाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ।०। (२८) ब्रह्म-स्वर करविक (पक्षीसे) स्वरवाला०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली ऑखोवाला) ०। (३०) गो-पक्ष्म (=गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) देव, इस कुमारकी भौहोके बीचमे श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगळी जैसे सामने उभळे शिरवाला) ० है। देव! यह भी इस कुमारके महापुरुष-लक्षणोमे है।

'देव! यह कुमार महापुरुपोके इन वत्तीस लक्षणोसे युक्त है, जिन (लक्षणो)से युक्त होनेसे उस महापुरुषकी दो ही गतियाँ होती है, तीसरी नही। यदि वह घरमे०। यदि वह घरसे वेघर०।'

"भिक्षुओ! तव **वन्धुमान्** राजाने ज्योतिपी ब्राह्मणोको नये कपळोसे आच्छादितकर (उनकी) सभी इच्छाओको पूरा किया। भिक्षुओ! तव वन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये धाइया नियुक्त की। कोई दूध पिलाती थी, कोई नहलाती थी, कोई गोदमे लेती थी, कोई गोदमे लेकर टहलाती थी। भिक्षुओ! विपस्सी कुमारको जन्म कालहीसे दिन रात श्वेत छत्र धारण कराया जाता था,

---

[1] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त (मज्झिमनिकाय ९१) पृष्ठ ३७४-७५।

जिसमे कि उसे शीत, उष्ण, तृण, धूली या ओस कष्ट न दे। भिक्षुओ! विपस्सी कुमार उत्पन्न होकर सभीका प्रिय=मनाप हुआ। भिक्षुओ! जैसे उत्पल, पद्म, या पुण्डरीक (होता है) वैसे ही विपस्सी कुमार सभीका प्रिय=मनाप हुआ। वह (कुमार) एककी गोदसे दूसरेकी गोदमे घूमता रहता था। भिक्षुओ! कुमार विपस्सी उत्पन्न होकर मञ्जु (=कोमल) स्वरवाला, मधुर स्वरवाला (और) प्रियस्वरवाला था। भिक्षुओ! जैसे हिमालय पहाळ पर करविंक नामका पक्षी मञ्जुस्वरवाला, मनोज्ञ०, मधुर०, प्रिय० (होता है), भिक्षुओ! उसी तरह विपस्सी कुमार मञ्जुस्वरवाला० था। भिक्षुओ! तव उस उत्पन्न हुये विपस्सी कुमारको (पूर्व) कर्मके विपाकसे उत्पन्न दिव्य-चक्षु उत्पन्न हुआ, जिस (दिव्य-चक्षु)से वह रात दिन चारो ओर एक योजन तक देखता था। भिक्षुओ! उत्पन्न हो वह विपस्सी कुमार त्रायस्त्रिंश देवताओकी भाँति एकटक देखता था। 'कुमार एकटक देखता (=विपस्सति) है।' इसीसे भिक्षुओ! विपस्सी विपस्सी कहते विपस्सी कुमार नाम पळा।

"भिक्षुओ! तव बन्धुमान् राजा कचहरी (=अधिकरण)मे वैठ, विपस्सी कुमारको गोदमे ले न्याय करता था। भिक्षुओ! तव विपस्सी कुमार पिताकी गोदमे वैठे विचार विचारकर न्यायसे फैसला करता था। 'कुमार विचार विचारकर०' अत भिक्षुओ! और भी विपस्सी विपस्सी (विपस्सति) कहते विपस्सी कुमार नाम पळा। भिक्षुओ! तव वन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये तीन महल वनवा दिये। एक वर्षाके लिये, एक हेमन्त ऋतुके लिये, एक ग्रीष्म कालके लिये। पाँच भोगो (=काम-गुणो)का प्रवन्ध करवा दिया। भिक्षुओ! वहाँ विपस्सी कुमार वर्षा कालमे वर्षावाले महलमे चार महीना, निष्पुरुष (=केवल स्त्री) वादिकाओसे सेवित हो महलसे नीचे कभी नही उतरता था।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

(४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण

"भिक्षुओ! विपस्सी कुमारने वहुत वर्षो, कई सौ वर्षो, कई सहस्र वर्षोके, वीतनेपर (एक दिन) सारथीसे कहा—'भद्र सारथि! अच्छे-अच्छे रथोको जोतो। (मै) उद्यानभूमि को वहाँकी सुन्दरता देखनेके लिये जाऊँगा।' भिक्षुओ! तव सारथीने 'अच्छा देव!' कहकर विपस्सी कुमारको उत्तर दे अच्छे अच्छे रथोको जोतकर विपस्सी कुमारको इसकी सूचना दी—'देव! अच्छे अच्छे रथ जुते तैयार है, अव जो आप उचित समझे।' भिक्षुओ! तव विपस्सी कुमार एक अच्छे रथपर चढकर अच्छे अच्छे रथोके साथ उद्यानभूमिके लिये निकला।

१—वृद्ध—"भिक्षुओ! उद्यानभूमि जाते हुये विपस्सी कुमारने एक गतयौवन पुरुषको वूढे वँडेरी जैसे झुके टेढे दण्डका सहारा ले काँपते जाते हुये देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'भद्र सारथि! यह पुरुष कौन है? इसके केश भी दूसरोके जैसे नही है, शरीर भी दूसरोके जैसा नही है।' 'देव! यह वूढा कहा जाता है।' 'भद्र सारथि! वूढा क्या होता है'? 'देव, यह वूढा कहा जाता है, इसे अव वहुत दिन जीना नही है।' भद्र सारथि! 'तो क्या मै भी वूढा होऊँगा, क्या यह अनिवार्य है?' 'देव! आप, हम और सभी लोगोके लिये वुढापा है, अनिवार्य है।' 'तो भद्र सारथि! वस उद्यानभूमि जाना रहने दो, यहाँहीसे (फिर रथको) अन्त पुर लौटाकर ले चलो।' भिक्षुओ! 'अच्छा देव'! कह-कर सारथी विपस्सी कुमारको उत्तर दे (रथको) वहीसे लौटाकर, अन्त पुर ले गया।

"भिक्षुओ! तव विपस्सी कुमार अन्त पुरमे जाकर दुखी (और) दुर्मना हो चिन्तन करने लगा—इस जन्म लेनेको धिक्कार है, जव कि जन्मे हुयेको जरा सताती है'।"

"भिक्षुओ! तव वन्धुमान् राजाने सारथीको वुलाकर ऐसा कहा—'भद्र सारथि! क्या कुमार उद्यानभूमिमे टहल चुका, क्या कुमार उद्यानभूमिसे प्रसन्न हुआ?' 'देव! कुमार उद्यानभूमि-

मे टहलने नही गये, न देव ! कुमार उद्यानभूमिसे प्रसन्न हुये।' 'भद्र सारथि ! उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने क्या देखा ?' 'देव ! उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने एक वृद्ध० पुरुषको जाते देखा। देखकर मुझसे कहा '० यह पुरुष ० ?' देव ! अन्त पुरमे जाकर चिन्तन कर रहे हैं—'इस जन्म लेनको धिक्कार०'।

"भिक्षुओ ! तब वन्धुमान् राजाके मनमे यह हुआ—'ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार राज्य न करे, ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार घरसे बेघर होकर प्रव्रजित हो जावे। ज्योतिषी ब्राह्मणोका कहा हुआ कही ठीक न हो जावे।' भिक्षुओ ! तव वन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारकी प्रसन्नताके लिये और भी अधिक पाँचो भोगो (= काम गुणो)से उसकी सेवा करवाई, जिसमे कि विपस्सी कुमार राज्य करे, जिसमे कि विपस्सी कुमार घरसे० न प्रव्रजित हो। जिसमे कि ब्राह्मणोके कहे० मिथ्या होवें। भिक्षुओ ! तव विपस्सी कुमार पाँचो भोगो (=काम गुणो)मे सेवित किया जाने लगा।

२—रोगी—"तब विपस्सी कुमार बहुत वर्षोके०। उद्यानभूमि जाते विपस्सी कुमारने एक अपने ही मल-मूत्रमे पळे, दूसरोसे उठाये जाते, दूसरोसे बैठाये जाते एक रोगी, दु खी, बहुत बीमार पुरुषको देखा। देखकर सारथीसे कहा—'० यह पुरुष कौन है ? इसकी आँखे भी दूसरोकी जैसी नही है, स्वर भी०।' 'देव ! यह रोगी है।—'० रोगी क्या होता है ?' 'देव ! यह बीमार है। इस रोगसे अव शायद ही उठे।'—० 'क्या मै भी व्याधिधर्मा हूँ, क्या व्याधि अनिवार्य है ?' 'देव ! आप, हम ओर सभी लोग व्याधि-धर्मा है, व्याधि अनिवार्य है।' 'तो० बस आज अव टहलना ० चिन्तन करने लगा—"इस जन्म लेनेको धिक्कार ०।'

"भिक्षुओ ! तब वन्धुमान् राजा सारथीको०। देव, कुमारने उद्यानभूमि जाते रोगी० को देखा। देख कर०। अन्त पुरमें चिन्तन कर रहे है—'इस जन्म लेनेको धिक्कार०।'

"भिक्षुओ ! तव वन्धुमान् राजाके मनमे ऐसा हुआ—'ऐसा न हो विपस्सी० राज्य न० सच हो जावे !'—'भिक्षुओ ! तव बन्धुमान् राजा० मिथ्या हो। तव भिक्षुओ ! विपस्सी कुमार पाँच भोगो (=काम गुणो)से सेवित किया जाने लगा।

३—मृत—"भिक्षुओ ! तव विपस्सी कुमारने बहुत वर्षोके० उद्यानभूमि जाते हुये बहुत लोगोको इकट्ठा हो नाना प्रकारके अच्छे अच्छे कपळोसे शिविका वनाते हुये देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'० यह वहुत लोग इकट्ठा हो क्यो शिविका (=अर्थी) बना रहे है ?'—'देव ! यह मर गया है।'—'० तो जहाँ वह मृतक है वहाँ रथको ले चलो।'—'अच्छा देव !' कहकर सारथी० जहाँ वह मृतक था वहाँ रथ ले गया। भिक्षुओ ! तव विपस्सी कुमारने (उस) प्रेत=मृतकको देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'० यह मरना क्या चीज है ?'—'देव ! यह मर गया है। अव उसके माता, पिता, या जाति-वाले दूसरे सम्वन्धी उसको नही देख सकेंगे, (और) वह भी अपने माता, पिता० को नही देख सकेगा।'—'तो क्या मै भी मरणधर्मा हूँ, मृत्यु अनिवार्य है ? मुझे भी क्या देव (=पिता), देवी, (=माता) जातिवाले या दूसरे नही देख सकेंगे, (और, क्या) मैं भी नही देख सकूँगा ?'—'देव ! आप, हम और सभी लोग मरणधर्मा है, मृत्यु अनिवार्य है। आपको भी देव० नही देख सकेंगे ओर आप भी नही देख सकेंगे।'—'भद्र सारथि ! वस आज अव टहलना रहने दो०।' 'अच्छा देव' कह सारथी० अन्त पुर ले गया। भिक्षुओ ! वहाँ विपस्सी कुमार० चिन्तन करने लगा—'इस जन्म लेनेको धिक्कार है, जो कि जन्मे हुयेको जरा, व्याधि, और मृत्यु सताते हैं।'

"भिक्षुओ ! तव वन्धुमान् राजा सारथीको० कुमारने मृतकको०। अन्त पुरमे चिन्तन कर रहे है—'जन्म लेना धिक्कार०।'

"भिक्षुओ ! तव वन्धुमान् राजाके मनमे यह हुआ—'कही ऐसा न हो०।' भिक्षुओ ! तव

बन्धुमान् राजा विपस्सी कुमारके लिय और भी अधिक० जिससे० कुमार राज्य करे, न घरसे बेघर०। भिक्षुओ! इस प्रकार० कुमार सेवित किया जाने लगा।

४—संन्यास—"भिक्षुओ! तब बहुत वर्षोके०। विपस्सी कुमारने उद्यानभूमि जाते एक मुण्डित, काषाय-वस्त्रधारी, प्रव्रजित (=साधु) को देखा। देखकर सारथीसे पूछा,—'० यह पुरुष कौन है, इसका शिर भी मुँळा है, वस्त्र भी दूसरो जैसे नही?'—'देव, यह प्रव्रजित है।'—'० यह प्रव्रजित क्या चीज है'?—'देव, अच्छे धर्माचरणके लिये, शान्ति पानेके लिये, अच्छे कर्म करनेके लिये, पुण्य-सचय करनेके लिये, अहिसा, भूतो पर अनुकम्पा करनेके लिये यह प्रव्रजित हुआ है'—'० तब जहाँ वह प्रव्रजित है वहाँ रथको ले चलो।'—'अच्छा देव!' कह सारथी०। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने उस प्रव्रजितसे यह कहा—'हे! आप कौन है, आपका शिर भी० आपके वस्त्र भी०?'—'देव, मै प्रव्रजित हूँ।'—'आप प्रव्रजित है, इसका क्या अर्थ?'—'देव, मै, अच्छे धर्माचरणके लिये ० प्रव्रजित हुआ हूँ।'

(५) सन्यास

"भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने सारथीसे कहा—'तो ० रथको अन्त पुर लौटा ले जाओ। मै तो यही शिर दाढी मुँळवा, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'अच्छा देव!' कहकर सारथी० वहीसे रथको अन्त पुर लौटा ले गया। और विपस्सी कुमार वही शिर और दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये।

"भिक्षुओ! **बन्धुमती** राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योने सुना कि० कुमार शिर दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये। सुनकर उन लोगोके मनमे एसा हुआ—'वह धर्म मामूली नही होगा, वह प्रव्रज्या भी मामूली नही होगी, जहाँ विपस्सी कुमार शिर दाढी मुँळा० प्रव्रजित हुये है। यदि विपस्सी कुमार शिर दाढी मुँळा० प्रव्रजित हो गये तो हम लोगोको अब क्या है?' भिक्षुओ! तब वे सभी चौरासी हजार लोग शिर और दाढी मुँळा० विपस्सीके पीछे प्रव्रजित हो गये। भिक्षुओ! उसी परिषद्के साथ विपस्सी बोधिसत्व ग्राम, निगम (=कस्बा), जनपद (=दीहात) और राजधानियोमे विचरण करने लगे।

(६) बुद्धत्व-प्राप्ति

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको एकान्तमे ध्यान करते हुए इस प्रकार चित्तमे वितर्क (=ख्याल) उत्पन्न हुआ—'यह मेरे लिये अच्छा नही है कि मै लोगोकी भीळके साथ विहार करूँ।' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व उसके बादसे अपने गणको छोळ अकेले रहने लगे। वे चौरासी हजार प्रव्रजित दूसरी ओर चले गये और विपस्सी बोधिसत्व दूसरी ओर। भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको (एक दिन) एकान्तमे ध्यान करते समय इस प्रकार चित्त मे विचार उत्पन्न हुआ—'यह ससार बहुत कष्टमे पळा है, जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, च्युत होता है और उत्पन्न होता है। और इस दु खसे जरा और मृत्युसे नि सरण (=दु खसे छूटनेके उपाय)को नही जानता है। इस दु खसे जरा और मृत्युसे नि सरण कैसे जाना जायेगा?

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमे यह हुआ—(१) 'क्या होनेसे जरा-मरण होता है, किस प्रत्यय (=कारण)से जरा-मरण होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको ठीकसे विचारनेके बाद प्रज्ञासे बोध हुआ—ज न्म के हो ने से ज रा म र ण हो ता है, जन्मके प्रत्ययसे जरा-मरण होता है।

(२) "भिक्षुओ! तब० बोधिसत्वके मनमे यह हुआ—'क्या होनेसे जन्म होता है, किस प्रत्ययसे जन्म होता है?" तब० बोध हुआ—भव (=आवागमन)के होनेसे जन्म होता है, भवके प्रत्ययसे जन्म होता है।

(३) '० बोध हुआ,—उपादानके होनेसे भव होता है, उपादानके प्रत्ययसे भव होता है।

(४) '० बोध हुआ—तृष्णाके होनेसे उपादान होता है, तृष्णाके०

(५) '० बोध हुआ—वेदना[1] (=अनुभव)के होनेसे तृष्णा होती है, वेदना०

(६) '० बोध हुआ—स्पर्श (=इन्द्रिय और विषयके मेल)के होनेसे तृष्णा होती है, स्पर्श०

(७) '० 'षडायतनके होनेसे स्पर्श होता है, षडायतन०।

(८) '० नामरूपके होनेसे षडायतन[2] होता है, नामरूपके०

(९) '० विज्ञानके होनेसे नामरूप होता है, विज्ञानके०।

(१०) '० नामरूपके होनेसे विज्ञान होता है, नामरूप ०।

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमे यह हुआ—'विज्ञानसे फिर लौटना शुरू होता है, नामरूपसे फिर आगे (क्रम) नही चलता। इसीसे सभी जन्म लेते है, वृद्ध होते है, मरते है, च्युत होते, है। जो यह नामरूपके प्रत्ययसे विज्ञान, (और) विज्ञानके प्रत्ययसे नामरूप, नामरूपके प्रत्ययसे षडायतन, षडायतनके प्रत्ययसे स्पर्श, स्पर्शके प्रत्ययसे वेदना, वेदनाके प्रत्ययसे तृष्णा, तृष्णाके प्रत्ययसे उपादान, उपादानके प्रत्ययसे भव, भवके प्रत्ययसे जाति, जातिके प्रत्ययसे जरा, मरण, शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख=दौर्मनस्य, और परेशानी होती है। इस प्रकार इस केवल दुःख-पुंजकी उत्पत्ति(=समुदय) होती है।

"भिक्षुओ! ० बोधिसत्वको समुदय समुदय करके, पहले कभी नही सुने (जाने) गये धर्म (=विषय)मे आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। भिक्षुओ! तब विपस्सी०के मनमे ऐसा हुआ—

(१) 'किसके नही होनेसे जरामरण नही होता, किसके विनाश (=निरोध)से जरामरणका निरोध होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको बोध हुआ—जन्मके नही होनेसे जरामरण नहीं होता, जन्मके निरोधसे जरामरणका निरोध हो जाता है।

(२) '० बोध हुआ—भवके नही होनेसे जन्म नही होता, भवके निरोधसे जन्मका निरोध हो जाता है

(३) '० बोध हुआ—उपादान (=भोगग्रहण)के नही होनेसे भव भी नही होता, उपादानके निरोध से०

(४) '० बोध हुआ—तृष्णाके नही होनेसे उपादान भी नही होता, तृष्णाके निरोध०।

(५) '० बोध हुआ—वेदनाके नही होनेसे तृष्णा भी नही होती, वेदनाके निरोधसे०।

(६) '० बोध हुआ—स्पर्शके नही होनेसे वेदना भी नही होती, स्पर्शके निरोधसे०।

(७) '० बोध हुआ—षडायतनके नही होनेसे स्पर्श भी नही होता, षडायतनके निरोधसे०।

(८) '० बोध हुआ—नामरूपके नही होनेसे षडायतन भी नही होता, नामरूपके निरोधसे०।

(९) '० बोध हुआ—विज्ञानके नही होनेसे नामरूप भी नही होता, विज्ञानके निरोधसे०।

(१०) '० बोध हुआ—नामरूपके नही होनेसे विज्ञान भी नही होता, नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध हो जाता है।

---

[1] इन्द्रिय और विषयके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख सुख आदि विकार उत्पन्न होते है, वही वेदना है।

[2] चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन—यही षड्-आयतन=छ आयतन है।

"भिक्षुओ ! तव विपस्सी वोधिसत्वके मनमे यह हुआ—'मुक्तिका मार्ग मैंने समझ लिया नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध, विज्ञानके निरोधसे नामरूपका निरोध, नामरूपके निरोधसे षडायतनका निरोध, षडायतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध, तृष्णाके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जन्मका निरोध, जन्मके निरोधसे जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य और परेशानी, सभी निरुद्ध हो जाते है। इस प्रकार सारे दुःखोका निरोध (=नाश) हो जाता है।

"भिक्षुओ ! विप्पसी वोधिसत्वको 'निरोध' 'निरोध' करके पहले न सुने गये धर्मोमे आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान०, प्रज्ञा०, विद्या०, आलोक०। भिक्षुओ ! तव विप्पसी वोधिसत्व उसके वाद पाँच उपादान-स्कन्धो[1]मे उदय और व्यय (=उत्पत्ति और विनाश) के देखने वाले हुये। यह रूप है, यह रूपका समुदय (=उत्पत्ति) यह रूपका अस्त हो जाना है। यह वेदना, यह वेदनाका समुदय, यह वेदनाका अस्त हो जाना है। यह संज्ञा०। यह संस्कार०। यह विज्ञान०। पाँच उपादान-स्कन्धोके उत्पत्ति-विनाशको देखकर विहार करनेसे उनका चित्त शीघ्र ही चित्तमलो (=आस्रवो) से बिलकुल मुक्त हो गया।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

(७) धर्मचक्रप्रवर्तन

"भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके मनमे यह हुआ—क्या मैं अवश्य ही धर्म का उपदेश करूँ? 'भिक्षुओ ! तव विप्पसी भगवान् ० के मनमे यह हुआ—'मैंने इस गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुर्वोध, शान्त, प्रणीत (=उत्तम), तर्कसे अप्राप्य, निपुण और पण्डितोसे ही समझने योग्य धर्मको जाना है। (और) यह प्रजा (=सासारिक लोग) आलय (=भोगो) मे, रमनेवाली आलयमे रत, और आलयसे उत्पन्न है। आलयमे रमने आलयमे रत रहनेवाले और आलयमे ही प्रसन्न रहनेवालेको यह समझना कठिन है कि अमुक प्रत्ययसे अमुककी उत्पत्ति होती है। यह भी समझना कठिन है कि सभी संस्कारोके शान्त हो जानेसे, सभी उपाधियोके अन्त हो जानेसे, (और) तृष्णाके नाशसे, राग-रहित होना ही निर्वाण है। मै भी धर्मका उपदेश-करूँ, और दूसरे न समझे, तो यह मेरा व्यर्थका प्रयास और श्रम होगा। भिक्षुओ ! तव विप्पस्सी भगवान्० को इन अश्रुतपूर्व आश्चर्यजनक गाथाओका भान हुआ—

> वहुत कष्टसे मैंने इस धर्मको पाया है, इसका उपदेश करना ठीक नही।
> राग और द्वेषमे लिप्त लोगोको यह धर्म जल्दी समझमे नही आवेगा ॥ १ ॥
> उल्टी धारवाले, निपुण, गम्भीर, दुर्ज्ञेय और सूक्ष्म वातको रागोमे रत,
> और अविद्या के अंधकारमे पळे (लोग) नही समझ सकते ॥ २ ॥

"भिक्षुओ ! इस प्रकार चिन्तन करते विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मके उपदेश करनेमे उत्साह-रहित हो गया। भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० के चित्तको (अपने) चित्तमे जान महाब्रह्माके मनमे यह हुआ—'अरे ! लोक नष्ट हो जायगा, लोक विनष्ट हो जायगा, यदि विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मोपदेशके लिये उत्साह-रहित हो गया।' भिक्षुओ ! तव महाब्रह्मा, जैसे कोई वलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी वाँहको पसारे और पसारी हुई वाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकमे अन्तर्धान हो विपस्सी भगवान् ० के सामने प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! तव महाब्रह्मा चादरको एक कंधेपर करके दाहिने घुटनेको पृथ्वीपर टेक, जिधर विपस्सी भगवान्० थे उधर हाथ जोळ प्रणामकर, विपस्मी भगवान्०से यह वोला—

---

[1] विषयके तौरपर उपयुक्त होनेवाले भौतिक अभौतिक पदार्थ।

'भन्ते ! भगवान् धर्मका उपदेश करे, सुगत धर्मका उपदेश करे, (ससारमे) चित्तमल-रहित लोग भी हैं, धर्म नही सुननेसे उनकी बळी हानि होगी, धर्मके जाननेवाले (प्राप्त) होगे।'

"भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे कहा—'ब्रह्मा ! मैने यह समझा था—यह धर्म गम्भीर०[1]।

'ब्रह्मा ! इस तरह चिन्तन करते हुये मेरा चित्त० उत्साह-रहित हो गया।'

"दूसरी बार भी महाब्रह्मा०। तीसरी वार भी महाब्रह्माने विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'भन्ते ! भगवान् धर्मका उपदेश करे० धर्मके जाननेवाले होगे।' भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० ने ब्रह्माके भाव (=अध्याश) को समझ, प्राणियोपर करुणा करके बुद्ध-चक्षुसे ससारको देखा। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान् ० ने बुद्ध-चक्षुसे ससारका विलोकन करते हुये, प्राणियोमे चित्तमल (=क्लेश)-रहित अधिक क्लेशवालो, तीक्ष्ण इन्द्रिय (प्रज्ञा) वाले, मृदु इन्द्रिय वाले, अच्छे आकार वाले, किसी बातको जल्दी समझने वाले और परलोकका भय खानेवाले लोगोको देखा। जैसे उत्पलके वनमे, या पद्मके वनमे, या पुण्डरीकके वनमे, कितने ही जलसे उत्पन्न, जलमे बढे, जलसे निकले कोई कोई उत्पल पद्म या पुण्डरीक जलके भीतर डूबे रहते है।० कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक जलके बराबर रहते हैं, तथा ० कोई० जलके ऊपर निकल कर जलसे अलिप्त खळे रहते हैं, वैसे ही भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्ने ससारको बुद्ध-चक्षुसे अवलोकन करते हुये अल्प क्लेश-रहित, चित्तमल-रहित प्राणियोको० देखा। भिक्षुओ ! तव महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्०के चित्तकी बातको जानकर विपस्सी भगवान्०से गाथाओमे बोला—

"जैसे (कोई) पथरीले पहाळकी चोटीपर चढ, चारो ओर मनुष्योको देखे,
उसी तरह हे शोकरहित ! धर्म रूपी प्रासादपर चढकर चारो ओर शोकसे पीडित,
जन्म और जरासे पीडित लोगोको देखो॥ ३॥
'उठो वीर ! हे सग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! उऋण-ऋण ! जगमे विचरो,
धर्म प्रचार करो, भगवान् ! समझने वाले मिलैंगे॥ ४॥'

"भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे गाथामे कहा—

'ब्रह्मा ! अमृतका द्वार उनके लिये खुल गया, जो श्रद्धापूर्वक (उपदेश) सुनेगे। मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा,

यही समझकर मै लोगोको अपने सुन्दर और प्रणीत धर्मका उपदेश नही करना चाहता था॥५॥'

"भिक्षुओ ! तव महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० से धर्मोपदेश करनेका बचन ले विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर और प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० के मनमे यह हुआ—'मै किसको पहले पहल धर्मोपदेश करूँ, कौन इस धर्मको शीघ्र जान सकेगा?' भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्० के मनमे यह हुआ—पण्डित, व्यक्त, मेधावी, और बहुत दिनोसे निर्मल चित्त यह खण्ड राजपुत्र और तिस्स पुरोहितपुत्र वन्धुमती राजधानीमे रहते है। अत मैं खण्ड० (और) तिस्स० को पहले पहल धर्मोपदेश करूँ, वे इस धर्मको शीघ्र ही समझ लेगे।' भिक्षुओ ! तव विपस्सी भगवान्ने० जैसे कोई बलवान् पुरुष० वैसे ही बोधिवृक्षके नीचे अन्तर्धान हो वन्धुमती राजधानीके खेमा मृगदावमे प्रकट हुये। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने मालीसे कहा—'उद्यानपाल ! सुनो। वन्धुमती राजधानीमे जाकर खण्ड० और तिस्स० को ऐसा कहो—'भन्ते ! विपस्सी भगवान्० वन्धुमती राजधानीमे आये

[1] ऊपर जैसा पाठ।

हुये है, खेमा मृगदावमे विहार कर रहे है। वे आप लोगोसे मिलना चाहते है।' भिक्षुओ! उद्यानपालने भी 'अच्छा भन्ते!' कह विपस्सी भगवान्० को उत्तर दे वन्धुमती राजधानीमे जाकर खण्ड०और तिस्स० से यह कहा—'भन्ते! विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमे आये हुये है, खेमा मृगदावमे विहार कर रहे है। वह आप लोगोसे मिलना चाहते है।'

"भिक्षुओ! तव खण्ड० और तिस्स ० अच्छे अच्छ रथोको जोतवा अच्छे अच्छे रथोपर चढ, अच्छे अच्छे रथोके साथ वन्धुमती राजधानीसे निकलकर जहाँ खेमा मृगदाव था वहाँ गये। जितना रथसे जाने लायक रास्ता था उतना रथसे जाकर (फिर) रथसे उतर पैदल ही जहाँ विपस्सी भगवान्० थे वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० न उनको आनुपूर्वी (=क्रमानुकूल) कथा कही—जैसे कि, दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगोके दोप, हानि और क्लेश तथा भोग-त्यागके गुण। जब भगवान्ने जान लिया कि वे अव स्वच्छ-चित्तके, मृदुचित्त नीवरणोसे-रहित-चित्त उदग्रचित्त और प्रसन्न-चित्त है, तव उन्होने वुद्धोके स्वय जाने हुय ज्ञान दु ख, समुदय, निरोध और मार्गका उपदेश किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरहसे रग पकळता है, उसी तरह खण्ड० और तिस्स० को उसी समय उसी आसनपर रागरहित निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—'जो कुछ समुदयधर्मा (=उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध-धर्मा (=नाश होनेवाला) है।' उन्होने धर्मको देखकर, धर्मको प्राप्तकर, धर्मको जानकर, धर्ममे अच्छी तरह स्थित हो विचिकित्सा-दुविधा-रहित हो, शकाओसे रहित हो, और शास्ताके धर्म (=शासन)मे परम विशारदताको प्राप्त हो विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'आश्चर्य भन्ते! अद्भुत, भन्ते! जैसे उलटेको सीधा०[1] उसी तरह भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते! हम लोग आपकी शरण जाते है और धर्मकी भी। भन्ते! भगवान्के पास हम लोगोको प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।'

"भिक्षुओ! खण्ड० और तिस्स० ने विपस्सी० भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। विपस्सी भगवान्० ने उन दोनोको धार्मिक कथाओसे सच्चे धर्मको दिखाया, प्रमुदित किया, उत्साहित किया और सतुष्ट किया। सस्कारोके दोप, अपकार और क्लेश, और निर्वाणके गुण प्रकाशित किये। विपस्सी भगवान्० के सच्चे धर्मको दिखानेसे० शीघ्र ही उनके चित्त आस्रवोसे विल्कुल रहित हो गये।

"भिक्षुओ! वन्धुमती राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योने सुना—'विपस्सी भगवान्० वन्धुमती राजधानीमे आकर खेमा मृगदावमे विहारकर रहे है। खण्ड० और तिस्स० विपस्सी भगवान्० के पास शिर दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये है।' सुनकर उन लोगोके मनमे यह हुआ—'वह धर्म मामूली नही होगा, वह प्रब्रज्या भी मामूली नही होगी, जहाँ खण्ड० और तिस्स० शिर और दाढी मुँळा० प्रव्रजित हो गये है। जव खण्ड० और तिस्स० शिर और दाढी मुळा० प्रव्रजित हो गये है, तो हम लोगोको क्या है?'

"भिक्षुओ! तव वे चौरासी हजार लोग वन्धुमती राजधानीसे निकल, जहाँ खेमा मृगदाव था (और) जहाँ विपस्सी भगवान्० थे, वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उन लोगोको आनुपूर्वी कथा कही—जैसे दानकथा०[2]। जव भगवान्ने जान लिया कि ये अव स्वच्छ-चित्त० हो गये है, तब उन्होने वुद्धोके स्वय जाने हुये ज्ञान—दु ख० मार्ग का प्रकाश किया। जैसे शुद्ध वस्त्र० धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया। धर्मको देख० विशारदताको प्राप्तकर विपस्सी भगवान्० से यह कहा—आश्चर्य भन्ते! अद्भुत, भन्ते! ० हम लोग भगवान्की शरणमे जाते है, धर्म और सघकी भी, भन्ते! प्रव्रज्या०।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२। [2] देखो पिछला पृष्ठ।

"भिक्षुओ! उन चौरासी हजार लोगोने विपस्सी भगवान्० के पास प्रव्रज्या ० पाई। विपस्सी भगवान्० ने उनको धार्मिक कथाओसे० चित्तके आस्रव विल्कुल नष्ट (=क्षीण) हो गये।

"भिक्षुओ! तब पहलेवाले चौरासी हजार प्रव्रजितोने (जो विपस्सी कुमारके साथ प्रव्रजित हुये थे) सुना—'विपस्सी भगवान्०' भिक्षुओ! तब वे ० अभिवादनकर एक ओर वैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उनको०। ०० चित्तके आस्रव विलकुल नष्ट हो गये।

(८) *शिष्यो द्वारा धर्मप्रचार*

"भिक्षुओ! उस समय वन्धुमती राजधानीमे अळसठ लाख भिक्षुओका महासघ निवास करता था। भिक्षुओ! तव विपस्सी भगवान्को एकान्तमे ध्यानावस्थित होते समय चित्तमे यह विचार उत्पन्न हुआ—'इस समय वन्धुमती राजधानीमे अळसठ लाख० निवास करता है। अत मै भिक्षुओको कहूँ—भिक्षुओ! चारिकाके लिये जाओ, लोगोके हितके लिये, लोगोके सुखके लिये, ससारके लोगोपर अनुकम्पा कग्नेके लिये, देव और मनुष्योके लाभ हित (और) सुखके लिये विचरो। एक मार्गमे दो मत जाओ। भिक्षुओ! आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण, अर्थयुक्त, स्पष्ट अक्षरोसे धर्मका उपदेश करो, बिल्कुल परिपूर्ण, (और) परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करो। ऐसे निर्मल मनुष्य है, जिनकी धर्मके नही सुननेसे हानि होगी। वह धर्मके समझनेवाले होगे। और, छै, छै वर्षोके वाद वन्धुमती राजधानीमे **प्रातिमोक्ष**के वाचनके लिये आना।' तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० के चित्त० को जान० प्रगट हुआ। भिक्षुओ! तव महाब्रह्मा चादरको एक कधे पर० यह बोला।—'ऐसा ही है भगवान्। एसा ही है सुगत! वन्धुमती राजधानीमे (अभी) अळसठ लाख० निवास करता है। भन्ते! भगवान् भिक्षुओको कहे—भिक्षुओ! चारिका करनेके लिये जावो० बन्धुमती राजधानीमे **प्रातिमोक्ष**-वाचनके लिये आना।' भिक्षुओ! महाब्रह्माने ऐसा कहा। यह कहकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वही अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ! तव विपस्सी भगवान्० न सायकाल ध्यानसे उठकर भिक्षुओको सवोधित किया—'भिक्षुओ! यहाँ एकान्तमे० विचार उत्पन्न हुआ—अभी बन्धुमती राजधानीमे अळसठ लाख०। तो मै भिक्षुओको कहूँ,—'भिक्षुओ! चारिकाके लिये ०। ०प्रातिमोक्ष-वाचनके लिये आना। भिक्षुओ! तब महाब्रह्मा०। यह कह मेरा अभिवादनकर (और) प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ! मै कहता हूँ —'चारिकाके लिये ०। प्रातिमोक्ष० आना'।

"भिक्षुओ! तव उन भिक्षुओने एक ही दिनमे देहात (=जनपद) मे चारिका करनेके लिये चल दिया। भिक्षुओ! उस समय जम्बूद्वीपमे चौरासी हजार आवास (=मठ) थे। एक वर्ष के वीतने पर देवताओने (आकाश—) वाणी सुनाई—'हे मार्पो[1]! एक वर्ष निकल गया, अव पाँच वर्ष और वाकी है। पाँच वर्षोके बीतनेपर प्रातिमोक्षके वाचनके लिये वन्धुमती राजधानी जाना'। दो वर्षोके वीतने पर०। ०तीन वर्षोके ०।० चार वर्षोके ० ० पाँच वर्षोके ०। ० छै वर्षोके वीतनेपर देवताओने० सुनाई—'मार्पो! छै वर्ष वीत गये। समय हो गया, प्रातिमोक्षके वाचनके लिये० जाये'।—भिक्षुओ! तव कितने भिक्षु अपनी ऋद्धिके वलसे, कितने देवताओकी ऋद्धिके वलसे एक ही दिनमे वन्धुमती राजधानीमे प्रातिमोक्षके वाचनके लिये चले आये। भिक्षुओ! तव विपस्सी भगवान्० ने भिक्षु-सघके लिये इस प्रकार प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) किया।

तितिक्षा और क्षमा परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाणको सर्वोत्तम वतलाते है।

---

[1] समान व्यक्तिके सबोधनके लिये देवताओका यह खास शब्द है।

प्रव्रजित श्रमण न तो दूसरेको हानि पहुँचाता है और न दूसरेको कष्ट देता है ॥ ६ ॥
'सभी पापोका न करना, पुण्य कर्मोका करना,
(और) अपने चित्तकी शुद्धि, यही बुद्धोका उपदेश है ॥ ७ ॥
'कठोर, दुर्वचनका न कहना, दूसरोकी हिंसा न करनी, प्रातिमोक्षमे सयम,
मात्रासे भोजन अरण्यमे निवास, समाधि-अभ्यास, यही बुद्धोका शासन है ॥ ८ ॥

(९) देवता साक्षी

"भिक्षुओ ! एक समय मै **उक्कट्ठाके** पास **सुभगवनमे** सालराज वृक्षके नीचे विहार कर रहा था। भिक्षुओ ! उस समय एकान्तमे ध्यान करते मेरे चित्तमे यह विचार उत्पन्न हुआ—'**शुद्धावास** देवोको छोळकर कोई ऐसी योनि (=सत्वावास) नही है, जिसमे मैंने इस दीर्घ कालमे जन्म नही लिया। अत मै वहाँ जाऊँ जहाँ शुद्धावास देवता रहते है। भिक्षुओ ! तब मे जैसे वलवान् पुरुष० **अवृह** (अविह)-देवोमे[1] प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! उस देवनिवासके अनेक सहस्र देवता मेरे पास आये। आकर मुझे अभिवादन कर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो उन देवताओने मुझसे कहा—मार्ष ! आजसे इकानवे कल्प पहले[2] **विपस्सी** भगवान्० ससारमे उत्पन्न हुये थे। विपस्सी० क्षत्रिय जाति०। विपस्सी० **कोण्डञ्ञगोत्रके**०।० अस्सी हजार वर्ष आयु परिमाण०।० पाटलि वृक्षके नीच बोधि०। ० उनके **खण्ड** और **तिस्स** नामक श्रावक ० । ० तीन शिष्य-सम्मेलन०, **अशोक** नामक भिक्षु उपस्थाक। ० **बन्धुमान्** नामक राजा पिता, **बन्धुमती** देवी माता ०।० **बन्धुमती** नाम नगरी राजधानी। विपस्सी भगवान्० के इस प्रकार निष्क्रमण, इस प्रकार प्रव्रज्या, इस प्रकार **प्रधान** (=बुद्धत्व प्राप्तिके लिये तप), इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति, और इस प्रकार धर्म-चक्र-प्रवर्तन हुये थे। मार्ष ! सो हम लोग विपस्सी भगवान्के शासनमे ब्रह्मचर्यका पालन करके, सासारिक भोग-इच्छाओ (=काम-च्छन्दो)से विरक्त हो, यहाँ उत्पन्न हुये है।०

"भिक्षुओ ! उसी देवलोकमे जो अनेक सहस्र और अनेक लक्ष देवता थे, वे मेरे पास आये।० खळे हो गये।० कहा—मार्ष इसी **भद्रकल्पमे** आप स्वय भगवान्० उत्पन्न हुये है। मार्ष ! भगवान् क्षत्रिय जाति०।० गौतम गोत्र०। ० कम और छोटी आयु-परिमाण, जो वहुत जीता है वह सौ वर्ष, कुछ कम या अधिक।० पीपल वृक्ष ०।० **सारिपुत्त** और **मोग्गलान** प्रधान शिष्य०० वारह सौ पचास भिक्षुओका एक शिष्य-सम्मेलन ०।० **आनन्द** भिक्षु उपस्थाक ०।० **शुद्धोदन** नामक राजा पिता, **मायादेवी** माता ०।०**कपिलवस्तु** राजधानी ०।० इस प्रकार निष्क्रमण००। हे मार्ष ! सो हम लोग आपके शासनमे ब्रह्मचर्य पालनकर ० यहाँ उत्पन्न हुये है।

"भिक्षुओ ! तव मै अवृह देवोके साथ जहाँ **अतप्य** देव थे, वहाँ गया।०

"भिक्षुओ ! तव मै अवृह और **अतप्य** देवोके साथ जहाँ **सुदर्श** देव थे वहाँ गया ०।० जहाँ **अकनिष्ट** देव थे वहाँ गया।० खळे हो गये। भिक्षुओ ! एक ओर खळे हो उन देवताओने मुझे ऐसा कहा, "०**विपस्सी** भगवान्०। भिक्षुओ ! उसी देवलोकमे जो अनेक सहस्र० आये ० ने कहा—'मार्ष ! आजसे इकतीस कल्प पहले **सिखी** भगवान्०।० उसी कल्पमे **वेस्सभू** भगवान्०, ० **ककुसन्ध**, **कोणागमन**, **कस्सप**०,० यहाँ उत्पन्न हुये है। ०० ने कहा, हे मार्ष ! इसी भद्रकल्पमे आप स्वय भगवान्०।

"भिक्षुओ ! चूँकि तथागतने धर्मधातुको अवगाहन कर लिया है जिस धर्मधातुके अवगाहन (=सुप्रतिवेध)के कारण तथागत निर्वाण प्राप्त अतीत वुद्धोको, ० जन्मसे भी, नामसे भी०।"

भगवान्ने यह कहा। प्रसन्नचित्त हो उन भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] शुद्धावासदेवताओमेंसे एक समुदाय। [2] देखो पृष्ठ ९५।

१५–महानिदान-सुत्त (२।२)

१—प्रतीत्य-समुत्पाद। २—नाना आत्मवाद। ३—अनात्मवाद।
४—प्रज्ञाविमुक्त। ५—उभयतो भाग विमुक्त।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरुदेशमे, कुरुओके निगम (=कस्बे) कम्मास दम्म (=**कल्माषदम्य**)में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

१—प्रतीत्य समुत्पाद

"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कितना गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता है. यह **प्रतीत्य-समुत्पाद** परन्तु मुझे साफ साफ (=उत्तान) जान पळता है।"

"ऐसा मत कहो आनन्द! ऐसा मत कहो आनन्द! आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता (भी) है। आनन्द इस धर्मके न जाननेसे=न प्रतिवेध करनेसे ही, यह प्रजा (=जनता) उलझे सूतसी, गाँठे पळी रस्सीसी, मूँज-वल्वज (=भाभळ)सी, अप्-आय=दुर्गति=पतन (=वि-निपात)को प्राप्त हो, ससारमे नही पार हो सकती।

"आनन्द! 'क्या जरा-मरण स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जरा-मरण होता है' यह पूछे तो, 'जन्मके कारण जरा-मरण होता है' कहना चाहिये। 'क्या जन्म (=जाति) स-कारण है' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणमे जन्म होता है' पूँछनेपर, 'भव-(=आवागमन)के कारण जन्म' कहना चाहिये। 'क्या भव स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे भव होता है' पूछे, तो 'उपादान (=आसक्ति)के कारण भव०'। 'क्या उपादान स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' ०। 'किस कारणमे उपादान होता है' पूछे तो, 'तृष्णाके कारण उपादान' ०।० वेदनाके कारण तृष्णा ०।० स्पर्श (=इन्द्रिय-विपय-सयोग)के कारण वेदना ०।० नामरूपके कारण स्पर्श ०।० विज्ञानके कारण नाम-रूप ०।० नाम-रूपके कारण विज्ञान ०।

"इस प्रकार आनन्द! नाम-रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है। नाम-रूपके कारण स्पर्श है। स्पर्शके कारण वेदना है। वेदनाके कारण तृष्णा है। तृष्णाके कारण उपादान है। उपादानके कारण भव है। भवके कारण जन्म (=जाति) है। जन्मके कारण जरा-मरण है। जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दु:ख, दौर्मनस्य (=मन सताप) उपायास (=परेशानी) होते है। इस प्रकार इस केवल (=सम्पूर्ण)-दु:ख-पुंज (रूपी लोक)का समुदय (=उत्पत्ति) होता है।

"आनन्द! 'जन्मके कारण जरा-मरण' यह जो कहा, इसे इस प्रकार जानना चाहिये। यदि आनन्द! जन्म न होता तो सर्वथा बिल्कुल ही सब किसीकी कुछ भी जाति न होती, जैसे—देवो-

का देवत्व, गन्धर्वोका गन्धर्वत्व, यक्षोका यक्षत्व, भूतोका भूतत्व, मनुष्योका मनुष्यत्व, चतुष्पदो (=चौपायो)का चतुष्पदत्व, पक्षियोका पक्षित्व, सरीसृपो (=रेंगनेवालो)का सरीसृपत्व, उन उन प्राणियो (=सत्वो)का वह होना। यदि जन्म न होता, सर्वथा जन्मका अभाव होता' जन्मका निरोध (=विनाश) होता, तो क्या आनन्द! जरा-मरण दिखलाई पळेगा?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जरा-मरणका यही हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है, जो कि यह जन्म।

" 'भव के कारण जाति होती है', यह जो कहा इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (=आवागमनका स्थान) न होता, जैसे कि काम-भव,[1] रूप-भव, अ-रूप-भव; तो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनन्द! जन्म दिखाई पळता?"

"नही भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जन्मका यही हेतु है०, जो कि यह भव।"

" 'उपादान (=आसक्ति)के कारण भव होता है' यह जो कहा, इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता, जैसे कि—काम-उपादान (=भोगमे आसक्ति), दृष्टि-उपादान (=धारणा०), शील-व्रत-उपादान या आत्मवाद-(=आत्माके नित्यत्वका) उपादान; उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! भव होता?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान।

" 'तृष्णाके कारण उपादान होताहै' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० तृष्णा न होती, जैसे कि—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा रस-तृष्णा, स्प्रष्टव्य (=स्पर्श)-तृष्णा, धर्म (=मनका विषय)-तृष्णा, तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! उपादान जान पळता?"

"नही, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा।

" 'वेदनाके कारण तृष्णा है' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० वेदना न होती, जैसे कि—चक्षु-सस्पर्श (=चक्षु और रूपके योग)से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन-सस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द! तृष्णा जान पळती?"

"नही, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि यह वेदना।

"इस प्रकार आनन्द! वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण पर्येषणा (=खोजना), पर्येषणाके कारण लाभ, लाभके कारण विनिश्चय (=दृढ-विचार), विनिश्चयके कारण छन्द-राग (=प्रयत्नकी इच्छा), छन्द-रागके कारण अध्यवसान (=प्रयत्न), अध्यवसानके कारण परिग्रह (=जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (=कजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (=हिफाजत), आरक्षाके कारण ही दड-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तूँ तूँ मैं मैं (=तुव तुव), चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप=बुराइयाँ (=अ-कुशल-धर्म) होती है।

"आनन्द! 'आरक्षाके कारण ही दड-ग्रहण०० बुराइयाँ होती है' यह जो कहा, उसे इस

---

[1] कामभव=पार्थिवलोक, रूपभव=अ-पार्थिव साकार लोक, अरूपभव=निराकार लोक।

प्रकारसे भी जानना चाहिये०। यदि सर्वथा० आरक्षा न होती, तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर०, क्या आनन्द! दड-ग्रहण० बुराइयाँ होती?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! यह जो आरक्षा है, यही इस दड-ग्रहण० पापो=बुराइयोकी उत्पत्तिका हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है।

" 'मात्सर्य (=कजूसी)के कारण आरक्षा है' यह जो कहा, सो इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीको, कुछ भी मात्सर्य न होता, तो सब तरह मात्सर्यके अभाव-मे=मात्सर्य=कजूसीके निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमे आती?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! आरक्षाका यही हेतु०, जो कि यह कजूसी।

" 'परिग्रह (=जमा करना)के कारण कजूसी है०'। यदि आनन्द! सर्वथा किसीका कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कजूसी दिखाई पळती? ०।०।

" 'अध्यवमानके कारण परिग्रह है' ०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीका कुछ भी अध्यवमान न होता०, क्या परिग्रह (=बटोरना) देखनेमे आता? ०।०।

" 'छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है' ०। क्या अध्यवसान देखनेमे आता? ०।०।

"विनिश्चयके कारण छन्द-राग होता है' ०।

" 'लाभके कारण विनिश्चय है' ०। यदि आनन्द! सर्वथा किसीको कही कुछ भी लाभ न होता०, क्या विनिश्चय दिखाई देता? ०।०।

" 'पर्येपणाके कारण लाभ होता है' ०। ०क्या लाभ दिखाई देता? ०।०।

" 'तृष्णाके कारण पर्येपणा होती' ०। ०क्या पर्येपणा दिखाई देती? ०।०।

" 'स्पर्शके कारण तृष्णा होती है' ०। ०क्या तृष्णा दिखाई देती? ०।०।

" 'नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है' ०। यह जो कहा, इसको आनन्द! इस प्रकारसे जानना चाहिये—जैसे नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है, जिन आकारो=जिन लिगो=जिन निमित्तो=जिन उद्देशोसे नाम-काय (=नाम-समुदाय)का ज्ञान होता है, उन आकारो, उन लिगो, उन निमित्तो, उन उद्देशोके न होनेपर, क्या रूप-काय (=रूप-समुदाय)का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता?"

"नही, भन्ते।"

"आनन्द! जिन आकारो, जिन लिगो, ० से रूप-कायका ज्ञान होता है, उन आकारो०के न होनेपर, क्या नाम-कायमे प्रतिघ-सस्पर्श (=रोकका योग) दिखाई पळता?"

"नही, भन्ते!"

"आनन्द! जिन आकारो०से नाम-काय और रूप-कायका ज्ञान होता है, उन आकारो०के न होनेपर, क्या अधिवचन-सस्पर्श या प्रतिघ-सस्पर्श दिखाई पळता?"

"नही, भन्ते!"

"आनन्द! जिन आकारो, जिन लिगो, जिन निमित्तो, जिन उद्देश्योसे नाम-रूपका बोलना (=प्रज्ञापन) होता है, उन आकारो, उन लिगो, उन निमित्तो, उन उद्देशोके अभावमे क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पळता?"

"नही, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! स्पर्शका यही हेतु=यही निदान=यही समुदय=यही प्रत्यय है, जो कि नाम-रूप।

" 'विज्ञानके कारण नाम-रूप होता है०'। यदि आनन्द! विज्ञान (=चित्त-धारा, जीव) माताके कोखमे नही आता, तो क्या नाम-रूप सचित होता?"

"नही, भन्ते !"

"आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञान ही माताकी कोखमे प्रवेश कर निकल जाये, तो क्या नाम-रूप (कहना) इसके लिये बनेंगा ?" "नही, भन्ते !"

"कुमार या कुमारीके अति-शिशु रहते ही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये, तो क्या नाम-रूप वृद्धि=विरूढि=विपुलताको प्राप्त होगा ?" "नही, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! नाम-रूपका यही हेतु० है, जो कि विज्ञान।"

"'नाम-रूपके कारण विज्ञान होता है' ०।०। आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमे प्रतिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमे (=आगे चलकर) जन्म, जरा-मरण, दु ख-उत्पत्ति दिखाई पळते ?"

"नही, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु० है, जो कि नाम-रूप। आनन्द ! यह जो विज्ञान-सहित नाम-रूप है, इतनेहीसे जन्मता, बूढा होता, मरता=च्युत होता, उत्पन्न होता है, इतनेहीसे अधि-वचन(=नाम=सज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरुक्ति (=भापा)-व्यवहार, इतनेहीसे प्रज्ञा(=ज्ञान)-विपय है, इतनेहीसे 'इस प्रकार' का जतलानेके लिये मार्ग वर्तमान है।

२—नाना आत्मवाद

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन (=जतलाना) करनेवाला (पुरुष) कितनेसे (उसे) प्रज्ञापन (=जताना) करता है ? (१) रूपवान् सूक्ष्म आत्माको प्रज्ञापन करते हुए—'मेरा आत्मा रूप-वान् (=भौतिक) और सूक्ष्म (=क्षुद्र=अणु) है' प्रज्ञापन करता है। (२) रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये 'मेरा आत्मा रूपवान् और अनन्त है' प्रज्ञापन करता है। (३) रूप-रहित अणु (=परित्त) आत्मा कहते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप(=अभौतिक) अणु है' कहता है। (४) रूप-रहित अनन्तको आत्मा मानते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अनन्त है' कहता है।

(१) "वहाँ जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये आत्माको रूप-वान् अणु (=परित्त) कहता है, सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता हुआ, रूप-वान् अणु कहता है, या भावी आत्माको० रूप-वान् अणु कहता है, या उसको होता है कि, 'वैसा नही (=अ-तथ)को उस प्रकारका कहूँ।' ऐसा होनेपर आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकळता है—यही कहना योग्य है।

(२) "वह जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त आत्मा' कहता है, सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त' कहता है, या भावी आत्माको० रूप-वान् अनन्त कहता है, या उसके (मनमे) होता है 'वैसा नहीको वैसा कहूँ'। ऐसा होनेपर वह आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकळता है—यही कहना योग्य है।

(३) "वह जो आनन्द ! ० 'आत्मा रूप-रहित अणु है' कहता है । वह वर्तमानके आत्माको० कहता है, या भावीको०, या उसको होता है, कि—'वैसा नहीको वैसा कहूँ'। ०।

(४) "वह जो आनन्द ! ० 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' कहता है।०।०।

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला इन्ही (चारोमेसे एक प्रकारसे) प्रज्ञापन करता है।

३—अनात्मवाद

"आनन्द ! आत्माको न प्रज्ञापन करनेवाला, कैसे प्रज्ञापन नही करता ?—आनन्द ! 'आत्माको रूप-वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला (तथागत) 'मेरा आत्मा रूप-वान् अणु है' नही कहता। आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-वान् अनन्त है' नही कहता।

आत्माको 'रूप-रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अणु है' नहीं कहना। आत्मा-को 'रूपरहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अनन्त है' नहीं कहता।

"आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप-वान्-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला, ० प्रज्ञापन नहीं करता, सो या तो आजकल (=वर्तमान)के आत्माको रूप-वान् अणु प्रज्ञापन नहीं करता, या भावी आत्मा-को० प्रज्ञापन नहीं करता, या 'वैसा नहींको वैसा कहे' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' उस दृष्टिको नहीं पकळता—यही कहना चाहिये।

"आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता, सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-वान् अनन्त प्रज्ञापन नहीं करता०, ०। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' उस दृष्टिको नहीं पकळता, यही कहना चाहिये।

"आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप-रहित-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला ० प्रज्ञापन नहीं करता, सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अणु न माननेसे, प्रज्ञापन नहीं करता है, ० भावी० । ऐसा होनेसे आनन्द ! वह 'आत्मा रूप-रहित अणु है' उस दृष्टिको नहीं पकळता, यही कहना चाहिये।

"आनन्द ! जो वह आत्माको 'रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला, (कुछ) नहीं कहता, सो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला हो, नहीं कहता है, ० भावी ०, 'वैसा नहींको वैसा कहे' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे आनन्द ! यही कहना चाहिये, कि वह 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' इस दृष्टिको वह नहीं पकळता।

"इन कारणोंसे आनन्द ! अनात्म-वादी (आत्माकी प्रज्ञप्ति) नहीं करता।

"आनन्द ! किस कारणसे आत्मवादी (आत्माको) देखता हुआ देखता है ? आत्मदर्शी देखते हुये वेदनाको ही 'वेदना मेरा आत्मा है' समझता है। अथवा 'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-संवेदन (=न अनुभव) मेरा आत्मा है' ऐसा समझता है अथवा—'न वेदना मेरा आत्मा है, न अप्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है, (अतः) वेदना-धर्म-वाला मेरा आत्मा है।" आनन्द ! (इस कारणसे) आत्मवादी देखता हुआ देखता है।

"आनन्द ! वह जो यह कहता है—'वेदना मेरा आत्मा है' उसे पूछना चाहिये—'आवुस ! तीन वेदनायें हैं, सुखा-वेदना, दुःखा-वेदना, अदुःख-असुख-वेदना, इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो ?' जिस समय आनन्द ! सुखा-वेदनाको वेदन (=अनुभव) करता है, उस समय न दुःखा-वेदनाको अनुभव करता है, नहीं अदुःख-अ-सुखा-वेदनाको अनुभव करता है। सुखा वेदनाहीको उस समय अनुभव करता है। जिस समय दुःखा-वेदनाको० । जिस समय अदुःख-असुखा-वेदनाको० ।

"सुखा वेदना भी, आनन्द ! अनित्य=संस्कृत (=कृत)=प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न)=क्षय-धर्मवाली=व्यय-धर्मवाली, विराग-धर्मवाली, निरोध-धर्मवाली है। दुःखा-वेदना भी आनन्द ! ०, अदुःख-असुख वेदना भी० । उसको सुखा-वेदना अनुभव करते समय 'यह मेरा आत्मा है' होता है। उसी सुखा-वेदनाके निरोध होनेसे 'विगत हो गया मेरा आत्मा' ऐसा होता है। दुःखा-वेदना अनुभव करते० । अदुःख-असुख-वेदना अनुभव करते 'यह मेरा आत्मा है' होता है। उसी अदुःख-असुख-वेदनाके निरुद्ध (=विनष्ट, विगत, विलीन) होनेपर 'मेरा आत्मा विगत हो गया' होता है। जो ऐसा कहता है, कि 'वेदना मेरा आत्मा है' इस प्रकार आनन्द ! वह इसी जन्ममें आत्माको अ-नित्य, सुख, दुःख, (या) मिश्रित (=व्यवकीर्ण), उत्पत्तिमान्=व्यय(=विनाश) शील देखता है। इसलिये भी आनन्द ! उसका (ऐसा कहना) कि 'वेदना मेरा आत्मा है' ठीक नहीं।

"आनन्द ! जो वह ऐसा कहता है—'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा

है,' उससे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! जहाँ सब कुछ अनुभव (=वेदयित) है, क्या वहाँ 'मै हूँ' यह होता है?"

"नही, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नही—'वेदना आत्मा नही है, अ-प्रतिसवेदना मेरा आत्मा है।'

"आनन्द ! जो वह यह कहता है—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रति-सवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होना है (=अनुभव किया जाता है), वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।' उसे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! यदि वेदनाये सारी सर्वथा बिल्कुल नष्ट हो जाये, तो वेदनाके सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या वहाँ 'मै हूँ' यह होगा?" "नही, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नही कि—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसवेदना० वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।'

"चूंकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसवेदनाको०, और नही 'आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है' समझता है। इस प्रकार समझ, लोकमे किसीको (मैं और मेरा करके) नही ग्रहण करता। न ग्रहण करने वाला होनेसे त्रास नही पाता। त्रास न पानेसे स्वय परि-निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब)—'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य-वास (पूरा) हो चुका, कर्तव्य कर चुका, और कुछ यहाँ (करणीय) नही' (–इसे) जानता है। ऐसे मुक्त-चित्त भिक्षुके बारेमे जो कोई ऐसा कहे—'मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है' सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत नही होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अ-युक्त है। 'मरनेके बाद तथागत होता भी है, नही भी होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत न होता है, न नही होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। सो किस कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (=नाम, सज्ञा), जितना वचन-व्यवहार, जितनी निरुक्ति (=भाषा), जितना भी भाषा-व्यवहार, जितनी प्रज्ञप्ति (=रूढि), जितना भी प्रज्ञप्ति-व्यवहार, जितनी भी प्रज्ञा (=ज्ञान), जितना भी प्रज्ञाका विषय, ससारमे है, उस (सबको) जानकर भिक्षु मुक्त हुआ है। उसे जानकर मुक्त हुये भिक्षुको 'नही जानता है, नही देखता है—यह इसकी दृष्टि है'—(कहना) अयुक्त है।

४—प्रज्ञा विमुक्त

"आनन्द ! विज्ञान (=जीव)की सात स्थितियाँ (=योनियाँ) है, और दो ही आयतन। कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व (=जीव) नाना कायावाले और नाना सज्ञा (=नाम) वाले है, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (=काम-धातुके छै) और कोई कोई विनिपातिक (=नीच योनि-वाले=पिशाच) यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व नाना कायावाले, किंतु एक सज्ञा (=नाम) वाले होते है, जैसे कि, प्रथम-ध्यानके साथ उत्पन्न **ब्रह्म-कायिक** (=ब्रह्मा लोग) देवता। यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है। (३) आनन्द ! ० एक काया किंतु नाना सज्ञावाले देवता है, जैसे कि **आभास्वर** देवता। यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है। (४) ० एक कायावाले एक सज्ञावाले देवता, जैसे कि **शुभकृत्स्न** (=सुभ-किण्ण) देवता। यह चौथी विज्ञान-स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व है, (जो कि) रूप-सज्ञाके अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिसा) सज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानापनकी सज्ञा को मनमे न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस **आकाश-आयतन** (=निवास-स्थान)को प्राप्त है। यह पाचवी विज्ञान-स्थिति है। (६) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व आकाश-आयतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनत है,' इस **विज्ञान-आयतन**को प्राप्त है। यह छठी विज्ञान-स्थिति है। (७)

आनन्द ! (कोई कोई) सत्व विज्ञान-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नही है' इस **आकिंचन्य-आयतन** (=०निवास-स्थान)को प्राप्त है। यह सातवी विज्ञान-स्थिति है। (दो आयतन है) असज्ञि-सत्त्व-आयतन (=सज्ञा-रहित सत्त्वोका आवास), और दूसरा नैव-सज्ञा-नासज्ञा-आयतन (=न सज्ञावाला, न अ-सज्ञावाला आयतन)।

"आनन्द ! जो यह प्रथम विज्ञान-स्थिति 'नाना काया नाना सज्ञा' है, जैसे कि०। जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति) को जानता है, उसकी उत्पत्ति (=समुदय)को जानता है, उसके अस्तगमन (=विनाश)को जानता है, उसके आस्वादको जानता है, उसके दुष्परिणाम (=आदिनव) को जानता है, उसके निस्सरण (=छूटनेके मार्ग) को जानता है, क्या उस (जानकारको) उस (=विज्ञान-स्थिति)का अभिवादन करना युक्त है ?" "नही, भन्ते !"

"० दूसरी विज्ञान-स्थिति—० सातवी विज्ञान-स्थिति०। ० असज्ञी-सत्त्वायतन ०, ० नैव-सज्ञा-न-असज्ञायतन०।

"आनन्द ! जो इन सात सत्त्व-स्थितियो और दो आयतनोके समुदय, अस्त-गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जान कर, (उपादानोको) न ग्रहण कर मुक्त होता है, वह भिक्षु **प्रज्ञा-विमुक्त** (=जानकर मुक्त) कहा जाता है।

"आनन्द ! यह आठ विमोक्ष है। कौन से आठ ? (१) (स्वय) रूप-वान् (दूसरे) रूपोको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है। (२) भीतर (=अध्यात्म)मे रूप-रहित सज्ञावाला, बाहर रूपो को देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है। (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (=विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है। (४) सर्वथा रूप-सज्ञाके अतिक्रमण, प्रतिघ (=प्रतिहिसा) सज्ञाके अस्त होनेसे, नाना-त्वकी सज्ञाके मनमे न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस (अनन्त) आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है। (५) सर्वथा (अनन्त) आकाशके आयतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पाँचवाँ विमोक्ष है। (६) सर्वथा विज्ञान आयतन-को अतिक्रमण कर, 'कुछ नही है' इस आकिचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठाँ विमोक्ष है। (७) सर्वथा आकिचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर, नैव-सज्ञा-न-असज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। यह सातवाँ विमोक्ष है। (८) सर्वथा नैव-सज्ञा-न-असज्ञा-आयतनको अतिक्रमण कर सज्ञाकी वेदना (=अनुभव)के निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आठवाँ विमोक्ष है। आनन्द ! यह आठ विमोक्ष है।

५—उभयतो भाग विमुक्त

"जब आनन्द ! भिक्षु इन आठ विमोक्षोको अनुलोमसे (१,२,३ क्रमसे) प्राप्त (=समाधि-प्राप्त) करता है, प्रतिलोमसे (८,७,६) भी (समाधि-) प्राप्त होता है। अनुलोमसे भी और प्रति-लोमसे भी (१ ८ १) प्राप्त होता है, जहाँ चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है, उतनी (समाधि) प्राप्त करता है, (समाधिसे) उठता है। (=राग द्वेष आदि चित्त-मलो)के क्षयसे, इसी जन्ममे आस्रव-रहित (=अन्-आस्रव) चित्तकी मुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको स्वय जान कर=साक्षात् कर, प्राप्त हो, विहरता है। आनन्द ! यह भिक्षु **उभयतो भाग-विमुक्त** (=नाम रूपसे मुक्त) कहा जाता है। आनन्द ! इस उभयतोभाग-विमुक्तिसे बढकर=उत्तम दूसरी उभयतो-भागविमुक्ति नही है।"

भगवान्ने यह कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणका अभिनदन किया।

१६—महापरिनिब्बाण सुत्त-(२।३)

१—वज्जियोके विरुद्ध अजातशत्रु। २—हानिसे बचने के उपाय। ३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा—(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्गार (२) पाटलिपुत्रका निर्माण। (३) धर्म-आदर्श। (४) अम्बपाली गणिकाका भोजन। (५) सख्त बीमारी। (६) जीवनशक्तिका निर्वाणकी तैयारी। (७) महाप्रदेश (कसौटी)। (८) चुन्दका दिया अन्तिम भोजन। ४—जीवनकी अन्तिम घळियाँ—(१) चार दर्शनीय स्थान। (२) स्त्रियोके प्रति भिक्षुओका बर्ताव। (३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया। (४) आनन्दके गुण। (५) चक्रवर्तीके चार गुण। (६) महासुदर्शन जातक। (७) सुभद्रकी प्रव्रज्या। (८) अन्तिम उपदेश। ५—निर्वाण। ६—महाकाश्यपको दर्शन। ७—दाह क्रिया। ८—स्तूपनिर्माण।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमे गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र[1] वज्जीपर चढाई (=अभियान) करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मै इन ऐसे महर्द्धिक (=वैभव-शाली),=ऐसे महानुभाव, वज्जियोको[2] उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा।'

१—वज्जियोंके विरुद्ध अजातशत्रु

तब ० अजातशत्रु०ने मगधके महामात्य (=महामंत्री) वर्षकार ब्राह्मणसे कहा—

"आओ ब्राह्मण! जहाँ भगवान् है, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्के पैरोमे शिर से वन्दना करो। आरोग्य=अल्प-आतक, लघु-उत्थान (=फुर्ती), सुख-विहार पूछो—'भन्ते! राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है।' और यह कहो—'भन्ते! राजा० वज्जियोपर चढाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—'मै इन ० वज्जियोको उच्छिन्न करूँगा ०।' भगवान् जैसा तुमसे बोले, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ-यथार्थ (=वितथ) नही बोला करते।"

---

[1] गगा (?)के घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोका। .। वहाँ पर्वतके पाद (=जळ)से बहुमूल्य सुगन्ध-वाला माल उतरता था। उसको सुनकर अजातशत्रुके—'आज जाऊँ कल जाऊँ' करते ही, लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला आता था। वह दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो .ऐसा सोचा—'गण (=प्रजातन्त्र)के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता। किसी एक पडितके साथ मंत्रणा करके करना अच्छा होगा।.. '। (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मणको भेजा।—(अट्ठकथा)

[2] वर्तमान मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभगाके जिले।

"अच्छा भो।" कह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोको जुतवाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ हो, अच्छे यानोके साथ, राजगृहसे निकला, (और) जहाँ गृध्रकूट-पर्वत था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ समोदनकर एक ओर बैठा, एक ओर बैठकर भगवान्से बोला—"भो गौतम! राजा ० आप गौतमके पैरोमे शिरसे वन्दना करता है ०। ० वज्जियोको उच्छिन्न 'करूँगा०'।"

२–हानिसे बचनेके उपाय

"उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पीछे (खळे) भगवान्को पखा झल रहे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"आनन्द! क्या तूने सुना है, (१) वज्जी (सम्मतिके लिये) बराबर बैठक (=सन्निपात) करते है—सन्निपात-बहुल है?"

"सुना है, भन्ते! वज्जी बराबर०।"

"आनन्द! जब तक वज्जी बैठक करते रहेगे—सन्निपात-बहुल रहेगे, (तब तक) आनन्द! वज्जियोकी वृद्धि ही समझना, हानि नही।

(२) "क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक हो बैठक करते है, एक हो उत्थान करते है, वज्जी एक हो करणीय (=कर्तव्य)को करते है?"

"सुना है, भन्ते! ०।"

"आनन्द! जब तक ०।

(३) "क्या ० सुना है, वज्जी अ-प्रज्ञप्त[1] (=गैरकानूनी)को प्रज्ञप्त (=विहित) नही करते, प्रज्ञप्त (=विहित)का उच्छेद नही करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने वज्जि-धर्म (=०नियम) को ग्रहण कर, वर्तते है?"

"भन्ते! सुना है।"

"आनन्द०! जब तक कि ०।

(४) "क्या आनन्द! तूने सुना है—वज्जियोके जो महल्लक (=वृद्ध) है, उनका (वह) सत्कार करते है,—गुरुकार करते है, मानते है, पूजते है, उनकी (बात) सुनने योग्य मानते है।"

"भन्ते! सुना है ०।"

"आनन्द! जब तक कि ०।"

---

[1] "पहले न किये गये, शुल्क या बलि (=कर) या दड लेनेवाले अप्रज्ञप्त (काम)करते है। । पुराना वज्जिधर्म . यहाँ पहले वज्जिराजा लोग—'यह चोर है—अपराधी है' (कह) लाकर दिखलानेपर, 'इस चोरको बाँधो'—न कह विनिश्चय-महामात्य (=न्यायाधीश)को देते थे, वह विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कहकर व्यवहारिकको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता तो सूत्रधारको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते, यदि चोर होता तो अष्टकुलिकको दे देते। वह भी वैसाही कर सेनापतिको, सेनापति उपराजको, और उपराज राजा (=गण-पति)को। राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोळ देता। यदि चोर (=अपराधी) होता, तो प्रवेणी-पुस्तक बँचवाता। उसमें—जिसने यह किया, उसको ऐसा दड हो—लिखा रहता है। राजा उसके अपराधको उससे मिलाकर उसके अनुसार दड करता।"—अट्ठकथा।

(५) "क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ है, कुल-कुमारियाँ है, उन्हे (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नही बसाते ?"

"भन्ते ! सुना है ०।"

"आनन्द ! ० जब तक ०।"

(६) "क्या ० सुना है—वज्जियोके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) है, वह उनका सत्कार करते है, ० पूजते है। उनके लिये पहिले किये गये दानको, पहिले-की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति)को, लोप नही करते ?"

"भन्ते ! सुना है ० ?"

"जब तक ०।"

(७) "क्या सुना है,—**वज्जी** लोग अर्हतो (=पूज्यो)की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मा-नुसार) रक्षा=आवरण=गुप्ति करते है। किसलिये ? भविष्यमे अर्हत् राज्यमे आवे, आये अर्हत् राज्यमे सुखसे विहार करे।"

"सुना है, भन्ते ! ०।"

"जब तक ०।"

तब भगवान्ने ० **वर्षकार** ब्राह्मणको सबोधित किया—

"ब्राह्मण ! एक समय मै **वैशालीके सारन्दद-चैत्यमे** विहार करता था। वहाँ मैने वज्जियोको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतनके नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण ! यह सात अपरि-हाणीय-धर्म वज्जियोमे रहेगे, इन सात अपरिहाणीय-धर्मोमे वज्जी (लोग) दिखलाई पळेगे, (तब तक) ब्राह्मण ! वज्जियोकी वृद्धि ही समझना, हानि नही।"

ऐसा कहने पर० वर्षकार ब्राह्मण भगवान्से बोला—

"हे गोतम ! (इनमेसे) एक भी अपरिहाणीय-धर्ममे वज्जियोकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मोकी तो बात ही क्या ? हे गौतम ! राजा ० को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमे फूटको छोळ, युद्ध करना ठीक नही। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते है, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुत कामवाले) है ०"

"ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है।"

"तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठकर, चला गया[1]।

---

[1] अ क "राजाके पास गया। राजाने उससे पूछा—'आचार्य ! भगवान्ने क्या कहा ?'। उसने कहा—'भो ! श्रमण०के कथनसे तो वज्जियोको किसी प्रकार भी लिया नही जा सकता, हाँ, उपलापन (=रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजाने कहा—'उपलापनसे हमारे हाथी घोळे नष्ट होगे, भेद (=फूट)से ही पकळना चाहिये। ०।"

"तो महाराज ! वज्जियोको लेकर तुम परिषद्में बात उठाओ। तब मै—'महाराज ! तुम्हे उनसे क्या है ? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राजा (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें'—कहकर चला जाऊँगा। तब तुम बोलना—'क्योजी ! यह ब्राह्मण वज्जियोके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है'। उसी दिन मै उन (=वज्जियो)के लिये भेंट (=पर्णाकार) भेजूँगा, उसे भी पकळकर मेरे ऊपर दोषा-रोपणकर, बधन, ताळन आदि न कर, छुरेसे मुंडन करा मुझे नगरसे निकाल देना। तब मै कहूँगा—

तब भगवान्‌ने ० वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोळी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते है, उन सबको उपस्थान-शालामे एकत्रित करो।"

"अच्छा, भन्ते !"

"भन्ते ! भिक्षुसघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझे।"

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ ! तुम्हे सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हे सुनो कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते !"

मैने तेरे नगरमे प्राकार और परिखा (=खाईं) बनवाई है, मै दुर्बल...तथा गभीर स्थानोको जानता हूँ, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूँगा'। ऐसा सुनकर बोलना—'तुम जाओ'।

"राजाने सब किया। लिच्छवियोने उसके निकालने (=निष्क्रमण)को सुनकर कहा—'ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गगा न उतरने दो।' तब किन्ही किन्हीके—'हमारे लिये कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है' कहनेपर,—'तो भणे ! आने दो'। उसने जाकर लिच्छवियो द्वारा—'किस-लिये आये ?' पूछनेपर, वह (सब) हाल कह दिया। लिच्छवियोने—'थोळीसी बातके लिये इतना भारी दड करना युक्त नही था' कहकर—'वहाँ तुम्हारा क्या पद=(स्थानान्तर) था'—पूछा। 'मैं विनिश्चय-महामात्य था'—(कहनेपर)—'यहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे'—कहा। वह सुन्दर तौरसे विनिश्चय (=इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या (=शिल्प) ग्रहण करते थे। अपने गुणोसे प्रतिष्ठित हो जानेपर उसने एक दिन एक लिच्छविको एक ओर लेजाकर—'खेत (=केदार, क्यारी) जोतते हैं'? 'हाँ जोतते हैं'। 'दो बैल जोतकर ?' 'हाँ, दो बैल जोतकर'—कहकर लौट आया। तब उसको दूसरेके—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?'—पूछनेपर, उसने वह कह दिया। (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नही बतलाता है' (सोच) उसने बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छवीको एक ओर लेजाकर 'किस व्यजन (=तेमन, तरकारी)से भोजन किया' पूछ-कर लौटनेपर, उससे भी दूसरेने पूछकर, न विश्वासकर वैसेही बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवीको एकान्तमें लेजाकर—'बळे गरीब हो न ?'—पूछा। 'किसने ऐसा कहा ?' 'अमुक लिच्छवीने।' दूसरेको भी एक ओर लेजाकर—'तुम कायर हो क्या ?' 'किसने ऐसा कहा' 'अमुक लिच्छवीने'। इस प्रकार दूसरेके न कहे हुएको कहते तीन वर्ष (४८३—४८० ई पू.)में उन राजाओमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो आदमी एक रास्तेसे भी न जाते थे। वैसा करके, जमा होनेका नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया।

लिच्छवी—'मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हो'—कहकर नही जमा हुए। तब उस ब्राह्मणने राजाको जल्दी आनेके लिये खबर (=शासन) भेजी। राजा सुनकर सैनिक नगारा (=बलभेरी) बजवाकर निकला। वैशालीवालोने सुनकर भेरी बजवाई—'(आओ चलें) राजाको गगा न उतरने दें'। उसको भी सुनकर—'देव-राज (=सुर-राज) लोग जायें' आदि कहकर लोग नही जमा हुए। (तब) भेरी बजवाई—'नगरमें घुसने न दें, (नगर-)द्वार बन्द करके रहें'। एक भी नही जमा हुआ। (राजा अजातशत्रु) खुले द्वारोसे ही घुसकर, सबको तबाह कर (=अनय-व्यसन पापेत्वा) चला गया।

"(१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु बार बार (=अभीक्ष्ण) बैठक करनेवाले=सन्निपात-बहुल रहेगे, (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओकी वृद्धि समझना, हानि नही। (२) जब तक भिक्षुओ ! भिक्षु एक हो बैठक करेगे, एक हो उत्थान करेगे, एक हो सघके करणीय (कामो)को करेगे, (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओकी वृद्धि ही समझना, हानि नही। (३) जब तक ० अप्रज्ञप्तो (=अ-विहितो) को प्रज्ञप्त नही करेगे, प्रज्ञप्तका उच्छेद नही करेगे, प्रज्ञप्त शिक्षा-पदो (=विहित भिक्षु-नियमो) के अनुसार वर्तेगे ०। (४) जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) चिरप्रव्रजित, सघके पिता, सघके नायक, स्थविर भिक्षु है, उनका सत्कार करेगे, गुरुकार करेगे, मानेगे, पूजेगे, उन (की बात)को सुनने योग्य मानेगे ०। (५) जब तक पुन पुन उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके वशमे नही पळेगे०। (६) जब तक ० भिक्षु, आरण्यक शयनासन (=वनकी कुटियो)की इच्छावाले रहेगे०। (७) जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (=भविष्य)मे सुन्दर सब्रह्मचारी आवे, आये हुये (=आगत) सुन्दर सब्रह्मचारी सुखसे विहरे, (तब तक)०। भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ-परिहाणीय-धर्म (भिक्षुओमे) रहेगे, (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहाणीय-धर्मोमे दिखाई देगे, (तब तक) ०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोको कहता हूँ। उसे सुनो ०। । (१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिक) काममे लगे रहनेवाले (=कर्माराम)=कर्मरत =कर्मारामता-युक्त नही होगे। (तब तक) ०। (२) जब तक भिक्षु बकवादमे लगे रहनेवाले (=भस्साराम),=भस्सरत=भस्सारामता-युक्त नही होगे। (३)० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रा-रामता-युक्त नही होगे ०। (४) ० सगणिकाराम (=भीळको पसन्द करनवाले)=सगणिक-रत= सगणिकारामता-युक्त नही होगे०। (५) ० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप-इच्छाओके वशमे नही होगे ०। (६) ० पाप-मित्र (=बुरे मित्रोवाले),=पाप-सहाय, बुराईकी ओर रुझानवाले न होगे०। (७) ० थोळेसे विशेष (=योग-साफल्य)को पाकर बीचमे न छोळ देगे ०।०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोको कहता हूँ ०। । (१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु श्रद्धालु होगे ०। (२) ० (पापसे) लज्जाशील (=ह्रीमान्) होगे०। (३) ० (पापसे) भय खानेवाले (=अपत्रपी) होगे ०। (४) ० बहुश्रुत ० (५) ० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ०। (६) ० याद रखनेवाले (=उपस्थित-स्मृति)०। (७) ० प्रज्ञावान् होगे ०।०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोको०। (१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु स्मृति-सबोध्यग[1]की भावना करेगे०। (२) ० धर्म-विचय-सबोध्यगकी०। (३) ० वीर्य-स०। (४) प्रीति-स०। (५) ० प्रश्रब्धि-स०। (६) ० समाधि-स०। (७) ० उपेक्षा-सबोध्यगकी।०।०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोको कहता हूँ। । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु अनित्य-सज्ञाकी भावना करेगे ०। (२) ० अनात्मसज्ञा ०। (३) ० भोगोमे, अशुभसज्ञा ०। (४) ० आदिनव (=दुष्परिणाम)-सज्ञा ०। (५) प्रहाण-(=त्याग) ०। (६) ० विरागसज्ञा ०। (७) ० निरोधसज्ञा ०। ०।

"भिक्षुओ ! और भी छै अ-परिहाणीय-धर्मोको कहता हूँ ०। । (१) जब तक भिक्षु-सब्रह्मचारियो (=गुरुभाइयो)मे गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म रखेगे०। (२) ० मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रक्खेगे०। (४) ० जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्ममे प्राप्त जो लाभ है—अन्तमे पात्रमे चुपळने मात्र भी—वैसे लाभोको (भी) शीलवान् सब्रह्मचारी भिक्षुओमे बॉटकर भोग करनेवाले होगे० (५) ० जब तक भिक्षु, जो वह अखड (=निर्दोष) अ-छिद्र, अ-कल्मष=भुजिस्स

---

[1] परमज्ञानप्राप्त करनेके लिये सात आवश्यक बातें।

(=सेवनीय), विद्वानोसे प्रशंसित, अ-निन्दित, समाधिकी ओर (ले) जानेवाले शील है, वैसे शीलोसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेगे ०। (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेगे ०। भिक्षुओ ! जब तक यह अपरिहाणीय-धर्म ०।

वहाँ **राजगृहमे गृध्रकूट-पर्वतपर** विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओको यही धर्म-कथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शीलसे परिभावित समाधि महा-फलवाली =महा-आनृशंसवाली होती है। समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महा-आनृशंसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवो[1],—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

तब भगवान्‌ने राजगृहमे इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ **अम्बलट्ठिका**[2] है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते !"

भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामे **राजगारकमें** विहार करते थे। वहाँ ० राजगारकमे भी भगवान् भिक्षुओको बहुधा यही धर्म-कथा कहते थे—०।

भगवान्‌ने अम्बलट्ठिकामे यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ **नालन्दा** है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते !"

(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्‌गार

नालन्दा—

तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा[3] मे **प्रावारिक-आम्रवनमे** विहार करते थे।

तब आयुष्मान् **सारिपुत्र**[4] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! मेरा ऐसा विश्वास है—'संबोधि (=परमज्ञान)मे भगवान्‌से बढ़कर=भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद किया—'मेरा ऐसा०।' सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमे अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहार-वाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नही, भन्ते !"

---

[1] आस्रव (=चित्त-मल)—भोग(=काम)-संबंधी, आवागमन(=भव)-संबंधी, धारणा (=दृष्टि)-संबंधी। [2] सम्भवतः वर्तमान सिलाव। [3] वर्तमान बळगाँव, जिला पटना।

[4] पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होनेसे सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है।

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमे अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध होगे, क्या उन सब भगवानोको चित्तसे जान लिया ० ?"

"नही, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! इस समय मे अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मै) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ ?"

"नही, भन्ते !"

"(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोके विषयमे चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नही है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यो यह बहुत उदार =आर्षभी वाणी कही ० ?"

"भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोमे मुझे चेत-परिज्ञान नही है, किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते ! राजाका सीमान्त-नगर दृढ नीव-वाला, दृढ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातो (=अपरिचितो)को निवारण करनेवाला, ज्ञातो (=परिचितो)को प्रवेश करानेवाला पडित=व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरकी चारो ओर, अनुपर्याय (=क्रमश) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमे अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी सधि=विवर न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमे प्रवेश करते है, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते ! मैने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकालमे अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचो नी व र णो को छोळ, चारो स्मृति-प्रस्थानोमे चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यगोकी यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-सबोधि (=परमज्ञान)का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते ! अनागतमे भी जो अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध होगे, वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।"

वहाँ नालन्दामे प्रावारिक-आम्रवनमे विहार करते, भगवान् भिक्षुओको बहुधा यही कहते थे ०।

पाटलि-ग्राम—

तब भगवान्‌ने नालन्दामे इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमत्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ **पाटलि-ग्राम** है, वहाँ चले।"

"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान् भिक्षुसघके साथ, जहाँ पा ट लि ग्रा म[1] था, वहाँ गये। पाटलिग्रामके उपासकोने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये है। तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उपासकोने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला)को स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्‌की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमे चारो ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगाकर, जलके बर्तन स्थापितकर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो पाटलिग्रामके उपासकोने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! आवसथागारमे चारो ओर बिछोना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझे।"

---

[1] वर्तमान पटना।

तब भगवान् सायकालको पहिनकर पात्र चीवर ले, भिक्षु-सघके साथ ० आवसथागारमे प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वाभिमुख वैठे। भिक्षुसघ भी पैर पखार आवसथागारमे प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर पच्छिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगेकर बैठा। पाटलिग्रामके उपासक भी पैर पखार आवसथागारमे प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके वैठे। तब भगवान्ने उपासकोको आमन्त्रित किया—

"गृहपतियो! दुराचारके कारण दु शील (=दुराचारी)के लिये यह पॉच दुष्परिणाम है। कौनसे पॉच ? गृहपतियो! (१) दुराचारी आलस्य करके बहुतसे अपने भोगोको खो देता है, दुराचारीका दुराचारके कारण यह पहला दुष्परिणाम है। (२) और फिर दुराचारीकी निन्दा होती है ०। (३) दुराचारी आचारभ्रष्ट (पुरुप) क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभामे जाता हे प्रतिभारहित, मूक होकर ही जाता है ०। (४) ० मूढ ग्ह मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो! दुराचारी आचारभ्रष्ट काया छोळ मरनेके बाद अपाय=दुर्गति=पतन=नरकमे उत्पन्न होता है। दुराचारीके दुराचारके कारण यह पॉचवॉ दुष्परिणाम है। ०।

"गृहपतियो! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण पॉच सुपरिणाम है। कौनसे पॉच ?—(१) गृहपतियो! सदाचारी अप्रमाद (=गफलत न करना) न कर बळी भोगराशिको (इसी जन्ममे) प्राप्त करता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पहला सुपरिणाम है। (२) ० सदाचारीका मगल यश फैलता है ०। (३) ० जिस किसी सभामे जाता है मूक न हो विशारद वन कर जाता हे ०। (४) ० मूढ न हो मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो! सदाचारी सदाचारके कारण काया छोळ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पॉचवॉ सुपरिणाम है। गृहपतियो! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण यह पॉच सुपरिणाम हे।"

तब भगवान्ने बहुत रात तक उपासकोको धार्मिक कथासे सदर्शित समुत्तेजितकर उद्योजित किया—"गृहपतियो! रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते!" पाटलिग्राम-वासी [१] उपासक आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोके चले जानेके थोळी ही देर वाद भगवान् शून्य-आगारमे चले गये।

(२) पाटलिपुत्रका निर्माण

उस समय **सुनीध** (=सुनीथ) और **वर्षकार** मगधके महामात्य पाटलिग्राममे **वज्जियोको** रोकनेके लिये नगर बसा रहे थे। उस समय अनेक हजार देवता पाटलिग्राममे वास ग्रहण कर रहे थे। जिस स्थानमे महाप्रभावशाली (=महेसक्ख) देवताओने वास ग्रहण किया, उस स्थानमे महा-

---

[१] "भगवान् कब पाटलिग्राम गये? . . . श्रावस्तीमें धर्मसेनापति (सारिपुत्र)का चैत्य बनवा, वहॉसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहॉ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहॉसे निकल अम्बलट्ठिकामें वासकर, अ-त्वरित चारिकासे देशमें विचरते; वहॉ वहॉ एक एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमश. पाटलिग्राम पहुँचे। . . . पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओके आदमी समय समयपर आकर घरके मालिकोको घरसे निकालकर (एक) मास भी आधे मास भी बस रहते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोने नित्य पीळित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वासस्थान होगा—(सोच) .. नगरके बीचमें महाशाला बनवाई। उसीका नाम था आवसथागार। वह उसी दिन समाप्त हुआ था।"—अट्ठकथा।

प्रभावशाली राजाओ और राजमहामन्त्रियोके चित्तमे घर बनानेको होता है। जिस स्थानमे मध्यम श्रेणी-के देवताओने वास ग्रहण किया, उस स्थानमे मध्यमश्रेणीके राजाओ और राजमहामन्त्रियोके चित्तमे घर बनानेको होता है। जिस स्थानमे नीच देवताओने वास ग्रहण किया, उस स्थानमे नीच राजाओ और राजमहामन्त्रियोके चित्तमे घर बनानेको होता है।

भगवान्‌ने रातके प्रत्यूप-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममे कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोको रोकनेके लिये नगर बसा रहे है।"

"आनन्द ! जैसे त्रायस्त्रिंश देवताओके साथ सलाह करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्षकार, वज्जियोके रोकनेके लिये नगर बना रहे है। आनन्द ! मैने अमानुष दिव्य नेत्रसे देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममे वास्तु (=घर, वास) ग्रहण कर रहे है। जिस प्रदेशमे महाशक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहणकर रहे है, वहाँ महा-शक्ति-शाली राजाओ और राज-महामात्योका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमे मध्यम देवता वास ग्रहणकर रहे है, वहाँ मध्यम राजाओ और राज-महामात्योका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमे नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओ०। आनन्द ! जितने (भी) आर्य-आयतन (=आर्योके निवास) है, जितने भी वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) है, (उनमे) यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=शत्रु) होगे—आग, पानी, और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌के साथ समोदनकर एक ओर खळे हुए भगवान्‌से बोले—

"भिक्षु-सघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब ० सुनीथ वर्षकार भगवान्‌की स्वीकृति जान, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गय। जाकर अपने आवसथमे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होने) भगवान्‌को समयकी सूचना दी ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे सर्तापत=सप्रवारित किया। तब ० सुनीथ वर्ष-कार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मगध-महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्‌ने इन गाथाओसे (दान-)अनुमोदन किया—

"जिस प्रदेश(मे) पडितपुरुष, शीलवान्, सयमी,
ब्रह्मचारियोको भोजन कराकर वास करता है ॥१॥
"वहाँ जो देवता है, उन्हे दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये।
वह देवता पूजित हो पूजा करते है, मानित हो मानते है ॥२॥
"तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करते है।
देवताओसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मगल देखता है ॥३॥"

तब भगवान् ० सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओमे अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय ० सुनीथ, वर्षकार भगवान्‌के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगे, वह गौतम-द्वार होगा। जिस तीर्थ (=घाट)मे गंगा नदी पार होगे, वह गौतम-तीर्थ होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतमद्वार हुआ। भगवान् जहाँ गगा-नदी है, वहाँ गये।

उस समय गगा करारो बराबर भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई ० बेळा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई ० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैलादे, फैलाई बाँहको समेट ले, वैसे ही भिक्षु-सघके साथ गगा नदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खळे हुए। भगवान्ने उन मनुष्योको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे ०। तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पडित) छोटे जलाशयो (=पल्वलो)को छोळ समुद्र और नदियोको सेतुसे तरते है।
(जब तक) लोग कूला बाँधते रहते है, (तब तक) मेधावी जन तर गये रहते है॥४॥"

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

कोटिग्राम—

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ **कोटिग्राम** है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् भिक्षु-सघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटि-ग्राममे विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! चारो आर्य-सत्योके अनुबोध=प्रतिवेध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौळना=ससरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' हो रहा है। कौनसे चारोसे? भिक्षुओ! दु ख आर्य-सत्यके अनुबोध=प्रतिबोध न होनेसे ० दु ख-समुदय ०। दु ख-निरोध ०। दु ख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् ०। भिक्षुओ! सो इस दु ख आर्य-सत्यको अनु-बोध=प्रतिबोध किया ०, (तो) भव-तृष्णा उच्छिन्न हो गई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई"

यह कहकर सुगत (=बुद्ध)ने और यह भी कहा—"चारो आर्य-सत्योको ठीकसे न देखनेसे,
उन उन योनियोमे दीर्घकालसे आवागमन हो रहा है॥५॥
जब ये देख लिये जाते है, तो भवनेत्री नष्ट हो जाती है,
दु खकी जळ कट जाती है, और फिर आवागमन नही रहता॥६॥"

वहाँ कोटिग्राममे विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०।०

नादिका—

तब भगवान्ने कोटिग्राममे इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ नादिका[1] (=नाटिका) है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् महान् भिक्षु-सघके साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये। वहाँ **नदिकामे** भगवान् **गिंजकावसथमे** विहार करते थे।

(३) धर्म-आदर्श

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! साळ्ह भिक्षु नादिकामे मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय (=परलोक) हुआ? **नन्दा** भिक्षुणी ० **सुदत्त** उपासक ० **सुजाता** उपासिका ० **ककुध** उपासक ० **कालिंग** उपासक ० **निकट** उपासक ० **काटिस्सभ** उपासक ० **तुट्ठ** उपासक ० **सन्तुट्ठ** उपासक ० **भद्द** उपासक० भन्ते!

[1] मिलाओ जनवसभसुत्त पृष्ठ १६०।

सुभद्द उपासक नादिकामे मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय हुआ ?"

"आनन्द! साळ्ह भिक्षु इसी जन्ममे आस्रवो (=चित्तमलो)के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति)को स्वय जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर विहार कर रहा था। आनन्द! नन्दा भिक्षुणी पॉच **अवरभागीय** सयोजनोके क्षयसे देवता हो वहॉसे न लौटनेवाली (अनागामी)हो वही (देवलोकमे) निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक आनन्द! तीन सयोजनोके क्षीण होनेसे, राग-द्वेष-मोहके दुर्बल होनेसे **सकृदागामी** हुआ, एक ही बार इस लोकमे और आकर दु खका अन्त करेगा। सुजाता उपासिका तीन सयोजनोके क्षयसे न-गिरनेवाले बोधिके रास्ते पर आरूढ हो **स्रोतआपन्न** हुई। ककुध ० अनागामी ०। कालिग०। निकट ०। कटिस्सभ ०। तुट्ठ ०। सतुट्ठ ०। भद्द ०। सुभद्द उपासक आनन्द! पॉच अवरभागीय सयोजनोके क्षयसे देवता हो वहॉसे न लौटनेवाला (=अनागामी) हो वही (देवलोकमे) निर्वाण प्राप्त करनेवाला है। आनन्द! नादिकामे पचाससे अधिक उपासक मरे है, जो सभी ० अनागामी० है। ० नब्बेसे अधिक उपासक ० सकृदागामी ०। ० पॉचसौसे अधिक उपासक० स्रोत-आपन्न०। आनन्द! यह ठीक नही, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरनेपर तथागतके पास आकर इस बातको पूछा जाय। आनन्द! यह तथागतको कष्ट देना है। इसलिये आनन्द! **धर्म-आदर्श** नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश)को उपदेशता हूँ। जिससे युक्त होनेपर आर्यस्रावक स्वय अपना व्याकरण (=भविष्य-कथन)कर सकेगा—'मुझे नर्क नही, पशु नही, प्रेत-योनि नही, अपाय=दुर्गति=विनिपात नही। मै न गिरनेवाला बोधिके रास्तेपर आरूढ स्रोतआपन्न हूँ।' आनन्द! क्या है वह धर्मादर्श धर्मपर्याय ० ?—(१)[1]आनन्द! जो आर्यश्रावक बुद्धमे अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सबुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोकविद्, पुरुषोके दमन करनमे अनुपम चाबुक-सवार, देवताओ और मनुष्योके उपदेशक बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् है।' (२)० धर्ममे अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) है, वह सादृष्टिक (=इसी शरीरमे फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमे नही सद्य फलप्रद), एहिपस्सिक (=यही दिखाई देनेवाला), औपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला) विज्ञ (पुरुषो)को अपने अपने भीतर (ही) विदित होनेवाला है।' (३) ० सघमे अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का श्रावक (=शिष्य)-सघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का श्रावक-सघ सरल मार्गपर आरूढ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ है,० ठीक मार्गपर आरूढ है, यह चार पुरुष-युगल (स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्) और आठ पुरुष=पुद्गल है, यही भगवान्का श्रावक-सघ है, (जोकि) आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोळने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है।' (४) और अखडित, निर्दोष, निर्मल, निष्कलमष, सेवनीय, विज्ञ-प्रशसित, आर्य (=उत्तम) कान्त, शीलो (=सदाचारो)से युक्त होता है। आनन्द! यह धर्मादर्श धर्मपर्याय है ०।" वहॉ नादिकामे विहार करते भी भगवान् भिक्षुओको यही धर्मकथा ०।

वैशाली—

(४) अम्बपाली गणिकाका भोजन

० तब भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहॉ वैशाली थी वहॉ गये। वहॉ **वैशालीमे अम्ब-पाली-वनमे** विहार करते थे। वहॉ भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! स्मृति और सप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जब भिक्षुओ! भिक्षु कायामे काय-अनुपश्यी (=शरीरको उसकी बनावटके अनु-

---

[1]**यही तीनो वाक्य-समूह त्रिरत्न (=बुद्ध-धर्म-संघ)की अनुस्मृति (=स्मरण), कही जाती है।**

सार केश-नख-मल-मूत्र आदिके रूपमे देखना) हो, उद्योगशील, अनुभवज्ञान-(=सप्रजन्य) युक्त, स्मृतिमान्, लोकके प्रति लोभ और द्वेष हटाकर विहरता है। वेदनाओ (=सुख दुःख आदि)मे वेदनानुपश्यी हो ०। चित्तमे चित्तानुपश्यी हो।० धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो ०। इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान्, होता है। कैसे सप्रज्ञ (=सपजान) होता है। जब भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन-विलोकन करता है। ० सिकोळना-फैलाना ०। ० सघाटी-पात्र-चीवरको धारण करता है। ० आसन, पान, खादन, आस्वादन करता है। ० पाखाना, पेशाव करता है। चलते, खळे होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु सप्रजानकारी होता है। इस प्रकार सप्रज्ञ होता है। भिक्षुओ! भिक्षुको स्मृति और सप्रजन्य-युक्त विहरना चाहिये, यही हमारा अनुशासन है।"

अम्बपाली गणिकानें सुना—भगवान् वैशालीमे आये है, और वैशालीमे मेरे आम्रवनमे विहार, करते है। तब अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोको जुळवाकर, एक सुन्दर यानपर चढ सुन्दर यानोके साथ वैशालीसे निकली, और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथामे सदर्शित समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्से यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु-सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वैशालीके लिच्छवियोने सुना—'भगवान् वैशालीमे आये है ०'। तब वह लिच्छवि ० सुन्दर यानोपर आरूढ हो ० वैशालीसे निकले। उनमे कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोके धुरोसे धुरा, चक्कोसे चक्का, जूयेसे जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियोने अम्बपाली गणिकासे कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यो तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोके धुरोसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो! क्योकि मैने भिक्षु-सघके साथ कलके भोजनके लिये भगवान्को निमत्रित किया है।"

"जे! अम्बपाली! सौ हजार (कार्षापण)से भी इस भात (=भोजन) को (हमे करनेके लिये) देदे।"

"आर्यपुत्रो! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तब उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे! हमे अम्बिकाने जीत लिया, अरे। हमे अम्बिकाने वचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि जहाँ अम्बपाली-वन था, वहाँ गये। भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोको आते देखा। देखकर भिक्षुओको आमत्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ! लिच्छवियोकी परिषद्को। अवलोकन करो भिक्षुओ! लिच्छवियोकी परिषद्को। भिक्षुओ! लिच्छवि-परिषद्को त्रायस्त्रिश (देव)-परिषद् समझो (=उपसहरथ)।"

तब वह लिच्छवि ० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छवियोका भगवान्ने धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० किया। तब वह लिच्छवि ० भगवान्से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करे।"

"लिच्छवियो ! कल तो, मैने अम्वपाली-गणिकाका भोजन स्वीकार कर दिया है।"

तब उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे ! हमे अम्बिकाने जीत लिया। अरे ! हमे अम्बिकाने वचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये।

अम्वपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया ।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ अम्वपालीका परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब अम्वपाली गणिकाने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित=सप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खीच लेनपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्वपाली गणिका भगवान्से बोली—

"भन्ते ! मै इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको देती हूँ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्वपाली ०को धार्मिक कथासे ० समुत्ते-जित०कर, आसनसे उठकर चले गये।

वहाँ वैशालीमे विहार करते भी भगवान् भिक्षुओको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

वेलुव-ग्राम—

० तब भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ **वेलुव-गामक** (=वेणु-ग्राम) था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् वेलुव-गामकमे विहरते थे। भगवान्ने वहाँ भिक्षुओको आमत्रित किया—

"आओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीके चारो ओर मित्र, परिचित देखकर वर्पावास करो। मै यही वेलुव-गामकमे वर्षावास करूँगा।" "अच्छा, भन्ते !"

(५) सख्त बीमारी

वर्षावासमे भगवान्को कळी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणान्तक पीळा होने लगी। उसे भगवान्ने स्मृति-सप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार (=सहन) किया। उस समय भगवान्को ऐसा हुआ—'मेरे लिये यह उचित नही, कि मै उपस्थाको (=सेवको)को विना जतलाये, भिक्षु-सघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ। क्यो न मै इस आवाधा (=व्याधि)को हटाकर, जीवन-सस्कार (=प्राणशक्ति)को दृढतापूर्व धारणकर, विहार करूँ'। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल)से हटाकर प्राण-शक्तिको दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे। तब भगवान्की वह बीमारी शान्त हो गई।

भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (वाहर) निकलकर विहारकी छायामे बिछे आसनपर बैठे। तव आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान्को सुखी देखा ! भन्ते ! मैने भगवान्को अच्छा हुआ देखा ! भन्ते ! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशाये भी सूझ न पळती थी। भगवान्की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=वात)

भी नही भान होते थे। भन्ते ! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था, कि भगवान् तवतक परिनिर्वाण नही प्राप्त करेगे, जबतक भिक्षु-सघको कुछ कह न लेगे।"

"आनन्द ! भिक्षु-सघ मुझसे क्या चाहता है ? आनन्द ! मैने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द ! धर्मोमे तथागतको (कोई) **आ चा र्य मु ष्टि** (=रहस्य) नही है। आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मै भिक्षु-सघको धारण करता हूँ, भिक्षु-सघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरूर आनन्द ! भिक्षु-सघके लिये कुछ कहे। आनन्द ! तथागतको ऐसा नही है आनन्द ! तथागत भिक्षु-सघके लिये क्या कहेगे ? आनन्द ! मै जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय प्राप्त हूँ। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द ! जैसे पुरानी गाळी (=शकट) बॉध-बूँधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द ! मानो तथागतका शरीर बॉध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द ! जिस समय तथागत सारे निमित्तो (=लिगो)को मनमे न करनेसे, किन्ही किन्ही वेदनाओके निरुद्ध होनसे, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता)को प्राप्त हो विहरते है, उस समय तथागतका शरीर अच्छा (=फासुकत) होता है। इसलिये आनन्द ! आत्मदीप=आत्मशरण=अनन्यशरण, धर्मदीप= धर्म-शरण=अनन्य-शरण होकर विहरो। कैसे आनन्द ! भिक्षु आत्मशरण ० होकर विहरता है ? आनन्द ! भिक्षु कायामे कायानुपश्यी ०[1]।"

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले **वैशालीमे** भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। वैशालीमे पिडचारकर, भोजनोपरान्त आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द ! आसनी उठाओ, जहाँ **चापाल-चैत्य** है, वहाँ दिनके विहारके लिये चलेगे।"

"अच्छा भन्ते !"—कह आयुष्मान् आनन्द आसनी ले भगवान्के पीछे पीछे चले। तब भगवान् जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने यह कहा—

"आनन्द ! जिसने चार **ऋद्धिपाद** (=योगसिद्धियाँ) साधे है, बढा लिये है, रास्ता कर लिये है, घर कर लिये है, अनुत्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये है, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्पके बचे (काल) तक। तथागतने भी आनन्द ! चार ऋद्धिपाद साधे है ०, यदि तथागत चाहे तो कल्प भर ठहर सकते है या कल्पके बचे (काल) तक।"

ऐसे स्थूल सकेत करनेपर भी, स्थूलत प्रकट करनेपर भी आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उन्होने भगवान्से न प्रार्थना की—"भन्ते ! भगवान् बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ देव-मनुष्योके अर्थ-हित-सुखके लिये कल्प भर ठहरे", क्योकि **मारने** उनके मनको फेर दिया था।

दूसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद ०।

तीसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद ०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—"जाओ, आनन्द ! जिसका काल समझते हो।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् आनन्द भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, न-बहुत-दूर एक वृक्षके नीचे बैठे।

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९०।

(६) निर्वाणकी तैयारी

तब आयुष्मान् आनन्दके चले जानेके थोळे ही समय बाद पापी (=दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे पापी मारने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हो, सुगत परिनिर्वाणको प्राप्त हो। भन्ते! यह भगवान्के परिनिर्वाणका काल है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मै तबतक परि-निर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जबतक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त (=पडित), विनययुक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर, धर्मानुसार धर्म मार्गपर आरूढ, ठीक मार्गपर आरूढ, अनुधर्मचारी न होगे, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक)को सीखकर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (=समझाना), प्रतिष्ठापन, विवरण=विभजन, सरलीकरण न करने लगेगे, दूसरेके उठाये आक्षेपको धर्मानुसार खडन करके प्रातिहार्य (=युक्ति)के साथ धर्मका उपदेश न करने लगेगे।' इस समय भन्ते! भगवान्के भिक्षु श्रावक० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश करते है। भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हो०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मै तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणो श्राविकाये० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश न करने लगेगी।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मै तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे उपासक श्रावक०।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मै तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी उपासिका श्राविकाये०।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके है—'पापी! मै तब तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जब तक कि यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) ऋद्ध (=उन्नत)=स्फीत, विस्तारित, बहुजनगृहीत, विशाल, देवताओ और मनुष्यो तक सुप्रकाशित न हो जायेगा।' इस समय भन्ते! भगवानका ब्रह्मचर्य०।"

ऐसा कहनेपर भगवान्ने पापी मारसे यह कहा—"पापी! बेफिक्र हो, न-चिर ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होगे।"

तब भगवान्ने चापाल-चैत्यमे स्मृति-सप्रजन्यके साथ आयुसस्कार (=प्राण-शक्ति)को छोळ दिया। जिस समय भगवान्ने आयु-सस्कार छोळा उस समय भीषण रोमाचकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियाँ बजी। इस बातको जानकर भगवान्ने उसी समय यह उदान कहा—

"मुनिने अतुल-तुल उत्पन्न भव-सस्कार (=जीवन-शक्ति)को छोळ दिया।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो (उन्होने) अपने साथ उत्पन्न कवचको तोळ दिया॥७॥"

तब आयुष्मन् आनदको ऐसा हुआ—"आश्चर्य है! अद्भुत है!! यह महान् भूचाल है। सु-महान् भूचाल है। भीषण रोमाचकारी है। देव-दुन्दुभियाँ बज रही है। (इस) महान् भूचालके प्रादुर्भावका क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! यह महान् भूचाल आया० क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

"आनन्द! महान् भूचालके प्रादुर्भावके ये आठ हेतु=आठ प्रत्यय होते है। कौनसे आठ? (१) आनन्द! यह महापृथिवी जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायुपर प्रतिष्ठित है, वायु आकाशमे स्थित है। किसी समय आनन्द! महावात (=तूफान) चलता है। महावातके चलनेपर पानी कपित होता है। हिलता पानी पृथिवीको डुलाता है। आनन्द! महाभूचालके प्रादुर्भावका यह प्रथम हेतु=

प्रथम प्रत्यय है। (२) और फिर आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्त्व (=योगवल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यवलधारी=महानुभाव देवता होता है, उसनें पृथिवी-सञ्ज्ञाकी थोळीसी भावनाकी होती है, और जल-सञ्ज्ञाकी बळी भावना। वह (अपने योगबलसे) पृथिवीको कपित=सकपित=सप्रकपित=सप्रवेपित करता है। ० यह द्वितीय हेतु है। (३) ० जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत हो होश-चेतके साथ माताकी कोखमे प्रविष्ट होते है। ० यह तृतीय ०। (४) ० जब बोधिसत्व होश-चेतके साथ माताके गर्भसे वाहर आते है। ० यह चतुर्थ हेतु है। (५) ० जब तथागत अनुपम बुद्ध-ज्ञान (=सम्यक् सवोधि) का साक्षात्कार करते है। ० यह पचम हेतु है। (६) ० जब तथागत अनुपम धर्मचक्र (=धर्मोपदश) को (प्रथम) प्रवर्तित करते है। ० यह षष्ठ हेतु है। (७) और आनन्द ! जब तथागत होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळते है। आनन्द ! यह महाभूचालके प्रादुर्भावका सप्तम हेतु=सप्तम प्रत्यय है। (८) और फिर आनन्द ! जब तथागत सपूर्ण निर्वाणको प्राप्त होते है। ० यह अष्टम हेतु है। आनन्द ! महा-भूचालके यह आठ हेतु=प्रत्यय है।

"आनन्द ! यह आठ (प्रकारकी) परिषद् (=सभा) होती है। कौनसी आठ ? क्षत्रिय-परिषद्, ब्राह्मण-परिपद्, गृहपति-परिषद्, श्रमण-परिषद्, चातुर्महाराजिक-परिपद्, त्रायस्त्रिश-परिषद्, मार-परिषद् और ब्रह्म-परिषद्। आनन्द ! मुझे अपना सैकळो क्षत्रिय-परिषदोमे जाना याद है। और वहाँ भी (मेरा) पहिले भाषण किये जैसा, पहिले आये जैसा साक्षात्कार (होता है)। आनद ! ऐसी कोई बात देखनेका कारण नही मिला, जिससे कि मुझे वहाँ भय या घबराहट हो। क्षेमको प्राप्त हो, अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ। आनद ! मुझे अपना सैकळो ब्राह्मण-परिपदोमे जाना याद है ०। ० गृहपति-परिषदोमे ०। ० श्रमण-परिषदोमे ०। ० चातुर्महा-राजिक-परिषदोमे ०। ० त्रायस्त्रिश-परिषदोमे ०। ० मार-परिषदोमे ०। ० ब्रह्मपरिषदोमे ०।

'आनन्द ! यह आठ अभिभू-आयतन (=एक प्रकारकी योग-क्रिया) है। कौनसे आठ ? (१) अपने भीतर अकेला रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोको देखता है। 'उन्हे दबाकर (=अभिभूय) जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह प्रथम अभिभू-आयतन है। (२) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और वाहर अपरिमित सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोको देखता है। 'उन्हे दबाकर जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह द्वितीय ०। (३) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला वाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोको देखता है ०। (४) अपने भीतर अ-रूपका ख्याल ० बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण अपरिमित रूपोको देखता है ०। (५) अपने भीतर अरूपका ख्याल० बाहर नीले, नीले जैसे, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपोको देखता है। जैसे कि अलसीका फूल नील=नीलवर्ण=नीलनिदर्शन=नील-निभास होता है, (वैसा) रूपोको देखता है। जैसे दोनो ओरसे चिकना नील ० बनारसी वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अ-रूप ०। (६) अपने भीतर अरूप ०, वाहर पीत (=पीले) ० देखता है। जैसे कि कर्णिकारका फूल पीत०, जैसे कि दोनो ओरसे चिकना पीत ० काशीका वस्त्र ०। (७) अपने भीतर अरूप ०, वाहर लोहित (=लाल) ० देखता है। जैसे कि बधुजीवक (=अँळहुल) का फूल लोहित ०, जैसे कि० लाल ० काशीका वस्त्र ०। (८) अपने भीतर अरूप ०, बाहर सफेद ० देखता है। जैसे कि शुक्रतारा सफेद०, जैसे कि ० सफेद ० काशीका वस्त्र ०। आनन्द ! यह आठ अभिभू-आयतन है।

"और फिर आनन्द ! यह आठ विमोक्ष है। कौनसे आठ? (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भीतर अरूपका ख्याल रखनेवाला हो वाहर रूपोको देखता है ०। (३) सुभ (=शुभ्र) ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते है ०। (४) सर्वथा रूपके ख्यालको अतिक्रमणकर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नानापनके ख्यालको मनमे न करनेसे

'आकाश अनन्त है'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्य-आयतनको अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञान-आनन्त्यको अतिक्रमणकर 'कुछ नही है'—इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतन-को अतिक्रमणकर, नैवसज्ञा-नासज्ञा-आयतन(=जिस समाधिके आभासको न चेतना ही कहा जा सके, न अचेतना ही)को प्राप्त हो विहरता है०। (८) सर्वथा नैवसज्ञा-नासज्ञा-आयतनको अतिक्रमणकर प्रज्ञावेदितनिरोध (=प्रज्ञाकी वेदनाका जहाँ निरोध हो) को प्राप्त हो विहरता है, यह आठवाँ विमोक्ष है।

"एक वार आनन्द ! मै प्रथम प्रथम बुद्धत्वको प्राप्त हो **उरुबेलामे नेरजरा** नदीके तीर अजपाल वर्गदके नीचे विहार करता था। तव आनन्द ! दुष्ट (=पाप्मा) मार जहाँ मै था वहाँ आया। आकर एक ओर खळा होगया। और वोला—'भन्ते ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हो, सुगत! परिनिर्वाण-को प्राप्त हो।' ऐसा कहनेपर आनन्द ! मैने दुष्ट मारसे कहा—'पापी ! मै तव तक परिनिर्वाणको नही प्राप्त होऊँगा, जव तक मेरे भिक्षु श्रावक निपुण (=व्यक्त), विनय-युक्त, विशारद, वहुश्रुत, धर्म-धर (=उपदेशोको कठस्थ रखनेवाले), धर्मके मार्गपर आरूढ, ठीक मार्गपर आरूढ, धर्मानुसार आचरण करनेवाले, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक)को ठीकसे पढ कर न व्याख्यान करने लगेगे, न उपदेश करेगे, न प्रज्ञापन करेगे, न स्थापन करेगे, न विवरण करेगे, न विभाजन करेगे, न स्पष्ट करेगे, दूसरो द्वारा उठाये अपवादको धर्मके साथ अच्छी तरह पकळ कर युक्ति (=प्रतिहार्य)के साथ धर्मका उपदेश न करेगे। जब तक कि मेरी भिक्षुणी श्राविकाये (=शिष्या) निपुण ०।० उपासक श्रावक ०।० उपासिका श्राविकाये ०। जव तक यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) समृद्ध=वृद्धिगत, विस्तारको प्राप्त, वहुजन-समानित, विशाल और देव-मनुष्यो तक सुप्रकाशित न हो जायगा।' आनन्द ! अभी आज इस **चापाल-चैत्यमे** मार पापी मेरे पास आया। आकर एक ओर खळा हो बोला—'भन्ते ! भगवान् अव परिनिर्वाणको प्राप्त हो ०।' ऐसा कहनेपर मैने आनन्द ! पापी मारसे यह कहा—'पापी ! वेफिक्र हो, आजसे तीन मास वाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होगे।' अभी आनन्द ! इस **चापाल-चैत्यमे** तथागतने होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळ दिया।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनदने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! भगवान् वहुजन-हितार्थ, वहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्यो के अर्थ-हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरे।"

"वस आनद ! मत तथागतसे प्रार्थना करो ! आनद ! तथागतसे प्रार्थना करनेका समय नही रहा।"

दूसरी वार भी आयुष्मान आनदने ०।

तीसरी वार भी ०।

"आनद ! तथागतकी वोधि (=परमज्ञान) पर विश्वास करते हो?"

"हाँ, भन्ते !"

"तो आनद ! क्यो तीन वार तक तथागतको दवाते हो?"

"भन्ते ! मैने यह भगवान्के मुखसे सुना, भगवान्के मुखसे ग्रहण किया—'आनद ! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है ०[१]।"

"विश्वास करते हो आनन्द !"

---

[१] देखो पृष्ठ ३०

"हाँ, भन्ते !"

"तो आनद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है, जो कि तथागतके वैसा उदार-(=स्थूल) भाव प्रकट करनेपर, उदार भाव दिखलानेपर भी तुम नही समझ सके। तुमने तथागतसे नही याचना की—'भन्ते ! भगवान् ० कल्प भर ठहरें'। यदि आनद ! तुमने याचना की होती, तो तथागत दो ही वार तुम्हारी वातको अस्वीकृत करते, तीसरी वार स्वीकार कर लेते। इसलिये, आनद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत (=दुक्कट) हे, तुम्हारा ही अपराध हे।

"आनद ! एक वार मै राजगृहके गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करता था। वहाँ भी आनद ! मैंने तुमसे कहा—आनद ! राजगृह रमणीय है। गृध्रकूट-पर्वत रमणीय है। आनद ! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है ०। तथागतके वैसा उदार भाव प्रकट करने पर ० भी तुम नही समझ सके ०। आनद ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनद ! एक वार मै वही राजगृहके गौतम-न्यग्रोधमे विहार करता था ०। ० राजगृहके चोरतपा पर ०। ० राजगृहमे वैभार-पर्वतकी वगलमेकी सप्तपर्णी(=सत्तपण्णी)गुहामे ०। ० ऋषि-गिरिकी वगलमे कालशिलापर ०। ० सीतवनके सर्पशौंडिक (=सप्पसोडिक) पहाळ (=पब्भार) पर ०। ० तपोदाराममे ०। ० वेणुवनमे कलन्दक-निवापमे ०। ० जीवकाम्रवनमे ०। ० मद्रकुक्षि-मृगदावमे विहार करता था। वहाँ भी आनद। मैंने तुमसे कहा—आनन्द ! रमणीय हे राजगृह। रमणीय है गौतमन्यग्रोध ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द ! एक वार मे इसी वैशालीके उदयनचैत्यमे विहार करता था ०। ० गौतमक-चैत्य ०। ० सप्ताम्र(=सत्तम्ब)चैत्य ०। ० वहुपुत्रक-चैत्य ०। ० सारन्दद-चैत्य ०। अभी आज मैंने आनन्द ! तुम्हे इस चापाल-चैत्यमे कहा—आनद ! रमणीय है वैशाली ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द ! क्या मैंने पहिले ही नही कह दिया—सभी प्रियो=मनापोसे जुदाई वियोग=अन्यथाभाव होता हे। सो वह आनन्द कहाँ मिल सकता है, कि जो उत्पन्न=भूत=सस्कृत, नाशमान है, वह न नष्ट हो। यह सभव नहीं। आनन्द ! जो यह तथागतने जीवन-सस्कार छोळा, त्यागा, प्रहीण=प्रतिनि मृष्ट किया, तथागतने विल्कुल पक्की वात कही है—जल्दी ही ० आजसे तीन मास वाद तथागतका परिनिर्वाण होगा। जीवनके लिये तथागत क्या फिर वमन कियेको निगलेगे ! यह सभव नही।

"आओ आनन्द ! जहाँ महावन-कूटागारशाला है, वहाँ चले।"

"अच्छा भन्ते।"

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कूटागार-शाला थी, वहाँ गये। जाकर आयु-ष्मान् आनन्दसे वोले—"आनन्द ! जाओ वैशालीके पास जितने भिक्षु विहार करते है, उनको उपस्थानशालामे एकत्रित करो।"

तव भगवान् जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ गये। जाकर विछे आसनपर वैठे। वैठकर भगवान् ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"इसलिये भिक्षुओ ! मैंने जो धर्म उपदेश किया है, तुम अच्छी तौरसे सीखकर उसका सेवन करना, भावना करना, वढाना, जिसमे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो, यह (ब्रह्मचर्य) वहुजन-हितार्थ, वहुजन-सुखार्थ, लोकानुकपार्थ, देव-मनुष्योके अर्थ-हित-सुखके लिये हो। भिक्षुओ ! मैंने यह कौनसे धर्म, अभिज्ञानकर, उपदेश किये है, जिन्हे अच्छी तरह सीखकर ० ? जैसे कि (१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक-प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (६) पाँचवल, (७) सात वोध्यग, (८) आर्य अष्टागिक-मार्ग। ।

"हन्त ! भिक्षुओ ! तुम्हे कहता हूँ—सस्कार (=कृतवस्तु), नाश होने वाले (=वयधर्म्मा) है, प्रमादरहित हो (आदर्शको) सम्पादन करो। अचिरकालमे ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास वाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

भगवान्ने यह कहा। सुगत शास्ताने यह कह फिर यह भी कहा—
"मेरा आयु परिपक्व हो गया, मेरा जीवन थोळा है।
"तुम्हे छोळकर जाऊँगा, मैंने अपने करने लायक (काम)को कर लिया ॥८॥
भिक्षुओ ! निरालस, सावधान, सुशील होओ।
सकल्पका अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्तकी रक्षा करो ॥९॥
जो इस धर्ममे प्रमादरहित हो उद्योग करेगा,
वह आवागमनको छोळ दु खका अन्त करेगा ॥१०॥

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

कुसीनाराकी ओर—

तव भगवान्ने पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले वैशालीमे पिडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन(=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमा कर देखना)से वैशालीको देखकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! तथागतका यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनद ! जहाँ **भ ण्ड गा म** है, वहाँ चले।" "अच्छा भन्ते ! '

भण्डगाम—

तव भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ भडग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राममे विहार करते थे। वहाँ भडग्राममे विहार करते भी भगवान् ०।

० जहाँ अम्बगाम (=**आम्रग्राम**) ०। ० जहाँ जम्बूगाम (=**जम्बूग्राम**) ०। ० जहाँ **भोगनगर** ०

भोगनगर—

(७) *महाप्रदेश* (*कसौटी*)

वहाँ भोगनगरमे भगवान् आनन्द-चैत्यमे विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! चार **महाप्रदेश** तुम्हे उपदेश करता हूँ, उन्हे सुनो, अच्छी तरह मनमे करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते ! " कह उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—(१) "भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो ! मैंने इसे भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है। तो भिक्षुओ ! उस दिन भिक्षुके भाषणका न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यजनोको अच्छी तरह सीखकर, सूत्रसे तुलना करना, विनयमे देखना। यदि वह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमे देखनेपर, न सूत्रमे उतरते है, न विनयमे दिखाई देते है, तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन नही है, उस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोळ देना। यदि वह सूत्रमे तुलना करनेपर, विनयमे देखनेपर, सूत्रमे

भी उतरता है, विनयमे भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना—अवश्य यह भगवान्‌का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगृहीत है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना।

"(२) और फिर भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवास मे स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु)-सघ विहार करता है। मैंने उस सघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है। ०। तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्‌का वचन है, इसे सघने सुगृहीत किया। भिक्षुओ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

"(३) ० भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो! अमुक आवासमे बहुतसे बहुश्रुत, आगत-आगम—(=आगमज्ञ), धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिका-धर, स्थविर भिक्षु विहार करते है। यह मैंने उन स्थविरो के मखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है। ०। ०।

"(४) भिक्षुओ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे—अमुक आवासमे एक बहुश्रुत ० स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय ०। भिक्षुओ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना।

भिक्षुओ! इन चार महाप्रदेशोको धारण करना।"

वहाँ भोगनगरमे विहार करते समय भी भगवान् भिक्षुओको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

पावा—

(८) *चुन्दका अन्तिम भोजन*

० तब भगवान् भिक्षु-सघके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये। वहाँ पावामे भगवान् चुन्द कर्मार-(=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमे विहार करते थे।

चुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामे आये है, पावामे मेरे आम्रवनमे विहार करते है। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान्‌ने धार्मिक-कथामे ० समुत्तेजित ० किया। तब चुन्द ० ने भगवान की धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० हो भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (=सूकर-मद्दव)[१] तैयार करवा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी । तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-सघके साथ, जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। । (भोजनकर) एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान् धार्मिक-कथा से ० समुत्तेजित ० कर आसनसे उठकर चल दिये।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रके भात (=भोजन)को खाकर भगवान्‌को खून गिरनेकी, कळी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीळा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-सप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुये, सहन किया। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ कुसीनारा है, वहाँ चले।" "अच्छा भन्ते।"

---

[१] सुअरका मास या शूकरकन्दका पाक।

मैंने सुना है—चुन्द कर्मारके भातको भोजनकर,
धीरको मरणान्तक भारी रोग हो गया ॥१३॥
शूकर-मार्दवके खानेपर शास्ताको भारी रोग उत्पन्न हुआ।
विरेचनोके होते समय ही भगवान्‌ने कहा—चलो, कुसीनारा चले ॥१४॥
तव भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा—
"आनन्द मेरे लिये चौपेती सघाटी बिछा दो, मै थक गया हूँ, बैठूंगा।

"अच्छा भन्ते!" आयुष्मान् आनन्दने चौपेती सघाटी बिछादी, भगवान् बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ। प्यासा हूँ, आनद! पानी पिऊँगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनदने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! अभी अभी पाँच सौ गाळियाँ निकली है। चक्कोसे मथा हिडा पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते! यह सुदरजलवाली, शीतलजलवाली, सफेद, सुप्रतिष्ठित रमणीय ककुत्था नदी करीवमे है। वहाँ (चलकर) भगवान् पानी पीयेंगे, और शरीरको ठडा करेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने ०। तीसरी बार भी भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"
"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ ०।"

"अच्छा, भन्ते!" कह भगवान्‌को उत्तर दे पात्र लेकर जहाँ वह नदी थी, वहाँ गये। तव वह चक्कोसे मथे हिडे मैले थोळे पानीके साथ बहनेवाली नदी, आयुष्मान् आनन्दके वहाँ पहुँचने पर स्वच्छ निर्मल (हो) बहने लगी। तव आयुष्मान् आनदको ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! तथागतकी महा-ऋद्धि, महानुभावताको अद्भुत है! यह नदिका (=छोटी नदी) चक्कोसे मथे हिळे मैले थोळे पानीके साथ वह रही थी, सो मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल वह रही है।' और पात्रमे पानी भरकर भगवान्‌के पास ले गये। लेजाकर भगवान्‌से यह बोले—"० आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है भन्ते ० निर्मल वह रही है। भन्ते! भगवान् पानी पिये, सुगत पानी पिये।"

तव भगवान्‌ने पानी पिया।

उस समय आलारकालामका शिष्य पुक्कुस मल्ल-पुत्र कुसीनारा और पावाके बीच, रास्ते मे जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-पुत्रने भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पुक्कुस ० ने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! प्रव्रजित (लोग) शाततर विहारसे विहरते है। भन्ते! पूर्वकालमे (एक बार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्गसे हटकर पासमे दिनके विहारके लिये एक बृक्षके नीचे बैठे। उस समय पाँच सौ गाळियाँ आलार कालामके पीछेसे गई। तव उस गाळियोके सार्थ (=कारवाँ)के पीछे पीछे आते एक आदमीने आलार कालामके पास जाकर पूछा—'क्या भन्ते! पाँच सौ गाळियाँ (इधरसे) निकलते देखा है?'

'आवुस! मैंने नही देखा।"

"क्या भन्ते! आवाज सुनी?"

"नही आवुस! मैंने आवाज नही सुनी।"

"क्या भन्ते! सो गये थे?"

"नही आवुस! सोया नही था।"

"क्या भन्ते! होशमे थे?"

"हाँ, आवुस!"

"तो भन्ते ! आपने होशमे जागते हुए भी पीछेसे निकली पाँच सौ गाळियोंको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना ? किन्तु (यह जो) आपकी सघाटी पर गर्द पळी है ?"

"हाँ ! आवुस।"

"तब भन्ते ! उस पुरुषको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है ! ! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते है, जो कि (इन्होने) होशमे, जागते हुये भी पाँच सौ गाळियोको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना।'—कह आलार कालामके प्रति बळी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

"तो क्या मानते हो पुक्कुस ! कौन दुष्कर है, दु सम्भव है—जो कि होशमे जागते हुये पाँच सौ गाळियोका न देखना, न आवाज सुनना, अथवा होशमे जागते हुये, पानीके बरसते बादल के गळगळाते, बिजलीके निकलते और अशनि (=बिजली)के गिरनेके समय भी न (चमक) देखे न आवाज सुने ?"

"क्या है भन्ते पाँच सौ गाळियाँ, छै सौ०, सात सौ ०, आठ सौ ०, नौ सौ ०, दस सौ ०, दस हजार ०, या सौ हजार गाळियाँ, यही दुष्कर दु सम्भव है जो कि होशमे जागते हुये, पानीके बरसते ० बिजलीके गिरनेके समय भी न (चमक) देखे, न आवाज सुने।"

"पुक्कुस ! एक समय मै **आतुमाके भुसागारमे** विहार करता था। उस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मरे। तब आतुमासे आदमियोकी भीळ निकल कर वहाँ पहुँची, जहाँपर कि वह दो भाई किसान और चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कुस ! मै भुसागारसे निकलकर द्वारपर टहल रहा था। तब पुक्कुस ! उस भीळसे निकल कर एक आदमी मेरे पास आ खळा होकर बोला—'भन्ते ! इस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मर गये। इसीलिये यह भीळ इकट्ठी हुई है। आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे।'

'आवुस ! यही था।'

'क्या भन्ते ! आपने देखा ?'

'नही, आवुस ! नही देखा।'

'क्या भन्ते ! शब्द सुना ?'

'नही आवुस ! शब्द (भी) नही सुना।'

'क्या भन्ते ! सो गये थे ?'

'नही आवुस ! सोया नही था।

'क्या भन्ते ! होशमे थे ?'

'हाँ, आवुस !'

'तो भन्ते ! आपने होशमे जागते हुये भी देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेको न देखा, न शब्दको सुना ?'

'हाँ, आवुस !'

"तब पुक्कुस ! उस आदमीको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है ! ! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते है ० न आवाज सुने।'—कह मेरे प्रति बळी श्रद्धा प्रकटकर चला गया।"

ऐसा कहनेपर पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह मै, जो मेरा **आलार कालाममें** श्रद्धा (=प्रसाद) थी, उसे हवामे उळा देता हूँ, या शीघ्र धारवाली नदीमे बहा देता हूँ। आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेको खोलदे, भूलेको रास्ता बतला दे, अधेरेमे चिराग रखदे, कि आँखवाले रूपको देखे, ऐसे ही भन्ते !

भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मै भन्ते! भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु सघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अजलिवद्ध शरणागत उपासक धारण करे।"

तब पुक्कुस मल्लपुत्रने (अपने) एक आदमीसे कहा—"आ रे! मेरे इगुरके वर्ण वाले चमकते दुशालेको ले आ।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह उस आदमीने पुक्कुस मल्लपुत्रको कह, ० दुशालेको ला दिया। तब पुक्कुस मल्लपुत्रने ० दुशाला भगवान्‌को अर्पित किया—

"भन्ते! कृपाकरके इस मेरे ० दुशालेको स्वीकार करे।"

"तो पुक्कुस! एक मुझे ओढा दे, एक आनदको।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह, पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्‌को उत्तर दे, एक ० शाल भगवान्‌को ओढा दिया, एक ० आयुष्मान् आनदको।

तव भगवान्‌ने पुक्कुस मल्लपुत्रको धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित=समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा ० सप्रहर्षित हो पुक्कुस मल्लपुत्र आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तव पुक्कुस मल्ल-पुत्रके जानेके थोळीही देर वाद आयुष्मान् आनदने उस (अपने) ० शालको भगवान्‌के शरीरपर ढाँक दिया। भगवान्‌के शरीरपर किरणसी फूटी जान पळती थी। तव आयुष्मान् आनदने भगवान्‌से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! कितना परिशुद्ध=पर्यवदात तथागतके शरीरका वर्ण है!! भन्ते! यह ० दुशाला भगवान्‌के शरीरपर किरणसा जान पळता है।"

"ऐसा ही है आनन्द! ऐसा ही है आनन्द! दो समयोमे आनन्द! तथागतके शरीरका वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध=पर्यवदात जान पळता है। किन दो समयोमे? जिस समय तथागतने अनुपम सम्यक्-सबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किया, और जिस रात तथागत उपादि (=आवागमनके कारण) रहित निर्वाणको प्राप्त होते है। आनन्द! इन दो समयोमे ०। आनन्द! आज रातके पिछले पहर कुसीनाराके उपवत्तन (नामक) मल्लोके शालवनमे जोळे शालवृक्षोके बीच तथागतका परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द! जहाँ ककुत्था नदी है, वहाँ चले।"

"अच्छा, भन्ते!" कह आयुष्मान् आनदने भगवान्‌को उत्तर दिया।

इगुर वर्णवाले चमकते दुशालेको पुक्कुसने अर्पण किया।
उनसे आच्छादित बुद्ध सोनेके वर्ण जैसे शोभा देते थे॥१५॥

"अच्छा भन्ते!"

तव महाभिक्षु-सघके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहाँ अम्बवन (आम्रवन) था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् चुन्दकसे बोले—

"चुन्दक! मेरे लिये चौपेती सघाटी विछा दे। चुन्दक थक गया हूँ, लेटूँगा।"

"अच्छा भन्ते।"

तव भगवान् पैरपर पैर रख, स्मृतिसप्रजन्यके साथ, उत्थान-सज्ञा मनमे करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे। आयुष्मान् चुन्दक वही भगवान्‌के सामने वैठे।

बुद्ध उत्तम, सुदर स्वच्छ जलवाली ककुत्था नदी पर जा,
लोकमे अद्वितीय, शास्ताने अ-क्लान्त हो स्नान किया॥१६॥
स्नानकर, पानकर चुन्दको आगे कर भिक्षु-गणके वीचमे (चलते)

धर्मके वक्ता प्रवक्ता महर्षि भगवान् आम्रवनमे पहुँचे ॥१७॥
चुन्दक भिक्षुसे कहा—चौपेती सघाटी बिछाओ, लेटूँगा।
आत्मसयमीसे प्रेरित हो तुरन्त चौपेती (सघाटी)को बिछा दिया।
अक्लान्त हो शास्ता लेट गये, चुन्द भी वहाँ सामने बैठ गये ॥१८॥

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! शायद कोई चुन्द कर्म्मारपुत्रको चिंतित करे (=विप्पटिसार उपदहेय) (और कहे)—'आवुस चुन्द! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आनद! चुन्द कर्मार-पुत्रकी इस चिंताको दूर करना (और कहना)—'आवुस! लाभ है तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आवुस चुन्द! मैंने यह भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया—'यह दो पिड-पात समान फलवाले=समान विपाकवाले है, दूसरे पिडपातोसे बहुतही महाफल-प्रद=महानृशसतर है। कौनसे दो? (१) जिस पिडपात (=भिक्षा) को भोजनकर तथागत अनुत्तर सम्यक्-सबोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्त हुये, (२) और जिस पिंडपातको भोजनकर तथागत अन्-उपादिशेष निर्वाणधातु (=दुःख-कारण-रहित निर्वाण) को प्राप्त हुये। आनन्द! यह दो पिंडपात०। चुन्द कर्मारपुत्रने आयु प्राप्त करानेवाले कर्मको सचित किया, ०वर्ण०, ०सुख०, ०यश०, ० स्वर्ग०, ० आधिपत्य प्राप्त करानेवाले कर्मको सचित किया।' आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्रकी चिन्ताको इस प्रकार दूर करना।"

तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"(दान) देनेसे पुण्य बढता है, सयमसे वैर नही सचित होता।
सज्जन बुराईको छोळता है, (और) राग-द्वेष-मोहके क्षयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है ॥१७॥

(इति) चतुर्थ माणवार ॥४॥

४—जीवनकी अन्तिम घळियाँ

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनदको आमत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ हिरण्यवती नदीका परला तीर है, जहाँ कुसीनाराके मल्लोका शालवन उपवत्तन है, वहाँ चले।"

"अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ हिरण्यवती ० मल्लोका शालवन था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द! यमक(=जुळवे)-शालो के बीचमे उत्तरकी ओर सिरहानाकर चारपाई (=मचक) बिछा दे। थका हूँ, आनन्द! लेटूँगा।" "अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् ० दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे।

उस समय अकालहीमे वह जोळे शाल खूब फूले हुये थे। तथागतकी पूजाके लिये वे (फूल) तथागत के शरीरपर बिखरते थे। दिव्य मन्दार-पुष्प आकाशसे गिरते थे, वह तथागतके शरीर पर बिखरते थे। दिव्य चदन चूर्ण ०। तथागतकी पूजाके लिये आकाशमे दिव्य वाद्य बजते थे। ० दिव्य सगीत ०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—"आनद! इस समय अकालहीमे यह जोळे शाल खूब फूले हुये है।०। किन्तु, आनन्द! इनसे तथागत सत्कृत गुरुकृत, मानित-पूजित नही होते। आनन्द! जो कि भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्मके मार्गपर आरूढ हो विहरता

है, यथार्थ मार्गपर आरूढ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है, उससे तथागत ० पूजित होते है। ऐसा आनद। तुम्हे सीखना चाहिये।"

उस समय आयुष्मान् उपवान भगवान्पर पखा झलते भगवान्के सामने खळे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान उपवानको हटा दिया—

"हट जाओ , भिक्षु ! मत मेरे सामने खळे होओ।"

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्के समीप चारी=सन्तिकावचर उपस्थाक रहे है। किन्तु, अन्तिम समयमे भगवान्ने उन्हे हटा दिया—हट जाओ ! भिक्ष ०। क्या हेतु=प्रत्यय है, जो कि भगवान्ने आयुष्मान् उपवानको हटा दिया—० ?'

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्के ० उपस्थाक रहे है। ० क्या हेतु ० है ?"

"आनद ! बहुतसे दसो लोक-धातुओके देवता तथागतके दर्शनके लिये एकत्रित हुये है। आनद ! जितना (यह) कुसीनाराका उपवर्तन मल्लोका शालवन है, उसकी चारो ओर बारह योजन तक बालके नोक गळाने भरके लिये भी स्थान नही है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हो। आनन्द ! देवता परेशान हो रहे है—'हम तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये है। तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध कभी ही कभी लोकमे उत्पन्न होते है। आज ही रातके अन्तिम पहरमे तथागतका परिनिर्वाण होगा। और यह महेशाख्य (=प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान्के सामने खळा है। अन्तिम समयमे हमे तथागतका दर्शन नही मिल रहा है।'

"भन्ते ! भगवान् देवताओके बारेमे कैसे देख रहे है ?"

"आनद ! देवता आकाशको पृथिवी ख्यालकर बाल खोले रो रहे है। हाथ पकळकर चिल्ला रहे है। कटे (वृक्ष) की भाति भूमिपर गिर रहे है। (यह कहते) लोट पोट रहे है—'बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे है। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाणको प्राप्त हो रहे है। बहुत शीघ्र चक्षुमान् (=बुद्ध) लोकसे अन्तर्धान हो रहे है।' और जो देवता होश-चेतवाले है, वह होश-चेत स्मृति सप्रजन्योके साथ सह रहे है—'सस्कृत (=कृत वस्तुये) अनित्य है। सो कहाँ मिल सकता है'।"

"भन्ते ! पहिले दिशाओमे वर्षावास कर भिक्षु भगवान्के दर्शनार्थ आते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओका दर्शन , सत्सग हमे मिलता था। किन्तु भन्ते ! भगवान्के बाद हमे मनोभावनीय भिक्षुओका दर्शन, सत्सग नही मिलेगा।"

"आनन्द ! श्रद्धालु कुल-पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, सवेजनीय (=वैराग्यप्रद) है। कौनसे चार ? (१) 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये (=**लुम्बिनी**)' यह स्थान श्रद्धालु ० ! (२) 'यहाँ तथागतने अनुत्तर सम्यक्-सबोधिको प्राप्त किया' (=**बोधगया**) ०। (३) 'यहाँ तथागतने अनुत्तर (=सर्व श्रेष्ठ) धर्मचक्रको प्रवर्तन किया' (=**सारनाथ**) ०। (४) 'यहाँ तथागत अनुपादि-शेष निर्वाण-धातुको प्राप्त हुये (=**कुसीनारा**) ०। ० यह चार स्थान दर्शनीय ० है। आनन्द ! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक उपासिकाये (भविष्यमे यहाँ) आवेगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये', ० 'यहाँ तथागत ० निर्वाण ० को प्राप्त हुये ।"

(२) स्त्रियोके प्रति भिक्षुओंका वर्ताव

"भन्ते ! स्त्रियोके साथ हम कैसा वर्ताव करेगे ?"

"अ-दर्शन (=न देखना), आनन्द !"

"दर्शन होनेपर भगवान् कैसे वर्ताव करेगे ?"

"आलाप (=बात) न करना, आनन्द!"
"बात करनेवालेको कैसा करना चाहिये?"
"स्मृति(=होश)को सँभाले रखना चाहिये?"

(३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया

"भन्ते! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे?" "आनन्द! तथागतकी शरीर-पूजासे तुम बेपर्वाह रहो। तुम आनन्द सच्चे पदार्थ (=सदर्थ)के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थके लिये उद्योग करना। सत्-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसयमी हो विहरना। है, आनन्द! क्षत्रिय पडित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहपति पडित भी, तथागतमे अत्यन्त अनुरक्त, वह तथागतकी शरीर-पूजा करेंगे।"

"भन्ते! तथागतके शरीरको कैसे करना चाहिये?" "जैसे आनन्द! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये!"

"भन्ते! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है?"

"आनन्द! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते है, नये वस्त्रसे लपेटकर धुनी रुईसे लपेटते है। धुनी रुईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते है। इस प्रकार लपेटकर तेलकी लोहद्रोणी(=दोन) मे रखकर, दूसरी लोह-द्रोणीसे ढाँककर, सभी गधो (वाले काष्ठ)की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीरको जलाते है, जलाकर बळे चौरस्ते पर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते है।"

"वहाँ आनन्द! जो माला, गध या चूर्ण चढायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे, तो वह दीर्घ काल तक उनके हित-सुखके लिये होगा। आनद! चार स्तूपार्ह(=स्तूप बनाने योग्य)है। कौनसे चार? (१) तथागत सम्यक् सबुद्ध स्तूप बनाने योग्य है। (२) प्रत्येक सबुद्ध०। (३) तथागतका श्रावक (=शिष्य)०। (४) चक्रवर्ती राजा आनद, स्तूप बनाने योग्य है। सो क्यो आनद? तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध स्तूपार्ह है? यह उन भगवान्० सबुद्धका स्तूप है—(सोचकर) आनद! बहुतसे लोग चित्तको प्रसन्न करेंगे चित्तको प्रसन्न कर मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमे उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजनसे आनद। तथागत० स्तूपार्ह है।०। किस लिये आनद! राजा चक्रवर्ती स्तूपार्ह है? आनन्द! यह धार्मिक धर्मराजका स्तूप है, सोच आनद! बहुतसे आदमी चित्तको प्रसन्न करेंगे०।० आनद! यह चार स्तूपार्ह है।

(४) आनन्दके गुण

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमे जाकर कपिसीस (=खूँटी)को पकळकर रोते खळे हुये—'हाय! मै शैक्ष्य=सकरणीय हूँ। और जो मेरे अनुकपक शास्ता है, उनका परिनिर्वाण हो रहा है!!"

भगवान्ने भिक्षुओको आमत्रित किया—"भिक्षुओ! आनन्द कहाँ है?"

"यह भन्ते! आयुष्मान् आनन्द विहार(=कोठरी)मे जाकर० रोते खळे है०।"

"आ! भिक्षु! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आवुस आनन्द! शास्ता तुम्हे बुला रहे है।" "अच्छा, भन्ते!"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने कहा—

"नही आनन्द! मत शोक करो, मत रोओ! मैने तो आनन्द! पहिले ही कह दिया है—सभी प्रियो=मनापोसे जुदाई० होनी है, सो वह आनन्द! कहाँ मिलनेवाला है। जो कुछ जात (=उत्पन्न) =भूत=सस्कृत है, सो नाश होनेवाला है। 'हाय! वह नाश न हो।' यह सभव नही। आनन्द! तूने

दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवा की है। मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे ०। ०मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे ०। आनन्द ! तू कृतपुण्य है। प्रधान (=निर्वाण-साधन)मे लग जल्दी अनास्रव(=मुक्त) हो जा।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो तथागत अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध अतीतकालमे हुए, उन भगवानोके भी उपस्थाक (=चिरसेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा (उपस्थाक) आनन्द। भिक्षुओ ! जो तथागत ० भविष्यमे होगे ०। भिक्षुओ ! आनन्द पंडित है। भिक्षुओ ! आनन्द मेधावी है। वह जानता है—यह काल भिक्षुओका तथागतके दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियोका है, यह काल उपासकोका है, यह काल उपासिकाओका है। यह काल राजाका ० राज-महामात्यका ० तीर्थिकोका ० तीर्थिक-श्रावकोका है।

"भिक्षुओ ! आनन्दमे यह चार आश्चर्य अद्‌भुत बाते (=धर्म) है। कौनसी चार? (१) यदि भिक्षु-परिषद् आनन्दका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्मपर भाषण करता है, भाषणसे भी सन्तुष्ट हो जाती है, भिक्षुओ ! भिक्षु-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। (२) यदि भिक्षुणी-परिषद् ०। (३) यदि उपासक-परिषद् ०। (४) यदि उपासिका-परिषद् ०। भिक्षुओ ! यह चार ०।

(५) चक्रवर्तीके चार गुण

"भिक्षुओ ! चक्रवर्ती राजामे यह चार आश्चर्य, अद्‌भुत बाते है। कौनसी चार? (१) यदि भिक्षुओ ! क्षत्रिय-परिषद् चक्रवर्ती राजाका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, तो भाषणसे सन्तुष्ट हो जाती है, और भिक्षुओ ! क्षत्रिय-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि चक्रवर्ती राजा चुप होता है। (२) यदि ब्राह्मण-परिषद् ०। (३) यदि गृहपति-परिषद् ०। (४) यदि श्रमण-परिषद् ०। इसी प्रकार भिक्षुओ ! यह चार आश्चर्य, अद्‌भुत बाते आनन्दमे है। (१) यदि भिक्षु-परिषद् ०। ०। भिक्षुओ ! यह चार आश्चर्य अद्‌भुत बाते आनन्दमे है।"

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक)मे, जगली नगलेमे शाखा-नगरकमे परिनिर्वाणको प्राप्त होवे। भन्ते ! और भी महानगर है, जैसे कि **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी**। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करे। वहाँ बहुतसे क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशाल तथागतके भक्त है, वह तथागतके शरीरकी पूजा करेगे।"

(६) महासुदर्शनजातक[1]

"मत आनन्द ! ऐसा कह, मत आनन्द ! ऐसा कह—'इस क्षुद्र नगले ०।' आनन्द ! पूर्वकालमे **महासुदर्शन** नामक चारो दिशाओका विजेता, देशोपर अधिकारप्राप्त, सात रत्नोसे युक्त धार्मिक धर्मराजा चक्रवर्ती राजा था। आनन्द ! यह कुसीनारा राजा महासुदर्शनकी **कुशावती** नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाईमे बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तारमे सात योजन थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=जनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द ! देवताओ-

---

[1] देखो महासुदस्सन-सुत्त पृ० १५२।

की आलकमदा नामक राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=यक्ष-आकीर्ण और सुभिक्ष है, इसी प्रकार ०। आनन्द! कुशावती राजधानी दिन-रात, हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शख-शब्द, ताल-शब्द, 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दोसे शून्य न होती थी। आनन्द! कुसीनारामे जाकर कुसीनारावासी मल्लोको कह—'वाशिष्टो! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्टो! चलो वाशिष्टो! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमे तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमे तथागतका दर्शन न कर पाये।" "अच्छा भन्ते!"

आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिनकर, पात्रचीवर ले, अकेले ही कुसीनारामे प्रविष्ट हुए। उस समय कुसीनारावासी मल्ल किसी कामसे सस्थागारमे जमा हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मल्लोका सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनारावासी मल्लोसे यह बोले—'वाशिष्टो! ०।'

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-बधुये, मल्ल-भार्याये दु खित दुर्मना दु ख-समर्पित-चित्त हो, कोई कोई बालोको बिखेर रोते थे, बाँह पकळकर क्रदन करते थे, कटे (वृक्ष)से गिरते थे, (भूमिपर) लोटते थे—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण प्राप्त हो रहे है, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे है ०। बहुत जल्दी लोक-चक्षु अन्तर्धान हो रहे है। तब मल्ल ० दु खित ० हो, जहाँ उपवत्तन मल्लोका शालवन था, वहाँ गये।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यदि मै कुसीनाराके मल्लोको एक एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊँ, तो भगवान् (सभी) कुसीनाराके मल्लोसे अवन्दित ही होगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यो न मै कुसीनाराके मल्लोको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्की वन्दना करवाऊँ—'भन्ते! अमुक नामक मल्ल स-पुत्र, स-भार्य, स-परिषद्, स-अमात्य भगवान्के चरणोको शिरसे वन्दना करता है।' तब आयुष्मान् आनन्दने कुसीनाराके मल्लोको एक एक कुलके क्रमसे भागवान्की वन्दना करवाई—०। इस उपायसे आयुष्मान् आनन्दने, प्रथम याम (=छैसे दस बजे राततक)मे कुसीनाराके मल्लोसे भगवान्की वन्दना करवा दी।

(७) सुभद्रकी प्रब्रज्या

उस समय कुसीनारामे सुभद्र नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजकने सुना, आज रातको पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा। तब सुभद्र परिव्राजकको ऐसा हुआ—"मैने बृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकोको यह कहते सुना है—'कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते है।' और आज रातके पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह सशय (=कखा-धम्म) उत्पन्न है, इस प्रकार मे श्रमण गौतममे प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है, जिससे मेरा यह सशय हट जायेगा।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लोका शाल-वन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोला—"हे आनन्द! मैने बृद्ध=महल्लक ० परिव्राजकोको यह कहते सुना है ०। सो मै श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ?"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

"नही आवुस! सुभद्र! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए है।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने ०।०। तीसरी बार भी ०।०।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा-सलाप सुन लिया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"नही आनन्द! मत सुभद्रको मना करो। सुभद्रको तथागतका दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आज्ञा (=परम-ज्ञान)की इच्छासे ही पूछेगा, तकलीफ देनेकी इच्छासे नही। पूछनेपर जो मै उसे कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र! भगवान् तुम्हे आज्ञा देते है।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ समोदनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठ बोला।

"हे गौतम! जो श्रमण ब्राह्मण सघी गणी=गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थकर, वहुत लोगो द्वारा उत्तम माने जानेवाले है, जैसे कि—**पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, पकुध कच्चायन, सजय बेलट्ठिपुत्त, निगण्ठ नाथपुत्त**। (क्या) वह सभी अपने दावा (=प्रतिज्ञा)को (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नही जानते, (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नही जानते है! "

"[1] नही सुभद्र! जाने दो—'वह सभी अपने दावाको ०। सुभद्र! तुम्हे धर्म ० उपदेश करता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमे करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!" सुभद्र परिव्राजकने भगवान्से कहा। भगवान्ने यह कहा—

"सुभद्र! जिस धर्म-विनयमे आर्य अष्टागिक मार्ग उपलब्ध नही होता, वहाँ प्रथम श्रमण (=स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नही होता, द्वितीय श्रमण (=सकृदागामी) भी उपलब्ध नही होता, तृतीय श्रमण (=अनागामी) भी उपलब्ध नही होता, चतुर्थ श्रमण (=अर्हत्) भी उपलब्ध नही होता। सुभद्र! जिस धर्म-विनयमे आर्य-अष्टागिक-मार्ग उपलब्ध होता है, प्रथम श्रमण भी वहाँ होता है ०। सुभद्र! इस धर्म-विनयमे आर्य अष्टागिक-मार्ग उपलब्ध होता है, सुभद्र! यहाँ प्रथम श्रमण ० भी, यहाँ ० द्वितीय श्रमण भी, यहाँ ० तृतीय श्रमण भी, यहाँ ० चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे वाद(=मत) श्रमणोसे शून्य है। सुभद्र! 'यहाँ (यदि) भिक्षु ठीकमे विहार करे (तो) लोक अर्हतोसे शून्य न होवे।"

"सुभद्र! उन्तीस वर्षकी अवस्थामे कुशलका खोजी हो, जो मै प्रव्रजित हुआ।

सुभद्र! जब मै प्रव्रजित हुआ तबसे इक्कावन वर्ष हुए।

न्याय-धर्म (=आर्य-धर्म=सत्यधर्म)के एक देशको भी देखनेवाला यहाँसे बाहर कोई नही है ॥२०॥

ऐसा कहनेपर सुभद्र परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! ०[2] मै भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। भन्ते! मुझे भगवान्के पाससे प्रव्रज्या मिले, उपसपदा मिले।"

"सुभद्र! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तीर्थिक (=दूसरे पथका) इस धर्म मे प्रव्रज्या उपसपदा चाहता है। वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है। चार मासके वाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते है, भिक्षु होनेके लिये उपसपन्न करते है।"

"भन्ते! यदि भूतपूर्व अन्यतीर्थिक इस धर्मविनयमे प्रव्रज्या ० उपसपदा चाहनेपर, चार मास परिवास करता है ०। तो भन्ते! मै चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षोके वाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करे।"

---

[1] अ. क "पहिले पहरमें मल्लोको धर्मदेशनाकर, बिचले पहर सुभद्रको, पिछले पहर भिक्षु-सघको उपदेशकर, बहुत भोरे ही परिनिर्वाण ।

[2] पृष्ठ ३२

तव भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"तो आनन्द ! सुभद्रको प्रव्रजित करो।" "अच्छा भन्ते !"

तव सुभद्र परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! लाभ है तुम्हे, सुलाभ हुआ तुम्हे, जो यहाँ शास्ताके सम्मुख अन्तेवासी (=शिष्य)के अभिषेकसे अभिषिक्त हुए।"

सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसपदा पाई। उपसपन्न होनेके अचिरहीमे आयुष्मान् सुभद्र आत्मसयमी हो विहार करते, जल्दी ही, जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममे स्वय जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरने लगे। ०। सुभद्र अर्हतोमेसे एक हुए। वह भगवान्‌के अन्तिम शिष्य हुए।

(इति) पचम भाणवार ॥५॥

(८) अन्तिम उपदेश

तव भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत-शास्ता (=चलेगये गुरु)का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अव) हमारा शास्ता नही है। आनन्द ! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये है, प्रज्ञप्त (=विहित) किये है, मेरे वाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है।—(२) आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको 'आवुस' कहकर पुकारते है, मेरे वाद ऐसा कहकर न पुकारे। आनन्द ! स्थविरतर (=उपसपदा प्रव्रज्यामे अधिक दिनका) भिक्षु नवक-तर (=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या आवुस, कहकर पुकारे। नवकतर भिक्षु स्थविरतरको 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारे। (३) इच्छा होनेपर सघ मेरे वाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षा-पदो (=भिक्षुनियमो)को छोळ दे। (४) आनन्द ! मेरे वाद छन्न भिक्षुको ब्रह्मदण्ड करना चाहिये।"

"भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है ?"

"आनन्द ! छन्न, भिक्षुओको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओको उससे न वोलना चाहिये, न उपदेश=अनुशासन करना चाहिये।"

तव भगवान्‌ने भिक्षुओको आमत्रित किया—

"भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, सघमे एक भिक्षुको भी कुछ शका हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान्‌के सामने कुछ पूछ न सके'।"

ऐसा कहनेपर वह भिक्षु चुप रहे। दूसरी वार भी भगवान्‌ने ०।०। तीसरी वार भी ०। ०। तव आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! ! मै भन्ते ! इस भिक्षु-सघमे इतना प्रसन्न हूँ। (यहाँ) एक भिक्षुको भी बुद्ध, धर्म, सघ, मार्ग, या प्रतिपद्‌के विषयमे सदेह (=काक्षा)=विमति नही है।"

"आनन्द ! 'प्रसन्न हूँ' कह रहा है ? आनन्द ! तथागतको मालूम है—इस भिक्षु-सघमे एक भिक्षुको भी बुद्ध०के विषयमे सदेह=विमति नही है। आनन्द ! इन पाँचसौ भिक्षुओमे जो सवसे छोटा भिक्षु है। वह भी न गिननेवाला हो, नियत सबोधि-परायण है।"

तव भगवानने भिक्षुओको आमत्रित किया—"हन्त ! भिक्षुओ अव तुम्हे कहता हूँ—"सस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशमान) है, अप्रमादके साथ (=आलस न कर) (जीवनके लक्ष्यको) सपादन करो।"—यह तथागतका अन्तिम वचन है।"

५—निर्वाण

तव भगवान् प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ० तृतीय ध्यानको ०। ० चतुर्थ ध्यानको ०। ० आकाशानन्त्यायतनको ०। ० विज्ञानानन्त्यायतनको ०। ० आकिंचन्यायतनको ०। ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको ०। ० संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए। तब आयष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरुद्धसे कहा—"भन्ते अनुरुद्ध ! क्या भगवान् परिनिर्वृत होगये ?"

"आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नही हुए। संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए है।"

तव भगवान् संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चारो ध्यानोके ऊपरकी समाधि)से उठकर नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हुए। ०। द्वितीय ध्यानसे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ०। चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुए। भगवान्‌के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होतेके साथ भीषण, लोमहर्षण महाभूचाल हुआ। देव-दुन्दुभियाँ वजी। भगवान्‌के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होतेके साथ सहापति ब्रह्माने यह गाथा कही—

"संसारके सभी प्राणी जीवनसे गिरेंगे।
जवकि ऐसे लोकमे अद्वितीय पुरुष वलप्राप्त,
तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए" ॥२१॥

भगवान्‌के परिनिर्वाण होनेपर ० देवेन्द्र शक्रने यह गाथा कही—

"अरे ! संस्कार (=उत्पन्न वस्तुये) उत्पन्न और नष्ट होनेवाले है।
(जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, उनका शान्त होना ही सुख है" ॥२२॥

भगवान्‌के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् अनुरुद्धने यह गाथा कही—

"स्थिर-चित्त तथागतको (अव) श्वास-प्रश्वास नही रहा।
शान्तिके लिये निष्कम्प हो मुनिने काल किया" ॥२३॥

भगवान्‌के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् आनन्दने यह गाथा कही—

"जव सर्वश्रेष्ठ आकारसे युक्त संबुद्ध परिनिर्वाणको प्राप्त हुए,
तो उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ" ॥२५॥

भगवान्‌के परिनिर्वाण हो जानेपर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमे) कोई वाँह पकळकर क्रन्दन करते थे, कटे (वृक्ष) के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते थे—'भगवान् वहुत जल्दी परिनिर्वृत हो गये ०। किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-सप्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य है, सो कहाँ मिलेगा ?'

तव आयुष्मान् अनुरुद्धने भिक्षुओसे कहा—

"नही आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान्‌ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—'सभी प्रियो०से जुदाई ० होनी है ०'।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्दने वह वाकी रात धर्म-कथामे विताई। तव आयुष्मान् अनुरुद्धने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द ! कुसीनारामे जाकर, कुसीनाराके मल्लोसे कहो—'वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये। अव जिसका तुम काल समझो (वह करो)।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले कुसीनारामे प्रविष्ट हुए। उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मल्ल, संस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन)मे जमा थे। तव आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लोका संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनाराके मल्लो-से बोले—

"वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-बधुये, मल्ल-भार्याये दुःखित हो० कोई केशोको बिखेरकर क्रदन करती थी, दुर्मना चित्तमे सतप्त हो कोई कोई केशोको बिखेर कर रोती थी, बॉह पकळकर रोती थी, कटे (वृक्ष)की भाँति गिरती थी, (धरतीपर) लुठित विलुठित होती थी—"बळी जल्दी भगवान्का निर्वाण हुआ, बळी जल्दी सुगतका निर्वाण हुआ, बळी जल्दी लोकनेत्र अतर्धान हो गये।"

तब कुसीनाराके मल्लोने पुरुषोको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कुसीनाराकी सभी गध-माला और सभी वाद्योको जमा करो।"

तब कुसीनाराके मल्ल गध-माला, सभी वाद्यो, और पॉच हजार थान (=दुस्स)-जोळोको लेकर जहॉ [1]उपवत्तन ० था, जहॉ भगवान्का शरीर था, वहॉ गये। जाकर उन्होने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गधसे सत्कार करते,=गुरुकार करते,=मानते=पूजते कपळेका वितान (=चँदवा) करते, मडप बनाते उस दिनको विता दिया। तब कुसीनाराके मल्लोको हुआ—'भगवान्के शरीरके दाह करनेको आज बहुत विकाल हो गया। अब कल भगवान्के शरीरका दाह करेगे।' तब कुसीनाराके मल्लोने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गधसे सत्कार करते=गुरुकार करते=मानते=पूजते, चँदवा तानते, मडप बनाते दूसरा दिन भी विता दिया। तीसरा दिन भी ०। ० चौथा दिन भी ०। ० पॉचवॉ दिन भी ०। छठॉ दिन भी ०। तब सातवे दिन कुसीनाराके मल्लोको यह हुआ—'हम भगवान्के शरीरको नृत्य० गधसे सत्कार करते नगरके दक्षिणसे लेजाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्के शरीरका दाह करे। उस समय मल्लोके आठ प्रमुख (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्के शरीरको उठाना चाहते थे, लेकिन वह नही उठा पाते थे। तब कुसीनाराके मल्लोने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—

"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या कारण है, जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख० नही उठा सकते ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओका अभिप्राय दूसरा है।"

"भन्ते ! देवताओका अभिप्राय क्या है ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्के शरीरको नृत्य०से सत्कार करते ० नगरके दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्के शरीरका दाह करे। देवताओका अभिप्राय है—हम भगवान्के शरीरको दिव्य नृत्यसे० सत्कार करते ० नगरके उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वारसे नगरमे० प्रवेशकर, नगरके बीच ले जा, पूर्व-द्वारसे निकल, नगरके पूर्व ओर (जहाँ) [2]**मुकुट-बधन** नामक मल्लोका चैत्य (=देवस्थान) है, वहॉ भगवान्के शरीरका दाह करे।"

"भन्ते ! जैसा देवताओका अभिप्राय है—वैसा ही हो।"

उस समय कुसीनारामे जॉघभर मन्दारव-पुष्प (=एक दिव्य पुष्प) बरसे हुए थे।

तब देवताओ और कुसीनाराके मल्लोने भगवान्के शरीरको दिव्य और मानुष नृत्य०के साथ सत्कार करते ० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर० (जहॉ) मुकुट-बधन नामक मल्लोका चैत्य था, वहाँ भगवान्का शरीर रक्खा। तब कुसीनाराके मल्लोने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"भन्ते ! आनन्द ! हम तथागतके शरीरको कैसे करे ?"

---

[1] वर्तमान माथाकुअर कसया (जि गोरखपुर)।

[2] वर्तमान रामाभार, कसया (जि. गोरखपुर)।

"वाशिष्टो ! जैसे चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते है, वैसे ही तथागतके शरीरको करना चाहिये।"

"कैसे भन्ते ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते है।"

"वाशिष्टो ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको नये कपळेसे लपेटते है०। (दाहकर) वळे चौरस्ते पर तथागतका स्तूप वनवाना चाहिये। वहाँ जो माला, गध या चूर्ण चढायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्तको प्रसन्न करेंगे, उनके लिये वह चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

तव कुसीनाराके मल्लोने आदमियोको आज्ञा दी—"जाओ रे ! धुनी रुईको एकत्रित करो।

तव कुसीनाराके मल्लोने भगवान्‌के शरीरको कोरे वस्त्रमे लपेटा। कोरे वस्त्रमे लपेटकर धुने कपाससे लपेटा। धुने कपाससे लपेटकर, कोरे वस्त्रमे लपेटा। इसी प्रकार पॉच सौ जोळेमे लपेटकर तॉवे (=लोह)की तेलवाली कळाही (=द्रोणी)मे रख सारे गध (काष्टो)की चिता वनाकर, भगवान्‌के शरीरको चितापर रक्खा।"

६—महाकाश्यपको दर्शन

उस समय आयुष्मान् **महाकाश्यप** पॉचसौ भिक्षुओके महाभिक्षुसघके साथ **पावा** ओर **कुसीनारा** बीचमे, रास्तेपर जा रहे थे। तव आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे वैठे। उस समय एक **आजीवक** कुसीनारासे मदारका पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवकको दूरसे आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा—

"आवुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो ?"

"हॉ, आवुस ! जानता हूँ, श्रमण गौतमको परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह होगया, मैंने यह मदार-पुष्प वहीसे पाया।"

यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमे)कोई कोई वॉह पकळकर रोते०। उस समय **सुभद्र** नामक (एक) वृद्धप्रव्रजित (=वुढापेमे साधु हुआ) उस परिषद्‌मे वैठा था। तव वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओसे यह कहा—"मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त होगये। उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे—'यह तुम्हे विहित है, यह तुम्हे विहित नही है।' अव हम जो चाहेंगे, सो करेंगे जो नही चाहेंगे, सो नही करेंगे।"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"आवुसो ! मत सोचो, मत रोओ। आवुसो ! भगवान्‌ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियो=मनापोमे जुदाई० होनी है, सो वह आवुसो ! कहॉ मिलनेवाला है ? जो जात(=उत्पन्न) =भूत० है, वह नाश होनेवाला है। 'हाय ! वह नाश मत हो'—यह सम्भव नही।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिरसे नहाकर, नया वस्त्र पहिन, भगवान्‌की चिताको लीपना चाहते थे, किन्तु नही (लीप) सकते थे। तव कुसीनाराके मल्लोने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख० नही (लीप) सकते है।"

"वाशिष्टो !० देवताओका दूसरा ही अभिप्राय है। आयुष्मान् महाकाश्यप पॉचसौ भिक्षुओके महाभिक्षुसघके साथ पावा और कुसीनाराके वीच रास्तेमे आ रहे है। भगवान्‌की चिता तव तक न जलेगी, जव तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वय भगवान्‌के चरणोको शिरसे वन्दना न कर लेंगे।"

"भन्ते ! जैसा देवताओका अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लोका **मुकुटवन्धन** नामक चैत्य था, जहॉ भगवान्‌की चिता थी, वहाँ पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोळ, तीन वार चिताकी परिक्रमाकर,

चरण खोलकर, शिरसे वन्दना की। उन पाँचसौ भिक्षुओने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोळ तीन बार चिताकी प्रदक्षिणाकर, भगवान्के चरणोमें शिरसे वन्दना की।

७–दाहक्रिया

आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पाँचसौ भिक्षुओके वन्दना कर लेते ही, भगवान्की चिता स्वय जल उठी। भगवान्के शरीरमे जो छवि (=झिल्ली) या चर्म, मास, नस, या लसिका थी, उनकी न राख जान पळी, न कोयला, सिर्फ अस्थियाँ ही बाकी रह गई, जैसे कि जलते हुए घी या तेलकी न राख (= छारिका) जान पळती है, न कोयला (=मसी) । भगवान्के शरीरके दग्ध हो जानेपर मेघने प्रादुर्भूत हो आकाशसे भगवान्की चिताको ठडा किया। । कुसीनाराके मल्लोने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जलसे भगवान्की चिताको ठडा किया।

तब कुसीनाराके मल्लोने भगवान्की अस्थियो (=सरीरानि)को सप्ताह भर सस्थागारमे शक्ति(-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-पजर बनवा, धनुप(-हस्त पुरपोके घेरेका)-प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गधसे सत्कार किया=गुरुकार किया, माना=पूजा।

८–स्तूपनिर्माण

राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्रने सुना—'भगवान् कुसीनारामे परिनिर्वाणको प्राप्त हुए।' तव राजा ० अजातशत्रु०ने कुसीनाराके मल्लोके पास दूत भेजा—'भगवान् भी क्षत्रिय (थे), मै भी क्षत्रिय (हूँ), भगवान्के शरीरो (=अस्थियो)मे मेरा भाग भी वाजिब है । मै भी भगवान्के शरीरोका स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा।'

वैशालीके लिच्छवियोने सुना ०।

कपिलवस्तुके शाक्योने सुना ०।—'भगवान् हमारे ज्ञातिके (थे) ०।

अल्लकप्पके बुलियोने सुना ०। रामग्रामके कोलियोने सुना ०।

वेठ-दीपके ब्राह्मणोने सुना ०, भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण ०।

पावाके मल्लोने भी सुना ०।

ऐसा कहनेपर कुसीनाराके मल्लोने उन सघो और गणोसे कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्रमे परिनिर्वृत हुए, हम भगवान्के शरीरो (=अस्थियो)का भाग नही देंगे।"

ऐसा कहनेपर **द्रोण** ब्राह्मणने उन सघो और गणोसे यह कहा—

"आप सब मेरी एक बात सुने, हमारे बुद्ध क्षाति(=क्षमा)-वादी थे।

यह ठीक नही कि (उस) उत्तम पुरुपकी अस्थि-बाँटनेमे मारपीट हो ॥२६॥

"आप सभी एक साथ=एक राय समोदन करते आठ भाग करे।

दिशाओमे स्तूपोका विस्तार हो, बहुतसे लोग चक्षुमान् (=बुद्ध) मे प्रसन्न हो ॥२७॥"

"तो ब्राह्मण! तूही भगवान्के शरीरोको आठ समान भागोमे सुविभक्त कर।"

"अच्छा भो!" द्रोण ब्राह्मणने भगवान्के शरीरोको आठ समान भागोमे सुविभक्त (=बाँट) कर, उन सघो गणोसे कहा—

"आप सब इस कुभको मुझे दे, मै कुभका स्तूप बनाऊँगा और पूजा करूँगा।"

उन्होने द्रोण ब्राह्मणको कुभ दे दिया।

पिप्पलीवनके मोरियो (=मौर्यो) ने सुना० 'भगवान्भी क्षत्रिय, हमभी क्षत्रिय ०।"

"भगवान्के शरीरोका भाग नही है, भगवान्के शरीर बँट चुके। यहाँसे कोयला (=अगार) लेजाओ।" वह वहाँसे अगार ले गये।

तब (१) राजा०[1] अजातशत्रु०ने राजगृहमे भगवान्‌के अस्थियोका स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) की। वैशालीके लिच्छवियोने भी ०। (३) कपिलवस्तुके शाक्योने भी ०। (४) अल्ल-कप्पके बुलियोने भी ०। (५) रामगामके कोलियोने भी ०। वेठदीपके ब्राह्मणोनेभी ०। (७) पावाके मल्लोने भी ०। (८) कुसीनाराके मल्लोने भी ०। (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका ०। (१०) पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अगारोका ०।

इस प्रकार आठ शरीर(=अस्थि)के स्तूप और एक कुम्भ-स्तूप पूर्वकाल (=भूतपूर्व) मे थे।

"चक्षुमान्‌का शरीर आठ द्रोण था, (जिसमे) सात द्रोण जम्बूदीपमे पूजित होते है।
(और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण राम-गाममे नागोसे पूजा जाता है ॥२८॥
एक दाढ (=दाठा) स्वर्ग-लोकमे पूजित है, और एक गधारपुरमे पूजी जाती है।
एक कलिंगराजाके देशमे है, और एकको नागराज पूजते है ॥२९॥
उसी तेजसे पटुकाकी भाँति यह वसुधरा मही अलकृत है।
इस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध)का शरीर सत्कृतो द्वारा सुसत्कृत हुआ ॥३०॥
देवेन्द्रो-नागेन्द्र नरेन्द्रोसे पूजित, तथा श्रेष्ठ मनुष्योसे पूजित हुआ।
उसे हाथ जोळकर वदना करो, सौ कल्पमे भी बुद्ध होना दुर्लभ है ॥३१॥
चालीस केश, रोम आदिको चारो ओर,
एक एक करके नाना चक्रवालोमे देवता ले गये ॥२३॥

---

[1] अ. क "कुसीनारासे राजगृह पचीस योजन है। इस बीचमें आठ ऋषभ चौळा समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओने मुकुट-बधन और सस्थागारमें जैसी पूजा की थी; वैसीही पूजा पचीस योजन मार्गमें की। (उसने) अपने पाँचसौ योजन परिमडल (=घेरेवाले) राज्यके मनुष्योको एकत्रित करवाया। उन धातुओको ले, कुसीनारासे धातु(-निमित्त)-क्रीळा करते निकलकर (लोग) जहाँ सुन्दर पुष्पोको देखते, वही पूजा करते थे। इस प्रकार धातु लेकर आते हुए, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये। लाई गई धातुओको लेकर (अजातशत्रुने) राजगृहमें स्तूप बनवाया, पूजा कराई। .

इस प्रकार स्तूपोके प्रतिष्ठित होजानेपर महाकाश्यप स्थविरने धातुओके अन्तराय (=विघ्न) को देखकर, राजा अजातशत्रुके पास जाकर कहा—"महाराज! एक धातु-निधान (=अस्थि-धातु रखनेका चहबच्चा) बनाना चाहिये।" "अच्छा भन्ते!" .

स्थविर उन-उन राज-कुलोको पूजा करने मात्रकी धातु छोळकर बाकी धातुओको ले आये। रामग्राममें धातुओके नागोके ग्रहण करनेसे अन्तराय न था; 'भविष्यमें लका-द्वीपमें इसे महाविहारके महाचैत्यमें स्थापित करेंगे'—(के ख्यालसे भी) न ले आये। बाकी सातो नगरोसे ले आकर, राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें (जो स्थान है), राजाने उस स्थानको खुदवाकर, उससे निकली मिट्टीसे ईंटें बनवाई। 'यहाँ राजा क्या बनवाता है', पूछनेवालोको भी 'महाश्रावकोका चैत्य बनवाता है' यही कहते थे, कोई भी धातु-निधानकी बात न जानता था।

१७-महासुदस्सन-सुत्त (२।४)

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन-जातक)। १—कुशावती राजधानी। २—राजाके सात रत्न। ३—राजाकी चार ऋद्धियाँ। ४—धर्म प्रासाद (महल)। ५—राजा ध्यानमे रत। ६—राजाका ऐश्वर्य। ७—सुभद्रादेवीका दर्शनार्थ आना ८—राजाकी मृत्यु। ९—बुद्धही महासुदर्शन राजा।

ऐसा मैने सुना—एक समय अपने परिनिर्वाणके[1] वक्त भगवान् **कुसिनाराके** पास **उपवत्तन** नामक **मल्लोके** सालवनमे दो साल वृक्षोके बीच विहार करते थे।

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन जातक)

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मत इस छुद्र नगलेमे, जगली नगलेमे, शाखा-नगलेमे परिनिर्वाणको प्राप्त होवे। भन्ते! और भी महानगर है, जैसे कि **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी,** वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करे। वहाँ बहुत से क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण महाशाल, गृहपति महाशाल तथागतके भक्त है, वे तथागतके शरीरकी पूजा करेगे।"

"नही आनन्द! ऐसा न कहो, मत इस क्षुद्र नगले ०।

१—कुशावती राजधाना

"आनन्द! पूर्वकालमे महासुदस्सन नामक चारो दिशाओपर विजय पाने वाला, दृढ शासक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। आनन्द! महासुदस्सन राजाकी यही **कुसिनारा कुशावती** नामकी राजधानी थी। आनन्द! वह कुशावती पूरबसे लेकर पश्चिमकी ओर लम्बाईमे बारह योजन थी, चौळाईमे उत्तरसे दक्षिण सात योजन। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध थी, उन्नतिशील थी, बहुत आबादी वाली थी, गुलजार थी, और सुभिक्ष थी। आनन्द! जैसे देवताओ की **आलकमन्दा** नाम राजधानी समृद्ध ० है, वैसे ही आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध ० थी। आनन्द! कुशावती राजधानी दस शब्दोसे रात दिन सदा भरी रहती थी, जैसे हाथीके शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, झाझ-शब्द, ताल-शब्द, शख-शब्द, "खाओ" "पीओ" के शब्द।

"आनन्द! कुशावती राजधानी सात प्राकारोसे घिरी थी। एक प्राकार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्य, एक स्फटिकका, एक पद्मराग, एक मसारगल्ल और एक सब प्रकारके रत्नोका।

---

[1] मिलाओ पृष्ठ १४३ (महासुदर्शन जातक)।

"आनन्द! कुशावती राजधानीमे चार रगके दर्वाज़े लगे थे। एक द्वार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्यका और एक स्फटिकका। प्रत्येक द्वारमे तीन पोरसा (एक पोरसा=५ हाथ) खळे, तीन पोरसा गळे हुये, सब मिलाकर बारह पोरसा लम्बे सात सात खम्भे गळे थे। एक खम्भा सोनेका ० एक सब प्रकारके रत्नोका।

"आनन्द! कुशावती राजधानी सात ताल-पक्तियोसे घिरी थी। एक ताल-पक्ति सोने की ० एक सब प्रकारके रत्नोकी। सोनेके तालका स्कन्ध (=तना,धळ) सोनेका (और) पत्ते और फल चाँदीके थे। चाँदीके तालका स्कन्ध चाँदीका (और) पत्ते और फल सोनेके थे। वैदूर्यके तालका ० पत्ते और फल स्फटिकके थे। स्फटिकके ताल ० पत्ते और फल वैदूर्यके थे। लोहिताङ्कके ताल ० फल और पत्ते मसारगल्लके थे। मसारगल्लके ताल ० फल और पत्ते लोहिताङ्कके थे। सब प्रकारके रत्नोके पत्ते और फल ताल ० सर्वरत्न-मय थे।—आनन्द! हवासे हिलनेपर उन ताल-पक्तियोसे सुन्दर, प्रसन्नकर, प्रिय (और) मदनीय (=मोह लेने वाला) शब्द निकलता था। आनन्द! जैसे (वाद्य-विद्यामे) चतुर लोग जब अच्छी तरह सजे हुये और तालसे मिलाये पाँच अगोसे युक्त बाजेको बजाते है, तो उससे सुन्दर ० शब्द निकलता है, वैसेही उन ताल-पक्तियो से ०। आनन्द! उस समय जो कुशावती राजधानीके गुण्डे, जुआरी और शराबी थे, वे उन हवामे हिलती ताल पक्तियोके शब्दसे (मस्त हो) नाचते और खेलते थे।

२—चक्रवर्तीके सात रत्न

"आनन्द! राजा महासुदस्सनके पास सात रत्न, और चार ऋद्धियाँ थी। कौनसे सात रत्न? (१) आनन्द! एक उपोसथ-पूर्णिमाकी रातको उपोसथ व्रत रख शिरसे स्नानकर, जब राजा महासुदस्सन प्रासादके सबसे ऊपरके तल्लेपर था, तो उसके सामने सहस्र अरो वाला, नाभि नेमि (=पुट्ठी) से युक्त और सर्वाकार परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रगट हुआ। उसे देखकर राजा महासुदस्सनके मनमे ऐसा हुआ—"ऐसा सुना है—उपोसथ-पूर्णिमाकी रात शिरसे नहा, उपोसथ व्रतकर, प्रासादके ऊपरले तल्लेपर गये जिस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाके सामने सहस्र अरो वाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रगट होता है, वह चक्रवर्ती (राजा) होता है। मै चक्रवर्ती राजा होऊँगा। आनन्द! तब वह महासुदस्सन राजा आसनसे उठ, चादरको एक कधेपर कर बाये हाथमे सोनेकी झारी ले, दाहिने हाथसे चक्र-रत्नका अभिषेक करने लगा—'हे चक्र-रत्न! आपका स्वागत हो, आपकी जय हो!' आनन्द! तब वह चक्र-रत्न पूर्व दिशाकी ओर चला। राजा महासुदस्सनके पास चतुरङ्गिनी सेना थी। आनन्द! जिस प्रदेशमे चक्र-रत्न ठहरता, वही राजा महासुदस्सन अपनी चतुरङ्गिनी सेनाके साथ पळाव डालता। आनन्द! जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर कहने लगे—'महाराज! आपका स्वागत हो, (हम लोग सभी) आपके (आधीन) है। महाराज! आप आज्ञा दीजिये'। राजा महासुदस्सन ने यह कहा—'जीव नही मारना चाहिये, चोरी नही करनी चाहिये, काम (=भोग) मे पळकर दुराचार नही करना चाहिये, मिथ्या-भाषण नही करना चाहिये, शराब आदि नशीली चीजे नही पीना चाहिये। उचित भोग करना चाहिये।' आनन्द! (इस प्रकार) जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके अनुयुक्तक (=माडलिक) हुये।

"आनन्द! तब वह चक्र-रत्न पूर्वके समुद्रमे डुबकी लगा, निकल दक्षिण दिशामें ठहरा। ० दक्षिण दिशावाले समुद्रमे ०। ० पश्चिम दिशामे ०। ० उत्तर दिशामे ०। राजा महासुदस्सनके पास चतुरङ्गिनी सेना थी। आनन्द! जिस प्रदेशमे चक्र-रत्न ठहरता वही राजा ० पळाव डालता था। आनन्द! जो उत्तर दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर ०। ० अनुयुक्तक हुये।

"आनन्द ! तब वह चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत कुशावती राजधानी लौट कर राजा महासुदस्सनके अन्त.पुरके द्वारके पास न्याय करनेके आँगनमे कीलमे ठोकासा ठहर गया। उससे राजा महासुदस्सनका अन्त पुर बळा शोभायमान होने लगा। इस प्रकार आनन्द ! राजा महासुदस्सनको चक्र-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(२) "आनन्द ! फिर राजाको बिलकुल उजला, चौपहल, ऋद्धियुक्त=अन्तरिक्षमे भी गमन करनेवाला उपोसथ हस्ति-राज नामक हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ। उसे देख राजा ० का चित्त बळा प्रसन्न हुआ। यदि हाथी अच्छी तरह सिखाया रहे तो उसकी सवारी बळी अच्छी होती है। आनन्द ! तब वह हस्ति-रत्न, उत्तम जातिका हाथी जैसे बहुत दिनोमे सिखाया गया हो, वैसा शिक्षित था। आनन्द ! तव राजा महासुदस्सनने उस हस्ति-रत्नकी परीक्षा करनेके विचारसे पूर्वाह्ण (प्रात) समय उसपर चढकर समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका चक्कर लगाके कुशावती राजधानीमे लौटकर प्रातराश किया। आनन्द ! राजा ० को इस प्रकारका हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(३) "और फिर आनन्द राजा महासुदस्सनको बिलकुल उजला, काले गिर और मुञ्जके ऐसे केशोवाला, ऋद्धि-युक्त, आकाशमे गमन करनेवाला बलाहक अश्वराज नामक अश्वरत्न प्रकट हुआ। उसे देख ० प्रसन्न हुआ। यदि अश्व अच्छी तरह सिखाया ० ० प्रातराश किया। आनन्द ! राजा ० अश्वरत्न ०।

(४) "और फिर आनन्द ! ० मणि-रत्न प्रादुर्भूत हुआ। वह शुभ्र, अच्छी जातिका, आठ पहलुओ वाला, अच्छा खरादा, स्वच्छ, विप्रसन्न (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि था। आनन्द ! उस मणि-रत्नकी आभा चारो ओर एक योजन तक फैलती थी। आनन्द ! राजाने ० उस मणि-रत्न की परीक्षा करनेके विचारसे चतुरगिनी सेनाको सजाकर उस मणिको झडेके ऊपर बाँध रातकी काली अधियारीमे प्रस्थान किया। आनन्द ! जो चारो ओर गाँव थे वहाँ के लोग उसके प्रकाशसे 'दिन होगया' समझ अपने अपने कामोमे लगने लगे। आनन्द ! राजा ० मणि-रत्न ०।

(५) "और फिर आनन्द ! ०अभिरूप, दर्शनीय, चित्तको प्रसन्न करनेवाली, परमसौन्दर्य-सम्पन्न, न अधिक लम्बी—न अधिक नाटी, न बहुत दुबली—न बहुत मोटी, न बहुत काली—न बहुत उजली, मनुष्योके वर्णसे बढकर और देवोके वर्णसे कम (की) स्त्रीरत्न ०। आनन्द ! उस स्त्री-रत्नका ऐसा कायसस्पर्श था, जैसे मानो रूईका फाहा या कपासका फाहा। आनन्द ! उस ० का गात्र शीत-कालमें उष्ण और ऊष्ण-कालमे शीतल रहता था। आनन्द ! उस ०के शरीरसे चन्दनकी (और) मुँहसे कमल की सुगन्ध निकलती थी। आनन्द ! वह स्त्री-रत्न राजा ० से पहले ही उठ जाती थी और पीछे सोती थी। आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहती थी। मनके अनुकूल आचरण करनेवाली, और प्रिय बोलने वाली थी। आनन्द ! वह० राजा० को मनसे भी नही छोळती थी (दूसरे पुरुषके प्रति मनसे भी राग नही करती थी), शरीरसे तो कहाँ तक ? आनन्द ० स्त्री-रत्न०।

(६) "और फिर आनन्द ! ० गृहपति (=वैश्य)-रत्न ०। उसके अच्छे कर्मोके फलसे उसे दिव्य चक्षु उत्पन्न हुआ। वह उससे स्वामी या विना स्वामी वाले खजानो (=निधियो) को देख लेता था। उसने राजा ० के पास जाकर यह कहा—देव ! आप कोई चिन्ता न करे, मैं आपका धनका कारवार करूँगा। आनन्द ! राजा ० ने इस गृहपतिकी परीक्षा करनेके विचारसे नावपर चढकर गङ्गानदीकी बीच धारामे जा उस गृहपति-रत्नसे यह कहा—"गृहपति ! मुझे सोने और चाँदी की आवश्यकता है'। 'तो महाराज ! नावको एक किनारे पर ले चले।' 'गृहपति ! यही पर मुझे सोने और चाँदीकी आवश्यकता है।' आनन्द ! तब वह गृहपति-रत्न दोनो हाथोसे जलको छू सोने चाँदी भरे घळे निकाल राजा ० से बोला—'महाराज, क्या यह पर्याप्त है ? क्या इतने से

काम हो जायगा ? क्या इतनेसे महाराज सतुष्ट है ?' राजा ० ने कहा—'गृहपति ! यह पर्य्याप्त ०। आनन्द ! ० गृहपति-रत्न ०।

(७) "आनन्द ! ० पण्डित, व्यक्त, मेधावी, और स्वीकरणीय (चीजो) को स्वीकार, तथा त्याज्य (चीजो) के त्यागमे समर्थ परिणायक (=कारवारी) रत्न प्रकट हुआ। उसने राजा ० के पास जाकर यह कहा—देव ! आप चिन्ता न करे, मै अनुशासन करूँगा।' आनन्द ! ० परिणायक-रत्न ०। आनन्द ! राजा ० इन सात रत्नोसे युक्त था।

३—चार ऋद्धियाँ

"और फिर आनन्द ! राजा० चार ऋद्धियोसे युक्त था। किन चार ऋद्धियोसे ? (१) आनन्द ! राजा० दूसरे मनुष्योसे वहुत अभिरूप=दर्शनीय, प्रिय, परम-सौन्दर्य-सम्पन्न था। आनन्द ! राजा० इसी पृथ्वीमे ऋद्धिसे सम्पन्न था। (२) और आनन्द ! राजा० दीर्घायु था। दूसरे मनुष्योसे वहुत बढ चढकर चिरायु था। आनन्द ! राजा० इस दूसरी ऋद्धिसे युक्त था। (३) और आनन्द ! राजा० नीरोग चगा था, औरोकी भॉति न अति-शीत, और न अति-उष्ण समान प्रकृतिका था। आनन्द ! राजा० इस तीसरी ऋद्धिसे युक्त था। (४) और आनन्द ! राजा ब्राह्मण और गहस्थोका प्रिय=मनाप था। आनन्द ! जैसे पिता पुत्रोका प्रिय=मनाप (होता है), उसी तरह राजा० ब्राह्मण और गृहस्थोका ०। आनन्द ! वे ब्राह्मण और गृहस्थ भी राजा० के प्रिय मनाप थे। आनन्द ! जैसे पुत्र पिताके०। आनन्द ! एक समय राजा ० चतुरगिणी सेनाके साथ उद्यान-भमिको गया। आनन्द ! उस समय ब्राह्मण और गृहस्थोने जाकर राजासे यह कहा—'देव ! आप निर्भय जावे, हम लोग आपकी सदा रक्षा करगे'। आनन्द ! राजा०ने भी सारथीसे कहा—'सारथि ! विना किसी भयके रथको हाँको, क्योकि ब्राह्मण० मेरी सदा रक्षा करेगे'। आनन्द ! राजा० इस चौथी ऋद्धि०।

"आनन्द ! तव राजा०के मनमे यह हुआ—'इन तालोके बीच सौ सौ धनुप (=४०० हाथ) पर पुष्करणी खुदवाऊँ'। आनन्द ! राजा०ने उन तालोके बीच सौ सौ धनुपपर पुष्करणियाँ खुदवाईं। आनन्द ! वह पुष्करणियाँ चार रगोकी ईंटोकी बनी थी, एकको ईंटे सोनकी, एकको चाँदीकी, एकको वैदूर्यकी, एकको स्फटिककी। आनन्द ! उन पुष्करणियोमे चार (दिशाओमे) चार रगोकी चार सीढियाँ थी—एक की सीढी सोनेकी, एकको चाँदीकी, एकको वैदूर्यकी, एकको स्फटिककी। सोनेकी सीढीमे सोनेका खभा (और) चाँदीकी काँटियाँ तथा छत थी। चाँदीकी सीढीमे चाँदीका खम्भा और सोनेकी काँटियाँ और छत थी। वैदूर्यकी ० स्फटिकको काँटियाँ ०। स्फटिकको० वैदूर्यकी काँटियाँ०। आनन्द ! वे पुष्करणियाँ दो वेदिकाओसे घिरी थी, एक वेदिका सोनेकी, दूसरी चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामे सोनेके खभे, चाँदीकी काँटियाँ, और छत थी। चाँदीकी वेदिका ०।—आनन्द ! तव, राजा०के मनमे यह हुआ—'इन पुष्करणियोमे सभी डालियोमे फूल-लगे सभीको चकित करने-वाले उत्पल, पद्म, कुमुद, पुण्डरीकके फूल रोपूँ।' आनन्द ! राजा०ने उन पुष्करणियोमे उस प्रकारके उत्पल० फूल रोपे। आनन्द ! तव राजा०के मनमे ऐसा हुआ—'इन पुष्करणियोके तीर पर नहलाने-वाले पुरुष नियुक्त होने चाहिये, जो आये हुये लोगोको नहलाया करे।' आनन्द ! राजा०ने० नियुक्त किये। आनन्द ! तव राजा०के मनमे ऐसा हुआ—'इन पुष्करणियोके तीरपर इस प्रकारके दान स्थापित होने चाहिये, जिसमेकि अन्न चाहनेवालेको अन्न, पेय (=पान) चाहनेवालोको पेय, वस्त्र०, सवारी०, शय्या०, स्त्री०, सोना०। आनन्द ! राजा०ने० इस प्रकारके दान स्थापित किये०।

'आनन्द ! तव ब्राह्मणो और गृहस्थोने वहुत धनले राजा०के पास जाकर यह कहा—'देव ! यह वहुतसा धन (हम लोग) आपहीकी सेवामे लाये है, इसे आप स्वीकार करे।' 'वस रहने दो, मैने

भी बहुत धन धर्मसे और बलसे उपार्जित किया है, वह तो है ही। (यदि आप लोग चाहे तो) यहाँहीसे और धन ले जावे।' राजाके स्वीकार न करनेपर उन लोगोने एक ओर जाकर विचारा—'यह हम लोगोको उचित नही है कि इस धनको फिर अपने घर लौटाकर ले चले, अत (चलो) हम लोग राजा०के लिये प्रासाद तैयार करे।' उन लोगोने राजाके पास जाकर यह कहा—'देव! (हम लोग) आपके लिये एक प्रासाद तैयार करवायेगे।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया।

४–धर्मप्रासाद (महल)

"आनन्द! तब देवेन्द्र शक्रने राजा०के चित्तको अपने चित्तसे जानकर देवपुत्र विश्वकर्माको सबोधित किया—'जाओ, भद्र विश्वकर्मा! राजाके लिये धर्म नामक प्रासाद तैयार करो। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा भी 'अच्छा, भदन्त!' कह, शक्र देवेन्द्रको उत्तर दे, जैसे बलवान् पुरुष० वैसे त्रायस्त्रिश देवलोकमे अन्तर्धान हो राजा०के सामने प्रादुर्भूत हुआ। आनन्द! तब देवपुत्र०ने राजा०से यह कहा—'देव! धर्म नामक प्रासाद आपके लिये तैयार करूँगा।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा०ने० प्रासाद तैयार किया।

"आनन्द! धर्म-प्रासाद पूरवसे पश्चिम लम्बाईमे एक योजन, और उत्तरसे दक्षिण चौळाईमे आधा योजन था। आनन्द! धर्म-प्रासादकी इमारत ऊँचाईमे तीन पोरसाकी थी। वह चार रगोवाली ईंटोसे चिनी गई थी, एक ईंट सोनेकी० एक स्फटिककी। आनन्द! धर्म-प्रासादमे चार रगोके चौरासी हजार खम्भे लगे थे—एक खभा सोनेका० एक स्फटिकका।—आनन्द! धर्म-प्रासादमे चार रगोके पट्टे लगे थे—एक पट्टा सोनेका०। आनन्द! धर्म-प्रासादमे चार रगोकी चौबीस सीढियाँ थी—एक सीढी सोनेकी०। स्फटिकवाली सीढीमे स्फटिकके खम्भे लगे थे (और) वैदूर्यकी काँटियाँ और छत। आनन्द! ० चार रगोके चौरासी हजार कोठे थे। एक कोठा सोनेका०। सोनेके कोठेमे चाँदीके पलग बिछे थे। चाँदीके०मे सोनेके पलग०। वैदूर्यके कोठेमे (हाथी)के दाँतके पलग बिछे थे। स्फटिकके कोठे-मे मसारगल्लके पलग बिछे थे। सोनेके कोठेके द्वारमे चाँदीके ताल (वृक्ष) बने हुये थे, उस (ताल वृक्ष) का तना चाँदीका, पत्ते और फल सोनेके। चाँदीके कोठेके द्वारमे सोनेका ताल०। वैदूर्यके कोठेके द्वारमे स्फटिकके ताल० वैदूर्यके पत्ते०। स्फटिकके कोठेके द्वारमे वैदूर्यका ताल०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमे यह हुआ—'मै इस बळे कोठेके द्वार पर दिनमे विहारके लिये बिल्कुल सोनेका एक ताल-वन बनवाऊँ। आनन्द! राजा० (ने)० बनवाया। आनन्द! धर्म-प्रासाद दो वेदिकाओसे घिरा था, एक वेदिका सोनेकी, एक चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामे सोनेके खम्भे०। आनन्द! धर्म-प्रासाद दो घुँघरू-के-जालोसे घिरा था, एक जाल सोनेका, एक चाँदीका। सोनेके जालमे चाँदीकी घटियाँ थी, (और) चाँदीके जालमे सोनेकी०। आनन्द! हवाके झोकेसे हिलनेपर उन घटियो-से सुन्दर, रागोत्पादक० शब्द निकलता था। आनन्द! उस समय जो कुशावती राजधानीमे गुण्डे, शराबी और जुआरी रहते थे, वे उस० शब्दसे (मस्त हो) नाचते खेलते थे। आनन्द! (मारे चमकके) उस प्रासाद पर आँख नही ठहरती थी, आँखोको वह मानो हर लेता था। आनन्द! जैसे वर्षाके अन्तिम मासमे, शरद् ऋतुके प्रारम्भ होनेपर, मेघरहित आकाशके ऊपर चढते सूर्यपर आँखे नही ठहरती वह मानो आँखोको हर लेता है, उसी तरह आनन्द! वह धर्म्म-प्रासाद०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमे हुआ—'धर्म-प्रासादके सामने धर्म नामक पुष्करणी बनवाऊँ।' ० बनवाया। आनन्द! धर्म पुष्करणी पूरवसे पश्चिम लम्बाईमे एक योजन, उत्तरसे दक्षिण चौळाईमे आधा योजन थी। आनन्द! ० चार रगके ईंटोसे०, एक ईंट सोनेकी०। ० चार रगकी चौबीस सीढियाँ०। सोनेकी सीढीमे सोनेके खभे०। ० दो वेदिकाओसे घिरी थी, ० सात ताल-पक्तियोसे घिरी

थी, एक ताल-पक्ति सोनेकी०, सोनेके तालमे सोनेका तना०। ० उन ताल पक्तियोसे० शब्द निकलता था, जैसे पाँच अगोवाला बाजा० नाचते और खेलते थे। आनन्द ! धर्म-प्रासादके और धर्म-पुष्करणीके तैयार हो जानेपर राजाने० उस समय जो अच्छे अच्छे श्रमण और ब्राह्मण थे सभीको सतुष्टकर धर्म-प्रासादमे प्रवेश किया।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५–राजा ध्यानमें रत

"आनन्द ! तव राजा०के मनमे ऐसा हुआ—'यह मेरे किस कर्मका फल है, किस कर्मका विपाक है, जिससे मै इस समय इस प्रकार समृद्ध=महानुभाव हुआ हूँ ?' आनन्द। उसके मनमे ० ऐसा आया—'यह मेरे दान, दम, सयम—इन तीन कर्मोका फल है, तीन कर्मोका विपाक है, जिससे मै इस समय०। आनन्द ! तव राजा० जहाँ बळा कोठा था वहाँ गया, जाकर बळे कोठेके द्वार पर खळा हो यह उदान (=प्रीति वाक्य) बोला—'भोगोका ख्याल (=काम-वितर्क) रोको, द्रोह (=व्या-पाद)-वितर्क रोको, विहिसा-वितर्क रोको, काम-वितर्कसे बस, व्यापाद वितर्कसे बस, हिसा वितर्कसे बस करो।'

"आनन्द ! तब राजा० बळे कोठेमे प्रवेशकर सोनेके पलगपर बैठ, एकान्तमे भोग-सबधी वुराइयोसे विरत हो वितर्क और विचार-युक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो गया। ० [1]द्वितीय०,० तृतीय० ० चतुर्थ ध्यानको०। आनन्द ! तव राजा० बळे कोठेसे निकल सोनेके कोठेमे प्रवेशकर चाँदीके पलगपर बैठ मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाको व्याप्तकर विहरने लगा। वैसे ही दूसरी, तीसरी और चौथी, और, ऊपर, नीचे, आळे-बेळे, सभी ओर, ससारमे सभी जगह मैत्री-युक्त चित्तसे, तथा अत्यधिक वैररहित और द्रोह-रहित श्रेष्ठ चित्तसे व्याप्तकर विहरने लगा। करुणायुक्त०, मुदितायुक्त० और उपेक्षा-युक्त चित्तसे एक दिशाको व्याप्तकर विहरने लगा, वैसे ही दूसरी०।

६–राजाका ऐश्वर्य

"आनन्द ! राजा०को कुशावती राजधानी आदि चौरासी हजार नगर थे, धर्म-प्रासाद आदि चौरासी हजार प्रासाद थे, महाव्यूहकूटागार (नामक) आदि०। सोने, चाँदी, (हाथी-) दाँत, हीरेके पायोवाले, लम्बे बालोवाले बिछौने बिछे, सफेद ऊनी बिछौनेवाले, फूल बूटे कटे बिछौनेवाले, कादलि मृग-चर्मके बिछौनेवाले, मसहरी लगे तथा उनकी दोनो ओर लाल तकिये रक्खे चौरासी हजार पलग थे, उसके पास सोनेके अलकारोसे अलकृत सोनेकी ध्वजाओसे युक्त, सोनेकी जालीसे आच्छादित उपोसथ नागराज आदि चौरासी हजार हाथी थे। ० वलाहक-अश्व राज आदि चौरासी हजार घोळे थे। सिह-चर्म, व्याघ्र-चर्म, द्वीपि (=चीते) चर्म, तथा दुशाले बिछे, सोनेके अलकारसे सजे, सोनेकी ध्वजाओसे युक्त, सोनेके जालसे आच्छादित वैजयन्तरथ आदि चौरासी हजार रथ थे। मणि-रत्न आदि चौरासी हजार रत्न थे। सुभद्रादेवी आदि चौरासी हजार स्त्रियाँ थी। गृहपति रत्न आदि चौरासी हजार गृहपति थे। परिणायक-रत्न आदि चौरासी हजार०। काँसेकी घण्टी पहने, चादर ओढे, दूध देनेवाली चौरासी हजार गौवे थी। (उसके पास) क्षौम (=अलसीके), कपास, कौषेय तथा ऊनके सूक्ष्म चौरासी हजार करोळ वस्त्र थे। चौरासी हजार थालियाँ थी, जिनमे शाम-सुवह भोजन परोसा जाता था।

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२

"आनन्द ! उस समय राजा०के पास चौरासी हजार हाथी थे, जो शाम-सुवह (राजाकी) सेवामे आते थे। आनन्द ! तव राजा०के मनमे यह हुआ—'ये मेरे चौरासी हजार हाथी है, जो शाम-सुवह मेरी सेवामे आते है। सो अवसे ये सौ-सौ वर्ष वीतनेके वाद वयालिस-वयालिस हजार हाथी अपनी नौकरी बजानेके लिये आये।' आनन्द ! तव राजा०ने परिणायक-रत्नको सबोधित किया—'भद्र परिणायक-रत्न ! ये चौरासी हजार हाथी प्रतिदिन शाम-सुवह सेवाके लिये आते है, सो० ! सौ-सौ वर्ष० आवे।' आनन्द ! 'हॉ देव' कहकर परिणायक-रत्नने राजा०को उत्तर दिया। आनन्द ! तब उसके वादसे सौ-सौ वर्षके वाद० आने लगे।

७–सुभद्रादेवीका दर्शनार्थ आना

"आनन्द ! तव सुभद्रा देवीको वहुत वर्षो, वहुत सहस्र वर्षोके वीतनेके वाद, यह हुआ—'राजा०-को देखे वहुत दिन हो गये, अत मै राजाको देखनेके लिये चलूँ।' आनन्द ! तव सुभद्रा देवीने और स्त्रियो-को सबोधित किया—'आप लोग शिरसे नहा, पीले कपळे पहन ले, राजा०को देखे वहुत दिन हो गये, राजा०को देखनेके लिये हम लोग चलेगी।' आनन्द ! 'अच्छा, आर्ये ! ' कहकर० उत्तर दे, शिरसे नहा० जहॉ सुभद्रा देवी थी वहॉ गई। आनन्द ! तव सुभद्रा देवीने परिणायक-रत्नको सबोधित किया—'भद्र परिणायक-रत्न ! चतुरगिणी सेना०को सजाओ०, राजा०के दर्शनके लिये जाऊँगी।' आनन्द ! 'अच्छा, देवि' कह परिणायक-रत्न० (ने) उत्तर दे, चतुरगिणी सेनाको तैयार करा सुभद्रा देवीको सूचित किया—'देवि ! चतुरगिणी सेना तैयार है, आप जैसा समझे।'

"तव आनन्द ! सुभद्रा देवी ० सेनाके साथ, सभी स्त्रियोको ले, जहॉ धर्म-प्रासाद था वहॉ गई। जाकर धर्म-प्रासादके ऊपर चढ जहॉ महाव्यूह (नामक) कूटागार था वहाँ गई। जाकर महाव्यूह कूटागारके दरवाजेको पकळकर खळी हो गई। आनन्द ! तव राजाने (उस शब्दको सुन-कर)—'यह किसी वळी भीळका शब्द क्या है?' (सोच) महाव्यूह कूटागारसे निकलकर सुभद्रा देवीको दरवाजा पकळ खळी देखा। देखकर० देवीसे कहा—'देवि ! यही खळी रहो, भीतर मत आओ।' आनन्द ! तब राजा०ने किसी दूसरे पुरुषको आज्ञा दी—'सुनो, महाव्यूह कूटागारसे सोनेके पलगको निकाल बिलकुल सोनेवाले तालवनमे विछाओ।' 'अच्छा, देव!' कह०। आनन्द ! तव राजा०ने दहिनी करवट हो पैरके ऊपर पैर रखकर, स्मृति और सप्रजन्यके साथ सिंह-शय्या लगाई।

८–राजाकी मृत्यु

"आनन्द ! तव सुभद्रादेवीके मनमे यह हुआ—'राजाकी इन्द्रियाँ (=शरीर) विलकुल प्रसन्न मालूम होती है, इनकी छवि (=चर्म)का वर्ण परिशुद्ध है, निर्मल है, कही राजाकी मृत्यु तो होने-वाली नही है।' ऐसा विचारकर राजा०से कहा—'देव ! कुशावती राजधानी आदि आपके ये चौरासी हजार नगर है, देव ! इनसे प्रसन्न होवे और जीवित रहनेकी कामना करे। देव ! धर्म-प्रासाद आदि०। महाव्यूह कूटागार आदि०। देव ! आपकी ये चौरासी हजार थालियाँ है, जिनमे शाम सवेरे भोजन परोसा जाता है—इनसे प्रसन्न होवे, और जीवित रहनेकी कामना करे।'

"आनन्द ! ऐसा कहनेपर राजा० ने० देवीसे यह कहा—'बहुत दिनो तक देवि ! आपने मेरे साथ इष्ट=कान्त, प्रिय=मनाप आचरण किये है, और अव आप अन्तिम समयमे अनिष्ट, अ-कान्त, अ-प्रिय और अ-मनाप आचरण कर रही है'। 'देव ! मै कैसे आचरण करूँ।' 'देवि ! आप इस तरह कहे—'देव ! सभी प्रियो=मनापोसे नानाभाव(=वियोग)=विनाभाव=अन्यथाभाव होता है। देव ! आप किसी कामनाके साथ प्राण न त्यागे, कामना-युक्त मृत्यु दु खपूर्ण होती है, कामनापूर्ण मृत्यु

निन्दनीय होती है। देव! कुशावती राजधानी आदि आपके चौरासी हजार नगर है। देव! उनमे **लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना मनमें न करें** ० थालियाँ है० उनमे लिप्त न होवे, जीवित रहनेकी कामना मनमे न करे।'

"आनन्द! ऐसा कहनेपर सुभद्रा देवी रोने लगी, आँसू बहाने लगी। आँसू पोछ०। यह कहा—'देव! सभी प्रियो=मनापोसे नानाभाव, विनाभाव, अन्यथाभाव होता है। देव! आप कामनायुक्त प्राण न त्यागे०० थालियाँ है० उनमे लिप्त न होवे, जीवित रहनेकी कामना न करे।'

"आनन्द! तव कुछ ही देरके बाद राजा०की मृत्यु हो गई। आनन्द! जैसे गृहपति या गृह-पति-पुत्रको अच्छे अच्छे भोजन कर लेनेके बाद भत्तसम्मद (=भोजनोपरान्त आलस) होता है, वैसेही राजा०को मरणके समय पीळा हुई। आनन्द! राजा० मरकर अच्छी गतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुआ। आनन्द! राजा महासुदर्शनने चौरासी हजार वर्षो तक बच्चोके खेल खेले, चौरासी हजार वर्षो तक युवराज रहा, (चौरासी हजार वर्षो तक राज्य करता रहा), चौरासी० हजार वर्ष गृहस्थ होते (भी उसने) धर्म-प्रासादमे ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन किया। वह (मैत्री आदि) चारो ब्रह्म-विहारोकी साधना करके शरीर छोळ मरनेके बाद ब्रह्मलोकमे उत्पन्न हुआ।

६—बुद्धही महासुदर्शन राजा

"आनन्द! यदि तुम ऐसा समझो कि यह राजा महासुदर्शन० उस समय कोई दूसरा राजा रहा होगा, तो आनन्द! तुम्हे ऐसा नही समझना चाहिये। मै ही उस समय राजा महासुदस्सन था। मेरे ही वे **कुशावती** राजधानी आदि चोरासी हजार नगर थे० मेरी ही वे चौरासी हजार थालियाँ०।

"आनन्द! उस समय चौरासी हजार नगरोमे वही एक कुशावती नगर राजधानी थी जहाँ कि मै रहता था। आनन्द! उस समय० प्रासादोमे वही एक धर्म-प्रासाद था जहाँ मै रहता था०।

"आनन्द! देखो, वे सभी स स्का र (=कृत वस्तुये) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत (=वदल) हो गये। आनन्द! इसी तरह सभी सस्कार अ-नित्य है। आनन्द! इसी तरह सभी सस्कार अ-ध्रुव हे। आनन्द! इसी तरह सभी सस्कार विश्वासके अ-योग्य है। आनन्द! इसलिये सस्कारोकी चाह व्यर्थ है, उनमे राग करना व्यर्थ है, उनमें आसक्त होना व्यर्थ है। आनन्द! मै जानता हूँ, इसी स्थानमे मेरी छै वार मृत्यु हो चुकी है—(पहले छै वार) चारो दिशाओको जीतनेवाला, शान्त धार्मिक, धर्मराज और स्थिरता स्थापित करनेवाला, सातो रत्नोसे युक्त चक्रवर्त्ती राजा होकर, यह सातवी वार यहाँ मेरा शरीरपात हो रहा है। आनन्द! मै देवताओ सहित सारे लोकमे० कोई दूसरा स्थान नही देखता, जहाँ तथागत आठवी वार भी शरीरको छोळेगे।"

भगवान्ने यह कहा, यह कह सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"सभी सस्कार (=कृत वस्तुये)अनित्य, उत्पत्ति और क्षय स्वभाववाले है,
होकर मिट जानेवाले है, उनका शान्त हो जाना ही सुखमय है॥१॥"

———

१८—जनवसभ-सुत्त (२ । ५)

१—सभी देशोके मृत भक्तोकी गतिका प्रकाश। २—मगधके भक्तोकी गतिका प्रकाश क्यो नही। ३—जनवसभ (बिंबिसार) देवताका सलाप। ४—शक्रद्वारा बुद्धधर्मकी प्रशसा। ५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा। ६—मगधके भक्तोकी सुगति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नादिकामे गिजकावसथमे विहार कर रहे थे।

१—सभी देशोंके मृत भक्तोंकी गतिका प्रकाश

उस समय भगवान् चारो ओरके प्रदेशोमे सभी ओर (घूमकर बुद्ध, धर्म और सघकी) सेवा करनेवाले अतीत कालमे मरे लोगोकी, गति (=परलोक), का व्याकरण[1] (=अदृष्ट कथन) कर रहे थे। काशी[2] और कोसलमे, वज्जी और मल्लमे, चेति और वत्समे, कुरु और पञ्चालमे, तथा मत्स्य और सूरसेनमे—अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है, और अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है। पचाससे कुछ अधिक नादिका ग्रामके रहनेवाले परिचारक (=बुद्ध, धर्म, और सघकी सेवा करनेवाले भक्त) अतीत कालमे मर कर अवरभागीय (=पाँच कामलोकके) बन्धनो (=सयोजनो)के क्षय हो जानेके कारण औपपातिक (=देवता) हो उस लोकसे फिर कभी नही लौटेंगे। नब्बेसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक अतीत कालमे मरकर तीन बन्धनो (=सयोजनो)के क्षय हो जानेके कारण राग, द्वेष, और मोहके तनु (=कमजोर, क्षीण) हो जानेके कारण सकृदागामी हो गये हैं—वे एक ही बार इस लोकमे आकर अपने सारे दु खोका अन्त करेंगे। पाँच सौसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक ० तीन बन्धनोके क्षय हो जानेसे स्रोतआपन्न हो गये है, अब वे फिर गिर नही सकते है, उनकी सम्बोधि-प्राप्ति नियत है।" नादिकाके परिचारकोने सुना—'भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोमे सभी ओर ० स्रोतआपन्न० सम्बोधि-प्राप्ति नियत है।' उससे प्रमुदित, प्रीति और सौमनस्य युक्त नादिका ग्रामके परिचारक भगवान्‌के व्याकरणको सुनकर बळे सतुष्ट हुये।

२—मगधके भक्तोंकी गतिका प्रकाश क्यों नहीं

आयुष्मान् आनन्दने सुना,—भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोमे०। उससे नादिका ग्रामके परिचारक ०बळे सन्तुष्ट हुये। तब आयुष्मान् आनन्दके मनमे यह हुआ—"ये अग मगधके परिचारक भी अतीत कालमे मर चुके हैं। अतीत कालमे मरे हुये अग और मगधके परिचारकोसे मानो अग और मगध शून्य

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२६)

[2] इन देशोके लिये देखो मानचित्र।

(खाली) है। वे भी तो बुद्धके ऊपर प्रसन्न थे, धर्मके ऊपर प्रसन्न थे, सघके ऊपर प्रसन्न थे और शीलोको पूरा करनेवाले थे। अतीत कालमे मरे हुये उन लोगोके विषयमे भगवान्ने कुछ नही कहा। उनके विषयमे भी कहना उचित है, इससे बहुतसे लोग श्रद्धालु (=प्रसन्न) होगे, और सुगतिको प्राप्त होगे। मगधराज **सेनिय बिम्बिसार** भी तो धाम्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थोका, तथा नगर और देशका हित करनेवाला था। सभी लोग उसकी बळाई करते है—'वह इस प्रकारका धार्मिक धर्मराज था, जो लोगोको सुखी कर स्वय मृत्युको प्राप्त हुआ। उस धार्मिक धर्मराजाके राज्यमे हम लोग भी सुखपूर्वक विहार करते थे।' वह भी बुद्धमे प्रसन्न०। लोग यह भी कह रहे थे—'मरते दम तक मगधराज०ने भगवान्का यश (गुण-) कीर्तन करते ही मृत्युको प्राप्त किया'। भगवान्ने अतीत कालमे मरे हुये (उस राजाके) विषयमे कुछ नही कहा है। इसका कहना उचित होगा, बहुत लोग प्रसन्न०। भगवान्की बुद्धत्व (=सम्बोधि) प्राप्ति भी **मगध**हीमे हुई है। भगवान्की सम्बोधि-प्राप्ति मगधहीमे हुई, तो भी भगवान्ने अतीत काल० मगधके परिचारकोके ज्ञान, गति, और पुण्यकी उत्पत्तिके विषयमे क्यो कुछ नही कहा? भगवान्ने अतीत कालमे० नही कहा है, इसलिये मगधके परिचारक खिन्न-मन है। मगधके परिचारक खिन्न हो गये है, फिर भगवान् क्यो नही कहेगे?"

आयुष्मान् आनन्द मगधके परिचारकोके विषयमे अकेले एकान्त-स्थानमे इस प्रकार विचारकर रातके ढल जानेपर उठकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये।

जाकर भगवान्को० अभिवादनकर बैठ गये।० कहा—

"भन्ते! मैंने सुना है कि भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोमे (विचरते)०। उससे नादिकाके परिचारक प्रसन्न०। ये मगधके परिचारक भी अतीत कालमे० मगधके परिचारक खिन्न हो गये है, फिर भगवान् क्यो नही कहेगे।" आयुष्मान् आनन्द मगधके परिचारकोके विषयमे भगवान्के सम्मुख यह कहकर, आसनसे उठ, भगवान्की वन्दना और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके जानेके बाद पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र और चीवर ले नादिका ग्राममे भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुये। नादिका ग्राममे भिक्षाटनके बाद लौटकर, पैर धो भोजन कर चुकनेपर **गिजकाराम**मे प्रवेशकर बिछे आसनपर बैठे, और उन्होने मगधके परिचारकोके विषयमे जाननेके लिये अपने चित्तको सभी ओरसे खीचा, जिसमे कि उनकी परलोककी गति को जाने, कि परलोकमे वह किस गतिको प्राप्त हुये है। भगवान्ने मगधके परिचारको द्वारा प्राप्त लोकको देखा। तब भगवान् सायकाल ध्यानसे उठकर गिजकावसथसे निकल, विहारके पीछे छायामे बिछे आसनपर बैठ गये।

तब आयुष्मान् आनन्द गये।० बैठ गये।० यह कहा—"भन्ते! भगवान् बळे शान्त-दर्शन मालूम हो रहे है, इन्द्रियोकी प्रसन्नतासे भगवान्का मुख बहुत ही सुन्दर मालूम हो रहा है। (ज्ञात होता है कि) भगवान्ने आज शान्तिपूर्वक विहार किया है।"

३—जनवसभ (बिंबिसार) देवतासे संलाप

"आनन्द! मगधके परिचारकोके विषयमे मेरे सामने कहकर जब तुम आसनसे उठ कर चले गये, तब मैं नादिका ग्राममे० (भिक्षाकर) बिछे आसनपर बैठ गया—०मैंने देखा०। आनन्द! तब किसी अदृश्य यक्ष (=देवता)ने शब्द सुनाया—'भगवान्! मै जनवसभ हूँ, सुगत! मै **जनवसभ** हूँ'। क्या आनन्द! तुमने पहले यह नाम कभी सुना है? यह जनवसभ कौन है कभी सुना है?"

"भन्ते! इस प्रकारके नामको हमने पहले कभी नही सुना। यह जनवसभ कौन है यह नही सुना है। भन्ते! किंतु 'जनवसभ' नामको सुनकर मुझे रोमाञ्च सा हो आया। भन्ते! तब मेरे मनमे यह आया—जिसका 'जनवसभ' जैसा अच्छा नाम है, वह कोई मामूली यक्ष नही होगा।"

"आनन्द ! शब्द सुना जनवसभ यक्षने अत्यन्त कान्तिमय बन मेरे सामने प्रकट हो, दूसरी वार भी शब्द सुनाया—'भगवान् ! मै **बिम्बिसार** हूँ, सुगत ! मै विम्बिसार हूँ। भन्ते ! यह सातवी वार **वैश्रवण** महाराजका मित्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ, सो मै यहाँसे च्युत होकर मनुष्य-राजा हो सकता हूँ।

'इससे सात (और) उससे भी सात चौदह जन्मोको,

जिन मे मैंने पहले वास किया है, मै उन्हे अच्छी तरह स्मरण करता हूँ॥ १॥

'भन्ते ! मै जानता हूँ कि वहुत वर्ष पहले भी मैंने चार प्रकारके अपायो (=नरको)मे कभी नही जन्म लिया। सकृदागामी होनेके लिये मुझे उत्साह भी है।'

'आचर्य ! आयुष्मान् जनवसभ यक्षको अद्भुत'०। और बोला—मैंने पहिले वास०। सकृदागामी होनेके०। यह आयुष्मान् जनवसभ यक्ष कैसे इस महान् विशेष लाभ=(मार्गफल प्राप्ति)को पाये ?'

'भगवान् ! आपके धर्म (=शासन)को छोळ और किसी दूसरी तरहसे नही। सुगत ! आपके०। भन्ते ! जवसे मै भगवान्का सुभक्त बना तवसे चिरकाल तक मैंने चार अपायोमे नही जन्म लिया। सकृदागामी होने०। भन्ते ! अभी मुझे **वैश्रवण** (=कुवेर) महाराजने **विरूढक** महाराजके पास देवताओके किसी कामसे भेजा था। रास्तेमे जाते हुये भगवान्को **गिंजकावसथ**मे प्रवेशकर मगधके परिचारकोके विपयमे० विचार करते हुये (मैंने) देखा। भन्ते ! आश्चर्य नही। कुवेर महाराजको उस सभामे बोलते हुये सामनेसे सुना, सामनेसे ग्रहण किया, कि क्या उनकी गति हुई है, क्या उनके परलोक है। भन्ते ! तब मेरे मनमे यह आया—(चलो) भगवान्का दर्शन भी करूँगा, भगवान्से यह कहूँगा भी। भन्ते ! भगवान्के दर्शनार्थ मेरे आनेके यही दो कारण है।

४–शक्र द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

'भन्ते ! पहले बीते उपोसथको वैसाख पूर्णिमाकी रातमे सभी त्रायस्त्रिश देवता **सुधर्मा** सभामे इकट्ठे होकर बैठे थे। चारो ओर बळी भारी देवताओकी सभा लगी थी। चारो दिशाके चारो महाराज बैठे थे। पूर्व दिशाके धतरट्ठ (=धृतराष्ट्र) महाराज देवोको सामने करके पश्चिम मुख किये वैठे थे। दक्षिण दिशाके विरुळ्हक (=**विरूढक**) महाराज देवोको० उत्तर०। पश्चिम०के विरूपक्ख (=**विरूपाक्ष**) पूर्व०। उत्तरके० **वैश्रवण** (कुवेर) दक्षिण०। भन्ते ! जब सभी त्रायस्त्रिश देवता **सुधर्मा** सभामे० ०चारो महाराज बैठे थे। उन लोगोका आसन इस प्रकार था। उसके पीछे हम लोगोका आसन था। भन्ते ! वे देव जो भगवान्के धर्म (=शासन)मे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके हालमे त्रायस्त्रिश लोकमे उत्पन्न हुए है, वे दूसरे देवताओसे कान्ति तथा यशमें बढे चढे है। भन्ते ! उससे वे त्रायस्त्रिश देवता सन्तुष्ट है, प्रमुदित, प्रीति=सौमनस्यसे युक्त है—'देव-लोक भर रहा है, अ-सुर-लोक क्षीण हो रहा है।

'भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिश देवताओको प्रसन्न देखकर इन गाथाओसे अनुमोदन किया।—

'इन्द्रके साथ सभी (हम) त्रायस्त्रिश देवता,

तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुये प्रमुदित है॥२॥

सुगतके (शासन)मे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके,

यहाँ आये हुए नये देवोको कान्तियुक्त और यशस्वी देख कर॥३॥

भूरिप्रज्ञ (=बुद्ध)के वे श्रावक यहाँ बळप्पनको प्राप्त है।

वे कान्ति आयु और यशमे दूसरोसे बढ चढकर है॥४॥

इन्हे देखकर तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुए,

इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिश (देव) आनन्दित हो रहे है ॥५॥

'भन्ते ! उससे त्रायस्त्रिश देवता अत्यधिक प्रसन्न, सतुष्ट, प्रमुदित तथा प्रीति और सौमनस्यसे युक्त हो (कहते थे)—देवलोक भर रहा ०। भन्ते ! तब जिस कामके लिये त्रायस्त्रिश देव सुधर्मा-सभामे इकट्ठे हुये थे, उस कामको यादकर, उस कामके विषयमे मन्त्रणाकी। चारो महाराजने भी कहा, समर्थन किया। वे चारो महाराज फिर न जा करके अपने अपने आसनपर खळे थे—

'वे राजा अपनी अपनी बात कहके आज्ञा लेकर।'

प्रसन्न मनसे शान्त हो अपने अपने आसनपर खळे थे ॥६॥

'भन्ते ! तब उत्तर दिशामे देवोके देवानुभावसे बढकर बळा प्रकाश उत्पन्न हुआ, तीव्र प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिश देवोको सबोधित किया—मार्ष ! जैसा लक्षण दिखाई दे रहा है, बळा प्रकाश ० ब्रह्मा प्रकट होगे। ब्रह्माहीके प्रकट होनेके लिये यह पूर्व-निमित्त है, जिससे कि यह बळा प्रकाश उत्पन्न हो रहा है।

५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा

'जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है, उससे ब्रह्मा प्रकट होगे।

यह ब्रह्माका ही लक्षण है, जो कि यह बळा प्रकाश हो रहा है ॥७॥'

'भन्ते ! तब त्रायस्त्रिश देव अपने अपने आसनोपर वैसे ही बैठ गये, कि उस बळे प्रकाश को जान, और जो उसका फल होगा उसे देख ही कर जायेगे। चारो महाराजा भी ०। इसे सुनकर त्रायस्त्रिश देवता सभी एकत्र हो गये, उस बळे प्रकाश ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा त्रायस्त्रिश देवोके सामने प्रकट होता है, तो वह अपने बळे तेजको प्रकाशित करके ही प्रकट होता है, जिसमे कि भन्ते ! जो ब्रह्माकी स्वाभाविक दुष्प्राप्य कान्ति है, उसे त्रायस्त्रिश देव देख ले। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा ० प्रकट होता है, तब वह दूसरे देवोसे वर्ण और यशमे बहुत बढा रहता है। भन्ते ! जैसे, सोनेकी मूर्त्ति मनुष्यके विग्रहसे अधिक तेजसी होती है, वैसे ही भन्ते ! जब ब्रह्मा प्रकट ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ० प्रकट होता है, उस सभामे कोई भी देव उसे न तो अभिवादन करते है, न उठकर अगवानी करते है, न आसनके लिये निमन्त्रित करते है। सभी चुप होकर, हाथ जोळे, पलथी मारे बैठे रहते है। ब्रह्मा सनत्कुमार जिस देवके आसन मे चाहता है उसी देवके पर्यङ्कमे बैठ जाता है। भन्ते ! ब्रह्मा ० जिस देवके पर्यङ्कमे बैठ जाता है, वह देव बळा विशाल हो जाता है, सौमनस्यको लाभ करता है। भन्ते ! जैसे हालमे मूर्धाभिषिक्त, क्षत्रिय राजा, बहुत अधिक सतोष पाता है, ० सौमनस्य लाभ करता है, उसी तरह जिस देवके पर्यङ्कमे ब्रह्मा सनत्कुमार बैठता है, वह देव ०। भन्ते ! तव ब्रह्मा सनत्कुमार अपने विशाल शरीरको निर्माणकर पाँच शिखाओवाले एक बच्चेका रूप धर त्रायस्त्रिश देवोके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमे उळ अन्तरिक्षमे पलथी लगाकर बैठ गया। भन्ते ! जैसे कोई बलवान् पुरुष ठीकमे बिछे आसन या समतल भूमिपर पलथी मारकर बैठे, वैसे ही ब्रह्मा सनत्कुमार आकाशमे उळकर, आकाशमे पलथी लगाके बैठा। त्रायस्त्रिश देवोको प्रसन्न देख इन गाथाओसे अनुमोदन किया—'इन्द्रके साथ ० ॥२—५॥

'भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अगोसे युक्त था—(१) स्पष्ट (=साफ साफ), (२) समझने लायक, (३) मञ्जु, (४) श्रवणीय, (५) एक घन (=फटा नही), (६) क्रमानुकूल, (७) गम्भीर, (८) ऊँचा। भन्ते ! ० ब्रह्मा सभाके अनुकूल ही स्वरसे भाषण

करता था। उसका घोप सभाके वाहर नही जाता था। भन्ते! जिसका स्वर इस प्रकार आठ अगोसे युक्त होता है वह ब्रह्मस्वर कहलाता है। भन्ते! तव ब्रह्मा ०ने त्रायस्त्रिशीय शरीरका निर्माणकर त्रायस्त्रिश देवोके पर्यङ्कोसे प्रत्येक पर्यङ्कमे वैठकर तावतिस देवोको सवोधित किया—आप तावतिस (=त्रायस्त्रिश) देव लोग इसे क्या नही जानते, कि भगवान् लोगोके हितके लिये लगे है, लोगोके सुखके लिये ०। जितने बुद्धकी शरणमे गये, धर्मकी शरणमे गये, सघकी शरणमे गये, और जिन्होने शीलोको पूरा किया, मरनेके वाद, उनमेंसे कितने ही **परनिर्म्मितवशवर्त्ती** देवोमे उत्पन्न हुए, कितने **निर्म्माणरति** देवोमे ०, कितने **तुषित** देवो ०, ० **याम** देवो ०, ० **त्रायस्त्रिंश** देवो ०, ० **चातुर्महाराजिक** देवो ०। (उनमे) सबसे हीन शरीर पानेवालेने, **गन्धर्वके** शरीरको पाया। ब्रह्मा ०ने यह कहा। भन्ते! ब्रह्मा०के घोपको सभी देवोने जाना कि मानो वह उन्हीके आसनसे हो रहा है—

'एकके भापण करनेपर (दिव्य-वल द्वारा) निर्मित सभी शरीर भापण करते है।
एकके चुप वैठनेपर, वे सभी चुप हो जाते है ॥८॥
"इन्द्रके साथ सभी त्रायस्त्रिश देव समझते थे,
कि ब्रह्मा उन्हीके आसनमे है और वहीसे भाषण कर रहा है ॥९॥

'भन्ते! तव ब्रह्मा ० एक ओरसे अपनेको समेटने लगा, एक ओरसे अपनेको समेटकर (उसने) शत्र देवेन्द्रके आसन (=पर्यङ्क)मे पलथी लगाके वैठकर तावतिस देवोको सवोधित किया—'आप त्रायस्त्रिश देव लोग क्या समझते है,—उन भगवान् अर्हत्, सर्वद्रष्टा, सर्ववित्, सम्यक्-सम्वुद्धको ऋद्धियोकी अधिकतासे ऋद्धियोकी विशदतासे, तथा ऋद्धियोको नाना प्रकारसे देखनेसे चारो ऋद्धिपाद प्राप्त है। कौनसे चार (ऋद्धिपाद)? भिक्षु छन्दसमाधि प्रधान सस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, वीर्यसमाधि प्रधान ० सस्कारयुक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, चित्तसमाधि प्रधान सस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, वीमसासमाधि ०। ये चार ऋद्धिपाद उन भगवान् ०को सिद्ध है, ऋद्धियोकी अधिकतासे ०। अतीतकालमे जिन श्रमण और ब्राह्मणोने अनेक प्रकारकी ऋद्धियोको सिद्ध किया था उन सभीने इन्ही चार ऋद्धिपादोकी भावना करके (और) अभ्यास करके। भविष्य (=अनागत)कालमे जिन ० सिद्ध करेंगे ०। वर्तमानकालमे जिन ० सिद्ध किया है ०। आप जो त्रायस्त्रिश देव इस समय मेरे ऋद्धिवलको देख रहे है—ऐसे महाब्रह्मा है—मै भी इन्ही चार ऋद्धिपादोकी भावना करनेसे, अभ्यास करनेसे इस प्रकारका महाऋद्धिवाला महानुभाव हुआ हूँ।'

'भन्ते! ब्रह्मा ० ने यह वात कही। भन्ते! ब्रह्मा ० ने यह वात कह, त्रायस्त्रिश देवोको सबोधित, किया—'तव आप ० लोग क्या जानते है, कि उन भगवान् ० को तीन सुखकी प्राप्तिके लिये अवकाश प्राप्त है! वे तीन (सुख) कौनसे? कोई पुरुप भोगो (=कामो)से लिप्त होकर अकुशल धर्मो (=पापो)से लिप्त होकर विहार करता है। वह आगे चलकर आर्यधर्मको सुनता, अच्छी तरह मनमें लाता है, धर्मकी ओर ही लग जाता है। वह आर्यधर्मको सुनकर अच्छी तरहसे धर्मकी ओर लगता है, अच्छी तरह मनमे लाते हुए, भोगो (=कामो)मे विना आसक्त हुए विहार करता है, अकुशल पापोमे विना आसक्त ०। भोगो (=कामो)मे न लगनेसे (और) अकुशल धर्मोमे न लगनेसे उसे सुख होता है। सुखसे सौमनस्य, जैसे मोदसे प्रमोद होता है। इसी तरह कामोमे न आसक्त ० सुख होता है, सुखसे फिर सौमनस्य। उन भगवान्०को सुखकी प्राप्तिके लिये यह प्रथम अवकाश प्राप्त है।

"और फिर, किसीके महान् काय-सस्कार अशान्त होतेहै, महान् वाक्-सस्कार ०, महान् चित्त-सस्कार ०। वह किसी समय आर्यधर्मको सुनता है, अच्छी तरह मनमे लाता है, धर्मकी ओर प्रवृत्त हो जाता है। आर्यधर्म सुननेके वादसे ० प्रवृत्त होनेसे महान् काय-सस्कार शान्त हो जाते है, महान् वाक्-सस्कार ०, महान् चित्त-सस्कार ०। उसके महान् काय-सस्कारोके शान्त होनेसे, महान् वाक्-

सस्कारोके ०, ० चित्त-सस्कारोके शान्त होनेसे सुख उत्पन्न होता है। सुखसे सोमनस्य। जैसे मोदसे ०। यह उन भगवान्०को सुखकी प्राप्तिके लिये दूसरा अवकाश प्राप्त है।

"और फिर, कोई 'यह कुशल है' ऐसा ठीकसे नही जानता है, 'यह अकुशल है' ऐसा ठीकसे नही जानता है, 'यह निन्द्य है, यह अनिन्द्य है, यह करने के योग्य है, यह न करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, इसमे अच्छाई बुराई दोनो है' ऐसा ठीकसे नही जानता है। वह किसी समय आर्यधर्मको सुनता है ०। वह आर्यधर्म सुननेके बाद ० प्रवृत्त होता है। 'यह कुशल है ० ऐसा (सभी) ठीक ठीक जान जाता है। उसके ऐसा जानने, ऐसा देखनेसे अविद्या क्षीण हो जाती है, और विद्या उत्पन्न होती है। अविद्याके हट जाने और विद्याके उत्पन्न होनेसे उसे सुख उत्पन्न होता है, सुखसे सौमनस्य। जैसे ०। ० यह तीसरा अवकाश प्राप्त ०। उन भगवान्०को सुखप्राप्तिके लिये ये तीनो अवकाश प्राप्त है।

"भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कही। भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कहके तावतिस (=त्रायस्त्रिश) देवोको सबोधित किया—'तब आप त्रायस्त्रिश देव लोग क्या जानते है कुशल प्राप्तिके लिये जो चार **स्मृति-प्रस्थान** कहे गये है, ये भगवान्०को अच्छी तरह ज्ञात है। कौनसे चार? भिक्षु अपने कायामे कायानुपश्यी होकर विहरता है, उद्योगी, सावधान, स्मृतिमान्, अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=मनकी अशान्ति)को दबाकर, अपनी कायामे कायानुपश्यी होकर विहरते हुए उसके धर्म समाधिमे आते है, निर्मल होते है। वह अच्छी तरह समाहित और प्रसन्न हो बाहर, दूसरोके शरीरको निमित्त करके अपने ज्ञानदर्शनमे प्रवृत्त होता है।—भीतरी वेदनाओमे वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है ० बाहर दूसरोकी वेदनाओमे ०।—भीतरी चित्तमे चित्तानुपश्यी ०।—अपने भीतरी धर्मोमे धर्मानुपश्यी ०। ये चार स्मृतिप्रस्थान कुशल प्राप्तिके लिये भगवान्० से बतलाये गये है।

६—मगधके भक्तोंकी सुगति

"ब्रह्माने ०—क्या आप त्रायस्त्रिश देव लोग जानते है कि सम्यक्-समाधिकी भावना और परिशुद्धिके लिये सात समाधि-परिष्कारोको भगवान्०ने अच्छी तरह बतलाया है? कौनसे सात? सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-सकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति। जो इन सात अगोसे अङ्ग प्रत्यङ्गोके साथ, (और) सभी परिष्कारोके साथ चित्तकी एकाग्रता रूपी परिष्कृति है वही सम्यक्-समाधि कही० जाती है। सम्यक्-दृष्टिवाला मनुष्य सम्यक्-सकल्पमे समर्थ होता है, सम्यक्-सकल्पवाला मनुष्य सम्यक्-वाक्मे समर्थ होता है ०। सम्यक्-स्मृति से ०। सम्यक् समाधिमे समर्थ होता है। सम्यक् समाधि ० सम्यक् ज्ञानमे समर्थ होता है। सम्यक् ज्ञानवाला मनुष्य सम्यक् विमुक्तिमे समर्थ होता है। जिसे भली भाँति कहनेवाले मनुष्य कहते है—भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर प्रकारसे कहा गया) है, सान्दृष्टिक (=इसी ससारमे फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमे नही, सद्य फलप्रद), एहिपश्यिक (=परीक्षा किया जा सकनेवाला), ओपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला), विज्ञ (पुरुषो)को अपने अपने विदित होनेवाला है—जो लोग बुद्धमे स्थिर रूपसे प्रसन्न है, धर्ममे स्थिर ० और सघमे ०, उत्तम प्रिय शीलसे युक्त है उनके लिये अमृत (=स्वर्ग)का द्वार खुल गया। (जैसे) ये औपपातिक (=देवता) धर्मविनीत चौबीस लाखसे भी अधिक मगधके परिचारक अतीतकालमे मारके तीन वन्धनोके कट जानेसे स्रोतआपन्न हो गये है, वह फिर कभी तीन अपायोमे नही गिर सकते है और वह नियत रूपसे सम्बोधि-प्राप्तिमे लगे है। और यहाँ सकृदागामी भी है—

'मै जानता हूँ कि यहाँ और दूसरे लोग (भी) पुण्यके भागी है।

'कही मिथ्या-भाषण न हो जावे ।' इस डरसे उनकी गणना भी नही कर सका ॥१०॥'

"भन्ते ! ब्रह्मा०ने यह कहा। भन्ते ! ब्रह्मा०के इतना कहनेपर वैश्रवण महाराजके मनमे यह वितर्क उत्पन्न हुआ—आश्चर्य है, अद्भुत है, इस प्रकारके उदार (=महान्, श्रेष्ठ) शास्ता (फिर भी कभी) उत्पन्न हो, तो इस प्रकारके उदार धर्मोपदेश, (और) इस प्रकारके ऊँचे ज्ञान देखे जाये। भन्ते ! ब्रह्माने० वैश्रवण (=कुवेर) महाराजके चित्तको अपने चित्तसे जान यह कहा—वैश्रवण महाराज ! क्या जानते हैं कि अतीतकालमे भी इस प्रकार उदार शास्ता० देखे गये थे, भविष्य मे भी इस प्रकारके उदार शास्ता० होगे० देखे जायेंगे।

"भन्ते ! ब्रह्मा०ने त्रायस्त्रिश देवोसे यह कहा। त्रायस्त्रिश देवोके सामने जो कुछ ब्रह्मा०ने कहा, उसे सामने सुन और ग्रहणकर वैश्रवण महाराजने अपनी सभामे कह सुनाया।'

जनवसभ देवता (=यक्ष)ने वैश्रवण महाराज द्वारा अपनी सभामे कहे गये इस वचनको सुन, और ग्रहणकर भगवान्‌से कह दिया। भगवान्‌ने जनवसभके मुँहसे सुन, ग्रहणकर, तथा स्वय जानकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा। आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के मुँहसे० भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओको कह सुनाया। वही ब्रह्मचर्य ऋद्धियुक्त, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल होकर देव मनुष्योमे प्रकाशित हुआ।

१९—महागोविन्द-सुत्त (२ । ६)

१—शक्रद्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा । २—बुद्धके आठ गुण । ३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशसा । ४—महागोविन्द जातक । (१) महागोविन्दकी दक्षता । (२) जम्बूद्वीपका सात राज्योमें विभाग । (३) ब्रह्माका दर्शन । (४) महागोविन्दका सन्यास । ५—बुद्धधर्मकी महिमा ।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् **राजगृहके गृध्रकूट** पर्वतपर विहार कर रहे थे। तव **पञ्चशिख** गन्धर्वपुत्र रातके चढनेपर देदीप्यमान शरीरसे सारे गृध्रकूट पर्वतको प्रकाशित करके जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर ० खळा हो गया। ० यह बोला—

"भन्ते ! मैने जो त्रायस्त्रिश देवोके मुँहसे सुना है (और) जाना है, उसे आपसे कहता हूँ।'

भगवान्ने कहा—"तो पञ्चशिख ! मुझसे कहो।"

१—शक्रद्वाराबुद्ध धर्मकी प्रशंसा

"भन्ते ! बहुत दिन व्यतीत हुए एक प्रवारणा(=आश्विन पूर्णिमा)के उपोसथकी पञ्चदशीको पूर्णमासीकी रातमे सभी त्रायस्त्रिश देव **सुधर्मा**-सभामे बैठे थे। महती देव-परिषद् चारो ओरसे बैठी थी। चारो दिशाओसे चारो महाराज भी आकर बैठे थे।०। भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिश देवताओको प्रसन्न देखकर इन गाथाओसे अनुमोदन किया—"इन्द्रके साथ सभी ०[1] ॥१-४॥"

"भन्ते ! इससे त्रायस्त्रिश देव अत्यधिक प्रसन्न, सतुष्ट० हो गये—'देवलोक भर रहा है, असुर-लोक क्षीण हो रहा है।' भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिश देवोको प्रसन्न देख तावतिंस देवोको सबो-धित किया—'मार्ष ! क्या आप लोग उन भगवान्के आठ यथार्थ गुणोको सुनना चाहते है ?'

'मार्ष ! हम लोग ० सुनना चाहते है।'

२—बुद्धके आठ गुण

"भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने तावतिंस (=त्रायस्त्रिश)देवोसे भगवान्के ० गुणोको कहा—(१) 'आप तावतिस देव लोग क्या जानते है कि भगवान् लोगोके हितकेलिये०। भगवान्को छोळकर। इस प्रकारके अङ्गोसे युक्त शास्ताको हम लोगोने आज तक पहले कभी नही देखा था। (२) "भग-वान्का धर्म स्वाख्यात०[2] है। उन भगवान्को छोळकर आज तक हम लोगोने पहले इस प्रकारके स्वर्ग-प्रद धर्मका उपदेश देनेवाले, (तथा) इन अङ्गोसे युक्त शास्ताको नही देखा। (३) 'यह अच्छा है' इसे भगवान्ने ठीक ठीक बतलाया है। 'यह बुरा (अकुशल) है' इसे ०। 'यह निन्द्य, यह अनिन्द्य ०' इसे ०।

---

[1] देखो पृष्ठ १६२, १६३।   [2] देखो पृष्ठ १६५।

उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकारके कुशलाकुशल, निन्द्यानिन्द्य ० धर्मोके वतलानेवाले शास्ता ०। (४) उन भगवान्‌ने श्रावकोको निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा (=मार्ग) ठीक ठीक वतलाई है। निर्वाण और उसके मार्ग विल्कुल अनुकूल हैं। जैसे गंगाकी धारा यमुनामे गिरती है, और (गिरकर) एक हो जाती है, उसी तरह श्रावकोको उन भगवान्‌की वतलाई निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा निर्वाणके साथ मेल खाती है। उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकारकी निर्वाण-गामिनी प्रतिपदाका वतलानेवाला ०। (५) उन भगवान्‌को महालाभ हुआ है, उनकी गुणकीर्ति भी वळी भारी है। क्षत्रिय आदि सभीके वे समान रूपसे प्रिय हैं। वे भगवान् जो आहार ग्रहण करते हैं वह मदके लिये नही होता। उन भगवान्‌को छोळ० इस प्रकार मदकेलिये०। (६)भगवान्‌ने शैक्ष, निर्वाणके मार्गपर आरूढ, क्षीणास्रव(=अर्हत्), तथा ब्रह्मचर्य व्रतको पूरा करनेवाले (भिक्षुओ)की सहायताको पाया है। भगवान् उन्हे छोळकर एकान्तमे भी विहार करते हैं। उन भगवान्‌को छोळ ० एकान्तमे विहार करनेवाले ०। (७) भगवान् यथावादी (=जैसा वोलनेवाले) तथाकारी (=वैसा करनेवाले) है, यथाकारी तथावादी हैं। अत, यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी उन भगवान्‌को छोळ ० इस प्रकार धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न (=धर्मके अनुसार मार्गपर आरूढ) ०। (८) भगवान् तीर्णविचिकित्स (=जिन्हे कोई सन्देह नही रह गया हो) है, विगतशक (=जिनकी सारी शकाये दूर हो गई हैं), पर्यवसित-सकल्प (=जिनके सारे सकल्प पूरे हो चुके हैं), और ब्रह्मचर्य पूरा कर चुके हैं। भगवान्‌को छोळ ०।— भन्ते! शक्र देवेन्द्रने तावतिंस देवोसे भगवान्‌के इन्ही यथार्थ आठ गुणोको कहा।

"भन्ते! भगवान्‌के आठ यथार्थ गुणोको सुनकर तावतिस देव अत्यन्त सतुष्ट, प्रमुदित (तथा) प्रीति-सौमनस्य-युक्त हुए।' भन्ते! तव कुछ देवोने यह कहा—'मार्ष! भगवान्‌से यदि चार सम्यक् सम्वुद्ध ससारमे उत्पन्न हो और धर्मका उपदेश करे, तो वह लोगोके हितके लिये, लोगोके सुखके लिये ० हो।'

"दूसरे देवोने ऐसा कहा—'मार्ष! चार तो जाने दीजिये, यदि तीन सम्यक् सम्वुद्ध भी ससारमे ० लोगोके सुखके लिये० हो।' "दूसरे देवोने ऐसा कहा—'मार्ष! तीन जाने दीजिये, यदि दो ० भी ०।'

"भन्ते! उनके ऐसा कहनेपर देवेन्द्र शक्रने ० देवोसे यह कहा—

'ऐसा नही मार्षो! एक ही लोकधातुमे एक ही समय दो अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध नही होते। ऐसा नही होता। मार्ष! यही भगवान् नीरोग, सानन्द, और दीर्घजीवी होवे, जो कि लोगोके हितके लिये ०।

"भन्ते! उसके वाद जिस कामसे ० देव लोग सुधर्मा-सभामे इकट्ठे होकर वैठे थे, उस कामके विपयमे विचार करके, मन्त्रणा करके उन चारो महाराजके भी कहने और समर्थन करनेपर अपने अपने आसनोपर खळे थे।

वे चारो महाराज भी कहकर और अनुशासनी ग्रहणकर,
प्रसन्नमनमे अपने अपने आसनोपर खळे थे ॥५॥

३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

"भन्ते! तव उत्तर दिशामें एक वळा विशाल (=उदार) आलोक उत्पन्न हुआ। देवोंके देवानु-भावसे भी वढकर तीव्र प्रकाश(उत्पन्न)हुआ। भन्ते! तव शक्र०ने त्रायस्त्रिश देवोको सवोधित किया—मार्ष! जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है ०[1] ब्रह्माके ये निमित्त ० ॥६॥"

---

[1] देखो पृष्ठ १६३।

"भन्ते! तावतिंस देव अपने अपने ०।

"तब ब्रह्मा०ने अन्तर्हित (=अदृश्य) होकर इन गाथाओंसे त्रायस्त्रिंश देवोंका अनुमोदन किया—

'इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिंश देव ० ॥१-४॥'

"भन्ते! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते! कहते समय सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अगोंमे युक्त था, वह विस्पष्ट, विज्ञेय, मजु, श्रवणीय, विन्दु (=ठोस), विखरा-नही, गभीर, और निनादी परिषद्के अनुसार (तीव्र मन्द) स्वरसे ब्रह्मा सनत्कुमार परिषद्को उपदेशता है, उसका स्वर परिषद्से बाहर नही जाता। भन्ते! जिसका स्वर इन आठ अगो से युक्त होता है, वह **ब्रह्मस्वर** कहा जाता है। भन्ते! तब ० देवोंने ब्रह्मा ०से यह कहा—'साधु महाब्रह्मा! इसीलिये हम लोग प्रसन्न हो रहे है। शक्र०के द्वारा भगवान्‌के यथाभूत =यथार्थ आठ गुण कहे गये हैं। उसीसे हम लोग प्रसन्न हो रहे हैं।'

"भन्ते! तब ० ब्रह्माने शक्र०से यह कहा—साधु देवेन्द्र! मै भी भगवान्‌के आठ ० सुनूँ। भन्ते! तब शक्रने ० ब्रह्मा०को भगवान्‌के ० गुणोको कह सुनाया।

'तो आप महाब्रह्मा क्या जानते है कि भगवान् लोगोंके हित ०[1]।'

"भन्ते! शक्र०ने ब्रह्मा०को ये भगवान्‌के आठ यथार्थ गुण कह सुनाये। उससे ब्रह्मा ० सतुष्ट ०। भन्ते! तब ब्रह्मा ० अपना उदार स्वरूप धारणकर, कुमारके वेशमे, पाँच शिखाओंवाला बन तावतिस देवोके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमे ०[2] देवोंको सबोधित किया—

४—महागोविन्द जातक

'आप त्रायस्त्रिंश देव लोग क्या नही जानते कि भगवान् बहुत दिन पहले भी महाप्रज्ञावान् थे।—बहुत दिन पहले **दिशांपति** नामक एक राजा रहता था। दिशांपति राजाका **गोविन्द** नामक ब्राह्मण पुरोहित था। गोविन्द ब्राह्मणका **जोतिपाल** नामक माणवक पुत्र था। **रेणु** राजपुत्र, जोतिपाल माणवक और दूसरे छै क्षत्रिय—ये आठो बळे मित्र थे।

'तब बहुत दिनोके बीतनेपर गोविन्द ब्राह्मण मर गया। गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेपर राजा ० विलाप करने लगा—जो गोविन्द ब्राह्मण (हमारे) सभी कृत्योको करके पाँच भोगो (=काम गुणो)से हमारी सेवा करता था वह गोविन्द ब्राह्मण मर गया'।

'(राजाके) ऐसा कहनेपर रेणु राजपुत्रने राजा ०से यह कहा—देव! आप गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेसे अधिक विलाप न करे। देव! गोविन्द ब्राह्मणका जोतिपाल नामक माणवक पुत्र है,। वह अपने पितामे भी बढकर पण्डित है, अपने पितासे भी बढकर अर्थदर्शी है। जिन कामोकी देख-रेख उसका पिता करता था, उन कामोकी देख-रेख जोतिपाल माणवक भी कर सकता है।

'कुमार! ऐसी बात है?' 'देव! हाँ।'

'तब उस राजा०ने एक पुरुषसे कहा—सुनो, जहाँ जोतिपाल माणवक है, वहाँ जाओ। जाकर जोतिपाल माणवकसे यह कहो—जोतिपाल माणवकका शुभ हो। राजा ० आप ०को बुला रहे है, राजा ० आप०से मिलना चाहते है।'

'अच्छा देव!' कहकर ०।

'जोतिपाल माणवक 'बहुत अच्छा' कह उस पुरुषको उत्तर दे जहाँ राजा दिशांपति था, वहाँ

---

[1] देखो पृष्ठ १६७। [2] देखो पृष्ठ १६३।

गया। जाकर (उसने) राजा०का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन.. करनेके बाद एक ओर बैठ गया। राजा०ने एक ओर बैठे जोतिपाल माणवकसे कहा—

'आप जोतिपाल मुझे अनुशासन करे (=सभी कामोमे विचारपूर्वक सलाह दे)। आप जोतिपाल० अनुशासन करनेसे मत हिचके। आपको आपके पिताके स्थानमे नियुक्त करता हूँ। गोविन्दके आसनपर आपको अभिषिक्त करता हूँ।'

'बहुत अच्छा' कह जोतिपाल०ने राजा०को उत्तर दिया।

"तब राजा०ने जोतिपाल०को गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त किया, पिताके स्थानपर नियुक्त किया।

(१) महागोविन्दकी दक्षता

"जोतिपाल०गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त हो, अपने पिताके स्थानपर नियुक्त हो, उन कृत्योकी देख रेख करने लगे जिनकी देख रेख उनका पिता करता था, (और) जिनकी देख रेख उनका पिता नही करता था उनकी भी देख रेख करने लगे। जिन कामोका प्रबन्ध उनका पिता करता था, उनका प्रबन्ध करने लगे (और) जिन कामोका प्रबन्ध उनका पिता नही कर सकता था, उनका भी प्रबन्ध करने लगे। इसलिये उन्हे लोग कहने लगे—यह गोविन्द ब्राह्मणसा है, महागोविन्द ब्राह्मण है। इस प्रकार जोतिपाल माणवकका गोविन्द या महागोविन्द नाम पळा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये, जाकर उन छै क्षत्रियोसे बोले—दिशापति राजा जीर्ण=वृद्ध=महल्लक, पुराने और वयस्क हो गये है। जीवनके विषयमे कौन जानता है। बात ऐसी है कि ० राजाके मर जानेपर (कदाचित्) राज्य-कर्त्ता लोग रेणु राजपुत्रको राज्याभिषिक्त करे। आप लोग आवे, जहाँ रेणु राजपुत्र है वहाँ चले, और जाकर रेणु राजपुत्रसे यह कहे—'हम लोग आपके सहायक, प्रिय=मनाप, (और) अप्रतिकूल (=आपहीके पक्षमे रहनेवाले) है। आपको जिसमे सुख है, उसीमे हम लोगोको भी सुख है, आपको जिसमे दुःख है ०। दिशाम्पति राजा जीर्ण० हो गये है। जीवनके ०। बात यह है कि ० राजाके मरनेपर कदाचित् राज्यकर्ता लोग आप हीका राज्याभिषेक करे। यदि आप राज्य पावे तो हम लोगोको भी राज्यका (उचित) भाग दे।'

'बहुत अच्छा' कह, छै क्षत्रिय महागोविन्द ०को उत्तर दे, जहाँ रेणु थे, वहाँ ० गये। ० यह बोले—हम लोग आपके सहायक ०।'

'हाँ, मेरे राज्यमे आप लोगोको छोळकर और दूसरा कौन सुखी होगा! यदि मै राज्य पाऊँगा तो आप लोगोको भी राज्यका भाग दूँगा।'

"तब बहुत दिनोके बाद राजा ० मर गया। राजाके मर जानेपर राजकर्ताओने रेणु राजपुत्रका राज्याभिषेक किया। रेणु राज्याभिषिक्त हो पाँचो भोगोका सेवन करने लगा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे, वहाँ गये। जाकर बोले—राजा ० मर गया। राज्याभिषिक्त हो रेणु पाँच भोगोको सेवन कर रहा है। मदवर्धक भोगोका कौन ठिकाना? आप लोग आवे, जहाँ रेणु राजा है, वहाँ जावे (और) जाकर रेणु राजासे यह कहे—दिशाम्पति राजा मर गया। आप राज्याभिषक्त हुये है। आप उस वचनको स्मरण करते है?'

'बहुत अच्छा' कह ०। ० स्मरण करते है?'

(२) जम्बूद्वीपका सात राज्योंमें विभाग

'हाँ! उस वचनको मै स्मरण करता हूँ। तो कौन है जो उत्तरमें तो चौळी और दक्षिणमे शकटके मखके समान सकीर्ण इस महापृथिवी (=भारत)को सात बराबर भागोमे बाँट सकता है।

'महागोविन्द०को छोळकर भला और दूसरा कौन (यह) कर सकता है ?'

"तब राजा रेणुने एक पुरुषको बुलाकर कहा—सुनो! जहाँ महागोविन्द ० है वहाँ जाओ, ० कहो—भन्ते! रेणु राजा आपको बुलाते है।" 'बहुत अच्छा' कह ०। ० बुलाते है।

'बहुत अच्छा' कह वह ० पुरुषको उत्तर दे जहाँ रेणु राजा ०। ० बैठ गये। एक ओर बैठे महागोविन्द ब्राह्मणसे रेणु राजाने यह कहा—

'आप ० इस महापृथ्वीको सात बराबर बराबर भागोमे बाँटे।'

'बहुत अच्छा' कह महागोविन्दने रेणु ०को उत्तर दे, इस महापृथ्वीको ० बाँट दिया ०। बीचमे रेणुका भाग रहा।

[1]**कलिंगमे दन्तपुर, अश्वक (देश)मे पोतन,**
अवन्ती(देश)मे माहिष्मती, सौवीर(देश)मे रोरुक।
विदेह (देश)मे मिथिला, अगमे चम्पा,
और काशी (देश)मे वाराणसी—इन्हे महागोविन्दने बनाया ॥७॥

तब वे छै क्षत्रिय अपने अपने भागसे सतुष्ट हुए, उनका सकल्प पूरा हुआ—जो हम लोगोका इच्छित, जो आकाक्षित, जो अभिप्रेत (और) जो अभिप्रार्थित था, सो हम लोगोने पा लिया।

सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत,
रेणु और दो धृतराष्ट्र उस समय यह सात भारत (=राजा) थे ॥८॥

(इति) प्रथम माणवार ॥१॥

तब वे छै क्षत्रिय जहाँ महागोविन्द थे, वहाँ गये। जाकर महागोविन्दसे बोले—जैसे आप रेणु राजाके सहायक, प्रिय, मनाप और अप्रतिकूल है, वैसे ही आप हम लोगोके भी सहायक हो। हम लोगोको अनुशासन करे। आप अनुशासन करनेसे मत हिचके। 'बहुत अच्छा' कह ०।

"तब महागोविन्द ० सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओको अनुशासन करने लगे। सात ब्राह्मण-महाशालो (=महाधनी)को और सातसौ स्नातकोको मन्त्र (=वेद) पढाने लगे। तब कुछ समय बीतनेपर महागोविन्दकी ऐसी ख्याति फैल गई—

'महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्माको देखता है। महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्मासे बाते करता है, सलाप करता है, (और) मन्त्रणा करता है।'

"तब महागोविन्द०के मनमे यह आया—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है—'महागोविन्द ० साक्षात् ० मन्त्रणा करता है।' मै तो ब्रह्माको नही देखता, न ब्रह्माके साथ बाते करता हूँ, न ० सलाप ०, न ० मन्त्रणा ०।'

'मैने वृद्ध=महल्लक, आचार्य, प्राचार्य ब्राह्मणोको ऐसा कहते सुना है कि, जो वर्षाकालके चौमासे मे समाधि लगाता तथा करुणा भावनाको करता है, वह ब्रह्माको देखता है ० बाते करता है ०। अत मै वर्षाकालके चौमासेमे ध्यान ० करूँगा।

---

[1] (१) कलिंग=उडीसा। (२) अश्वक=औरगाबादसे पैठन तक (हैद्राबाद)। (३) अवन्ती=मालवा। (४) सौवीर=वर्तमान सिध। (५) विदेह=तिर्हुत। (६) अग=भागलपुर-मुंगेर जिले। (७) काशी=बनारस कमिश्नरी। यही भारतके सात पुराने खड है। पोतन,=पैठन (हैदराबाद), माहिष्मती=महेश्वर (इन्दौर), रोरुक=रोरी (सिन्ध), चम्पा=चम्पा (भागलपुर)।

"तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था, ० वहाँ गये। ० बोले—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है, 'महागोविन्द ० साक्षात्०। (किन्तु) मै ० नही देखता हूँ ०। ० कहते सुना है ०। अत मै वर्षाकालके चौमासेमे ध्यान ० करना चाहता हूँ। एक भोजन ले जानेवालेको छोळकर मेरे पास और कोई दूसरा न आवे।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझे वैसा करे।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे ० वहाँ गये। ० बोले—'आप गोविन्द, जैसा उचित समझे।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मण महाशाल और सातसौ स्नातक ०।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझे।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी एक जातिकी चालीस स्त्रियाँ थी ०।

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझे।'

"तब महागोविन्द ० नगरके पूरब नया सन्थागार (=ध्यान, आदिके अनुकूल स्थान) बनवाकर वर्षाकालके चार मास समाधि लगाने लगे, करुणा-भावनाका अभ्यास करने लगे। भोजन ले जानेवालेको छोळकर और कोई दूसरा वहाँ नही जाता था। तब चार मासके बीतनेपर महागोविन्द०को एक पुण्य की उत्सुकता होने लगी—० 'ब्राह्मणोको कहते सुना था—वर्षाकालके ०। (किन्तु) मै ब्रह्माको न देखता हूँ, ० न (उससे) बाते करता हूँ ०।'

(३) ब्रह्माका दर्शन

"तब ब्रह्मा सनत्कुमार महागोविन्द०के चित्तको अपने चित्तसे जान जैसे बलवान् पुरुप ० वैसे ही ब्रह्मलोकमे अन्तर्धान हो महागोविन्द ० के सामने प्रकट हुआ। तब उस अदृष्टपूर्व रूपको देखकर महगोविन्दको कुछ भय होने लगा, स्तब्धता होने लगी, रोमाञ्च होने लगा। तब महागोविन्दने ० भयभीत=सविग्न, रोमाञ्चित हो ब्रह्मा सनत्कुमारसे गाथाओमे कहा—

'मार्ष! सुन्दर, यशस्वी, श्रीमान् आप कौन है, नही जानकर ही
मै आपको पूछ रहा हूँ। आपको हम लोग भला कैसे जाने ॥९॥'

'ब्रह्मलोकमे सनत्कुमारके नामसे
मुझे सभी देव जानते है, गोविन्द! तुम वैसा ही जानो ॥१०॥'

'आसन, जल, पैरमे लगानेके लिये तेल, (और) मधुर शाक से
मै आप ब्रह्माकी पूजा करता हूँ, कृपया इन्हे आप स्वीकार करे ॥११।'

'गोविन्द! इसी जन्म (=दृष्टधर्म)के हितके लिये, स्वर्गप्राप्तिके लिये और सुखके लिये जो तुम कहते हो,
उन अर्घ्योको मै स्वीकार करता हूँ। मै आज्ञा देता हूँ, जो चाहो पूछ सकते हो ॥१२॥

"तब महागोविन्द०के मनमे यह आया—ब्रह्मा०ने आज्ञा दे दी है। ब्रह्मा०को मै क्या पूछूँ—इसी ससारकी बाते या परलोककी बाते? तब महागोविन्दके मनमे यह आया—इस जन्म (=दृष्ट-धर्म)के अर्थोमे (=सासारिक बातोमे) तो मै स्वय कुशल हूँ, दूसरे लोग भी मुझसे दृष्टधर्मके अर्थको पूछते है। अत मै ब्रह्मासे परलोककी ही बात पूछूँ। तब महागोविन्द०ने ब्रह्मा०से गाथामे कहा—

'श्रेष्ठो द्वारा ज्ञातव्य बातोमे मुझे शका है, इसलिये उन्हे मै, शकारहित ब्रह्मा सनत्कुमारसे पूछता हूँ।'

'कहाँ रहकर और क्या अभ्यासकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है? ॥१३॥'

'ब्राह्मण ! मनुष्योमे ममत्वको छोळ एकान्तमे रहना, करुणा-भावयुक्त होना।'
पापोसे अलग रहना (तथा) मैथुन-कर्मसे विरत रहना,
इन्हीका अभ्यासकर, और इन्हीको सीखकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥१४॥'

'मै जानता हूँ कि तुमने ममत्वको छोळ दिया है। कोई पुरुष कम या बहुत भोगविलासको, बन्धु बान्धवोको छोळ शिर और दाढी मुँळ ० प्रव्रजित हो जाता है। मै जानता हूँ कि तुमने उस ममत्वको छोळ दिया है। मै जानता हूँ कि तुम सबसे अकेले भी हो गये हो।

'कोई कोई मनुष्य विविक्त (=एकान्त, निर्जन) स्थानमे वास करता है। अरण्य, वृक्षके नीचे पर्वत-कन्दरा, पहाळकी गुफा, श्मशान, जगल, खुले मैदान, या ० पुआलके ढेरमे वास करता है। मै जानता हूँ कि तुम भी इसी तरह विविक्त स्थानमे वास करते हो। मै जानता हूँ कि तुम करुणासे भी युक्त हो।

'कोई कोई मनुष्य करुणायुक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान कर विहार करता है, वैसे ही दूसरी दिशा० ० तीसरी ० चौथी दिशा, ऊपर, नीचे, आळे, बेळे सभी तरहसे सभी ओर सारे ससारको वैररहित द्रोह-रहित विपुल, अत्यधिक, सच्चे चित्तसे विहार करता है। मै जानता हूँ कि तुम्हे भी इसी तरह करुणाका योग है । किंतु तुम्हारे कहनेसे भी तुम्हारा **आमगन्ध** मै नही जानता ।'

"ब्रह्मा ! मनुष्योमे वे कौनसे आमगन्ध है ? उन्हे मै नही जानता, कृपया कहे ।
ब्रह्मलोकसे गिरकर नारकीय लोग किन मलोसे लिप्त हो दुर्गन्धिको प्राप्त होते है ? ॥१५॥'

"क्रोध, मिथ्याभाषण, वञ्चना मित्र-द्रोह, कृपणता, अभिमान,
ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, परपीळा, लोभ, दोप, मद और मोह,
'इन्हीसे युक्त होकर नारकीय लोग ब्रह्मलोकसे गिरकर दुर्गन्धको प्राप्त होते है ॥१६॥'

'आपके कहनेसे मै आमगन्धोको जान गया। वे गृहस्थसे जल्दी दूर नही किये जा सकते, अत , मै घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'महागोविन्द, जैसा उचित समझो।'

(४) महागोविन्दका सन्यास

"तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था वहाँ गये। जाकर रेणु राजासे बोले—अब आप अपना दूसरा पुरोहित खोज ले, जो कि आपके राज्यका अनुशासन करेगा। मै घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। ब्रह्माके कहनेसे जो आमगन्ध मैने सुने है, वेगृहस्थ रहकर आसानीसे दूर नही किये जा सकते, मै घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।

'भूपति रेणु राजाको मै सबोधित करता हूँ, आप अपने राज्यको देखे,
मै अब पुरोहितके कामोको नही कर सकता ॥१७॥

'यदि आपको भोगोकी कमी है, मै उसे पूरा करूँगा। जो आपको कष्ट देता है,
उसे मै वारण करदूँगा, मै भूमि और सेनाका पति हूँ, तुम पिता हो, मै पुत्र हूँ,
गोविन्द, हम लोगोको आप मत छोळे ॥१८॥'

'मुझे भोगोकी कमी नही है और न मुझे कोई कष्ट देता है।
अ-मनुष्य (=देवता)की बातको सुननेके बाद मै गृहस्थ रहना नही चाहता' ॥१९॥

'अ-मनुष्य कैसा था, उसने आपको क्या कहा है, जिसे सुनकर कि
आप अपने घर तथा हम सभीको छोळ रहे है ? ॥२०॥'

'पहले, यज्ञ करनेकी इच्छासे मैने अग्नि प्रज्वलित की, कुश और पत्ते बिछाये ।
उसी समय ब्रह्मा सनत्कुमार ब्रह्मलोकसे आकर प्रकट हुए ॥२१॥'

'उन्होने मेरे प्रश्नोका उत्तर दिया ।

उसे सुनकर मै गृहस्थ रहना नही चाहता ॥२२॥'

' 'हे गोविन्द ! आप जो कहते है उसमे मेरी श्रद्धा है। देवकी बातको सुनकर

अव आप कोई दूसरा काम कैसे कर सक्ते है ? ॥२३॥

'(किन्तु) हम लोग भी आपके अनुगामी होगे। गोविन्द ! आप हम लोगोके गुरु होवे।

जैसे चिकना, निर्मल और शुभ्र हीरा होता है

उसी तरह गोविन्दके अनुशासनमे हम लोग शुद्ध हो विचरण करेगे ॥२४॥'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होगे, तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायँगे। जो आपकी गति होगी वही हम लोगोकी गति होगी।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये। ० बोले—'आप लोग अपना दूसरा पुरोहित खोज ले ०।'

"तब छै क्षत्रियोने एक ओर जाकर ऐसा विचारा—ये ब्राह्मण धनके लोभी होते है, अत हम लोग महागोविन्द०को धनका लोभ देकर रोके। उन लोगोने महागोविन्द०के पास जाकर यह कहा—इन सात राज्योमे वहुत धन है। आप जितना धन चाहे ले ले।'

'मेरी भी प्रचुर धन-राशि आप लोगोकी ही सम्पत्ति होवे। मै सभीको छोळकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा ०।'

"तब छै क्षत्रियोने एक ओर जाकर ० स्त्रीके लोभी ० स्त्रीका लोभ देकर ०। उन लोगोने ० यह कहा—इन सात राज्योमे वहुतसी स्त्रियाँ है ०।'

'बस रहने दे। मेरी जो चालीस एक वश (गोरी आर्य जाति)की स्त्रियाँ है, उन सभीको छोळकर मै घरसे बेघर ०। क्योकि मैने ब्रह्मासे सुना है ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर ० तो हम लोग भी ० प्रव्रजित होवेगे। जो आपकी गति होगी, वही हम लोगोकी गति होगी।'

'यदि आप उन भोगोको त्याग रहे है जिनमे सासारिक लोग लग्न रहते है,

(तो) दृढता पूर्वक आरम्भ करे, क्षत्रियोचित बलसे युक्त होवे ॥२५॥

"यही मार्ग सीधा मार्ग है, यही अनुपम मार्ग है।

सभी (बुद्धो)से रक्षित यह धर्म ब्रह्मलोकको प्राप्त करानेवाला होता है ॥२६॥'

'तो आप गोविन्द, सात वर्ष प्रतीक्षा करे। सात वर्षोके बाद हम लोग भी घरसे बेघर ०। जो आपकी गति ०।'

'सात वर्ष बहुत लम्बा होता है। सात वर्ष मै आप लोगोकी प्रतीक्षा नही कर सकता। जीवनका कौन ठिकाना ! मरना (अवश्य) है, (अत) ज्ञानप्राप्ति करनी चाहिये, अच्छा कर्म करना चाहिये, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। जन्म लेकर अमर कोई नही रहता। ब्रह्मासे मैने सुना है ० प्रव्रजित होऊँगा।'

'तो गोविन्द ! छै वर्ष प्रतीक्षा करे ०। पाँच वर्ष, ०। चार वर्ष, ०। तीन वर्ष, ०। दो वर्ष, ०। एक वर्ष ०।'

"एक वर्ष बहुत लम्बा होता है ० प्रव्रजित होऊँगा।'

"तो गोविन्द ! सात महीना ०।'

"सात महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, छै महीना ०। पाँच ०। चार ०। तीन ०। दो ०। एक ०। आधा महीना ०।'

'आधा महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, सात दिन ० कि हम लोग अपने भाई-बेटोको राज्य सौप दे। एक सप्ताह बीतनेके बाद हम लोग भी ०।'

'एक सप्ताह अधिक नही होता। एक सप्ताह तक आप लोगोकी प्रतीक्षा करूँगा।'

'तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मणमहाशाल और सातसौ स्नातक थे वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अब अपना दूसरा आचार्य खोज ले, जो कि आप लोगोको मन्त्र (=वेद) पढावेगा। मै प्रव्रजित होना चाहता हूँ। क्योकि ब्रह्मासे मैने सुना है ०।'

'गोविन्द! आप मत घरसे बेघर ०। प्रव्रज्या अच्छी चीज नही है, उससे लाभ भी अल्प ही है। ब्राह्मणपन अच्छी चीज है, और उससे लाभ भी बहुत है।'

'मुझे अब अच्छी चीजसे या महालाभसे क्या! मै आज तक राजाओका राजा, ब्राह्मणोका ब्राह्मण, (और) गृहस्थोके लिये देवता-स्वरूप था। (लेकिन अब) उन सभीको छोळकर मै घरसे बेघर हो ० प्रव्रजित हो जाऊँगा। क्योकि मैने ब्रह्मासे ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होगे, तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायेगे ०

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी समानवशवाली चालीस स्त्रियाँ थी वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अपनी इच्छाके अनुसार पीहर चली जावे, या दूसरे पतिको खोज ले। मै घरसे बेघर ०। ब्रह्मासे मैने सुना है ०।'

'आप ही हम लोगोके सम्बन्धी है, आप ही हम लोगोके पति है। यदि आप घरसे बेघर हो प्रव्रजित होगे तो हम लोग भी ०।'

'तब महागोविन्द ० उस सप्ताहके बीत जानेपर शिर और दाढी मुँळा प्रव्रजित हो गये। महागोविन्द०के प्रव्रजित हो जानेपर सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, सात ब्राह्मणमहाशाल, सातसौ स्नातक, समानवशवाली चालीस स्त्रियाँ, अनेक सहस्र क्षत्रिय, अनेक सहस्र ब्राह्मण, अनेक सहस्र वैश्य (=गृहपति) और अनेक सहस्र स्त्रियाँ ० प्रव्रजित हुए। उन लोगोके साथ महागोविन्द ० गाँव, कस्बा, और राजधानीमे चारिका करने लगे। उस समय महागोविन्द ० जिस गाँव या कस्बेमे पहुँचते थे वहाँ ही वह राजोके राजा, ब्राह्मणोके ब्राह्मण और गृहपतियोके लिये देवता स्वरूप हो जाते थे।

"उस समय मनुष्य लोग ठेस लगने या छीक आनेसे यह कहा करते थे—'नमोऽस्तु महागोविन्दाय ब्राह्मणाय। नमोऽस्तु सप्तपुरोहिताय।'

"महागोविन्द०ने मैत्री-सहित चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान लगाया, वैसे ही दूसरी दिशा, तीसरी ०। करुणायुक्त चित्तसे ०। मुदिता ०। उपेक्षा ०। श्रावको (=शिष्यो)को ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया।

"उस समय महागोविन्द०के जितने श्रावक थे, उनमे जिन्होने धर्म को जाना था। वे मरकर सुगतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोकमे उत्पन्न हुए। जिन लोगोने धर्मको पूरा पूरा नही समझ पाया, वे मरकर कुछ तो परनिर्म्मितवशवर्ती देवलोकमे उत्पन्न हुए, कुछ निर्म्माणरत देवोके बीचमे उत्पन्न हुए, कुछ तुषित देवो ०, कुछ याम देवो ० त्रायस्त्रिंश (=तावतिंस) देवो ० चातुर्महाराजिक देवो ०। जिन्होने सबसे हीन शरीर पाया, वे गन्धर्वलोकमे उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रोकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत हुई। 'भगवान्को वह स्मरण है?"

५—बुद्ध-धर्मकी महिमा

"पञ्चशिख ! हाँ, मुझे स्मरण है। मै ही उस समय महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकोको ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया था। पञ्चशिख ! मेरा वह ब्रह्मचर्य न निर्वेदके लिये,—न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (=परमशान्ति)के लिये, न ज्ञान-प्राप्तिके लिये, न सबोधिके लिये, और न निर्वाणके लिये था। वह केवल ब्रह्मलोक-प्राप्तिके लिये था। पञ्चशिख ! मेरा यह ब्रह्मचर्य ऐकान्त (बिलकुल) निर्वेदके लिये, विराग ० और निर्वाणके लिये है।

"पञ्चशिख ! तो कौनसा ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये, ० और निर्वाणके लिये होता है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। पञ्चशिख ! यही ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये ० है। पञ्चशिख ! जो मेरे श्रावक पूरा पूरा धर्म जानते है, वे आस्रवोके क्षय होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति (=चेतोविमुक्ति), प्रज्ञाविमुक्तिको इसी जन्ममे स्वय जानकर, साक्षात्कारकर विहार करते है। (और) जो पूरा पूरा धर्म नही जानते, वे कामलोकके क्लेश (=चित्त-मल) रूपी बन्धनो-के क्षय होनेसे देवता (=औपपातिक) होते है। जो पूरा पूरा धर्म नही जानते, उनमे कितने ही तीन बन्धनोके क्षय हो जानेसे राग, दोप, और मोहके दुर्बल हो जानेसे **सकृदागामी** होते है। वह एक ही बार इस ससारमे आकर दु खोका अन्त करेगे। कितने ही अविनिपात-धर्मा (जो फिर मार्गसे कभी नही गिर सके) होगे और जिनकी सबोधि-प्राप्ति नियत है ऐसे स्रोत आपन्न होते है।

"पञ्चशिख ! अत इन सभी कुलपुत्रोकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत है।"

भगवान्ने यह कहा। **पञ्चशिख** गन्धर्वपुत्र सतुष्ट हो भगवान्के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर भगवान्की वन्दना तथा प्रदक्षिणा करके वही अन्तर्धान हो गया।

२०—सहासमय-सुत्त (२।७)

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओका आगमन। २—देवताओके नाम-गॉव आदि। ३—मारका भी सदलबल पहुँचना।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् पॉचसौ सभी अर्हत् भिक्षुओके बळे सघके साथ शाक्य देशमे कपिलवस्तुके महावनमे विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् और भिक्षुसघके दर्शनके लिये दश-लोकधातुओके बहुतसे देवता इकट्ठे हुए थे।

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन

तब चारो शुद्धावास लोक के देवताओके मनमे यह हुआ—यह भगवान् शाक्यदेशमे ० विहार कर रहे हैं। ० इकट्ठे हुए है। क्यो न हम भी चलकर भगवान्‌के पास गाथा कहे।

तब वे देवता, जैसे वलवान् ० वैसे शुद्धावास देवलोकमे अन्तर्धान हो भगवान्‌के सामने प्रकट हुए। तब वे देवता भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो एक देवताने भगवान्‌से गाथामे यह कहा—

"इस वनमे देवताओका यह महासमूह एकत्रित हुआ है। हम लोग भी
इस अजेय सघके दर्शनार्थ इस धर्म सम्मेलनमे आये हुए हैं ॥१॥"

तव दूसरे देवताने भगवान्‌के सामने गाथामे यह कहा—

"भिक्षु लोग अपने चित्तको सीधाकर (वैसेही) समाहित (=ध्यानमे लीन) होते है,
पण्डित लोग लगाम ताने सारथीकी भॉति अपनी इन्द्रियोको वशमे रखते हैं ॥२॥"

तब दूसरे देवताने—

"राग आदि रूपी कण्टक, परिघ (=अर्गल) तथा रोळेको नष्टकर ज्ञानी (जन) शुद्ध,
विमल, दान्त और श्रेष्ठ होकर विचरण करते हैं ॥३॥"

तव दूसरे देवताने—

"जो लोग बुद्धकी शरणमे गये है वे नरकमे नही पळेगे।
मनुष्य-शरीरको छोळ कर वे देव-शरीरको पावेगे ॥४॥"

तव भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! तथागत और भिक्षुसघके दर्शनार्थ दसो लोकधातुके वहुतसे देवता इकट्ठे हुए है। भिक्षुओ! अतीतकालमे जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं उन्हे भी (देखनेके लिये) इतने ही देवता इकट्ठे हुए थे, जितने कि इस समय मुझे देखनेके लिये। भिक्षुओ! अनागतकालमे भी जो अर्हत् ० होगे, उन्हे भी ० इतने ही देवता इकट्ठे होगे जैसे ०।

"भिक्षुओ! मै देवशरीरधारियोके नामको कहता हूँ, ० वर्णन करता हूँ, ० के नामका उपदेश करता हूँ। उसे सुनो, मनमे लाओ।"

२–देवताओंके नाम-गाँव आदि

"अच्छा भन्ते !" कह, उन भिक्षुओने भगवान्‌को उत्तर दिया।
भगवान्‌ने कहा—
"पृथ्वीपर भिन्न भिन्न स्थानोमे, पहाळकी कन्दराओमे रहनेवाले
जो सयमी और समाहित (ध्यानारूढ) देवता है उनके विषयमे मै कहता हूँ ॥५॥
सिहके समान दृढ, भयरहित, रोमाचरहित,
पवित्र मनवाले, शुद्ध, प्रसन्न, निर्दोष, ॥६॥
पाँचसौ बुद्धधर्म (=शासन)मे रत श्रावकोको
कपिलवस्तुके वनमे बुद्ध (=शास्ता)ने सबोधित किया ॥७॥
'जो देवशरीरधारी आये हुए है, उन्हे भिक्षुओ ! जानो (दिव्यचक्षुसे देखो)।'
उन (भिक्षुओ)ने बुद्धकी आज्ञाको सुनकर उत्साह (साहस ?) किया ॥८॥
'देवोके देखने योग्य उन्हे ज्ञान उत्पन्न हो गया।
और कितनोने सौ, हजार और सत्तर हजार देवता देखे ॥९॥
कितनोने सौ हजार देवता देखे।
कितनोने सभी दिशाओको अनन्त देवोसे पूर्ण देखा ॥१०॥
तब सर्वद्रष्टा शास्ताने वह सब देख और जान
धर्म (=शासन)मे रत श्रावकोको सबोधित किया ॥११॥
जितने देवशरीरधारी आये हुए है उन्हे भिक्षुओ ! जानो,
मै क्रमानुसार उनके विषयमे कहता हूँ ॥१२॥
"कपिलवस्तुमे रहनेवाले ऋद्धिमान्, द्युतिमान्, सुन्दर और यशस्वी सात हजार भूमि देवता,
यक्ष प्रसन्नतापूर्वक इस वनमे भिक्षुओके सम्मेलन(को देखनेके लिये) आये हुए है ॥१३॥
"हिमालयपर रहनेवाले ऋद्धिमान् ० रग विरगके छै हजार यक्ष प्रसन्नतापूर्वक० ॥१४॥
"सातागिरि पहाळपर रहनेवाले ० ॥१५॥
और दूसरे सोलह हजार यक्ष ० ॥१६॥
वेस्सामित्त पर्वतपर रहनेवाले पाँचसौ यक्ष ० ॥१७॥
"राजगृहका कुम्भीर यक्ष, जो वेपुल्लपर्वतपर रहता है,
और एक लाखसे भी अधिक यक्ष जिसकी सेवा करते है,
वह भी वनके इस सम्मेलनमे आया हुआ है ॥१८॥
"गन्धर्वोके अधिपति यशस्वी महाराज धतरट्ठ (=धृतराष्ट्र) पूर्व दिशामे विराजमान है ॥१९॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र (=इन्द) नामधारी उनके अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२०॥
"कुम्भण्डो (=कूष्माड)के अधिपति यशस्वी
महाराज विरूढक दक्षिण दिशामे विराजमान है ॥२१॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये है ॥२२॥
"नागोके अधिपति ० विरूपाक्ष पश्चिम दिशामे विराजमान है ॥२३॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महावली पुत्र ० आये है ॥२४॥
"यक्षोके अधिपति ० वैश्रवण (=कुवेर) उत्तर दिशामे विराजमान है ॥२५॥
"ऋद्धिमान् ० इन्द्र नामधारी उनके भी अनेक महावली पुत्र ० आये है ॥२६॥
"पूर्वमे धृतराष्ट्र, दक्षिणमे विरूढक, पश्चिममे विरूपाक्ष (और) उत्तरमे वैश्रवण ॥२७॥

'**कपिलवस्तु**के वनमे ये चारो महाराज चारो दिशाओमे चमक रहे है ॥२८॥
'उनके मायाधारी, वञ्चक और शठ दासभृत्य भी आये हुए है,
जिनके नाम—**माया, कूटेण्ड, वेटेण्ड, विटुच्च विटुर** ॥२९॥
चन्दन, कामसेट्ठ, किनुघण्डु, निघण्डु, पनाद, ओपमञ्ञ
और देवपुत्र **मातलि, चित्तसेनो** और जननायक गन्धर्व **नल** राजा ॥३०॥
" **पञ्चशिख, तिम्बरू, सूर्यवर्चस्** तथा और दूसरे गन्धर्वराजा
राजाओके साथ प्रसन्नतापूर्वक ० आये है ॥३१॥

आकाशवासी और **वैशाली**मे रहनेवाले नाग अपनी अपनी सभाके साथ आये है। **कम्बल अश्वतर** (=अस्सतर) अपने बन्धु-बान्धवोके साथ **प्रयाग** (प्रयागवाले) भी आये है ॥३२॥

यामुन (=यमुनावासी) और **धृतराष्ट्र** नामक यशस्वी नाग आये है।
महानाग **ऐरावण** भी वनके सम्मेलनमे आये है ॥३३॥
वे विशुद्ध दिव्यचक्षुवाले पक्षी, जो नागराजाओके वाहन है,
आकाशमार्गसे इस वनमे पहुँचे है। **चित्र** और **सुपर्ण** उनके नाम है ॥३४॥
"वहाँ नागराजाओको भय न था। भगवान् बुद्धने गरुडोसे उन्हे रक्षा प्रदान की थी।
मीठे वचनोमे परस्पर सलाप करते हुए वह नाग और गरुड बुद्धकी शरणमे गये ॥३५॥
समुद्रके आश्रित असुर, जिन्हे **इन्द्र**ने पराजित किया था।
वे ऋद्धिमान् और यशस्वी (असुर) **इन्द्र**के भाई हो गये ॥३६॥
'**कालक** (नामक असुर) वळे भयकर रूपमे आया।
वेमचित्ति, सुचित्त, पहराद (**प्रह्लाद**) और **नमुचि** नामक असुर धनुष लिये हुए आये ॥३७॥

"सभी राहु नामवाले **बलि**के सौ पुत्र अपनी अपनी सेनाओको सजाकर राहुभद्रके पास गये। (और बोले) हे भदन्त! वनमे भिक्षुओकी समिति हो रही है ॥३८॥

जल, पृथ्वी, तेज तथा वायुके देवता वहाँ आये है। **वरुण, वारण, सोम**
और यश यशस्वी, मैत्री तथा करुणा शरीरवाले देव वहाँ आये है ॥३९॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रग विरगे ऋद्धिमान् ० ॥४०॥
"**वेण्डुदेव, सहली, असम** और दो **सम,**
चन्द्रमाके देवता चन्द्रमाको आगे करके आये है ॥४१॥
"**सूर्य**के देवता सूर्यको आगे करके आये है।
मन्दबलाहक देवता नक्षत्रोको आगे करके आये है।
वसु देवताओमे श्रेष्ठ **वासव, शक्र, इन्द्र** भी आये है ॥४२॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रग विरगे ऋद्धिमान् ० ॥४३॥
"अग्नि-शिखासे दहकते **सहभू** देव आये है। अलसीके फूलकी
आभाके सदृश शरीरवाले **अरिट्ठक** राजा आये है ॥४४॥
वरुण, सहधम्म, अच्चुत, अनेजक, सूलेय्य,
रुचिर और **वासवन**-निवासी देवता आये है ॥४५॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रग विरगे ० ॥४६॥
"**समान, महासमान मानुस** (=मानुष), **मानुषोत्तम** (=मानुसुत्तम),
क्रीडाप्रदूषिक (=खिड्डापदूसिक) और **मनोपदूसिक** देवता आये है ॥४७॥
"**लोहित** नगरके रहनेवाले **हरि** देवता आये है।

पारग और महापारग नामक यशस्वी देवता आये हैं ॥४८॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रग विरगे ० ॥४९॥
"सुक्क, करम्भ और अरुण, वेसनसके साथ आये हैं।
अवदातगृह नामक प्रमुख विचक्षण देवता आये हैं ॥५०॥
"सदामत्त, हारगज, और यशस्वी मिस्सक आये हैं।
पज्जुन्न अपने रहनेकी दिशासे गरजते हुए आये हैं ॥५१॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले ० ॥५२॥
"खेमिय, तुषित, याम और यशस्वी कट्ठक (आये हैं)। लम्बितक, लोमसेट्ठ,
जोति और आसव नामक निम्माणरति और परनिम्मित देवता आये हैं ॥५३॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीर ० ॥५४॥
"और दूसरे इसी प्रकारके साठ देव-समुदाय
नाना नाम और जातिके आये हैं ॥५५॥
"जन्मरहित, रागादिरहित, भव-पार (=जिसने चार ओघोको पार कर लिया है),
आस्रवरहित, कालिमारहित चन्द्रमा जैसे नागको देखेगे ॥५६॥
"सुब्रह्मा, परमत्थ और ऋद्धिमान्‌के पुत्र,
सनत्कुमार और तिस्स भी ० आये हैं ॥५७॥
"ब्रह्मलोकवासी हजारोके ऊपर रहनेवाला ब्रह्मलोकमें उत्पन्न,
द्युतिमान् भीमकायधारी और यशस्वी महाब्रह्मा ॥५८॥
प्रत्येक वशवर्ती लोकके दस स्वामी (=ईश्वर) आये हैं।
उनसे घिरा हारित भी आया है ॥५९॥

३—मारका भी सदलबल पहुँचना

"इन्द्र और ब्रह्माके साथ सभी देवोके आनेपर मार सेना भी आ धमकी।
मारकी यह मूर्खता देखो ॥६०॥
"आओ, पकळो, बाँधो, रागसे सभीको वशमे कर लो,
चारो ओरसे घेर लो, कोई किसीको न छोळो ॥६१॥
"हाथसे जमीनको ठोक, भैरव स्वर (महानाद) करके, जैसे वर्षाकालमे
मेघ बिजलीके साथ गरजता है, उस तरह (गर्जकर)
मारने अपनी बळी भारी सेनाको भेजा ॥६२॥
"तब क्रोधसे भरा मार आया। उन सबोको जानकर सर्वद्रष्टा भगवान् ० ॥६३॥
"शास्ताने शासनमे रत श्रावकोको सबोधित किया—
'मार-सेना आई हुई है। इसे भिक्षुओ! जान लो' ॥६४॥
"बुद्धकी बातको सुनकर वे वीर्यपूर्वक सचेत हो गये।
(मार सेना) वीतराग (भिक्षुओ)से (हारकर) भाग चली।
उनके एक बालको भी टेढा न कर सकी ॥६५॥
"वे सभी प्रसिद्ध, सग्राम-विजयी निर्भय और यशस्वी श्रावक वीतराग आर्योके साथ मुदित हैं" ॥६६॥

२१—सक्कपञ्ह-सुत्त (२।८)

१—इन्द्रशाल गुहामें शक्र। २—पचशिखका गान। ३—तिम्बरूकी कन्या पर पचशिख आसक्त। ४—बुद्ध-धर्मकी महिमा। ५—शक्रके छै प्रश्न।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मगधमे प्राचीन राजगृहसे पूर्व अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण-ग्रामके उत्तर वेदिक (वेदियक) पर्वतकी इन्द्रशाल-गुहामे विहार कर रहे थे, उस समय शक्र देवेन्द्रको भगवान्‌के दर्शनके लिये इच्छा उत्पन्न हुई।

१--इन्द्रशाल गुहामें शक्र

तब देवेन्द्र शक्रके मनमे यह आया—"भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध इस समय कहाँ विहार करते है ?" देवेन्द्र शक्र ० ने भगवान्‌को मगधमे ० विहार करते देखा। देखकर त्रायस्त्रिश देवोको सबोधित किया—"मार्पो ! अभी भगवान् मगधमे प्राचीन राजगृहके ० विहार कर रहे है। चलो मार्पो ! हम लोग उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्‌के दर्शनको चले।"

"अच्छा भन्ते"—कह उन देवोने देवेन्द्र शक्रको उत्तर दिया। तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख गन्धर्वपुत्रको सबोधित किया—'तात ! अभी भगवान् मगधमे ० विहार कर रहे है। चलो हम लोग उन ०के दर्शनको चले।' "अच्छा भन्ते !" कह देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व उत्तर दे (अपनी) वेलुवपण्डु नामक वीणा ले देवेन्द्र शक्रके पास आ गया।

तब देवेन्द्र शक्र त्रायस्त्रिश देवोको साथ ले देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्वको आगेकर जैसे बलवान् ० वैसे ही त्रायस्त्रिश देवलोकमें अन्तर्धान हो मगधमे, राजगृहसे पूर्व ० वेदिक पर्वतपर प्रकट हुआ।

उस समय उन देवोके देवानुभावसे वेदिक पर्वत, और अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे थे। और चारो ओर गाँवके लोग कहते थे—आज वेदिक पर्वत आदिप्त हो रहा है, आज वेदिक पर्वत जल रहा है। आज क्यो वेदिक पर्वत , और अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे है ? उद्वेगके मारे उन्हे रोमाञ्च हो रहा था।

तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को सबोधित किया—"पञ्चशिख ! ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागतके पास मेरे जैसा कोई सहसा नही जा सकता। पञ्चशिख ! यदि आप पहले जाकर भगवान्‌को प्रसन्न करे (तो अच्छा हो)। पहले आप प्रसन्न कर लेगे तब पीछे हम लोग भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध-के दर्शनके लिये आवेगे।"

२—पंचशिखका गान

"अच्छा भन्ते !" कह पञ्चशिख ० देवेन्द्र शक्र ०को उत्तर दे, वेलुवपण्डु वीणा ले जहाँ इन्द्र-शाल गुहा थी वहाँ गया। जाकर, इतने फासिलेपर,—जहाँसे कि भगवान् न तो बहुत दूर थे और न बहुत निकट, (खळे होकर) पञ्चशिख ० वेलुवपण्डु वीणाको बजाने लगा। और इन बुद्ध-सबधी, धर्म-

सवधी, सघसवधी, अर्हत्-सबधी और भोग-सवधी गाथाओको गाने लगा—

"भद्रे ! सूर्यवर्चसे ! तेरे पिता तिम्बरूकी वदना करता हूँ।
जिससे हे कल्याणि ! मेरी आनन्ददायिनी तू उत्पन्न हुई ॥१॥
जैसे पसीना चूते थके पुरुषके लिये वायु, प्यासेको पानी,
जैसे अर्हतोको धर्म, आगिरसे ! वैसे ही तू मुझे प्रिय है ॥२॥
जैसे रोगीको दवा, भूखेको भोजन,
जलतेको पानीकी भाँति भद्रे ! मुझे शान्ति प्रदान कर ॥३॥
पुष्परेणुसे युक्त शीतलजलवाली पुष्करिणीको
धूपमे सतप्त गजराजकी भाँति मै तेरे स्तनोदरको अवगाहन करूँ ॥४॥
भाले और अकुश द्वारा निरकुश नागकी भाँति मुझे (तूने) जीत लिया।
कारण नही जानता, सुन्दरजघीने (मुझे) पागल बना दिया ॥५॥
मेरा मन तेरेमे आसक्त है, मैंने (अपना) चित्त तुझे प्रदान कर दिया है।
पकमे फँसे कमलकी भाँति मै लौटनेमे असमर्थ हूँ ॥६॥
वामोरु ! भद्रे ! मेरा आलिगन कर, मन्दलोचने ! मुझे आलिगित कर।
कल्याणि ! गले मिल, यही मेरी चाह है ॥७॥
वकितकेशीने अहो ! मेरी कामनाको थोळा शान्त किया,
किन्तु (उसने) अर्हतोमे मेरा अधिक आदर उत्पन्न किया ॥८॥
मैंने अर्हत् तथागतोके लिये जो पुण्य किया है,
सर्वागकल्याणी ! वह (सब) तेरे साथ भोगनेको मिले ॥९॥
इस पृथ्वी-मडलपर मैंने जो पुण्य किया है,
सर्वागकल्याणी ! ० ॥१०॥
जैसे शाक्यपुत्र मुनि ध्यानद्वारा एकाग्र, एकातसेवी, स्मृतिसयुक्त हो,
अमृत पाना चाहते है, वैसे ही सूर्यवर्चसे ! मै तुझे (चाहता हूँ) ॥११॥
जैसे मुनि उत्तम सबोधि (=परमज्ञान)को प्राप्त हो आनदित होता है,
कल्याणि ! उसी तरह तुझसे मिलकर (आलिंगित होकर) मै आनदित होऊँगा ॥१२॥
यदि त्रायस्त्रिश (लोक)के स्वामी शक्र मुझे वर दे,
तो भी मेरा प्रेम इतना दृढ है, कि भद्रे ! मै उसे न लूँगा ॥१३॥
हालके फूले शालवनकी भाँति सुमेधे ! तेरे पिताको
मै स्तुतिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिसकी तेरी जैसी सतान है ॥१४॥

इन गाथाओके गानेके वाद भगवान्ने पञ्चशिखसे यह कहा—"पञ्चशिख ! तुम्हारे वाजेका स्वर तुम्हारे गीतके स्वरसे विलकुल मिला है (और) तुम्हारे गीतका स्वर, तुम्हारे वाजेके स्वरसे विलकुल मिला है। पञ्चशिख ! न तो तुम्हारे वाजेका स्वर तुम्हारे गीत-स्वरसे इधर-उधर जाता है, और न तुम्हारा गीत-स्वर तुम्हारे वाजेके स्वरसे इधर उधर जाता है। तुमने इन बुद्धसवधी ० गाथाओको कव रचा ?"

३–तिम्बरुकी कन्यापर पंचशिख आसक्त

"भन्ते ! जिस समय भगवान् प्रथम प्रथम बुद्ध हो उरुवेलामे नेरञ्जरा नदीके तीरपर अजपाल नामक वर्गदके नीचे विहार कर रहे थे। भन्ते ! उस समय मै तिम्बरु गन्धर्वराजकी कन्या भद्रा सूर्यवर्चसापर आसक्त था। (किन्तु) भन्ते ! वह भगिनी किसी दूसरे, मातलि सग्राहक

(=सारथी)के पुत्र **शिखडीको** चाहती थी। भन्ते! जब मै उसे नही पा सका तो किसी बहानेसे अपनी **वेलुवपण्डु** वीणा लेकर जहाँ **तिम्बरु** गन्धर्वराजका घर था, वहाँ गया। जाकर वेलुवपण्डु वीणाको बजा, इन वुद्धसवधी गाथाओको गाने ० लगा—"भद्रे! सूर्यवर्चसे! ० सन्तान है ॥१-१४॥

"भन्ते! गाना गानेके बाद **भद्रा सूर्यवर्चसा** मुझसे बोली—'मार्ष! उन भगवान्‌को मैने प्रत्यक्ष नही देखा है। (किन्तु) **त्रायस्त्रिश** देवोकी धर्मसभामे जब नृत्य करनेके लिये गई थी, तो उन भगवान्‌के विषयमे सुना था। मार्ष! आप उन भगवान्‌का कीर्तन करते है, इसलिये आज, हम लोगोका समागम हो।' भन्ते! उसके साथ वही एक समागम हुआ है। उसके बाद कभी नही।"

तव देवेन्द्र शक्रके मनमे यह हुआ—'अव भगवान् प्रसन्न होकर पञ्चशिखसे वाते कर रहे है। तव देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को सवोधित किया—

"**पञ्चशिख**! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो—भन्ते! देवेन्द्र शक्र अपने अमात्यो (=मन्त्री) तथा परिजनोके साथ भगवान्‌के चरणोमे शिरसे वन्दना करता है।'

"अच्छा, भन्ते!" कह ० पञ्चशिख०ने भगवान्‌को अभिवादनकर कहा—"भन्ते! देवेन्द्र शक्र ० वन्दना करता है।"

"पञ्चशिख! देवेन्द्र शक्र ० अपने अमात्यो तथा परिजनोके साथ सुखी होवे। देव, मनुष्य असुर, नाग, गन्धर्व सभी सुखी होवे। इन लोगोको तथागत इस प्रकार आशीर्वाद देते है।"

४—बुद्धधर्मकी महिमा

आशीर्वाद पा देवेन्द्र शक्र ० **इन्द्रशाल-गुहामे** प्रवेशकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। त्रायस्त्रिश देव भी इन्द्रशाल-गुहामे प्रवेशकर ० खळे हो गये। देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व भी ० खळा हो गया।

उस समय इन्द्रशाल-गुहाका जो भाग टेढा मेढा था, बरावर हो गया, जो सकीर्ण था सो विस्तृत हो गया, और देवोके देवानुभावसे ही गुहा प्रकाशसे भर गई।

तब भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रसे यह कहा—"अद्भुत है, वळा आश्चर्य है, जो आप आयुष्मान् **कौशिक** (=इन्द्र) जैसे बहुकृत्य, बहुकरणीय पुरुषका यहाँ आगमन हुआ!!"

"भन्ते! मै चिरकालसे भगवान्‌के दर्शनार्थ आनेकी इच्छा रखता था। किन्तु, त्रायस्त्रिश देवोके कुछ न कुछ काममे लगे रहनेसे भगवान्‌के दर्शनार्थ इतने दिनो तक आनेमे असमर्थ रहा। भन्ते! एक समय भगवान् **श्रावस्तीके** पास **सललागार**[1] मे विहार कर रहे थे। उस समय मै भगवान्‌के दर्शनार्थ श्रावस्ती गया था। भन्ते! उस समय भगवान् किसी समाधिमे बैठे थे। **भुञ्जती** नामक **वैश्रवणकी** परिचारिका उस समय हाथ जोळे भगवान्‌को नमस्कार करती खळी थी। भन्ते! तव मैने भुञ्जतीसे यह कहा—'भगिनिके! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो, और कहो कि देवेन्द्र शक्र० अपने अमात्य और परिजनोके साथ भगवान्‌के चरणोमे शिरसे प्रणाम करता है।' ऐसा कहनेपर भुञ्जतीने मुझसे यह कहा—'मार्ष भगवान्‌के दर्शनका यह समय नही है, भगवान् समाधिमे है।' 'भगिनि! तो जव भगवान् इस समाधिसे उठे तव ही उनको मेरी ओरसे अभिवादन करके कहना कि देवेन्द्र शक्र भगवान्‌को प्रणाम करता है।'

"भन्ते! क्या उसने भगवान्‌को अभिवादन किया था? भगवान्‌को उसकी वात याद है?"

---

[1] **जेतवनके पीछेकी ओर था। देखो 'जेतवन'; नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९३४।**

"देवेन्द्र ! हाँ ! उसने अभिवादन किया था। मुझे उसकी बात याद है। बल्कि आपके रथकी घळघळाहटहीसे मेरी समाधि टूटी थी।"

"भन्ते ! त्रायस्त्रिंश देवलोकमे मैने अपनेसे पहले उत्पन्न हुए देवोको कहते सुना है कि जब तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध संसारमे उत्पन्न होते हैं, तो असुरोकी सख्या कम हो देवताओकी बढती है। भन्ते ! उसे मैने आँखो देख लिया कि जब तथागत ०।

"भन्ते ! इसी कपिलवस्तुमे बुद्धमे प्रसन्न ० सघमे प्रसन्न और शीलोको पूरा करनेवाली **गोपिका** नामकी एक शाक्यपुत्री थी। वह स्त्री-चित्तसे विरत रह, और पुरुष-चित्तकी भावनाकर मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्गलोकमे उत्पन्न हुई। त्रायस्त्रिंश देवलोकमे पुत्र होकर पैदा हुई। वहाँ भी उसे 'गोपक देवपुत्र गोपक देवपुत्र' कहते हैं।

"भन्ते ! दूसरे भी तीन भिक्षु भगवान्‌के शासनमे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके हीन गन्धर्वलोकमे उत्पन्न हुए। वे पाँच भोगोसे युक्त हो हम लोगोकी सेवा करनेको आते है, हम लोगोकी परिचर्या करनेको आते हैं। एक बार हम लोगोकी सेवामे आनेपर उनसे गोपक देवपुत्रने कहा—मार्ष ! आप लोगोने भगवान्‌के धर्मको क्यो नही सुना ? मै स्त्री होकर भी बुद्धमे प्रसन्न ०। स्त्रीत्वसे विरत रह, पुरुपत्वकी भावमा कर ० देवेन्द्र शक्र०का पुत्र होकर उत्पन्न हुई हूँ। यहाँ भी लोग मुझे गोपक देवपुत्र कहते है। मार्ष आप लोग भगवान्‌के शासनमे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके भी हीन गन्धर्वलोकमे उत्पन्न हुए है।

"यह बळा बुरा मालूम होता है, कि एक ही धर्ममे रहकर भी हम लोग हीन गन्धर्वलोकमे उत्पन्न हुए है।'

"भन्ते ! गोपक देवपुत्रके ऐसा कहनेपर उनमेसे दो देखते देखते स्मृति लाभकर (सचेत हो) **ब्रह्मपुरोहित** (देवताओके) शरीरको प्राप्त हो गये। एक कामलोकमे ही देव रह गया।

"चक्षुमान् (बुद्ध)की मै उपासिका थी। मेरा नाम गोपिका था।
बुद्ध और धर्ममे प्रसन्न (=श्रद्धावान्) रहकर प्रसन्न चित्तसे सघकी सेवा करती थी॥१५॥
"उन्ही बुद्धके धर्मबलसे अभी मै शक्रका महानुभाव पुत्र हूँ।
महातेजस्वी हो स्वर्गलोकमे उत्पन्न हुआ हूँ।
यहाँ भी लोग मुझे गोपकके नामसे जानते है ॥१६॥
"मैने अपने परिचित भिक्षुओको गन्धर्व शरीर पाये देखा।
जब पहले हम लोग मनुष्य थे तो वह (भगवान्) गौतमके श्रावक थे॥१७॥
"अपने घरमे पैर धोकर अन्न और पानसे मैने (उनकी) सेवा की थी,
क्योकि इन लोगोने बुद्धके धर्मको ग्रहण किया था ॥१८॥
'बुद्धके उपदिष्ट धर्मको स्वय अपने समझना चाहिये।
मै आप लोगोकी ही सेवा करती और आर्य सुभाषित धर्मको सुनकर, ॥१९॥
'स्वर्गमे उत्पन्न हो, महातेजस्वी और महानुभाव हो शक्रका पुत्र हुआ हूँ।
और आप लोग (स्वय) बुद्धकी सेवामे रह
तथा अनुपम ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके (भी) ॥२०॥
'अयोग्य, हीन कायाको प्राप्त हुए है। यह देखनेमे बळा बुरा मालूम होता है;
कि एक ही धर्ममे रहकर भी आपने हीन कायाको प्राप्त किया है ॥२१॥
'गन्धर्व शरीरको प्राप्तकर आप लोग देवोकी सेवा-टहलके लिये आते है
(किन्तु पूर्वमे) गृहस्थ रहकर भी मेरी इस विशेषताको देखिये ॥२२॥
'स्त्री होकर भी आज पुरुष देव हो दिव्य भोगो (कामो)से सेवित हूँ।'

गोपकके ऐसा कहने पर वे गौतमके श्रावक वैराग्यको प्राप्त हुए ॥२३॥
'शोककी वात है कि हम लोग दास हो गये हैं !'
और उनमे दोने **गौतमके** धर्मका स्मरणकर अपने उद्योग किया ॥२४॥
"कमोमे आदिनवो (=दोषो)को देख, उनमेंसे चित्तको उचाट,
वे मारके लगाये हुए कामोके दढ बन्धनको ॥२५॥
हाथी जैसे रस्सीको तोळ देता है, वैसे तोळ, **त्रायस्त्रिंश** देवलोकमे चले गये।
उस समय **इन्द्र** और **प्रजापतिके** साथ सभी देव धर्मसभामे बैठे थे ॥२६॥
वे वैराग्यसे अत्यन्त निर्मल हो बैठे हुए (देवो)से बढ गये।
उन्हे देखकर देवगणोमे वैठे देवाभिभू (जो देवोको वशमे रखता है) इन्द्रको बळा सवेग हुआ॥२७॥
अहो ! हीन शरीर प्राप्त करके भी यह त्रायस्त्रिंश देवोसे बढ गये हैं।'
(इन्द्रकी) सवेग-पूर्ण वातको सुनकर गोपकने इन्द्रसे कहा ॥२८॥—
"हे इन्द्र ! मनुष्य लोकमे भोगोपर विजय प्राप्त करनेवाले **शाक्यमुनि** बुद्ध प्रसिद्ध है।
उन्हीके ये पुत्र स्मृतिसे विहीन (हो गये थे, सो), मेरे प्रेरित करनेपर स्मृतिको प्राप्त हुए है ॥२९॥
"यह लोग परवशता पार कर गये हैं। (इनमे) एक गन्धर्वलोकहीमे रह गया
और दो सम्बोधि (ज्ञान)के मार्गपर चलकर एकाग्र मन हो देवोसे भी बढ गये ॥३०॥
"इस प्रकारके धर्मोपदेशमे किसी शिष्य (=श्रावक)को कोई शका नही रह जाती।
भवसागर पारगत, छिन्न-विचिकित्सा=विजयी सदेहरहित, उन जननायक (=जिन) बुद्धको नमस्कार है ॥३१॥
"(उन्हीके) उस धर्मको समझकर ये इस विशेषताको प्राप्त हुए है।
दोनोने **ब्रह्मपुरोहित** शरीर पाया है ॥३२॥
"मार्ष ! उसी धर्मकी प्राप्तिके लिये हम लोग आये हुए है।
भगवान्‌से आज्ञा लेकर प्रश्न पूछना चाहता हूँ" ॥३३॥

तव भगवान्‌के मनमे यह हुआ—'यह **शक्र** बहुत दिनोसे विशुद्ध है। अवश्य ही सार्थक प्रश्न पूछेगा, निरर्थक नही। जिस प्रश्नका उत्तर मैं दूँगा उसे वह शीघ्र ही समझ लेगा। तव भगवानने देवेन्द्र शक्रसे गाथामे कहा—

"हे वासव (=इन्द्र) ! तुम्हारे मनमे जो इच्छा हो, उस प्रश्नको पूछो,
तुम्हारे उन प्रश्नोका मै उत्तर दूँगा ॥३४॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—शक्रके छै प्रश्न

(१) भगवान्‌से आज्ञा लेकर शक्र०ने भगवान्‌से यह पहला प्रश्न पूछा—

"मार्ष ! देव, मनुष्य, असुर, नाग, गन्धर्व और दूसरे प्राणी किस वन्धनमे पळे हैं? 'वैर, दण्ड, शत्रु और हिसाके भावको छोळ, वैररहित हो विहार करे' ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे दण्ड-सहित, शत्रुता ओर हिसाभावसे युक्त होकर वैर-सहित ही रहते है।"

इस प्रश्नके पूछनेपर भगवान्‌ने उत्तर दिया—"देवेन्द्र ! देव, मनुष्य ० सभी ईर्ष्या और मात्सर्यके बन्धनमे पळे है। वैर, दण्ड ० अवैरी हो ० ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे वैर-सहित ० ही रहते है।"

सतुष्ट होकर देवेन्द्र शक्र०ने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया—"ठीक है भगवान्, ठीक है सुगत। भगवान्‌के प्रश्नोत्तरको सुनकर मेरी शका मिट गई।

शक्र०ने भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर, भगवान्‌से दूसरा प्रश्न पूछा—

(२) "मार्ष ! ईर्ष्या और मात्सर्यके कारण (=निदान), समुदय=जन्म=प्रभव क्या है ? किसके होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य होते है, किसके नही होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य नही होते ?"

"देवेन्द्र ! ईर्ष्या और मात्सर्य प्रिय-अप्रियके कारण ० होते है। प्रिय-अप्रियके होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य होते है और प्रिय-अप्रियके नही होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य नही होते।

"मार्ष ! प्रिय-अप्रियके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! प्रिय-अप्रिय छन्द (=चाह)के कारण०से होते है। छन्दके होनेसे ०।"

"मार्ष ! छन्दके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! छन्द वितर्कके कारण०से होता है। वितर्कके होनेसे ०।"

"मार्ष ! वितर्कके कारण ० क्या है ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! वितर्क प्रपञ्चसञ्ज्ञासख्याके कारण०से होता है०।"

"मार्ष ! प्रपञ्चसञ्ज्ञासख्याके निदान क्या है ? किसके होनेसे० ? मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रपञ्चसञ्ज्ञासख्याके विनाश (=निरोध)के मार्गपर आरूढ होता है ?"

"देवेन्द्र ! सौमनस्य (=मनकी प्रसन्नता, सुख) दो प्रकारके होते है—एक सेवनीय ओर दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य (=चित्तके खेद) भी दो प्रकारके होते है—एक सेवनीय और दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! उपेक्षा भी दो प्रकार ०। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) वढती है और अच्छाइयाँ (=कुशल धर्म) कम होती है, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय नही है। और, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ घटती है और अच्छाइयाँ वढती है, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय है। वैसे ही उस अवस्थामे सवितर्क ओर सविचार तथा अवितर्क और अविचारमे, जो अवितर्क और अविचार है वही श्रेष्ठ है। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। जो कहा है सो इसी कारणसे !

"देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो जिस दौर्मनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ वढती है ०[1] वही श्रेष्ठ है। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। जो कहा सो इसी कारणसे।

"देवेन्द्र ! उपेक्षा दो प्रकार ०।

"देवेन्द्र ! इस प्रकारका आचरण करनेवाला भिक्षु प्रपञ्चसञ्ज्ञासख्याके निरोधके मार्गपर आरूढ होता है।"

इस प्रकार भगवान्‌ने शक्रके पूछे प्रश्नका उत्तर दिया। सतुष्ट होकर शक्र० ने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया।—"ठीक है भगवान् ०।"

(३) तव देवेन्द्र शक्रने ० अनुमोदन करके भगवान्‌से और प्रश्न पूछा—

"मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रातिमोक्ष-सवर (=भिक्षु-सयम)से युक्त होता है ?

"देवेन्द्र ! कायिक आचरण (=कायसमाचार) भी दो प्रकारके होते है, एक सेवनीय और दूसरे असेवनीय। देवेन्द्र ! वाचिक आचरण (=वाक्‌समाचार) भी दो ०। देवेन्द्र ! पर्येषण (=भोगोकी चाह) भी दो ०।

"कायिक आचरण दो ०। यह जो कहा गया है सो किस कारणसे ? तो जिस कायिक आचरण-

---

[1] ऊपर जैसा पाठ।

को जाने ०। देवेन्द्र ! वाचिक आचरण दो ०। जिस वाचिक आचरणको जाने ०। देवेन्द्र ! पर्येप दो ०। तो जिस पर्येषणको जाने ०। देवेन्द्र ! इस प्रकार आचरण करनेसे भिक्षु प्रातिमोक्ष-सवरसे युव होता है।"

इस प्रकार भगवान्‌ने ० उत्तर दिया। सतुष्ट हो ० देवेन्द्र शक्रने ० अनुमोदन किया ० देवेन्द्र शक्रने ० और प्रश्न पूछा—

(४) "मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु इन्द्रिय-सयम (=सवर)से युक्त होता है ?"

"देवेन्द्र ! चक्षुसे ज्ञेय (=जो आँखसे देखे जावे) रूप दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय औ दूसरे असेवनीय। श्रोत्रसे ज्ञेय शब्द भी ०। घ्राणसे ज्ञेय गन्ध भी ०। जिह्वासे ज्ञेय रस भी ०। काया ज्ञेय स्पर्श भी ०। मनसे ज्ञेय **धर्म** भी ०।"

ऐसा कहनेपर देवेन्द्र शक्रने भगवान्‌से यह कहा—भन्ते ! भगवान्‌के इस सक्षिप्त भाषणका अ मै इस प्रकार विस्तार पूर्वक समझता हूँ—

"भन्ते ! जिस चक्षुसे ज्ञेय रूपको सेवन करनेसे बुराइयाँ बढे और अच्छाइयाँ घटे, उस प्रकार चक्षुसे ज्ञेय रूप सेवितव्य नही है। और भन्ते ! जिस०से बुराइयाँ घटे और अच्छाइयाँ वढे,० सेवनीय है

"०जिस श्रोत्रसे ज्ञेय शब्दको ०।

"जिस घ्राणसे ज्ञेय गन्धको ०।

"०जिस जिह्वासे ज्ञेय रसको ०।

"०जिस कायासे ज्ञेय स्पर्शको ०।

"०जिस मनसे ज्ञेय धर्मको ०।

"भन्ते ! आपके सक्षिप्त भाषणका अर्थ मै इस प्रकार विस्तार पूर्वक समझता हूँ। भगवान्‌वे प्रश्नोत्तरको सुनकर मेरी शका दूर हो गई, सदेह मिट गये।"

(५) तव देवेन्द्र शक्रने ० और प्रश्न पूछा—"मार्ष ! क्या सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ह सिद्धान्तके प्रतिपादन करनेवाले, एक ही शीलको माननेवाले, एक ही अभिप्राय=एक ही अध्याशवाले है ?"

"देवेन्द्र ! सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्तके ० नही है।"

"मार्ष ! सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्त०के क्यो नही है ?"

"देवेन्द्र ! ससारके सभी लोग भिन्न-भिन्न धातुके बने है। ससारके सभी लोगोके अनेक और भिन्न-भिन्न धातुके बने रहनेके कारण, जो जीव जिस धातुका वना रहता है उसीको हठ-पूर्वक दृढतापूर्वक ग्रहण कर लेता है—यही सच्चा है, और दूसरे सभी झूठ। इसीलिये सभी श्रमण ओर ब्राह्मण एक ही सिद्धान्तके ० नही है।"

"मार्ष ! क्या सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान्, अत्यन्त योग-क्षेमवाले, अत्यन्त ब्रह्मचारी, सुन्दर लक्ष्यवाले (=अत्यन्त पर्यवसानके) है ?।"

"देवेन्द्र ! सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्तनिष्ठ० नही है।"

'मार्ष ! सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान् ० क्यो नही है ?"

"देवेन्द्र ! जो भिक्षु तृष्णाके ख्याल (=सख्या)से विमुक्त है, वे अत्यन्त-निष्ठावान् ० है। इसीसे सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त-निष्ठावान् नही है।"

इस प्रकार भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रके पूछे प्रश्नका उत्तर दिया। सतुष्ट होकर देवेन्द्र शक्रने अनुमोदन किया। ० दूसरा ० और प्रश्न पूछा—

(६) "भन्ते ! तृष्णा रोग है, तृष्णा घाव है, तृष्णा शल्य है, तृष्णा ही, पुरुषको उन-उन योनियोमे

ले जानेके लिये खीचती है। इसीके कारण पुरुषकी वृद्धि और हानि होती है।

"भन्ते ! जिन प्रश्नोके उत्तरको दूसरे श्रमण और ब्राह्मणोसे पूछ कर मै नही पा सका था, उन्हे भगवान्‌ने स्पष्ट कर दिया। मेरी जो शका और दुविधा बहुत दिनोसे पूरी न हुई थी, उसे भगवान्‌ने दूरकर दिया।"

"देवेन्द्र ! क्या तुमने इन प्रश्नोको कभी किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मणसे पूछा था ?"

"भन्ते ! हॉ मैने इन प्रश्नोको दूसरे श्रमण ब्राह्मणोसे पूछा था।"

"देवेन्द्र ! जिस प्रकार उन्होने उत्तर दिया, यदि तुम्हे भार न हो तो, कहो।"

"भन्ते ! जहॉ आप जैसे बैठे हो वहॉ मुझे भार क्योकर हो सकता है ?"

"देवेन्द्र ! तो कहो।"

"भन्ते ! जो श्रमण और ब्राह्मण निर्जन वनमे वास करते है उनके पास जाकर मैने इन प्रश्नोको पूछा। पूछनेपर वे लोग उत्तर न दे सके। बल्कि मुझहीसे पूछने लगे—

"आप कौन है ?" उनके पूछनेपर मैने कहा—'मार्ष ! मै देवेन्द्र शक्र० हूँ। तब वे मुझहीसे पूछने लगे—'देवेन्द्र ! आपने कौन-सा पुण्य करके इस पदको प्राप्त किया है ?' उन लोगोको मैने यथा-ज्ञान यथाशक्ति धर्मका उपदेश किया। वे उतनेहीसे सतुष्ट हो गये—'देवेन्द्र शक्रको हम लोगोने देख लिया। जो हम लोगोने पूछा उसका उत्तर उसने दे दिया।' (इस प्रकार) वे मेरे ही शिष्य (=श्रावक) बन जाते है, न कि उनका मै। भन्ते ! मै (तो), भगवान्‌का स्रोतआपन्न, अविनिपातधर्मा, नियत सम्बोधिपरायण श्रावक हूँ।"

"देवेन्द्र ! तुम्हे स्मरण है क्या इसके पहले तुमको कभी ऐसा सतोप और सौमनस्य हुआ था ?"

"भन्ते ! स्मरण है, इसके पहले भी मुझे ऐसा सतोष और सौमनस्य हो चुका है।"

"देवेन्द्र ! जैसे तुम्हे स्मरण है इसके पहले भी ० उसे कहो।"

"भन्ते ! बहुत दिन हुये कि देवासुर सग्राम हुआ था। उस सग्राममे देवोकी विजय हुई और असुरोकी पराजय। भन्ते ! उस सग्रामको जीतकर मेरे मनमे यह हुआ—'अब जो दिव्य-ओज और असुर-ओज है, दोनोका देव लोग भोग करेगे।' भन्ते ! मेरा वह सतोष और सौमनस्य लळाई झगळेके सम्बन्धमे था। निर्वेदके लिये नही, विरागके लिये नही, निरोधके लिये नही, शान्तिके लिये नही, ज्ञानके लिये नही, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये नही। भन्ते ! जो यह भगवान्‌के धर्मोपदेशको सुनकर सतोप और सौमनस्य हुआ है वह लळाई-झगळेका नही, किंतु पूर्णतया निर्वेद ० के लिये।"

"देवेन्द्र ! क्या देखकर यह कह रहे हो, कि तुमने ऐसा सतोष सौमनस्य पाया ?"

"भन्ते ! छै अर्थोको देखकर ० कह रहा हूँ।—मार्ष ! देव रूपमे।

यही रहते-रहते मैने फिर आयु प्राप्त की है, इस प्रकार आप जाने ॥३५॥

भन्ते ! यह पहला अर्थ है कि जिसे देखकर कि मैने इस प्रकारका सतोष और सौमनस्य पाया।

'दिव्य आयुके क्षीण हो जानेपर इस शरीरसे च्युत होकर,

मै अपनी इच्छानुसार जहाँ मन होगा उसी गर्भमे प्रवेश करूँगा।' ॥३६॥

"भन्ते ! यह दूसरा अर्थ है कि०।

"सो मै तथागतके शासन (=धर्म) मे रत रहकर स्मृतिमान्,

तथा सावधान हो ज्ञानपूर्वक विहार करूँगा ॥३७॥

"भन्ते ! यह तीसरा अर्थ ०।

"ज्ञानपूर्वक आचरण करते हुये मुझे सम्बोधि प्राप्त होगी।

मै परमार्थको जानकर विहार करूँगा, यही उसका अन्त होगा ॥३८॥

"भन्ते ! यह चौथा अर्थ ०।

"मनुष्यकी आयु क्षीण होनेके बाद मनुष्य-शरीरसे च्युत होकर।
फिर भी देव-लोकमे उत्पन्न हो जाऊँगा ॥३९॥

"भन्ते ! यह पाँचवाँ ०।

"अकनिष्ठ लोकके श्रेष्ठ यशस्वी देवोमे।
मेरा अन्तिम जन्म होगा ॥४०॥"

"भन्ते ! यह छठा०।

"भन्ते ! इन्ही छै अर्थोको देखकर मुझे इस प्रकारका सतोष और सौमनस्य प्राप्त हुआ।

"तथागतकी खोजमे बहुत दिनो तक अपूर्ण सकल्प रह
नाना शकाओमे पळकर भटकता था ॥४१॥

"एकान्तवास करनेवाले श्रमणोको सबुद्ध समझकर
उनकी उपासनाके लिये जाता था ॥४२॥

"मोक्ष-प्राप्तिके कौनसे उपाय है और मोक्षके विपरीत ले जानेवाली कौनसी बाते है ?
इस तरह पूछनेपर वे न तो मार्गको=न प्रतिपदाको ही बता सकते थे ॥४३॥

"जब उन लोगोने जाना कि देवेन्द्र शक्र आया है, तो मुझहीसे पूछने लगते
कि किस पुण्यको करके आपने इस पदको पाया है ॥४४॥

"भगवान् ! जब मैने उन लोगोको यथाज्ञान धर्मका उपदेश दिया,
तो वे सतुष्ट हो गये— हम लोगोने इन्द्रको देख लिया ॥४५॥

"जब मैने सदेहोको दूर करनेवाले भगवान् बुद्धको देखा
तो आज मै उनकी उपासना करके भयरहित हो गया ॥४६॥

"यह मै तृष्णा रूपी शूलको नष्ट करनेवाले, असाधारण,
सूर्यवशमें उत्पन्न, महावीर बुद्धको नमस्कार करता हूँ ॥४७॥

"मार्ष ! अपने देवोके साथ जो मै ब्रह्माको नमस्कार किया करता था
वह नमस्कार आजसे आपहीको करूँगा ॥४८॥

"आप ही सम्बुद्ध है, आप ही अनुपम उपदेशक (=शास्ता) है।
देवताओ सहित सारे लोकमे आपके समान और कोई नही है ॥४९॥"

तब देवेन्द्र शक्रने देवपुत्र **पञ्चशिख** गधर्व (=गायक)को सबोधित किया—"तात पञ्चशिख ! आपने मेरा बळा उपकार किया है, जो कि पहले भगवान्को प्रसन्न किया। आपके प्रसन्नकर देनेप पीछे हमलोग भगवान्०के पास आये। (अबसे) आपको अपने पिताके स्थानपर रक्खूँगा। आप अ गन्धर्वराज होगे और आपकी वाछित **भद्रा सूर्यवर्चसा** आपको देता हूँ।"

तब देवेन्द्र शक्रने हाथसे पृथ्वीको तीन बार छूकर प्रीतिवाक्य कहे—

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्धको नमस्कार है। उन०। उन०" (नमो तस्स भगवत अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स)। इतना कहते-कहते देवेन्द्र शक्रको विरज निर्मल=धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया— 'जो कुछ समुदय-धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है सभी निरोधधर्म (=नाश होनेवाला) है।' औ दूसरे अस्सी हजार देवताओको भी।

इस प्रकार भगवान्ने देवेन्द्र शक्रके पूछे सभी प्रश्नोका उत्तर दे दिया। अत इस (सूत्र)क नाम शक्र-प्रश्न (=सक्क-पञ्ह) पळा।

२२—महासतिपट्ठान-सुत्त (२।९)

विषय सक्षेप—१—कायानुपश्यना। २—वेदनानुपश्यना। ३—चित्तानुपश्यना। ४—धर्मानुपश्यना।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् कुरु[1] (देश)मे कुरुओके निगम (=कस्बे) कम्मास-दममें विहार करते थे।

विषय-संक्षेप

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) भिक्षुओने भगवान्‌को उत्तर दिया।

"भिक्षुओ! यह जो चार स्मृति-प्रस्थान (=सति-पट्ठान) है, वह सत्त्वोकी विशुद्धिके लिए, शोक कष्टके विनाशके लिए, दु ख=दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन (=अकेला) मार्ग है। कौनसे चार?—भिक्षुओ! वहाँ (इस धर्ममें) भिक्षु कायामें [2]कायानुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव (=सप्रजन्य) ज्ञान-युक्त, स्मृति-मान्, लोक (=ससार या शरीर)में अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=दु ख) को हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुखादि)में [3]वेदनानुपश्यी हो ० विहरता है। चित्तमे चित्तानुपश्यी ०। धर्मोमे धर्मानुपश्यी ०।

१—कायानुपश्यना

(१) आनापान (=प्राणायाम)

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु [4] कायामे, कायानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु अरण्यमे, वृक्षके नीचे, या शून्यागारमे, आसन मारकर, शरीरको सीधाकर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोळता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है। लम्बी साँस छोळते वक्त, 'लम्बी साँस छोळता हूँ'—जानता है। लम्बी साँस लेते वक्त, 'लम्बी साँस लेता हूँ'—जानता है। छोटी साँस छोळते, 'छोटी साँस छोळता हूँ'—जानता है। छोटी साँस लेते 'छोटी साँस लेता हूँ'—जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये, साँस छोळना सीखता है। सारी कायाको

---

[1] कुरुके बारेमें देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८। [2] शरीरको उसके असल स्वरूप केश-नख-मल-मूत्र आदि रूपमें देखनेवाला 'काये कायानुपश्यी' कहा जाता है। [3] सुःख, दुःख, न दु ख न सुख इन तीन चित्तकी अवस्था रूपी वेदनाओको जैसा हो वैसा देखनेवाला 'वेदनामें वेदनानुपश्यी ०।'

[4] यही आनापान (=प्राणायाम) कहलाता है।

जानते हुये साँस लेना सीखता है। कायाके संस्कार (=गति, क्रिया)को शांत करते साँस छोळना सीखता है। कायाके संस्कारको शांत करते साँस लेना सीखता है। जैसे कि—भिक्षुओ! एक चतुर खरादकार (=भ्रमकार)या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे (काष्ठ)को रगते समय 'लम्बा रगता हूँ'—जानता है। छोटेको रगते समय 'छोटा रगता हूँ'—जानता है। ऐसेही भिक्षुओ! भिक्षु लम्बी साँस छोळते ०, लम्बी साँस लेते ०, छोटी साँस छोळते ०, छोटी साँस लेते ० जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोळना सीखता है, ० साँस लेना ०। काय-संस्कारको शांत करते साँस छोळना सीखता है, ० साँस लेना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमे कायानुपश्यी हो विहरता है। कायाके बाहरी भागमे ०। कायाके भीतरी और बाहरी भागमे-कायानुपश्यी विहरता है। कायामे समुदय (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। कायामे व्यय (=विनाश) धर्मको देखता विहरता है। कायामे समुदय-व्यय (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। 'काया है'—यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिमे) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमे कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नही ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामे काय-बुद्धि रखते विहरता है।

(२) ईर्या-पथ

"[1]फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ'—जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ'—जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ'—जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमे कायानुपश्यी हो विहरता है, कायाके बाहरी भागमे कायानुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोमे कायानुपश्यी विहरता है। कायामे समुदय-(=उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ० व्यय-(=विनाश) धर्म ०, ० समुदय-व्यय-धर्म ०।०।

(३) सम्प्रजन्य

"[2]और भिक्षुओ! भिक्षु जानते (=अनुभव करते) हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन=विलोकन करता है। ० सिकोळना फैलाना ०[3] संघाटी, पात्र, चीवरको धारण करता है। जानते हुये आसन, पान, खादन, आस्वादन, करता है। ० पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=पस्साव) करता है। चलते, खळे होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमे कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

(४) प्रतिकूल मनसिकार

"[4]और भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर, केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकारके मलोसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामे है—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (=चमळा), मास, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, वृक्क, हृदय (=कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत (=अत-गुण), उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीव, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्वी), लार, नासा-मल, [5]लसिका, और मूत्र।

---

[1] यही ईर्या-पथ है। [2] यही सम्प्रजन्य है। [3] भिक्षुओकी दोहरी चादर। [4] प्रतिकूल-मनसिकार। [5] केहुनी आदि जोळोमें स्थित तरल पदार्थ।

जैसे भिक्षुओ! नाना अनाज शाली, व्रीही (=धान), मूँग, उळद, तिल, तण्डुलमे दोनो मुखभरी टेहरी (=मुढोली, पुटोली) हो, उसको आँखवाला पुरुष खोलकर देखे—यह शाली है, यह व्रीही है, यह मूँग है, यह उळद है, यह तिल है, यह तडुल है। इसी प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपर केश-मस्तकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोसे पूर्ण देखता है—इस कायामे है ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमे कायानुपश्यी हो विहरता है। ०।

(५) धातुमनसिकार

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु इस [1]कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामे है—पृथिवी धातु (=पृथिवी महाभूत), आप (=जल)-धातु, तेज (=अग्नि) धातु, वायु-धातु। जैसे कि भिक्षुओ! दक्ष (=चतुर) गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी, गायको मारकर बोटी-बोटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है। ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागको ०।

(६-१४) श्मशानयोग

१—"[2]और भिक्षुओ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे, फूले, नीले पळ गये, पीव-भरे, (मृत)-शरीरको श्मशानमे फेंकी देखे। (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया इसी धर्म (=स्वभाव)-वाली, ऐसी ही होनेवाली, इसमे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०। ०।

२—"और भिक्षुओ! भिक्षु कौओंसे खाये जाते, चील्होसे खाये जाते, गिद्धोसे खाये जाते, कुत्तोसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोसे खाये जाते, श्मशानमे फेंके (मृत-)शरीरको देखे। वह इसी (अपनी) कायापर घटावै—यह भी काया ०। ०।

३—"और भिक्षुओ! भिक्षु माँस-लोहू-नसोसे बँधे हड्डी-ककालवाले शरीरको श्मशानमे फेका देखे०।०।

४—"० माँस-रहित लोहू-लगे, नसोसे बँधे०। ०। ० माँस-लोहू-रहित नसोसे बँधे०।० ०। बधन-रहित हड्डियोको दिशा-विदिशामे फेकी देखे—कही हाथकी हड्डी है, ० पैरकी हड्डी ०, ० जघाकी हड्डी ०, ० उरुकी हड्डी ०, ० कमरकी हड्डी ०, ० पीठके काँटे ०, ० खोपळी ०, और इसी (अपनी) कायापर घटावे ०। ०।[3]

५—"और भिक्षुओ! भिक्षु शखके समान सफेद वर्णके हड्डीवाले शरीरको श्मशानमे फेका देखे ०। ०। ० वर्षो-पुरानी जमाकी हड्डियोवाले ०। ०। ० सडी चूर्ण होगई हड्डियोवाले ०। ०।

२—वेदनानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु [4]वेदनाओमे वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते 'सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। दु ख-वेदनाको अनुभव करते 'दु खवेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। अदु ख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदु ख-असुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। स-आमिष (=भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको

---

[1] धातु-मनसिकार।

[2] श्मशान। [3] चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त। [4] (२) वेदनानुपश्यना।

अनुभव करते ०। निर्-आमिष सुख-वेदना ०। स-आमिष दु.ख-वेदना ०। निर्-आमिष दु.ख-वेदना ०। स-आमिष अदु.ख-असुख-वेदना ०। निर्-आमिष अदु.ख-असुख-वेदना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०।०।

३—चित्तानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु चित्तमे [1]चित्तानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है'—जानता है। विराग (=राग-रहित) चित्तको 'विराग चित्त है'—जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है'—जानता है। वीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है'—जानता है। स-मोह चित्तको ०। वीत-मोह चित्तको ०। सक्षिप्त चित्तको ०। विक्षिप्त चित्तको ०। महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको ०। अ-महद्गत चित्तको ०। स-उत्तर ०। अन्-उत्तर (=उत्तम) ०। समाहित (=एकाग्र) ०। अ-समाहित ०। विमुक्त ०। अ-विमुक्त ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०।०।

४—धर्मानुपश्यना

(१) नीवरण

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोमे [2]धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोमे धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच [3]नीवरण धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी **काम-च्छन्द** (=कामुकता)को 'मेरेमे भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमे भीतरी कामच्छन्द नही विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नही होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी **व्यापाद** (=द्रोह)को—'मुझमे भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमे भीतरी व्यापाद नही विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नही उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी **स्त्यान-मृद्ध** (=थीन-मिद्ध=शरीर-मनकी अलसता)०।०।

० भीतरी **औद्धत्य-कौकृत्य** (=उद्धच्च-कुक्कुच्च=उद्वेग-खेद,) ०।०।

० भीतरी **विचिकित्सा** (=सशय) ०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोमे (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर ०। धर्मोमे समुदय (=उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (=अनुभव करनेवाला) हो विहरता है। ० व्यय (=विनाश)-धर्म ०। ० उत्पत्ति-विनाश-धर्म ०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है'—यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमे) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमे कुछ भी (मै और मेरा) करके ग्रहण नही करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोमे धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

---

[1] (३) चित्तानुपश्यना। [2] (४) धर्मानुपश्यना।

[3] **पाँच नीवरण है—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यान-मृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।**

(२) स्कंध

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान[1]स्कध धर्मोमे धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादानस्कध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है? भिक्षुओ! भिक्षु (अनुभव करता है)—'यह रूप है', 'यह रूपकी उत्पत्ति (=समुदय)', 'यह रूपका अस्त-गमन (=विनाश) है'।०सज्ञा०।०सस्कार०।०विज्ञान०। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतरी) धर्मोमे धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। बहिर्धा (=शरीरके बाहरी) धर्मोमे धर्म-अनुपश्यी०। शरीरके भीतरी-बाहरी धर्मों (=वस्तुओ)मे समुदय(=उत्पत्ति)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओमे विनाश(=व्यय)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओमे उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है'—यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अनासक्त हो विहरता है। लोकमे कुछ भी नही ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कधोमे धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (=धर्म-अनुपश्यी) विहरता है।

(३) आयतन

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु छै आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरी), बाह्य (=शरीरके बाहरी) [2]आयतन धर्मोमे धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु छै भीतरी बाहरी आयतन(-रूपी) धर्मोमे धर्म अनुभव करता विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु चक्षुको अनुभव करता है, रूपोको अनुभव करता है, और जो उन दोनो (=चक्षु और रूप) करके सयोजन[3] उत्पन्न होता है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न सयोजनकी उत्पत्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न सयोजनका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीण (=विनष्ट) सयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नही होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है, शब्दको अनुभव करता है०। घ्राण (=सूँघनेकी शक्ति, घ्राण-इद्रिय)को अनुभव करता है। गधको अनुभव करता है०। जिह्वा०।०।०। काया (=त्वक्-इद्रिय, ठडा गर्म आदि जाननेकी शक्ति)०' स्प्रष्टव्य (=ठडा गर्म आदि)०।०। मनको अनुभव करता है। धर्म (=मनके विषय)को अनुभव करता है। दोनो (=मन और धर्म) करके जो [3]सयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है।०। इस प्रकार अध्यात्म (=शरीरके भीतर) धर्मों (=पदार्थों)मे धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धा (=शरीरके बाहर)०, अध्यात्म-बहिर्धा०। धर्मोमे उत्पत्ति-धर्मको०,० विनाश-धर्मको०,० उत्पत्ति-विनाश-धर्मको०। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहरवाले छै आयतन धर्मों(=पदार्थों)मे धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

---

[1] स्कंध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

[2] आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण (=नासिक), जिह्वा (=रसना), काय (=त्वक्), मन। इनमें पहिले पाँच बाह्य आयतन हैं, मन आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरका) आयतन है।

[3] सयोजन दश यह है—प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), दृष्टि (=धारणा, मत), विचिकित्सा (=सशय), शील-व्रत-परामर्श (=शील और व्रतका ख्याल), भव-राग (आवागमन-प्रेम), ईर्षा, मात्सर्य और अ-विद्या। सयोजनका शब्दार्थ बन्धन है।

(४) बोध्यंग

"और भिक्षुओ! भिक्षु सात बोधि-अग धर्मों(=पदार्थों)मे धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ! ०? भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति सबोधि-अगको 'मेरे भीतर स्मृति सबोधि-अग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी स्मृति सबोधि-अगको 'मेरे भीतर स्मृति सबोधि-अग नही है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति सबोधि-अगकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति सबोधि-अगकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे भी जानता है। ० भीतरी धर्म-विचय (=धर्म-अन्वेषण) सबोधि-अग ०।० वीर्य ०।० प्रीति ०।० प्रश्रब्धि ०।० समाधि ०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा सबोधि-अगको 'मेरे भीतर उपेक्षा सबोधि-अग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा सबोधि-अगको 'मेरे भीतर उपेक्षा सबोधि-अग नही है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा सबोधि-अगकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा सबोधि-अगकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके धर्मोमे धर्म अनुभव करता विहरता, शरीरके बाहर ०, शरीरके भीतर-बाहर ०।०। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात सबोधि-अग धर्मोमे धर्म अनुभव करता विहरता है।

(५) आर्य-सत्य

"और फिर भिक्षुओ! भिक्षु चार [1]आर्य-सत्य धर्मोमे धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे ०? भिक्षुओ! 'यह दुःख है'—ठीक ठीक (=यथाभूत=जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दुःखका समुदय (=कारण) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखका निरोध (=विनाश) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग (=दुःख-निरोध गामिनी-प्रतिपद्) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"इस प्रकार भीतरी धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। ०। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमे किसी (वस्तु)को भी (मै और मेरा) करके नही ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोमे धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

(क) दुःख-आर्य-सत्य—

"क्या है भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्य? जन्म भी दुःख है। बुढापा (=जरा) भी दुःख है। मरण भी दुःख है। शोक, परिदेवन (=रोना-काँदना), दुःख, दौर्मनस्य, उपायास (=हैरानी-परेशानी) भी दुःख है। अ-प्रियोका सयोग भी दुःख है। प्रियोका वियोग भी दुःख है। इच्छित वस्तु जो नही मिलती वह भी दुःख है। सक्षेपमे पाँचो **उपादान-स्कध** ही दुःख है।' क्या है, भिक्षुओ! जन्म (=जाति)? उन उन प्राणियोका उन उन योनियो (=सत्त्वनिकायो)मे जो जन्म=सजाति,=अवक्रमण=अभि-निर्वृत्ति, (भौतिक और अभौतिक) स्कधोका प्रादुर्भाव, आयतनो (=इन्द्रिय-विषयो)का लाभ है, यही भिक्षुओ! जन्म कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ! बुढापा (=जरा)? उन उन प्राणियोका उन उन योनियोमे जो बूढा होना=जीर्णता, खाडित्य (=दाँत टूटना), पालित्य (=बाल पकना), चमळा-

---

[1]आर्य-सत्य चार है—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध गामिनी-प्रतिपद्।

सिकुळना, आयुकी हानि, इन्द्रियोका परिपाक है, यही भिक्षुओ ! बुढापा कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ ! **मरण** ? उन उन प्राणियोका उन उन योनियोसे जो च्युत होना=च्यवनता, बिलगाव, अन्तर्धान होना, मृत्यु, मरण, काल करना, स्कन्धोका विलगाव, कलेवरका छूटना, जीवनका विच्छेद है, यही ०। क्या है भिक्षुओ ! **शोक** ? उन उन व्यसनोमे युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का जो शोक=शोचना =शोचितत्त्व, भीतर शोक, भीतर परिशोक है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **परिदेव** ? उन उन व्यसनो-से युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का जो आदेवन=परिदेवन (=रोना-काँदना), आदेव=परिदेव=आदेवितत्त्व=परिदेवितत्त्व है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! दु ख ? भिक्षुओ ! जो शारीरिक दु ख=शारीरिक पीडा, कायाके स्पर्शमे (हुआ) दु ख=अ-सात अनुभव (=वेदना) है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **दौर्मनस्य** ? भिक्षुओ ! जो मानसिक दु ख=मानसिक पीडा, मनके स्पर्शसे (हुआ) दु ख=अ-सात (=प्रतिकूल) अनुभव है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **उपायास** ? भिक्षुओ ! उन उन व्यसनोसे युक्त, उन उन दु खोसे पीडित (व्यक्ति)का, जो आयास=उपायास (=हैरानी-परेशानी) =आयासितत्त्व=उपायासितत्त्व है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'अप्रियोका सयोग भी दु ख' ? किसी (पुरुप)के अन्-इष्ट (=अनिच्छित)=अ-कान्त=अमानाप जो रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुये है, या जो उसके अनर्थाभिलाषी, अ-हिताभिलाषी,=अ-प्राशु-इच्छुक, अ-मगल-इच्छुक (व्यक्ति) है, उनके साथ जो समागम=समवधान, मिश्रण है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'प्रियोका वियोग भी दु ख' ? किसी (पुरुप)के इष्ट=कान्त=मनाप जो रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुये है, या जो उसके अर्थाभिलाषी, हिताभिलाषी=प्राशु-इच्छुक, मगल-इच्छुक माता, पिता, भ्राता, भगिनी, कनिष्ठा (वहिन), मित्र, अमात्य, या जाति, रक्तसबधी है, उनके साथ अ-सगति=अ-समागम=अ-समवधान =अ-मिश्रण है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'इच्छित वस्तु जो नही मिलती, वह भी दु ख' ? भिक्षुओ ! जन्मनेके स्वभाववाले प्राणियोको यह इच्छा उत्पन्न होती है—'अहो ! हम जन्म स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जन्म न आता', किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नही। यह भी 'इच्छित वस्तु जो नही मिलती, वह भी दु ख' है। भिक्षुओ ! जरा-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—'अहो ! हम जरा स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जरा न आती', किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नही है। यह भी ०। भिक्षुओ ! व्याधि-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! मरण-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! शोक-स्वभाववाले प्राणियोको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! परिदेव-स्वभाववाले०।० दु ख-स्वभाववाले०।० दौर्मनस्य-स्वभाववाले०।० उपायास-स्वभाववाले०। क्या है, भिक्षुओ ! 'सक्षेपमे पाँचो उपादानस्कध ही दु ख है ? जैसे कि रूप-उपादान-स्कध, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कध—यही भिक्षुओ ! 'सक्षेपमे पाँचो उपादानस्कध ही दु ख' कहे जाते है।

"भिक्षुओ ! यह दु ख **आर्यसत्य** कहा जाता है।

(ख) दु ख-समुदय आर्यसत्य—

"क्या है, भिक्षुओ ! दु ख-समुदय आर्यसत्य ? जो यह राग-युक्त, नन्दी—उन उन (वस्तुओ) मे अभिनन्दन करनेवाली, आवागमनकी **तृष्णा** है, जैसे कि भोग-तृष्णा, भव(=जन्म)-तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! वह तृष्णा उत्पन्न होने पर कहाँ उत्पन्न होती है, स्थित होनेपर कहाँ स्थित होती है ? जो लोकमे (मनुष्यका) प्रिय, सात (=अनुकूल) है, वही यह तृष्णा उत्पन्न होनेपर उत्पन्न होती है, स्थित होनेपर स्थित होती है। क्या है लोकमे प्रिय, सात ? चक्षु लोकमे प्रिय=सात है, यहाँ यह तृष्णा ० उत्पन्न होती है ०। श्रोत्र ०। घ्राण ०। जिह्वा ०। काय ०। मन०। (चक्षुका विषय) रूप ०। शब्द ०। गन्ध ०। रस ०। स्प्रष्टव्य ०। धर्म ०। चक्षुर्विज्ञान (=आँख और रूपके सबधसे उत्पन्न ज्ञान)०। श्रोत्रविज्ञान ०। घ्राणविज्ञान ०। जिह्वाविज्ञान ०। कायविज्ञान ०। मनोविज्ञान ०।

चक्षु-सस्पर्श (=आँखका उसके विषय रूपके साथ समागम) ०। श्रोत्रसस्पर्श ०। घ्राणसस्पर्श ०। जिह्वासस्पर्श ०। कायसस्पर्श ०। चक्षु-सस्पर्शज वेदना (=आँख और रूपके समागमसे जो ज्ञान होता है, और उसमे अनुकूलता या प्रतिकूलताको देखकर चित्तको दुःख या सुख होता है वह वेदना कही जाती है) ०। श्रोत्रसस्पर्शज वेदना ०। घ्राणसस्पर्शज वेदना ०। जिह्वासस्पर्शज वेदना ०। कायसस्पर्शज वेदना ०। मन सस्पर्शज वेदना ०। रूपसज्ञा (=रूप सबधी ज्ञानका अनुभव) ०। शब्दसज्ञा ०। गधसज्ञा ०। रससज्ञा ०। स्प्रष्टव्यसज्ञा ०। धर्मसज्ञा ०। रूपसचेतना (=रूपका ख्याल) ०। शब्दसचेतना ०। गधसचेतना ०। रससचेतना ०। स्प्रष्टव्यसचेतना ०। धर्मसचेतना ०। रूपतृष्णा ०। शब्द-तृष्णा ०। गधतृष्णा ०। रसतृष्णा ०। स्प्रष्टव्यतृष्णा ०। धर्मतृष्णा ०। रूपवितर्क ०। शब्दवितर्क ०। गधवितर्क०। रसवितर्क०। स्प्रष्टव्यवितर्क०। धर्मवितर्क०। रूपविचार०। शब्दविचार०। गधविचार०। रसविचार०। स्प्रष्टव्यविचार०। धर्मविचार लोकमे प्रिय सात है, यहाँ वह तृष्णा ० उत्पन्न होती है०।

"भिक्षुओ! यह दुःखसमुदय आर्यसत्य कहा जाता है।

(ग) दुःख-निरोध आर्यसत्य

"क्या है, भिक्षुओ! दुःखनिरोध आर्यसत्य? जो उसी तृष्णाका सर्वथा निरोध, त्याग=प्रति-निस्सर्ग, मुक्ति=अन्-आलय है। भिक्षुओ! वह तृष्णा कहाँ प्रहीण=निरुद्ध होती है? लोकमे जो प्रिय =सात है, यहाँ वह तृष्णा प्रहीण=निरुद्ध होती है। क्या है लोकमें प्रिय सात? चक्षु ०[1] धर्मविचार लोकमे प्रिय=सात है, यहाँ वह तृष्णा प्रहीण=निरुद्ध होती है।

"भिक्षुओ! यह दुःखनिरोध आर्यसत्य कहा जाता है।

(घ) दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य

"क्या है भिक्षुओ! दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य? यही आर्य अष्टागिक मार्ग जैसे कि—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सकल्प, सम्यग्वचन, सम्यक्कर्मान्त, सम्यग्आजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्समाधि। क्या है भिक्षुओ! **सम्यग्दृष्टि**? जो दुःख-विषयक ज्ञान है, दुःखसमुदय-विषयक ज्ञान है, दुःख-निरोधविषयक ज्ञान है, दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद-विषयक ज्ञान है, भिक्षुओ! यह सम्यग्-दृष्टि कही जाती है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्सकल्प? निष्कामता (=अनासक्ति)का सकल्प, अ-व्यापाद(=अद्रोह)सकल्प, अहिंसासकल्प, यह भिक्षुओ! सम्यक्सकल्प कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्वचन? झूठत्याग, चुगलीत्याग, कटुवचनत्याग, बकवासका त्याग, यह भिक्षुओ! सम्यग्वचन कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्कर्मान्त? हिंसात्याग, चोरीत्याग, व्यभिचार-त्याग, यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्आजीव? भिक्षुओ! आर्यश्रावक मिथ्याआजीव (=झूठी जीविका)को छोळ सम्यग्आजीवसे जीविका चलाता है, यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्व्यायाम? भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु अनुत्पन्न पापो=बुराइयो(=अकुशलधर्मो)को न उत्पन्न होने देनेके लिये छन्द (=इच्छा) उत्पन्न करता है, उद्योग करता है, =वीर्यारम्भ करता है, चित्तको रोकता थामता है। उत्पन्न पापो=बुराइयोके नाशके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। अनुत्पन्न सुकर्मो (=कुशलधर्मो)के उत्पादनके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। उत्पन्न कुशलधर्मोकी स्थिति, अ-नाश, वृद्धि, विपुलता, भावना-की पूर्णताके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्स्मृति? जब भिक्षुओ! भिक्षु ०[2] कायामे कायानुपश्यी हो विहरता है। ० चित्तमे चित्तानुपश्यी ०। यह कही जाती है भिक्षुओ! सम्यक्स्मृति। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्समाधि? भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु कामोसे अलग हो, बुराइयोसे

---

[1] ऊपर जैसा पाठ। [2] (दुःखका कारण तृष्णा आदि)।

अलग हो वितर्क और विचारयुक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। ०[1] द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यान ०। यह कही जाती है भिक्षुओ! सम्यक्-समाधि।

"भिक्षुओ! यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य कहा जाता है।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है ०।। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमे किसी (वस्तु)को भी (मैं और मेरा) करके नही ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"भिक्षुओ! जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोकी इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोमे एक फल (अवश्य) होना चाहिए—इसी जन्ममें आज्ञा (=अर्हत्व)का साक्षात्कार, या [2]उपाधि शेष होनेपर अनागामी-भाव। रहने दो भिक्षुओ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानो-को इस प्रकार छै वर्ष भावना करे ०।० पाँच वर्ष ०।० चार वर्ष ०।० तीन वर्ष ०। ० दो वर्ष ०। ० एक वर्ष ०। ० सात मास ०। ० छै मास ०। ० पाँच मास ०। ० चार मास ०। ० तीन मास ०। ० दो मास ०। ० एक मास ०। ० अर्द्ध मास ०। ० सप्ताह ०।

"भिक्षुओ! 'वह जो चार स्मृति-प्रस्थान है, वह सत्त्वोकी विशुद्धिके लिए, शोक-कष्टके विनाशके लिए, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो, उन भिक्षुओने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया।[3]

१—इति मूलपरियायवग्ग (१।१)

---

[1] कायानुपश्यनाकी भाँति पाठ। [2] देखो पृष्ठ २८-२९।

[3] थोळेसे अशकी अधिकतासे यही सूत्र, मज्झिम-निकायका सतिपट्ठान-सुत्त (१०) है।

२३—पायासिराजञ्ञ-सुत्त (२।१०)

परलोकवादका खंडन-मडन। १—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न—(१) मरे नही लौटते; (२) धर्मात्मा आस्तिकोको भी मरनेकी अनिच्छा, (३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नही। २—मत त्यागमें लोक-लाजका भय। ३—सत्कार रहित यज्ञका कम फल।

ऐसा मैने सुना—एक समय आयुष्मान् **कुमार कस्सप** (कुमार काश्यप) **कोसल** देशमे पाँचसौ भिक्षुओके बळे सघके साथ विचरते, जहाँ **सेतव्या** (=श्वेताबी) नामक कोसलोका नगर था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप सेतव्यामे सेतव्याके उत्तर **सिंसपावनमे** विहार करते थे।

परलोकवादका खंडन मंडन

उस समय **पायासी राजन्य** (=राजञ्ञ, माण्डलिक राजा) जनाकीर्ण, तृण-काष्ट-उदक-धान्य-सपन्न राज-भोग्य कोसलराज **प्रसेनजित** द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय सेतव्याका स्वामी होकर रहता था।

१—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न

उस समय पायासी राजन्यको इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी—यह (लोक) भी नही है, परलोक भी नही है, जीव मर कर पैदा नही होते, अच्छे और बुरे कर्मोका कोई भी फल नही होता।

सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोने सुना—श्रमण गौतमके श्रावक (=शिष्य) श्रमण कुमार कस्सप कोसल देशमे पाँचसौ भिक्षुओके बळे सघके साथ ० सिसपावनमे विहार करते है। उन आप कुमार काश्यपकी ऐसी कल्याणमय कीर्ति फैली है—वह पडित=व्यक्त, मेधावी, बहुश्रुत, मनकी बातको कहनेवाले, अच्छी प्रतिभावाले, ज्ञानी, और अर्हत् है। इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन अच्छा होता है। तब सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ सेतव्यासे निकलकर, झुड बाँधकर इकट्ठे उत्तरकी ओर जहाँ सिंसपावन था उस ओर जाने लगे।

उस समय पायासी राजन्य दिनमे आराम करनेके लिये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। पायासी-राजन्यने उन ब्राह्मण गृहस्थोको ० जाते हुए देखा। देखकर अपने क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को सबोधित किया—

"क्यो क्षत्ता! ये सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ ० सिसपावनकी ओर क्यो जा रहे है?"

"भो! श्रमण कुमार काश्यप श्रमण **गौतमके** श्रावक ० सेतव्यामे आये हुए है ०। उन कुमार कस्सपकी ऐसी ० कीर्ति फैली है—वह पण्डित, व्यक्त ०। उन्ही कुमार कस्सपके दर्शनके लिये ० जा रहे है।

"तो क्षत्ता! जहाँ सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ है वहाँ जाओ। जाकर ० ऐसा कहो—पायासी राजन्य आप लोगोको ऐसा कहता है—आप लोग थोळा ठहरे। पायासीराजन्य भी० दर्शनार्थ चलेगे। श्रमण

कुमार काश्यप सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोको बाल (=मूर्ख)=अव्यक्त समझ (कर कहता) है—यह लोक भी है, परलोक भी है, जीव मरकर होते भी है, अच्छे और बुरे कर्मोके फल भी है। (किन्तु यथार्थमे)—क्षत्ता ! यह लोक नही है, परलोक नही है ०।"

"बहुत अच्छा"—कहकर क्षत्ता० वहाँ गया। जाकर बोला—"पायासी राजन्य आप लोगोको यह कह रहा है—आप लोग थोळा ठहरे ०।

तब पायासी राजन्य सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोको साथ ले जहाँ सिंसपावनमे आयुष्मान् कुमार काश्यप थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् काश्यपके साथ कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गया।

सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोमे, कितने ० कुमार काश्यपको अभिवादन करके एक ओर बैठ गये, कितने० कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गये, कितने कुमार काश्यपकी ओर हाथ जोळकर एक ओर बैठ गये, कितने अपने नाम-गोत्र को सुना कर एक ओर बैठ गये, कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए पायासी राजन्यने आयुष्मान् कुमार काश्यपसे यह कहा—"हे काश्यप ! मै ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाला हूँ—यह लोक भी नही है, परलोक भी नही ०।"

"राजन्य ! पहले ऐसी दृष्टि और ऐसे सिद्धान्तके माननेवालेको मैने न तो देखा था और न सुना था। तुम कैसे कहते हो—यह लोक भी नही है ०। तो राजन्य ! तुम्हीसे पूछता हूँ, जैसा तुम्हे सूझे वैसा उत्तर दो—राजन्य ! तो क्या समझते हो, ये चाँद और सूरज क्या इसी लोकमे है या परलोकमे, मनुष्य है या देव ?"

"हे काश्यप ! ये चाँद और सूरज परलोकमे है, इस लोकमे नही, देव है, मनुष्य नही।"

"राजन्य ! इस तरह भी तुम्हे समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहे, मै तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नही ०।"

"राजन्य ! क्या कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा मानते हो—यह लोक नही ०।?"

"हे काश्यप ! है ऐसा तर्क, जिसके बलपर मै ऐसा मानता हूँ—यह लोक नही ०"

"राजन्य ! वह कैसे ?"

(१) मरे नहीं लौटते

१—"हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र अमात्य, और एक ही खूनवाले बन्धु है जो जीव-हिसा करते है, चोरी करते है, दुराचार करते है, झूठ बोलते है, चुगली खाते है, कठोर बात बोलते है, निरर्थक प्रलाप करते रहते है, दूसरेके प्रति द्रोह करते है, द्वेष चित्तवाले तथा बुरे सिद्धान्तोको माननेवाले है। वे कुछ दिनोके बाद रोग-ग्रस्त हो बहुत बीमार पळ जाते है। जब मै समझ जाता हूँ कि वे इस बीमारीसे नही उठेंगे, तो मै उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाले है—जो जीवहिंसा करते है, चोरी करते है ० वे मरनेके बाद नरकमे गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होते है। आप लोग तो जीवहिंसा करते थे, चोरी करते थे ०। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोका कहना सच है, तो आप लोग मरनेके बाद नरकमे गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होगे। यदि आप लोग मरनेके बाद ० प्राप्त हो तो मुझसे आकर कहे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग जो स्वय देखकर मुझसे आकर कहेगे मै उसे वैसा ही ठीक समझूँगा।'

"बहुत अच्छा" कहकर भी वे न तो आकर (स्वय) कहते है और न किसी दूतको ही भेजते है। हे काश्यप ! यह एक कारण है जिससे मै ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही है, परलोक भी नही०।"

"राजन्य ! तब तुम्हीसे पूछता हूँ ०। तो क्या समझते हो राजन्य ! (यदि) तुम्हारे नौकर एक चोर या अपराधीको पकळकर दिखावे—यह आपका चोर या अपराधी है, आप जैसा उचित समझे इसे दण्ड दे। (तब) तुम उन लोगोको ऐसा कहो—इस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे हाथ पीछे करके कसकर बाँध, शिर मुँळवा, घोषणा करते एक सळकसे दूसरी सळक, एक चौराहेसे दूसरे चौराहे ले जाकर, दक्खिन द्वारसे निकाल, नगरसे दक्खिन बध्यस्थानमे इसका शिर काट दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे ० बध्यस्थानमे ले जावे। तब चोर उन जल्लादोसे कहे—'हे जल्लादो ! हे जल्लादो ! इस ग्राम या निगममे मेरे मित्र, अमात्य और रक्तसबधी रहते है, आप लोग तब तक ठहरे, जब तक मै उनसे भेट कर लूँ।' तो क्या उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर नही काट देगे ?"

"हे काश्यप ! यदि चोर जल्लादोको कहे ० तो भी उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर काट देगे।"

"राजन्य ! जब वह चोर मनुष्य मनुष्य-जल्लादोसे भी छुट्टी नही ले सकता—हे जल्लादो ! आप लोग ठहरे ०—तो तुम्हारे मित्र अमात्य, रक्तसबधी, जीवहिंसा करनेवाले, चोरी करनेवाले ० मरनेके बाद नरकमे पळकर दुर्गतिको प्राप्त हो कैसे नरकके यमोसे छुट्टी ले सकेगे—आप लोग ठहरे, जब तक मै पायासीराजन्यके पास जाकर कह आऊँ—यह लोक भी है, परलोक भी ० ? इसलिये भी राजन्य ! तुम्हे समझना चाहिये — यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहे मै तो यही समझता हूँ—यह लोक भी नही ०।

२—"राजन्य ! कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा समझते हो—यह लोक भी नही ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है जिसके बलपर मै ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही ०। हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहते है, चोरी करनेसे विरत रहते है, दुराचारसे विरत रहते है ० और अच्छे सिद्धान्तोको माननेवाले है। वे कुछ दिनोके बाद रोगग्रस्त हो बहुत बीमार पळ जाते है। जब मै समझता हूँ कि वे इस बीमारीसे नही उठेगे तो ० ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसा कहते है—जो जीवहिंसासे विरत रहते है ० वे मरनेके बाद स्वर्गमे उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त होते है। आप लोग तो जीवहिंसासे विरत ० रहते थे। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोका कहना ठीक है, तो आप लोग ० सुगतिको प्राप्त होगे। यदि ० सुगतिको प्राप्त हो तो आकर मुझसे कहेगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग स्वय देखकर जो कहेगे मै उसीको ठीक समझूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर भी न तो वे आकर स्वय कहते है और न किसी दूतको ही भेजते है। हे काश्यप ! इसी कारणसे मै ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नही है ०।"

"राजन्य ! तो मै एक उपमा कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग बातको झट समझ जाते है—राजन्य ! मान लो कि कोई मनुष्य चोटी तक सडासमे डूबा हो। तुम अपने नौकरोको आज्ञा दो—'उस पुरुषको उस सडाससे निकाल दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको उस सडाससे निकाल दे। उन (नौकरो)को तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको बाँसके टुकळोसे अच्छी तरह साफ करो।' ० वे साफ कर दे। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको पीली मिट्टीसे तीन बार अच्छी तरह उबटन लगा लगाकर साफ करो'। ० वे साफ करे। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरमे तेल लगाकर पतला स्नान चूर्ण तीन बार लगा लगाकर नहलाओ'। ० वे नहला दे। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके शिर दाढीको मूँळ दो'। ० वे मूँळ दे। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके लिये अच्छी अच्छी मालाये, अच्छा उबटन और अच्छा अच्छा वस्त्र ले आओ'। ० वे ले आवे। उनको तुम फिर भी कहो—'कोठेपर ले जाकर पाँच भोगो (=कामगुणो)से इस पुरुषको सेवित करो'। ० वे सेवित करे।

"तो राजन्य ! क्या समझते हो—अच्छी तरह नहाये, अच्छी तरह ० उवटन लगाये, अच्छी तरह क्षौर किये, माला पहने, साफ वस्त्र धारण किये तथा कोठेपर पाँच भोगोसे सेवित उस पुरुषको फिर भी उसी सडासमे डूबनेकी इच्छा होगी ?"

"हे काश्यप ! नही।"

"सो, क्यो ?"

"हे काश्यप ! सडास (=गूथकूप) अपवित्र है, मैला है, दुर्गन्धसे भरा है, घृणित है, और मनके प्रतिकूल है।"

"राजन्य ! इसी तरह मनुष्ययोनि देवोके लिये अपवित्र, ० है। राजन्य ! एक सौ योजनकी दूरहीसे देवोको मनुष्यकी दुर्गन्धि लगती है। तब भला तुम्हारे मित्र, अमात्य ० स्वर्गलोकमे उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्तकर फिर (लौटकर) तुमसे कहनेके लिये कैसे आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ० ?

"राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हे समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहे, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नही, परलोक भी नही ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० है। ० जब मैं समझता हूँ कि इस बीमारीसे ये नही उठेंगे तो उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—

'कितने श्रमण और ब्राह्मण ऐसा ० जो जीवहिंसासे विरत ० वे सुगति प्राप्त करते है। और आप लोग जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० है। यदि उन०का कहना सच होगा तो आप लोग ० सुगति प्राप्त करेंगे। यदि मरनेके बाद आप लोग ० सुगति प्राप्त करे तो मेरे पास आकर कहे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। मेरे प्रति ०। वे न तो स्वय आकर ०।

"हे काश्यप ! इस कारणसे०—यह लोक भी नही, परलोक भी नही ०।

"राजन्य ! तब तुम्हीको मैं पूछता हूँ ०। राजन्य ! जो मनुष्योका सौ वर्ष है, वह त्रायस्त्रिंश देवोके लिये एक रात-दिन है, वैसी तीस रातका एक मास होता है, वैसे बारह मासका एक सवत्सर (वर्ष) होता है, वैसे-देव-सहस्र वर्ष त्रायस्त्रिंश देवोका आयुपरिमाण है। जो तुम्हारे ० मित्र, अमात्य मरनेके बाद त्रायस्त्रिंश देवोके साथ स्वर्गमे उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त हुए है। उन लोगोके मनमे यदि ऐसा हो, जब तक हम लोग दो या तीन रात दिन पाँच दिव्य भोगोका सेवन कर ले, फिर हम पायासी राजन्यके पास जाकर कह आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। और वे आकर कहे—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! ऐसा नही, तब तक तो हम लोग बहुत पहले ही मर चुके रहेंगे। आप काश्यपसे कौन कहता है, कि तावतिस ऐसे दीर्घायु देव है, ? मैं आप काश्यपमे विश्वास नही करता कि इस प्रकारके दीर्घायु तावतिस देव है।"

"राजन्य ! जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष न काला और न उजला देखे, न नीला, न पीला, न लाल, न मजीठ, न ऊँचा नीचा, न तारा, न चाँद और न सूरज देखे। वह ऐसा कहे—न काला है न उजला है न पीला ० न सूरज है और न उनको देखनेवाला कोई है। मैं उसे नही जानता, मैं उसे नही देखता, इसलिये वह नही है। राजन्य ! क्या उसका कहना ठीक होगा ?"

"हे काश्यप ! ऐसा नही। काला, उजला, पीला ० है और उनको देखनेवाला भी है। 'मैं उसे नही जानता हूँ, मै उसे नही देखता हूँ, इसलिये वे नही है'—ऐसा कहनेवाला हे काश्यप ! ठीक नही कहता है।"

"राजन्य ! मै समझता हूँ कि तुम भी उसी जन्मान्धके ऐसे हो जो मुझे ऐसा कहते हो—हे काश्यप ! आपसे कौन कहता है ०। राजन्य ! जैसा तुम समझते हो, परलोक वैसा इसी मासकी आँखोसे नही देखा जा सकता। राजन्य ! जो श्रमण ब्राह्मण निर्जन वनोमे एकान्तवास करते है, वे वहाँ प्रसन्न-चित्त हो सयमसे रहते दिव्यचक्षुको पाते है। वे अलौकिक दिव्यचक्षुसे इस लोकको, परलोकको ० देखते है। राजन्य ! इस तरह परलोक देखा जाता है, न कि इस मासवाली आँखोसे, जैसा कि तुम समझते हो। राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हे समझना चाहिए—यह लोक है, परलोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहे ०।"

(२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा

"राजन्य ! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मै ऐसे सदाचारी तथा पुण्यात्मा (=कल्याणधर्मि) श्रमण ब्राह्मणोको देखता हूँ, जो जीनेकी इच्छा रखते है, मरनेकी इच्छा नही रखते, दु खसे दूर रह सुख चाहते है। हे काश्यप ! तब मेरे मनमे यह होता है—यदि ये सदाचारी, पुण्यात्मा श्रमण ब्राह्मण यह जानते कि मरनेके बाद हमारा श्रेय होगा, तो वे ० इसी समय विष खा, छुरा भोक, गला-घोट, गळ्हेमे गिरकर (आत्मघात) कर लेते। चूँकि ये सदाचारी पुण्यात्मा श्रमण और ब्राह्मण ऐसा नही जानते, कि मरकर उनका श्रेय होगा, इसी लिये वे ० (आत्मघात) नही करते। यह भी काश्यप ! ० न यह लोक, न पर-लोक ०।"

"राजन्य ! तो मै एक उपमा कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग झट बातको समझ जाते है। राजन्य ! पुराने समयमे एक ब्राह्मणकी दो स्त्रियाँ थी। एकको दस या बारह वर्षका एक लळका था और दूसरी गर्भवती थी। इतनेमे वह ब्राह्मण मर गया। तब उस लळकेने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन,धान्य और सोना चाँदी है सभी मेरा है। तुम्हारा कुछ नही है। यह सब मेरे पिता का तर्का (=दाय) है। उसके ऐसा कहने पर ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो जब तक मै प्रसव कर लूँ। यदि वह लळका होगा तो उसका भी आधा हिस्सा होगा, यदि लळकी होगी तो उसे भी तुम्हे पालना होगा।

"दूसरी बार भी उस लळकेने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन ०।

"दूसरी बार भी ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो ०।

"तीसरी बार भी ०।

"तब उस ब्राह्मणीने (यह सोच) छुरा ले, कोठरीमे जा अपना पेट फाळ डाला, कि अभी प्रसव करना चाहिये, चाहे लळका हो या लळकी। (इस प्रकार) वह स्वय मर गई और गर्भ भी नष्ट हो गया।

"जिस प्रकार बुरी तरहसे दायकी इच्छा रखनेवाली वह मर्ख अजान स्त्री नाशको प्राप्त हुई, तुम भी परलोककी इच्छा रखते मूर्ख, अजान हो उसी तरह नाशको प्राप्त होगे, जैसे कि वह ब्राह्मणी ०।

"राजन्य ! इसीलिये वे ० श्रमण ब्राह्मण अपरिपक्व को नहीं पकाते, बल्कि पण्डितोकी तरह परिपाककी प्रतीक्षा करते है। राजन्य ! उन ० श्रमण ब्राह्मणोको जीनेमे मतलब है। वे ० जितना अधिक जीते है उतना ही अधिक पुण्य करते है। लोगोके हितमें लगे रहते है, लोगोंके सुखमें लगे रहते हैं।

"राजन्य ! इस कारणमे भी तुम्हे समझना चाहिये ०।"

"हे काश्यप! चाहे आप जो कहे, ० यह लोक नही ०।

१—"राजन्य! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य! वह क्या ?"

(३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं

"हे काश्यप! मेरे नौकर लोग चोरको पकळकर मेरे पास ले आते हैं—'स्वामिन्! यह आपका चोर है, इसे जो उचित समझे दण्ड दे।' उन्हे मै ऐसा कहता हूँ—'तो इस पुरुषको जीते जी एक बळे हडेमे डाल, मुँह बदकर, गीले चमळेसे बाँध गीली मिट्टी लेपकर चूल्हेपर रख आँच लगावो।'

'बहुत अच्छा' कह वे उस पुरुषको ० आँच लगाते है।

"जब मै जान लेता हूँ कि वह पुरुप मर गया होगा तब मै उस हडेको उतार, धीरेसे मुँह खोलकर देखता हूँ, कि उसके जीवको बाहर निकलते देखूँ, किंतु उसके जीवको निकलते हुये नही देखता। हे काश्यप! इस कारणसे भी ० यह लोक भी नही ०।

"राजन्य! तब मै तुम्हीसे पूछता हूँ ०।

"राजन्य! दिनमे सोते समय क्या तुमने कभी स्वप्नमे रमणीय आराम, रमणीय वन, रमणीय भूमि या रमणीय पुष्करिणी नही देखी है ?"

"हे काश्यप! हाँ, दिनमे ० रमणीय पुष्करिणी देखी है।"

"उस समय कुबळे भी, बौने भी, स्त्रियाँ भी, कुमारियाँ भी क्या तुम्हारे पहरेमे नही रहती ?"

"हे काश्यप! हाँ, उस समय ० पहरेमे रहती है।"

"वे क्या तुम्हारे जीवको (उद्यानके लिये) निकलते और भीतर आते देखते है ?"

"नही, हे काश्यप!"

"राजन्य! जब वे तुम्हारे जीते हुयेके जीवको निकलते और भीतर आते नही देख सकते, तो तुम मरे हुयेके जीवको निकलते या भीतर आते कैसे देख सकते हो ?"

"राजन्य! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप! चाहे आप जो कहे ० ०।"

२—"राजन्य! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हे मै ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको (पहले) जीते जी तराजूपर तौलकर, रस्सीसे गला घोटकर मार दो, और फिर तराजूपर तौलो। 'बहुत अच्छा' कह-कर ० वे तौलते है। जब वह जीता रहता है तो हलका होता है, किंतु मरकर वही लोथ भारी हो जाती है।

"हे कस्सप! इस कारणसे भी ० यह लोक नही ०।"

"राजन्य! तो मै एक उपमा कहता हूँ ०। राजन्य! जैसे कोई पुरुप किसी सतप्त, आदीप्त, सप्रज्वलित दहकते हुये लोहेके गोलेको तराजूपर तौले, और फिर कुछ समयके बाद उसके ठडा हो जाने-पर उसे तौले। तो वह लोहेका गोला कब हलका होगा ? जब आदीप्त है तब, या जब ठडा हो गया है तब ?"

"हे काश्यप! जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ हो, आदीप्त होता है ०, तब हलका होता है। जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ नही होता, तो ठडा और बुझा भारी हो जाता है। राजन्य! इसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, श्वासके साथ, विज्ञानके साथ रहता है, तो हलका होता है। जब यह शरीर आयु ० श्वास ० विज्ञानके साथ नही ० रहता है तो भारी हो जाता है।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहे ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हे मै ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको विना मारे चमळा, मास, स्नायु, हड्डी और मज्जा अलग अलग कर दो, जिससे मै उसके जीवको निकलते देख सकूँ।

'बहुत अच्छा' कह वे ० अलग अलग कर देते है। जब वह मरणासन्न होता है, तो मै उनमे ऐसा कहता हूँ—इसको चित सुला दो, जिसमे कि मै इसके जीवको निकलते देख सकूँ। वे उस पुरुषको चित सुला देते है किंतु हम उसके जीवको निकलते नही देखते।

"फिर भी उन नौकरोको मै ऐसा कहता हूँ—इसे पट ०, करवट ०, दूसरी करवट ०, ऊपर खळा करो, हाथसे पीटो, ढेलासे मारो, लाठीसे मारो, शस्त्रसे मारो, हिलाओ डुलाओ, जिसमे कि मै इसके जीव ०। वे उस पुरुषको ० किंतु हम उसके जीवको निकलते नही देखते।

"उसकी वही आँखे रहती है, वही रूप रहते है, वही आयतन, किंतु देख नही सकता। वही श्रोत्र ०, वही शब्द ० किंतु सुन नही सकता। वही नासिका ०, वही गन्ध ० किंतु सूँघ नही सकता। वही जिह्वा ०, वही रस ० किंतु चख नही सकता। वही शरीर ०, वही स्प्रष्टव्य ० किंतु स्पर्श नही कर सकता।

"हे कस्सप ! इस कारण भी ० यह लोक नही ०।"

"राजन्य ! तो एक उपमा कहता हूँ ०। राजन्य ! बहुत दिन हुये कि एक शख बजानेवाला शख लेकर नगरसे बाहर, जहाँ एक ग्राम था वहाँ गया। जाकर बीच गाँवमे खळा हो तीन बार शख बजा, शखको जमीनपर रख, एक ओर बैठ गया। राजन्य ! तब उन सीमान्त देशके लोगोके मनमे यह हुआ—अरे ! ऐसा रमणीय, सुन्दर, मदनीय, चित्ताकर्षक और मोहित करनेवाला शब्द किसका है ? वे सभी इकट्ठे होकर शख बजानेवालेसे बोले—अरे ! ऐसा ० शब्द किसका है ?"

'यही शख है जिसका ऐसा ० शब्द है।'

"उन लोगोने उस शखको चित रख दिया—हे शख, बजो, बजो। किंतु शख नही बजा। उन लोगोने उस शखको पट, करवट ०। किंतु शख नही बजा।

"राजन्य ! तब शख बजानेवालेके मनमे यह आया—गाँवके रहनेवाले बळे मूर्ख है। इन्हे ठीक तरहसे शख बजाना नही आता ? उसने उन लोगोके देखते देखते शखको उठा, तीन बार बजा, वहाँसे चल दिया।

"राजन्य ! तब उस गाँववालोके मनमे यह आया—जब यह शख पुरुष, व्यायाम, और वायुके साथ होता है तब बजता है। जब यह शख न पुरुषके साथ, न व्यायामके साथ और न वायुके साथ होता है, तब नही बजता।"

"राजन्य ! उसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, श्वासके साथ, और विज्ञानके साथ होता है तब हिलता, डोलता, खळा रहता, बैठता, और सोता है। चक्षुसे रूप देखता है, कानसे शब्द सुनता है, नाकसे गध सूँघता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, शरीरसे स्पर्श करता है तथा मनसे धर्मोंको जानता है। जब यह शरीर न आयुके साथ ० होता है, तब न हिलता न डोलता ०।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहे ०।"

४–० "राजन्य ! वह कैसे ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हे मै ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषकी खाल उतार लो, जिसमे कि मै उसके जीवको देख सकूँ। वे ० खाल उतारते है, किन्तु हम लोग उसके जीवको नही देखते। फिर भी उन्हे मै कहता हूँ—इसका मास, स्नायु, हड्डी और मज्जा काट डालो, जिसमे कि मै इसके जीवको देख सकूँ। वे उस पुरुषके मास०को काट डालते है, किन्तु हम लोग उसके जीवको नही देखते।

"हे काश्यप ! इस कारणसे भी ० यह लोक नही है ०।"

"राजन्य ! तो मै एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमे कोई अग्नि-उपासक जटिल (=जटाधारी) जगलके बीच पर्णकुटीमे रहता था। राजन्य ! तब उस प्रदेशमे व्यापारियोका एक सार्थ (=कारवाँ) आया। वे व्यापारी उस अग्नि-उपासक जटिलके आश्रमके पास एक रात रह कर चले गये। राजन्य ! तब उस अग्नि-उपासक जटिलके मनमे यह हुआ—जहाँ इन व्यापारियोका मालिक है वहाँ चलूँ, इन लोगोसे कुछ सामान मिलेगा। तब वह ० जटिल उठकर जहाॅ बजारोका मालिक था वहाॅ गया। जाकर उस बजारोके आवास (=टिकनेके स्थान)मे एक छोटे, उत्तान ही लेट सकनेवाले बच्चेको छूटा पाया। देखकर उसके मनमे यह हुआ—यह मेरे लिये उचित नही है कि कोई मनुष्यका बच्चा मेरे देखते मर जाये। अत इस बच्चेको अपने आश्रममे ले जा, और पाल-पोषकर बळा करना चाहिये। तब उस जटिलने उस बच्चेको अपने आश्रममे ले जा, पालपोषकर बळा किया।

"जब वह लळका दस या बारह वर्षका हुआ तब उस जटिलको देहात (=जनपद)मे कुछ काम पळा। तब वह जटिल उस लळकेसे यह बोला—तात ! मै देहात जाना चाहता हूँ, तुम अग्निकी सेवा करना। अग्नि बुझने न पाये। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी है, ये लकळियाँ, ये दोनो अरणी है, अग्नि उत्पन्न करके फिर अग्निकी सेवा करना। तब उस (लळके)के खेलमे लगे रहनेसे (एक दिन) आग बुझ गई। उस लळकेके मनमे यह हुआ—पिताने मुझे ऐसा कहा था—हे तात ! अग्निकी सेवा करना, अग्नि बुझने न पावे। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी ०। अत मुझे अग्नि उत्पन्नकर, अग्निकी सेवा करनी चाहिये।

"तब उस लळकेने अग्नि निकालनेके लिये कुल्हाळीसे दोनो अरणियोको फाळ डाला। किन्तु अग्नि नही निकली। अरणियोको दो टुकडोमे, तीन टुकळोमे ० पाँच टुकळोमे, दस टुकळोमे, सौ टुकळोमे काट डाला, फिर उन टुकळोको ओखलमे कूट डाला, ओखलमे कूटकर हवामे उळा दिया जिसमे कि अग्नि निकले। अग्नि नही निकली।

"तब वह जटिल जनपदमे अपना काम समाप्तकर, जहाॅ अपना आश्रम था वहाँ आया। आकर उस लळकेसे बोला—तात ! अग्नि बुझी तो नही ?" 'हे तात ! खेलमे लग जानेके कारण अग्नि बुझ गई। तब मेरे मनमे यह आया—पिताने मुझे ऐसा कहा था—तात ! अग्निकी सेवा करना ०। अत अग्नि उत्पन्नकर अग्निकी सेवा करनी चाहिये। तब अरणियोको मैने दो टुकळोमे ० अग्नि नही निकली।'

"तब उस जटिलके मनमे यह आया—यह बालक नादान, मूर्ख है। कैसे ठीकसे अग्नि उत्पन्न करेगा ! उसके देखते देखते उसने अरणियोको ले, अग्नि उत्पन्न कर, उस लळकेसे कहा—तात ! अग्नि इस प्रकार उत्पन्न होती है, न कि उस बेढगे तरीकेसे जिससे कि तुम अग्निको खोज रहे थे।

"राजन्य ! तुम भी उसी तरह बाल और अजान होकर अनुचित प्रकारसे परलोककी खोज-कर रहे हो। राजन्य ! इस बुरी धारणाको छोळो, जिसमे कि तुम्हारा भविष्य अहित और दु खके लिये न होवे।"

२–मतत्यागमें लोकलाजका भय

१–"आप काश्यप ! जो कहे, किन्तु मै इस बुरी धारणाको नही छोळ सकता हूँ। कोसलराज **प्रसेनजित्** और दूसरे राजा भी जानते है कि **पायासी** राजन्य इस दृष्टि इस सिद्धान्तका माननेवाला है—यह लोक भी नही ०।

"हे काश्यप ! यदि मै इस बुरी धारणाको छोळ दूँ, तो लोग मुझे ताना देंगे—पायासी-राजन्य मूर्ख, अजान भ्रममे पळा हुआ था। मै तो क्रोधसे भी, अमरखसे भी, निष्ठुरतासे भी इसे लिये रहूँगा।"

"राजन्य ! तो मै एक **उपमा** ०। पुराने समयमे बहुतसे बजारे एक हजार गाळियोके साथ पूर्व देश (=जनपद)से पश्चिम देश (=जनपद)को जा रहे थे। वे जिस जिस मार्गसे जाते शीघ्र ही तृण, काष्ठ और हरे पत्तोको नष्ट कर देते थे। उस सार्थ (=कारवॉ)मे पॉच पाँच सौ गाळियोके दो मालिक थे। तब उन दोनोके मनमे यह हुआ—हम बजारोका, एक हजार गाळियोके साथ यह बहुत बळा सार्थ है। हम लोग जिस जिस रास्तेसे जाते है ०। तो हम लोग इस समूहको दो भागोमे बॉट दे। एकमे पाँच सौ गाळियाँ और दूसरे मे पॉच सौ गाळियॉ। उन लोगोने उस सार्थको दो भागोमे बॉट दिया।

"बजारोका एक मालिक बहुत-सा तृण, काष्ठ और जल साथमे ले एक ओर चल पळा। दो तीन दिन जानेके वाद उसने एक काले, लाल ऑखोवाले, तीर धनुष लिये, कुमुदकी माला पहने, भीगे कपळे और भीगे केशके साथ, कीचळ लगे हुए चक्कोवाले एक सुन्दर रथपर सामनेसे आते हुये एक पुरुषको देखा। देखकर यह बोला—'आप कहॉसे आते है ?'

'अमुक जनपदसे।'

'आप कहॉ जायेगे ?'

'अमुक जनपदको।'

'क्या अगले कान्तारमे बळी वृष्टि हुई है ?'

'हॉ अगले कान्तारमे बळी वृष्टि ०। मार्ग पानीसे भर गये है। बहुत तृण, काष्ठ और उदक है। आप लोग अपने पुराने तृण, काष्ठ और उदकके भारको यही फेक दे। हल्की गाळियोको ले जल्दी जल्दी आगे जाये, बैलोको व्यर्थ कष्ट मत दे।'

"तब वह बजारोका मालिक बजारोसे बोला—'यह पुरुष ऐसा कहता है—आगेवाले कान्तारमे ० बैलोको कष्ट मत दे। आप लोग पुराने तृण०को यही छोळ दे। गाळियोको हल्काकर आगे चले।'

'बहुत अच्छा' कह ० पुराने तृणको ० छोळ ० आगे चले।

"वे न तो पहली चट्टीपर तृण ० पा सके, न दूसरी चट्टीपर ० न सातवी चट्टीपर। वे सभी बळी आपत्तिमे पळे, और उस सार्थमे जितने मनुष्य और पशु थे सभीको वह राक्षस खा गया। वहाँ बची हुई हड्डियाँ रह गईं।

"जब बजारोके दूसरे मालिकने समझा—कि उस सार्थके निकले काफी दिन बीत चुके, तो वह भी बहुतसे तृण०को साथमे ले आगे चला। दो तीन दिन जानेके बाद उसने एक काले, लाल ऑखोवाले ०। ० बैलोको व्यर्थमे कष्ट मत दे।'

"तब उसके मनमे यह हुआ—'यह पुरुष ऐसा कहता है—आगेके कान्तारमे बळी वृष्टि ०। यह पुरुष न तो हम लोगोका मित्र है, न रक्त-सबधी। इसमे हम लोगोका कैसे विश्वास हो ? ये पुराने तृण ० छोळने योग्य नही है। इसलिये इसी तरह आगे चलना चाहिये।

'बहुत अच्छा' कह० वे बजारे चले। उन लोगोने न तो पहली चट्टीपर तृण ० पाया ०, न सातवी

चट्टीपर०। और उन्होने देखा, कि उस सार्थमे जितने मनुष्य और पशु थे, सभीको यह राक्षस खा गया हैं। उनकी वहाँ हड्डियाँ वची रह गई हैं।

"तव उसने वजारोको सवोधित किया—उस मूर्ख मालिक सार्थवाह (=नायक) होनेके कारण वह सार्थ इस प्रकार नष्ट हो गया। अच्छा हम लोगोके पास जो अल्प मूल्यवाले सामान हैं, उन्हे छोळ, इस समूहके जो वहुमूल्य माल हैं, उन्हे ले ले।

'वहुत अच्छा' कह० और उस कान्तारको स्वस्तिपूर्वक पार किया।

"राजन्य! इसी प्रकार तुम भी वाल, अजान हो अनुचित रीतिसे परलोककी खोज करते नष्ट होगे, जैसे वह पहला सार्थ। जो तुम्हारी वातोके सुनने और माननेवाले हैं वे भी ०।

"राजन्य! इस वुरी धारणाको छोळ दो, जिसमे कि तुम्हारा भविष्य अहित और दु खके लिये न हो।"

२–"आप काश्यप चाहे जो कहे ० कोसलराज प्रसेनजित और दूसरे राजा भी ०।"

राजन्य! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। वहुत पहले, एक सूअर पालनेवाला पुरुप अपने गाँवसे दूसरे गाँवमें गया। वहाँ उसने सूखे मैलेका एक ढेर देखा। उस ढेरको देखकर उसके मनमें यह आया—यह सूखे मैलेका एक वळा ढेर है। यह मेरे सूअरोका भक्ष्य है। अत मैं यहाँसे सूखे मैलेको ले चलूँ। तव वह अपनी चादर पसार, वहुतसे सूखे मैलेको वटोर गठरी वाँध, सिरपर रख चल दिया। उसके रास्तेमे जाते वक्त अचानक वळी वृष्टि होने लगी। वह चूते और टपकते मैलेकी गठरीको लिये, सिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहा था।

"उसे देखकर लोग कहने लगे—क्या आप पागल है? क्या आप सनकी है? क्यो इस चूते टपकते मैलेकी गठरीको लिये सिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहे है?'

"'आप ही लोग पागल हैं। आप ही लोग सनकी हैं। यह तो मेरे सूअरोका खाद्य है।'

"राजन्य! उसी तरह तुम मैलेकी गठरीको ले जानेवालेके समान मालूम पळते हो। राजन्य! इस वुरी धारणाको छोळ दो ०।"

३–"आप काश्यप चाहे जो कहे ०।" ०

"राजन्य! तो मैं एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमे दो जुआरी जुआ खेलते थे। उनमेंसे एक जुआरी हार या जीतके पासेको निगल जाता था। दूसरे जुआरीने उस ०को ० निगलते देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"'तुम तो विलकुल जीत लेते हो। मुझे पासोको दो, कि मैं उनको पूज लूँ। 'वहुत अच्छा' कह उस जुआरीने दूसरे जुआरीको पासे दे दिये।

"तव वह जुआरी पासोको विपमे भिगो दूसरे जुआरीसे वोला—'आओ, जूआ खेले।'

"वहुत अच्छा' ०।

"जुआरियोने पासा फेका फिर भी वह जुआरी ० पासाको निगल गया। दूसरे जुआरीने पहले जुआरीको ० निगलते हुये देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"तेज विपमे भिगोये पासेको निगलते हुये यह पुरुप नही समझ रहा है।

रे पापी, धूर्त! (पासेको) निगल। इसका फल भोगेगा॥१॥'

"राजन्य! तुम भी उसी जुआरीके समान मालूम होते हो। राजन्य! इस वुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

४–"चाहे आप काश्यप जो कहे ०।" ०

"राजन्य! तो मै एक उपमा कहता हूँ ०। पुराने समयमे एक वळा समृद्ध देश (=जनपद)

था। तब एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—जहाँ वह जनपद है वहाँ चले। थोळे ही दिनो मे कुछ धन कमा लायेंगे।

"'बहुत अच्छा' कहकर वे जहाँ वह जनपद था वहाँ गये। वहाँ उन लोगोने एक जगह बहुत सा सन पळा देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—यह बहुत सन फेका पळा है। तुम भी सनका एक गट्ठर बाँध लो, और मै भी सनका एक गट्ठर बाँध लूँ। दोनो सनके गट्ठरको लेकर चलेगे।

'बहुत अच्छा' कह, सनके गट्ठरको बाँधकर वे दोनो सनके गट्ठरको लिये जहाँ दूसरा गाँव था वहाँ पहुँचे। वहाँ उन लोगोने बहुतसा सनका कता सूत फेका देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—जिसके लिये सन होता है, वह सनका कता सूत यहाँ बहुतसा पळा है। सो तुम सनके गट्ठरको यही छोळ दो, (और) मै भी सनके गट्ठरको यही छोळ दूँगा। दोनो सनके कते सूतका भार बनाकर ले चले।

'मित्र! देखो, मै इस सनके भारको दूरसे ला रहा हूँ (और) यह बळी अच्छी तरह बँधा है। मेरे लिये यही काफी है।'

"तब पहले मित्रने सनके गट्ठरको छोळ सनके कते सूतका एक भार ले लिया। वे जहाँ दूसरा गाँव था, वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होने ० बुने हुये टाटको फेका देखा। देख कर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा—'जिसके लिये सन या सनका सूत चाहिये, वह टाट यहाँ ० है। अत सनके गट्ठरको छोळ दो ०। दोनो टाटके भारको लेकर चले।' ० दूरसे ०। मेरे लिये यही काफी ०।'

"तब उस मित्रने सनके कते सूतके भारको छोळ टाटके भारको ले लिया।

"वे दूसरे गाँव ०। ० बहुतसा क्षौम (=अलसीका सन) फेका देखा, बहुतसा क्षौमका कता सू०, ० बहुतसे क्षौमके वस्त्र ०,० कपास ०, ताँबा ०, राँगा ०, सीसा ०, चाँदी ० सुवर्ण ०।

'तुम ० गट्ठरको छोळ दो ०। दोनो सुवर्णके भारको लेकर चले।'

'इस सनके भारको मै दूरसे ला रहा हूँ। यह बहुत अच्छा कसकर बधा है। मेरे लिये यही काफी है ०।"

"तब उस मित्रने चाँदीके भारको छोळकर सुवर्णके भारको ले लिया। वे दोनो जहाँ उनका गाँव था, वहाँ लौट आये।

"तब उनमे जो सनके भारको लेकर घर लौटा, उसके न माँ-बाप उससे प्रसन्न हुये, न पुत्र, न स्त्री ०, न मित्र, न अमात्य ०। और न उसके बाद उसे सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ। और जो मित्र सोनेका भार लेकर घर लौटा, उसके माँ-बाप बळे प्रसन्न हुये, पुत्र, स्त्री ०। उसके बाद उसे बहुत सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ।

"राजन्य! तुम भी उस सनके भार ढोनेवालेके सदृश हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

"आप काश्यपकी पहली ही उपमासे मै सतुष्ट और प्रसन्न हो गया था। किंतु मैने इन विचित्र प्रश्नोत्तरोको सुननेकी इच्छाहीसे, ये उलटी बाते कही।

"आश्चर्य हे काश्यप! अद्‌भुत हे काश्यप, जैसे उलटेको सीधा करदे, ढँके हुयेको खोल दे, ०। उसी तरह आपने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। हे काश्यप! मै उन भगवान् गौतमकी शरणमे जाता हूँ, धर्म, और भिक्षु सघकी भी। हे काश्यप! आजसे जन्म भरके लिये मुझे उपासक धारण करे।"

३–सत्काररहित यज्ञका कमफल

"हे काश्यप ! मै एक महायज्ञ करना चाहता हूँ। हे काश्यप ! आप निर्देश करे जिससे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये हो। जिस प्रकारके यज्ञमे गौवे काटी जाती है, भेळ बकरियाँ काटी जाती हैं, कुक्कुट और सूकर काटे जाते है, तीन प्रकारके प्राणी मारे जाते हैं। उसके करनेवाले मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-सकल्प मिथ्या-वाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधिवाले हैं। इस प्रकारके यज्ञका न तो अच्छा फल होता है, न अच्छा लाभ होता है, न अच्छा गौरव होता है।"

"राजन्य ! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर वनमे प्रवेश करे। वह वहाँ बुरे खेतमे, ऊसर भूमिमे, बालू और काँटोवाली जगहमे सळे हुए, सूखे हुए, सार-रहित, न जमने लायक बीजको बोये। वृष्टि भी यथा समय खूब न बरसे। तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलताको प्राप्त होगे ? क्या कृषक अच्छा फल पायेगा ?"

"नही, हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह जिस यज्ञमे गौवे काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे न महाफल ० होता है। राजन्य ! जिस यज्ञमे गौवे नही काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे महाफल ० होता है।

"राजन्य ! जैसे कोई कृपक बीज और हल लेकर बनमे प्रवेश करे। वहाँ बालू और काँटोसे रहित अच्छे खेतमे अच्छे स्थानमे अखड, अच्छे, सूखे नही, सारवाले और शीघ्रतासे जमने योग्य बीजको वोए। कालोचित खूब वृष्टि भी होए। तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलताको प्राप्त होगे ?"

"हाँ, हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह, जिस प्रकारके यज्ञमे गौवे नही काटी जाती है, ० उस प्रकारके यज्ञसे महाफल ०।"

तव **पायासी राजन्य** सभी श्रमण, ब्राह्मण, कृपण(=गरीब), साधु और भिखमगोको दान दिलवाने लगा। उस दानमे कनी और बिलङ्ग (=काँजी)के भोजन दिये जाते थे—मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते थे। दान बाँटनेके लिये **उत्तर** नामक एक माणवक बैठाया गया था।

वह दान देकर ऐसा कहा करता था—इस दान द्वारा मेरा इसी लोकमे पायासी राजन्यसे समागम हो, परलोकमे नही।

पायासी राजन्यने सुना कि उत्तर माणवक दान दे कर ऐसा कहा करता है—"इस दान द्वारा ०। तव पायासी राजन्यने **उत्तर** ०को बुलाकर कहा—तात उत्तर ! क्या यह सच बात है कि तुम दान देनेके बाद ऐसा कहा करते हो—इस दानसे ० ?

"जी हाँ।"

"तात उत्तर ! ० ऐसा क्यो कहते हो—इस दानसे ० ? तात उत्तर ! हम तो पुण्य कमाना चाहते है, दानके फलहीकी तो हमे इच्छा है।"

"आपके दानमे कनी और काँजीका भोजन दिया जाता है, मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते है, जिन्हे कि आप पैरसे भी नही छूये, खाना और पहनना तो दूर रहे। आप हम लोगोके प्रिय और मनाप हैं। हम लोग अपने प्रियको अप्रियके साथ कैसे देख सकते है ?"

"तात उत्तर ! तो जिस प्रकारका भोजन मैं स्वय करता हूँ, उसी प्रकारका भोजन बाँटो, जिस प्रकारके वस्त्र मैं पहनता हूँ, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटो।"

'बहुत अच्छा' कह उत्तर माणवक ० जिस प्रकारका भोजन पायासी राजन्य स्वय करता था,

उसी प्रकारका भोजन बाँटने लगा, जिस प्रकारके वस्त्र पायासी राजन्य स्वय पहनता था, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटने लगा।

तब पायासी राजन्य बिना सत्कार रहित दान दे, दूसरेके हाथसे दान दिलवा, बेमनसे दान दे, फेक कर दान दे, मरनेके बाद **चातुर्महाराजिक** देवोके बीच उत्पन्न हुआ। उसे **सेरिस्सक** नाम छोटा-सा विमान मिला और जो उत्तर नामक माणवक उस दानपर बैठाया गया था, वह सत्कारपूर्वक दान दे, अपने हाथोसे दान दे, मनसे दान दे, ठीकसे दान दे, मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्ग लोक मे त्राय-स्त्रिश देवोके बीच उत्पन्न हुआ।

उस समय आयुष्मान् **गवाम्पति** अपने छोटे सेरिस्सक विमानपर दिनके विहारके लिये सदा बाहर निकला करते थे। तब **पायासी** देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् गवाम्पति थे वहाँ गया। जाकर ० एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे पायासी ० को ० गवाम्पति यह बोले—

"आवुस ! आप कौन है ?"

"भन्ते ! मै पायासी राजन्य हूँ।"

"आवुसो ! क्या आप इस धारणाके थे—यह लोक नही है ० ?"

"भन्ते ! हाँ, मै इस दृष्टिका था—यह लोक नही है ०। किंतु मै आर्य कुमार काश्यपके द्वारा इस बुरी धारणासे हटाया गया।"

"आवुस ! जो **उत्तर** नामक माणवक आपके दानमे बैठाया गया था सो कहाँ उत्पन्न हुआ है ?"

"भन्ते ! जो उत्तर नामक ० वह सत्कार पूर्वक ० दान दे मरनेके बाद ० हुआ है **त्रायस्त्रिश** देवोके बीच उत्पन्न हुआ है। और मै भन्ते ! सत्कारके बिना ० दान दे मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवताओमे उत्पन्न हुआ हूँ। भन्ते गवाम्पति ! तो आप मनुष्य लोकमे जाकर कहे—सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो ०। पायासी राजन्य सत्कारके बिना ० दान दे ० चातुर्महाराजिक देवोके बीच उत्पन्न हुआ, और ० उत्तर माणवक ० त्रायस्त्रिश देवताओमे ०।"

तब आयुष्मान् गवाम्पति मनुष्य-लोकमे आकर लोगोको यह उपदेश देने लगे—

"सत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो, मनसे दान दो, ठीकसे दान दो। **पायासी** राजन्य सत्कारके बिना ० दान देकर मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवोके बीच उत्पन्न ० और उत्तर माणवक ० त्रायस्त्रिश देवोमे उत्पन्न हुआ है।"

(इति महावग्ग ॥२॥)

३—पाथिक-वग्ग

२४—पाथिक-सुत्त (३।१)

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म त्याग। २—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु। ३—अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें। ४—अचेल पाथिक पुत्रकी पराजय। ५—ईश्वर-निर्माणवादका खंडन। ६—शुभविमोक्ष।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मल्ल देशमे अनूपिया नामक मल्लोके निगममे विहार कर रहे थे।

तव भगवान्ने पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षाके लिये अनूपियामे प्रवेश किया। तव भगवान्के मनमे यह हुआ—अनूपियामे भिक्षाटन करनेके लिये यह बहुत सवेरा है। क्यो न मैं जहाँ भार्गव-गोत्र परिव्राजकका आराम है, और जहाँ भार्गव-गोत्र परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तव भगवान् जहाँ ० भार्गवगोत्र परिव्राजक था वहाँ गये। भार्गवगोत्र परिव्राजकने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान् पधारे, भगवान्का स्वागत है, बहुत दिनोके वाद भगवान्का दर्शन हुआ है। यह आसन बिछा है, भगवान् बैठे।" भगवान् विछे आसनपर बैठ गये। भार्गव-गोत्र परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया।

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म-त्याग

एक ओर बैठे हुए भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! कुछ दिन हुए कि सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र जहाँ मै था वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—'हे भार्गव! मैंने भगवान्को छोळ दिया, अव मै भगवान्के धर्मको नही मानता।'

"भन्ते! क्या जो सुनक्खत्त ० कहता है वह ठीक है?"

"भार्गव! ० ठीक है। कुछ दिन हुए कि सुनक्खत्त ० जहाँ मै था वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! मै अव भगवान्को छोळ देता हूँ, मै अव आपके धर्मको नही मानता।'

"ऐसा कहनेपर मैंने ० यह कहा—'सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझसे कभी कहा था—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर?'

'नही भन्ते।'

'तुमने भी क्या मुझसे कहा था—'भन्ते! मै भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ?'

'नही, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! न तो मैंने कहा—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर, और न तूने ही मुझसे कहा—भन्ते! मै भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ। तव मूर्ख! तू किसको मानकर किसको छोळता है? मूर्ख! देख यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते! भगवान् मुझे अलौकिक ऋद्धिवल नही दिखाते।'

'सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझसे ऐसा कहा था—सुनक्खत्त! मेरे धर्मको स्वीकार कर, मैं तुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाऊँगा?'

'नही, भन्ते!'

'तो क्या तूने मुझसे कभी ऐसा कहा था—मैं भन्ते! आपके धर्मको मानता हूँ, आप मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावे?' 'नही, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! न मैंने ऐसा कहा ० और न तूने ऐसा कहा ०। तब, मूर्ख! किसका होकर तू किसको छोळता है?'

"सुनक्खत्त! तब क्या तू समझता है—मेरे अलौकिक ऋद्धि-बलके दिखानेसे या न भी दिखाने से दु:खोके बिलकुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा?'

"भन्ते! आपके अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाने या न दिखानेसे भी ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त! जब मेरे ० पूरा नही होगा तब मैं क्यो ० ऋद्धि-बल दिखलाऊँ? मूर्ख! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते! भगवान् मुझे लोगोमे आगे करके उपदेश नही देते।'

'क्या सुनक्खत्त! मैंने ऐसा कहा था—सुनक्खत्त! आ ०।'

'नही, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! क्या तूने मुझसे ऐसा कहा था—०?'

'नही, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! मैंने भी ऐसा नही कहा ० और तूने भी ऐसा नही कहा ०। तब मूर्ख! तू किसका होकर किसको छोळता है? क्या तू समझता है, सुनक्खत्त! लोगोमे आगे करके उपदेश देनेमे भी न देनेसे भी दु:खोके बिलकुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा?'

'भन्ते! ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त! ० जब पूरा हो जाता है तो लोगोमे आगे करके उपदेश देनेका क्या अर्थ? मूर्ख! देख, यह तेरा ही अपराध है। सुनक्खत्त! तूने वज्जी ग्राममे अनेक प्रकारसे मेरी प्रशसा की थी—वे भगवान् अर्हत् सम्यक् सबुद्ध ०[1] है। सुनक्खत्त! इस तरह तूने वज्जी ग्राममे मेरी प्रशसा अनेक प्रकारसे की थी। ० धर्मकी प्रशसा की थी—भगवान्का धर्म स्वाख्यात, ०[1] है। सुनक्खत्त! इस तरह ० धर्मकी प्रशसा ० की थी। ० सघकी ०—भगवान्का श्रावक-सघ सुप्रतिपन्न ०[1]। सुनक्खत्त! इस तरह ० सघकी प्रशसा ० की थी।

'सुनक्खत्त! तुम्हे कहता हूँ—लोग तुम्हे ही दोष देंगे—सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र श्रमण गौतमके शासनमे ० ब्रह्मचर्य पालन करनेमे असमर्थ रहा। वह असमर्थ हो, शिक्षाको छोळ, गृहस्थ बन गया। सुनक्खत्त! इस तरह लोग तुम्हे ही दोष देंगे।'

"भार्गव! मेरे इस प्रकार कहनेपर सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्र आपायिक=नैरयिक (=नारकीय)के ऐसा इस धर्म-विनयसे चला गया।

२—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु

"भार्गव! एक समय मैं थुलू देशमे उत्तरका नामवाले थुलुओके कस्बेमे विहार कर रहा था। भार्गव! मैं पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रको साथ ले उत्तरकामे भिक्षा-

[1] देखो पृष्ठ २८८।

टनके लिये गया। उस समय **अचेल कोरखत्तिय** कुक्कुर-व्रतिक (कुत्तेके जैसा) दोनो घुटनो और हाथोके बल बैठा, जमीनपर फेंके हुए अन्नको मुँहसे खा और चबा रहा था।

"भार्गव ! सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने उस कुक्कुरव्रतिक अचेल कोरखत्तियको ० खाते और चबाते देखा। देखकर उसके मनमे यह आया—'यह बळा पहुँचा हुआ अर्हत् श्रमण है, जो दोनो घुटने और हाथो-के बल ० खा और चबा रहा है।

"भार्गव ! तब मैंने **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्रके चित्तको चित्तसे जान उससे कहा—'मूर्ख ! क्या तू भी अपनेको **शाक्य-पुत्रीय** श्रमण समझेगा ?'

'भन्ते ! भगवान्‌ने ऐसा क्यो कहा—मूर्ख ! क्या तू भी ० ?'

'सुनक्खत्त ! इस ० अचेल कोरखत्तिय ०को खाते चबाते देखकर तेरे मनमे क्या यह नही आया—यह बळा ० अर्हत् श्रमण है ?'

'हाँ, भन्ते ! भगवान् दूसरेके अर्हत् होनेसे क्यो डाह करते है।'

'मूर्ख ! मै उसके अर्हत् होनेसे डाह नही करता। किन्तु जो तेरी यह बुरी धारणा (=पाप-दृष्टि) उत्पन्न हुई है, उसे छोळ दे, जिसमे कि तेरा भविष्य अहित और दु खके लिये न हो। सुनक्खत्त ! जिस अचेल **कोरखत्तिय**को तू समझ रहा है—यह ० अर्हत् श्रमण है ०, वह आजसे सातवे दिन **अलसक** रोगसे मरकर **कालकञ्जिका** नामक निकृष्ट असुर-योनिमे उत्पन्न होगा। मर जानेपर लोग उसे **वीरणत्थम्भक** नामक श्मशानमे छोळ देगे। यदि चाहे तो सुनक्खत्त ! अचेल कोरखत्तियके पास जाकर पूछ—आवुस अचेल ! अपनी गति तुम्हे मालूम है ? सुनक्खत्त ! यह बात है जिसे वह ० बतलावेगा—आवुस सुनक्खत्त ! मै अपनी गति जानता हूँ। कालकञ्जिका नामक असुर ० होऊँगा।'

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ अचेल कोरखत्तिय था वहाँ गया। ० बोला—आवुस कोरखत्तिय ! श्रमण गौतम कहते है—अचेल कोरखत्तिय आजसे सातवें दिन ०। ० श्मशानमे छोळ देगे। अत, आवुस ० ! तुम बहुत हिसाबसे खाओ और पीओ, जिससे श्रमण गौतमका कहना झूठा हो जावे।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र तथागतमे अविश्वास करके एक दो दिन करके सात दिन गिनने लगा। भार्गव ! तब सातवें दिन अचेल ० अलसक रोगसे मर गया ० लोग उसे ० श्मशानमे छोळ आये। भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने सुना—अचेल कोरखत्तिय मर गया है ०, लोग उसे ० श्मशानमे छोळ आये है। भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ ० श्मशानमे अचेल कोरखत्तिय था, वहाँ गया। जाकर अचेल कोरखत्तियको उसने तीन बार थपथपाया—आवुस कोरखत्तिय ! अपनी गति जानते हो ?'

"भार्गव ! तब अचेल कोरखत्तिय पीठ पोछते हुए उठ खळा हुआ—'आवुस ० ! मै अपनी गति जानता हूँ। कालकञ्जिका नामक निकृष्ट असुर-योनिमे उत्पन्न हुआ हूँ।' इतना कहकर वही चित गिर गया।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। भार्गव ! एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रसे मैंने कहा—'सुनक्खत्त ! तो क्या समझता है—जैसा मैंने अचेल कोरखत्तियके विषयमे कहा था, वैसा ही हुआ या दूसरा ?'

'भन्ते ! भगवान्‌ने ० जैसा कहा था वैसा ही हुआ, दूसरा नही।'

'सुनक्खत्त ! तो तू क्या समझता है—ऐसा होनेपर यह अलौकिक ऋद्धि-बल हुआ या नहीं ?'

'भन्ते ! ऐसा होनेपर ० ऋद्धि-बल हुआ, 'नही नही' हुआ।'

'मूर्ख ! इस तरह मेरे ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ० ऋद्धि-बल नही दिखाते है ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र, अपायिक—नारकीयकी भाँति इस धर्मसे चला गया।

३—अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें

"भार्गव ! एक समय मै **वैशालीके** पास **महावनकी कूटागारशालामे** विहार करता था। उस समय **अचेल कोरमट्टक वज्जियोके** ग्राम वैशालीमे बळे लाभ और बळे यशको प्राप्त हो निवास करता था। उसने सात व्रत ग्रहण किये थे—(१) जीवन भर नगा रहूँगा, वस्त्र-धारण नही करूँगा, (२) जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा, मैथुन-धर्मका सेवन नही करूँगा, (३) जीवन भर मास खाकर और सुरा पीकर ही रहूँगा, भात दाल नही खाऊँगा, (४) वैशालीमे पूरबकी ओर **उदयन** नामक चैत्यके आगे न जाऊँगा, (५) ० दक्षिणमे **गोतमक** नामक चैत्य ०। (६) ० पश्चिममे **सप्ताम्रक** नामक चैत्य ०। (७) ० उत्तरमे **बहुपुत्रक** नामक चैत्यके आगे न जाऊँगा। वह इन सात व्रतोको लेनेके कारण वज्जियोके ग्राममे बळे लाभ और यशको प्राप्त था।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ अचेल कोरमट्टक था, वहाँ गया। जाकर उसने अचेल कोरमट्टकसे कुछ प्रश्न पूछे। उन प्रश्नोके पूछे जानेपर अचेल कोरमट्टक उत्तर न दे सका। उत्तर न दे वह क्रोध, द्वेष और असतोष प्रगट करने लगा।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रके मनमे यह आया—ऐसे पहुँचे हुए अर्हत् श्रमणको मैने चिटा दिया, कही मेरा भविष्य अहित और दु खके लिये न हो।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मे था वहाँ आया। आकर मुझे अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैने कहा—'मूर्ख ! क्या तू भी अपने को **शाक्यपुत्रीय** श्रमण कहेगा ?' 'भन्ते ! भगवान्ने ऐसा क्यो कहा ० ?'

'सुनक्खत्त ! क्या तूने अचेल कोरमट्टकके पास जाकर प्रश्न नही पूछे ०। वह प्रकट करने लगा। तब तेरे मनमे यह आया—ऐसे पहुँचे ० मेरा भविष्य अहित और दु खके लिये न हो।'

'हाँ, भन्ते ! ० क्यो डाह करते है ?'

'मूर्ख ! मे ० डाह नही करता। किन्तु जो तुझे यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई हे, उसे छोळ दे। जिससे कि तेरा भविष्य अहित और दु खके लिये न हो। सुनक्खत्त ! जिस अचेल कोरमट्टकको तू ऐसा समझता है—पहुँचा हुआ ० वह शीघ्र ही कपळे पहन, स्त्रीके साथ, दाल भात खाते, वैशालीके सभी चैत्योको पारकर अपने सारे यशको खो विचरते हुए मर जायेगा।'

"भार्गव ! तब कुछ ही दिनोके बाद अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया। सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्रने सुना—'अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया।'

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मै था वहाँ आया ० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैने कहा—सुनक्खत्त ! तो क्या समझता है, जैसा मैने अचेल कोरमट्टकके विषयमे कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ या दूसरा ?

'भन्ते ! भगवान्ने जैसा कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ, दूसरा नही।'

'सुनक्खत्त ! ० ऋद्धि-बल हुआ या नही ?' 'भन्ते ! ० ऋद्धि-बल हुआ ०।'

'मूर्ख ! इस तरह मेरे ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ०

ऋद्धि-बल नही दिखाते है ? मूर्ख ! देख यह तेरा ही अपराध है ।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनखत्त ० चला गया ।

४—अचेल प्राथिक-पुत्रकी पराजय

"भार्गव ! एक समय मै वही वैशालीके महावनकी कूटागारशालामे विहार करता था । उस समय अचेल पाथिक-पुत्र बळे लाभ और बळे यशको प्राप्तकर वज्जियोके ग्राम वैशालीमे वास करता था । वह वैशालीमे सभाओके बीच ऐसा कहा करता था—श्रमण गौतम ज्ञानवादी है, मै भी ज्ञानवादी हूँ । ज्ञानवादीको ज्ञानवादीके साथ अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाना चाहिये । श्रमण गौतम आधा मार्ग आवे और मै भी आधा मार्ग जाऊँ । हम दोनो वहाँ मिलकर अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावे । यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धि-बल दिखावेगे तो मे दो दिखाऊँगा, यदि श्रमण गौतम दो ० तो मै चार, यदि ० चार ० तो मै आठ ० । इस तरह श्रमण गौतम जितना ० दिखलायेगे, मै उसका दूना दिखलाऊँगा ।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मै था वहाँ आया । ० बैठ गया । एक ओर बैठे ० कहा—'भन्ते अचेल पाथिकपुत्र ० ऐसा कहता है ० । इस तरह श्रमण गौतम जितना ० उसका मै दूना ० ।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर मैने सुनक्खत्त ० से यह कहा—'सुनक्खत्त ! अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है, यदि वह इस बातको बिना छोळे, इस चित्तको बिना छोळे, इस दृष्टिको बिना छोळे ० मेरे सामने आवे । यदि उसके मनमे ऐसा भी हो—मै उस बातको बिना छोळे ० श्रमण गौतम के निकट चलूँ, तो उसका शिर भी फट जायेगा ।'

'भन्ते ! भगवान् रहने दे इस वचनको, सुगत रहने दे इस वचनको ।'

'सुनक्खत्त ! तूने मुझसे ऐसा क्यो कहा—भन्ते ! भगवान् रहने दे ० ?'

'भन्ते ! भगवान्ने तो पक्की तौरसे कह दिया—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० शिर भी फट जायेगा । भन्ते ! यदि अचेल पाथिकपुत्र विरूप वेशमे भगवान्के सामने आ जाये तो यह भगवान्की बात झूठ हो जायेगी ।'

'सुनक्खत्त ! तथागत क्या ऐसी बात बोलते है जो अन्यथा हो ?'

'भन्ते ! क्या भगवान्ने अचेल पाथिकपुत्रके चित्तको अपने चित्तसे जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० ? या किसी देवताने भगवान्से यह कह दिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ० ?

'सुनक्खत्त ! मैने अपने चित्तसे उसके चित्तको जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ० ।' और देवताओने भी मुझे कहा है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ० । अजितनामक लिच्छवियोका सेनापति अभी अभी मरकर त्रायस्त्रिश लोकमे उत्पन्न हुआ है । उसने भी मेरे पास आकर कहा है—भन्ते ! अचेल पाथिकपुत्र निर्लज्ज है, झूठा है । अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ० । सुनक्खत्त ! मैने अपने चित्तसे भी जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्र का ऐसा कहना ० । देवताने भी ० । सुनक्खत्त ! कल मै वैशालीमे भिक्षाटनसे लौट, भोजनोपरान्त दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ चलूँगा । सुनक्खत्त ! जो तू चाहता है सो कर ।'

"भार्गव ! तब मै पूर्वाह्ण समय पहनकर ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम था, वहाँ गया ।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त घबळाया हुआ सा वैशालीमे प्रविष्ट हो, जहाँ बळे बळे लिच्छवी थे वहाँ गया । जाकर ० बोला—'यह भगवान् वैशालीमे भिक्षाटनके बाद दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ गये हुए है । आप लोग चले—पहुँचे हुए श्रमण अलौकिक ऋद्धि-बल दिखायेगे ।'

'हाँ ! हम लोग चलेगे।'

"(फिर वह) 'जहाँ बळे बळे ब्राह्मणमहाशाल, धनी वैश्य, नाना प्रकारके साधु, श्रमण और ब्राह्मण थे वहाँ गया। जाकर ० बोला—ये भगवान् ० जहाँ अचेल०का आराम ०। ० चले। ० ऋद्धि-बल दिखायेगे।'

'हाँ, हम लोग चलेगे।'

"भार्गव ! तब बळे बळे लिच्छवि, बळे बळे ब्राह्मण महाशाल, ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम था, वहाँ पहुँचे। कई सौ और कई हजारोका जमघट हो गया।

"भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्रने सुना—बळे बळे लिच्छवी० बळे बळे ब्राह्मण० आये हुए है। श्रमण गौतम मेरे आराममे दिनके विहारके लिये बैठे है। सुनकर उसे भय, कप, और रोमाञ्च होने लगे। भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्र भयभीत, सविग्न, और रोमाञ्चित हो जहाँ **तिन्दुकखाणु** (नामक) परिव्राजकोका आराम था, वहाँ चला गया।

"भार्गव ! उस सभाने यह सुना—अचेल पाथिकपुत्र भयभीत हो ० चला गया है। भार्गव ! तब उस सभाने किसी पुरुषसे कहा—जहाँ ० परिव्राजको का आराम है और जहाँ अचेल पाथिकपुत्र है वहाँ जाओ। जाकर ० यह कहो—पाथिकपुत्र ! चले, बळे बळे लिच्छवी ० आये हुए है, और श्रमण गौतम भी आयुष्मान्‌के आराममे दिनके विहारके लिये बैठे है। आवुस पाथिकपुत्र ! आपने **वैशालीमे** सभाके बीच यह वात कही थी—श्रमण गौतम भी ज्ञानवादी ० उससे दुगुना ऋद्धि-बल दिखाऊँगा। आवुस ० ! आधे मार्गको छोळ श्रमण गौतम सर्वप्रथम ही आयुष्मान्‌के आराम मे आकर दिनके विहारके लिये बैठे है।'

'बहुत अच्छा' कह वह पुरुष ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर ० बोला—'आवुस ० ! चले, बळे बळे लिच्छवी ०।'

"भार्गव ! ऐमा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस, चलता हूँ। आवुस, चलता हूँ।' कहकर वही रुक गया, आसनसे उठ भी नही सका। भार्गव ! तब वह पुरुष अचेल पाथिकपुत्रसे यह बोला—'आवुस ० ! आपको क्या हो गया है ? क्या आपकी देह पीढेमे सट गई है, या पीढा ही आपकी देहमे सट गया है ? जो 'आवुस, चलता हूँ ०' कहकर वही रुक जाते हो, आसनसे उठते भी नही।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर ० उठ भी नही सका। भार्गव ! जब उस पुरुषने समझ लिया—यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है, 'चलता हूँ चलता हूँ' कहकर ० उठ भी नही सकता, तब उसने सभामे आकर कहा—'यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है। 'चलता हूँ, चलता हूँ'—कहकर ० उठ भी नही सकता।'

"भार्गव ! उसके ऐसा कहनेपर मैने सभासे यह कहा—'अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० शिर भी फट जायगा।'

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"भार्गव ! तब लिच्छवियोके एक अफसरने आसनसे उठकर सभामे कहा—'तो आप लोग थोळी और प्रतीक्षा करे। मै जाता हूँ, शायद मै अचेल पाथिकपुत्रको इस सभामे ला सकूँ।'

"भार्गव ! तब वह लिच्छवियोका मन्त्री ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर अचेल पाथिकपुत्रसे बोला—'आवुस पाथिक-पुत्र ! चले, आपका चलना बळा अच्छा होगा। बळे-बळे लिच्छवी ० आये है। आपने ० सभाके बीच यह वात कही थी—श्रमण गौतम ज्ञानवादी ०।

आवुस।० ! श्रमण गौतमने सभामे यह बात कही है—अचेल ०का ऐसा कहना अनुचित ०। आवुस०! चले। चलनेहीसे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण गौतमकी हार हो जायेगी।'

"भार्गव! ऐसा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस! चलता हूँ०' कहकर ० उठ भी नही सका। भार्गव! तब ० अफसरने अचेल पाथिकपुत्रसे कहा—क्या ० पीढा सट गया है ०। जब मन्त्रीने जान लिया—अचेल ० हार सा गया है, 'चलता हूँ ०' कहकर ० उठ भी नही सकता, तो सभामे आकर कहा—'अचेल हारसा गया ० उठ भी नही सकता।'

"भार्गव! उसके ऐसा कहनेपर मैंने सभामे कहा—० अनुचित था ०। यदि आप आयुष्मान् लिच्छवियोके मनमे यह हो—हम लोग अचेल पाथिकपुत्रको रस्सीसे बाँध, बैलकी जोळीसे खीच लावेगे, तौ भी चाहे तो रस्सी ही टूट जाय्गी या पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा (किंतु वह अपने आसनको नही छोळेगा) अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित ०।'

"भार्गव! तब, **दारुपत्तिक**का शिष्य **जालिय** आसनसे उठकर सभामे बोला—तो आप लोग थोळी और प्रतीक्षा करे ०। जहाँ अचेल वहाँ गया ० चले। ० तुमने यह बात कही थी ० ज्ञानवादी ०। ० आवुस पाथिक-पुत्र! आप चले। चलनेहीमे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण गौतमकी हार हो जायेगी।'

"भार्गव! 'चलता हूँ, चलता हूँ।' कह ० आसनसे भी नही उठ सका।

"भार्गव! तब जालिय ० ने अचेल पाथिकपुत्रसे यह कहा—० क्या सट गया है? ० आसनसे भी नही उठता?'

"भार्गव! ० आसनसे भी नही उठ सका। जब ० जालियने समझ लिया—अचेल नही मानेगा—'चलता हूँ, चलता हूँ।' कहकर ० आसनसे उठना भी नही, तब उससे कहा—'आवुस पाथिकपुत्र! पुराने समयमे एक बार मृगराज सिंहके मनमे यह आया—मै किसी वनमे जाकर वास करूँ, वहाँ वासकर सायकाल अपनी माँदसे निकलूँगा। माँदसे निकलकर जँभाई लूँगा। जँभाई लेकर चारो ओर देखूँगा। चारो ओर देखकर तीन बार सिंह-नाद करूँगा। तीन बार सिंह-नाद करके गोचर-(=शिकार)के लिये प्रस्थान करूँगा। वहाँ अच्छे अच्छे जानवरोको मार, नरम नरम मास खा, उसी माँदमे चला आऊँगा।

तब वह मृगराज सिंह किसी वनमे जाकर वास करने लगा, ० नरम नरम मास खा, उसी माँदमे आकर रहने लगा। पाथिकपुत्र! उसी मृगराज सिंहके जूठे छुटे माँसको खाकर एक बूढा स्यार मोटा और बलवान् हो गया।

"आवुस पाथिकपुत्र! तब उस बूढे स्यारके मनमे यह आया—क्या मै हूँ, क्या मृगराज सिंह है? मै भी क्यो न किसी वनमे जाकर वास करूँ ० सायकाल माँदसे निकलूँगा ० सिंह-नाद करूँगा ० अच्छे अच्छे जानवरोको मार, नरम नरम मास खा, उसी माँदमे चला आऊँगा। 'आवुस! तब वह बूढा स्यार किसी वनमे जाकर वास करने लगा, ० सायकाल माँदसे निकला, ० जँभाई ली, ०चारो ओर देखा, चारो ओर देखकर 'तीन बार सिंह-नाद करूँगा' करके कर्कश स्यारोका ही शब्द (हुँवा, हुँवा) करने लगा। भला, कहाँ सिंह-नाद और कहाँ एक तुच्छ स्यारका हुँवा हुँवा।

'आवुस पाथिक! इसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओसे जीनेवाले और उनका जूठा खानेवाले आप सम्यक्-सम्बुद्ध, अर्हत्, तथागतका सामना कैसे करना चाहते थे? कहाँ तुच्छ पाथिक-पुत्र और कहाँ सम्यक्-सम्बुद्ध अर्हत् तथागतोका सामना करना?'

"भार्गव! दारुपत्तिकका शिष्य जालिय, इस उपमासे भी अचेल पाथिकपुत्रको उस आसनसे हिला नही सका। तब, बोला—

'अपनेको सिह मान स्यारने समझा कि मै मृगराज हूँ, और ऐसा कह' ।
"हुँवा, हुँवा" करने लगा, कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिह-नाद ॥१॥

'आवुस ० ! उसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओसे जीनेवाले ० आप मानो अर्हत् तथागत सम्यक् सम्बुद्धका सामना करना चाहते थे। कहाँ तुच्छ पाथिक-पुत्र और कहाँ ० सम्बुद्धोका सामना करना ?

"भार्गव ! तब भी जालिय ० अचेल **पाथिकपुत्र** को उस आसनसे नही हिला सका। तो बोला—

'जूठेको खा, अपनेको (मोटा) देख, जब तक अपने स्वरूपको नही पहचानता, तब तक स्यार अपनेको व्याघ्र समझता है।
वह उसी तरह स्यारके ऐसा 'हुँवा, हुँवा' करता है।
कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिह-नाद ! ॥२॥

"आवुस ! उसी तरह सुगतकी ही ० सामना करना चाहते थे। कहाँ ० पाथिकपुत्र ० ! ० तब बोला—

'मेढक, चूहो, श्मशानमे फेके मुर्दोको खाकर बूढा (स्यार) छोटे या बळे जगलमें रहता था।
स्यारने समझा—मै मृगराज हूँ। उसी तरह वह 'हुँवा, हुँवा' करने लगा।
कहाँ एक तुच्छ स्यार और कहाँ सिह-नाद !' ॥३॥

" ० इस **उपमा** से भी अचेल पाथिकपुत्रको अपने आसनसे नही हिला सका।

"तब वह उस सभामे आकर यह बोला—अचेल पाथिकपुत्र हार ही गया है। 'चलता हूँ' 'चलता हूँ' कहकर ० आसनमे नही उठता ।

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर मैंने सभामे यह कहा—० अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित ० । ० या रस्मी टूट जायेगी या अचेल पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा। ० अनुचित ०'।

"भार्गव ! तब मैंने उस सभाको धार्मिक उपदेशोसे समझाया, बुझाया, उत्साहित तथा प्रसन्न-किया। उस सभाको धार्मिक उपदेशोसे ० प्रसन्नकर, ससारके बळे बन्धनसे मुक्त किया। चौरासी हजार प्राणियोको भवसागरसे उबारा, फिर अग्नितत्त्व (=तेजो धातु)को (ध्यानसे) ग्रहणकर, सात ताल आकाशमे ऊपर उठ और सात ताल ऊँचा अपने तेजको फैला और (स्वय) धुँआ देते, प्रज्वलित हो **महावन** की कूटागारशालाके ऊपर उठा।

"भार्गव ! तब **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्र जहाँ मै था वहाँ गया। ० एक ओर बैठे सुनक्खत्त ०-को मैंने कहा—'सुनक्खत्त ! तो तू क्या समझता है—अचेल पाथिक-पुत्रके विषयमे जैसा मैंने कहा था वैसा ही हुआ या दूसरा ?'

'भन्ते ! ० जैसा आपने कहा था वैसा ही हुआ, दूसरा नही।'

'सुनक्खत्त ! तो तू क्या समझता है—० ऋद्धि-बल दिखाया गया या नही ?'

'भन्ते ! ० दिखाया गया ०।'

मूर्ख ! ० दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् ० (ऋद्धि) नही दिखाते। मूर्ख ! देख यह तेरा ही दोष है।' भार्गव ! ० सुनक्खत्त ० चला गया।

"भार्गव ! मै अग्र (श्रेष्ठ)को जानता हूँ। मै उसे जानता हूँ, उससे भी अधिक जानता हूँ। उसे जानकर वैसा अभिमान भी नही करता । अभिमान न करते हुये मै अपने भीतरही भीतर मुक्तिका अनुभव करता हूँ, जिस अनुभव के करनेसे तथागत फिर कभी दुख नही पाते ।

५—ईश्वर निर्माणवादका खंडन

"भार्गव ! जो श्रमण ब्राह्मण ईश्वर (=इस्सर) या ब्रह्माक (सृष्टि)कर्तापनके मत (=आचार्यक)को अग्रणी (=श्रेष्ठ) बतलाते है, उनके पास जाकर मै यो कहता हूँ—क्या सचमुच आप लोग ईश्वर०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते है ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते है।

"उन्हे मै ऐसा कहता हूँ—'आप लोग कैसे ईश्वर ०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बताते है ?' मेरे ऐसे पूछने पर वे उत्तर नही दे सकते। उत्तर न देकर वे मुझहीसे पूछने लगते है। उन लोगोके पूछनेपर मैं उनका उत्तर देता हूँ।—'आवुसो ! बहुत दिनोके बीतनेपर कोई समय आवेगा जब इस लोकका प्रलय होगा। प्रलय हो जानेपर (भी) जो आभास्वर योनिमे जन्मे प्राणी मनोमय, प्रीति भोजी, स्वयप्रभ, अन्तरिक्षगामी और शुभस्थायी होते है वही चिरकाल तक रहते है।

"आवुसो ! बहुत काल बीतनेपर कोई समय आवेगा, जब इस लोककी उत्पत्ति (=विवर्त) होती है। लोकके विवर्त हो जानेपर, शून्य ब्रह्म-विमान (=ब्रह्मलोक) प्रकट होता है। तब (आभास्वर देवलोकका) कोई प्राणी आयुके क्षीण होनेसे, या पुण्यके क्षीण होनेसे, (आभास्वर लोक)से च्युत हो शून्य ब्रह्म-विमानमे उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय प्रीतिभोजी ० होता है। वह वहाँ बहुत दिनो तक रहता है। वहाँ बहुत दिनो तक अकेले रहनेके कारण उसका जी ऊब जाता है और उसे भय मालूम होने लगता है—'अहो ! दूसरे प्राणी भी यहाँ आवे'। उसी समय दूसरे प्राणी भी आयु ० पुण्यके क्षय होनेसे ० पहिलेवाले प्राणीके साथी हो शून्य ब्रह्म-विमानमे उत्पन्न होते है। वे भी वहाँ मनोमय ० होते है। ० बहुत दिन तक रहते है।

"आवुस ! जो प्राणी वहाँ पहले उत्पन्न होता है, उसके मनमे यह होता है—'मै ब्रह्मा, महा-ब्रह्मा, अभिभू (=विजेता) अन्-अभिभूत, सर्वज्ञ, वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्वामी (=वशी) और भूत तथा भविष्यके प्राणियोका पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियोको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? मेरे ही मनमे यह पहले हुआ था—अहो ! दूसरे भी प्राणी यहाँ आवे। अत मेरे ही मनसे उत्पन्न होकर ये प्राणी यहाँ आये है। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुये, उनके मनमे भी यह आता है—'यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर, (सृष्टि)कर्त्ता, ० पिता है। इसने०ही हम लोगोको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? इसको हम लोगोने यहाँ पहलेहीसे विद्यमान पाया, हम लोग (तो) पीछे उत्पन्न हुये।'

"आवुसो ! जो प्राणी पहले उत्पन्न होता है, वह दीर्घ-आयु, अधिक रोबवाला और अधिक सम्मानित होता है। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न होते है, वे अल्प-आयु कमरोबवाले, कम सम्मानित होते है। आवुसो ! यही कारण है कि दूसरा प्राणी (जब) उस कायाको छोळ कर इस (लोक)मे आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। ० प्रव्रजित होकर सयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर चित्तसे उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिससे कि एकाग्रचित्त होनेपर उसमे पूर्वके जन्मका स्मरण करता है, उसके आगेका नही स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—जो वह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० है, जिस ब्रह्माने हमे उत्पन्न किया है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (=अविपरिणामधर्मा) और सदाके लिये वैसा ही रहनेवाला है। और जो हम लोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये है, अनित्य, अध्रुव, अल्पायु, मरणशील है। इस प्रकार आप लोग ईश्वरका (सृष्टि-) कर्त्ता-पन ० बतलाते है ?' वह लोग ऐसा कहते है—'आवुस गौतम ! जैसा आयुष्मान् गौतम बतलाते है, वैसा ही हम लोगोने (भी) सुना है।

"भार्गव ! मै अग्र जानता हूँ ० जिसके जाननेसे तथागत फिर दुखमे नही पळते।"

"भार्गव ! कितने श्रमण और ब्राह्मण क्रीडाप्रदोषिक (=खिड्डापदोसिक)का आदिपुरुष होना—इस मत (=आचार्यक)को मानते है। उनके पास जाकर मै ऐसा कहता हूँ—'क्या सचमुच आप

आयुष्मान् लोग क्रीडाप्रदोषिकको आदि पुरुष ० बतलाते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं। उन्हे मैं यह कहता हूँ—'आप आयुष्मान् कैसे ० आदिपुरुष ० मानते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे उत्तर नहीं देते। उत्तर न देकर मुझसे ही पूछते हैं। उन लोगोके पूछने पर मैं उत्तर देता हूँ—'आवुसो! क्रीडाप्रदोषिक नामक सात देवता हैं। वे बहुत दिनों तक क्रीडामे रत रह, लगे रह विहार करते हैं। ० विहार करनेसे उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के नष्ट हो जानेपर वे देव उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुस! यही कारण है कि कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर इस (लोक)मे आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है, उसके पहले को स्मरण नही करता। वह ऐसा कहता है—'जो देवता क्रीडाप्रदोषिक नही है वे क्रीडा और रतिमे बहुत लगे नही रहते। ० उनकी स्मृति नष्ट नही होती। स्मृतिके नष्ट नही होनेसे वे उस कायासे च्युत नही होते, नित्य ध्रुव ०। और जो हम लोग क्रीडाप्रदोषिक देवता है, ० रतिमे लगे रहे। ० स्मृति नष्ट हो गई। ० उस कायासे च्युत हो गये। (अत हम लोग)• अनित्य, अध्रुव ०'। ० जैसा आपने कहा।

"भार्गव! मै अग्रको जानता०।

"भार्गव! कितने श्रमण और ब्राह्मण **मन प्रदोषिक** (=मनोपदोसिक) देवताके आदिपुरुष होनेके मतको मानते है। उनके पास जाकर मैं यो कहता हूँ—कैसे ०।०।० मैं यह कहता हूँ—आवुसो! मन प्रदोषिक नामक देवता है। वे (जब) एक दूसरेको बहुत आँख लगाकर देखते हैं। ० (उससे) उनके चित्त एक दूसरेके प्रति दूषित हो जाते है। वे एक दूसरेके प्रति दूषित चित्तवाले, क्लान्त-काय और क्लान्त-चित्त हो जाते है। (तब) वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते है। आवुस! यह कारण है कि (उनमेंसे जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर यहाँ आता है। घरसे बेघर ०। ० एकाग्र चित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है, उसके पहिलेको नही स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—'जो मन प्रदोषिक देवता नहीं है ० वे नित्य ० है। और हम लोग ० अनित्य, अध्रुव ० है। आप लोग ऐसे ही मन प्रदोषिक देवताको आदिपुरुष होनेके मतको न मानते है? वह लोग कहते है—'आवुस गौतम! हम लोगोने भी ऐसा ही सुना है, जैसा आयुष्मान् गौतम कह रहे है।'

"भार्गव! मै अग्रको ०।

"भार्गव! कितने श्रमण और ब्राह्मण है, जो अधीत्यसमुत्पन्न (=अधिच्चसमुप्पन्न) देवताके आदिपुरुष होनेके मत मानते है। मै उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—क्या सचमुच०?' उन लोगोके पूछनेपर मैं इस प्रकार उत्तर देता हूँ—'आवुसो! असञ्ञी सत्त्व (=असञ्ञिसत्त) नामक देवता है। सञ्ञा (=होश)के उत्पन्न होनेसे वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते है। आवुसो! यह कारण है कि (जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत हो यहाँ आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो वह सञ्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करता है, उसके पहिलेको नही स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—आत्मा और लोक दोनो अधीत्यसमुत्पन्न (=अभावमे उत्पन्न) है। सो किस हेतु? मै पहले नहीं था, और अब हूँ। न होकर भी (अब) मै हो गया।' आवुसो! आप लोग इसीलिये अधीत्यसमुत्पन्नके आदिपुरुष होनेके मतको मानते है।' वह लोग कहते है—'० जैसा आप गौतम कह रहे है।'

"भार्गव! मै अग्रको जानता ० जिससे तथागत फिर दु:खमे नही पड़ते।

६—शुभ विमोक्ष

"भार्गव! मेरे इस तरह कहनेपर कुछ श्रमण और ब्राह्मण मुझपर असत्य, तुच्छ, मिथ्या और अयथार्थ दोषका आक्षेप करते हैं—'श्रमण गौतम और भिक्षु लोग उलटे है।' श्रमण गौतम ऐसा कहता

है—'जिस समय शुभ **विमोक्ष**[1] उत्पन्न करके (योगी) विहार करता है, उस समय (योगी) सब कुछ-को अशुभ ही अशुभ देखता है।'

"भार्गव ! (किंतु) मैं ऐसा नही कहता—जिस समय ० अशुभ ही अशुभ देखता है।' भार्गव ! बल्कि मैं तो ऐसा कहता हूँ—'जिस समय शुभ **विमोक्ष** उत्पन्न करके विहार करता है, उस समय (योगी) शुभ ही शुभ समझता है।"

"वे ही उल्टे है, जो भगवान् और भिक्षुओपर मिथ्या दोषारोपण करते हैं। भन्ते ! मै आपपर इतना प्रसन्न हूँ। आप मुझे उस धर्मका उपदेश करे, जिससे शुभ विमोक्षको उत्पन्नकर मैं विहार करूँ।"

"भार्गव ! दूसरे मतवाले, दूसरे विचारवाले, दूसरी रुचिवाले, दूसरे आयोगवाले, दूसरे मत (=आचार्यक)को माननेवाले तुम्हारेलिये शुभ विमोक्ष उत्पन्नकर विहार करना दुष्कर है। भार्गव ! जो तुम मुझपर प्रसन्न हो उसीको ठीकसे निभाओ।"

"भन्ते ! यदि दूसरे मतवाले ० होनेसे मेरे लिये शुभ विमोक्ष उत्पन्न होकर विहार करना दुष्कर है, तो मैं जो आपसे इतना प्रसन्न हूँ उसीको ठीकसे निभाऊँगा।"

भगवान्ने यह कहा।

भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो आठ विमोक्ष संगीति परियाय-सुत्त ३३ (पृष्ठ २९८)।

२५—उदुम्बरिकसीहनाद-सुत्त (३।२)

१—न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा। २—अशुद्ध तपस्या। ३—शुद्ध तपस्या।
४—वास्तविक तपस्या—चार भावनायें। ५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप।
६—बुद्धधर्मसे लाभ इसी शरीरमें।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके गृध्र-कूट पर्वतपर विहार करते थे। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक तीन हजार परिव्राजकोकी बळी मण्डलीके साथ उदुम्बरिका (नामक) परिव्राजक-आराममे वास करता था।

१—न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा

तब सन्धान गृहपति दोपहरको (=दिन ही दिन) भगवान्के दर्शनके लिये राजगृहसे निकला। तब सन्धान गृहपतिके मनमे यह हुआ—भगवान्के दर्शनके लिये यह ठीक समय नही है, भगवान् समाधिमे बैठे है। दूसरे भिक्षु जो ध्यान कर रहे है उनसे भी मिलनेका यह ठीक समय नही है। सभी भिक्षु ध्यानमे वैठे है। अत, मै जहाँ उदुम्वरिका परिव्राजक-आराम है, और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तब सन्धान गृहपति जहाँ उदुम्वरिका परिव्राजिक-आराम था और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था, वहाँ गया। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक राज-कथा, चोर-कथा, माहात्म्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति-(=कुल)-कथा, यान(=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जनपद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा (=चौरस्ता)कथा, कुम्भस्थान(=पनघट)-कथा, पूर्वप्रेत(=पहले मरोकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-अख्यायिका, समुद्र-अख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नही हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, तीन हजार परिव्राजकोकी बळी भारी परिव्राजक-परिषद्के साथ बैठा था।

न्यग्रोध परिव्राजकने सन्धान गृहपतिको दूर हीसे आते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको शान्त किया—"आप लोग चुप हो जायँ, हल्ला न मचावे। यह श्रमण गौतमका श्रावक सन्धान गृहपति आ रहा है। श्रमण गौतमके जितने उजले वस्त्र पहननेवाले गृहस्थ श्रावक राजगृहमे रहते है, उनमे यह सन्धान गृहपति भी एक है। ये आयुष्मान् नि शब्द चाहनेवाले है, नि शब्दमे विनीत है, नि शब्दताकी प्रशसा करनेवाले है। ये नि शब्द मण्डलीमे ही जाना अच्छा समझते है।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो गये। तब सन्धान गृहपति जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था वहाँ गया। जाकर कथा कुशलक्षेम पूछ सलाप करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सन्धान गृहपति न्यग्रोध परिव्राजकसे यह बोला—

"ये अन्यतीर्थिक (=दूसरे मतवाले) परिव्राजक, जो जमा होकर ० आदि निरर्थक कथा कहते ०

शोर मचाते दूसरे ही प्रकारके है, और वे भगवान् जो समाधि लगानेके योग्य, मनुष्योसे अगम्य, शात, एकान्त और निर्जन वनोमे वास करते है, बिलकुल दूसरे है।"

ऐसा कहनेपर **न्यग्रोध** परिव्राजकने **सन्धान** गृहपतिसे कहा—"सुनो गृहपति ! जानते हो किसके साथ श्रमण गौतम सलाप करते है, किसके साथ साक्षात्कार करते है, किसको ज्ञानोपदेश करते है ? शून्यागारमे रहते रहते श्रमण गौतमकी बुद्धि मारी गई है। श्रमण गौतम सभासे मुँह चुराते है। सवाद करनेमे असमर्थ है। वे लोगोसे अलग अलग भागे फिरते है, जैसे कानी गाय अकेले अलग ही अलग भागी फिरती है। इसी तरह श्रमण गौतमकी प्रज्ञा मारी गई है ०। सुनो गृहपति ! यदि श्रमण गौतम इस सभामे आवे, तो एक ही प्रश्नमे उन्हे चकरा दे, खाली घळेकी तरह जिधर चाहे घुमा दे।"

भगवान्ने अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्रसे न्यग्रोध ० के साथ **सन्धान** गृहपतिका यह कथा सलाप सुना।

तव भगवान् गृध्रकूट पर्वतसे उत्तर जहाँ **सुमागधा** (पुष्करिणी) के तीरपर **मोरनिवाप** था, वहाँ गये। जाकर खुले स्थानमे टहलने लगे।

न्यग्रोध परिव्राजकने ० मोरनिवापमे भगवान्को टहलते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको सावधान किया—"आप लोग चुप रहे ०। यह श्रमण गौतम ० खुले स्थानमे टहल रहे है। वे नि शब्दताको पसद करते है ०। यदि श्रमण गौतम इस सभामे आवे तो उन्हे यह प्रश्न पूछूँ—भन्ते ! भगवान्का वह कौन धर्म है, जिससे भगवान् अपने श्रावकोको विनीत करते है, जिसमे विनीत होकर भगवान्के श्रावक ब्रह्मचर्य पालनमे आश्वासन पाते है ?" ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था, वहाँ गये। तव न्यग्रोध परिव्राजकने भगवान्से कहा—पधारे, "भगवान्, भगवान्का स्वागत है, भगवान्ने बहुत दिनोके बाद यहाँ आनेकी कृपाकी, भगवान् बैठे, यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे हुये आसनपर बैठ गये। न्यग्रोध परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे न्यग्रोध परिव्राजकसे भगवान्ने यह कहा—"न्यग्रोध ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमे आकर रुके ?"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजक बोला—

"भन्ते ! हम लोगोने भगवान्को सुमागधाके तीरपर मोरनिवापमे खुले स्थानमे टहलते देखा। देखकर यह कहा—यदि श्रमण गौतम इस सभामे आवे ० ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेमे आश्वासन पाते है ? भन्ते ! इसी बातमे आकर हम लोग रुके कि भगवान् पधारे।"

२—अशुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध ! दूसरे मतवाले, दूसरे सिद्धान्तवाले तुम्हे यह समझाना बळा दुष्कर है कि मै कैसे अपने श्रावकोको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर मेरे श्रावक आदि ब्रह्मचर्य पालन करनेमे आश्वासन पाते है। तो न्यग्रोध ! तपोकी निन्दा करनेवाले अपने मत (=आचार्यक)के बारेमे ही पूछो—भन्ते ! क्या होनेसे तप-जुगुप्सा पूरी होती है, क्या होनेसे नही पूरी होती ?"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक हल्ला करने लगे—"अरे, बळा आश्चर्य है, बळा अद्भुत है ! श्रमण गौतमकी शक्ति और महानुभावताको (तो देखो) कि अपने पक्षका स्थापन करता है और दूसरोके पक्ष का निराकरण !"

तब न्यग्रोध परिव्राजक उन परिव्राजकोको चुपकर भगवान्से यह बोला—"भन्ते ! हम लोग

तो तप-जुगुप्साके माननेवाले, तपो-जुगुप्सा (=तपोकी निन्दा)मे रत, तप-जुगुप्सामे लग्न हो विहरते है। भन्ते! क्या होनेसे तप-जुगुप्सा पूरी होती है, (और) क्या होनेसे पूरी नही होती?"

"न्यग्रोध! कोई तपस्वी नग्न रहता है, आचार विचारको छोळ देता है, हाथ चाट चाटकर खाता है ०[1]। इस तरह वह आधे आधे महीनेपर भोजन करता है, वह साग मात्र खाता है, ०[1]। ० सुबह, दोपहर और शाम तीन बार जल-शयन करता है।

"न्यग्रोध! तो क्या समझते हो—यदि कोई ऐसा करे तो इस तपश्चर्य्यासे उसके पापोका पूरा निराकरण होता है या नही?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा करनेसे इस तपश्चर्य्यासे उसके पापोका पूर्ण निराकरण होता है, अपूर्ण नही।"

"न्यग्रोध! इस तरह पूर्ण होनेपर भी मैं कहता हूँ कि इसमे अनेक प्रकारके क्लेश (=मैल) रह जाते है।"

"भन्ते! इस तरह पूर्ण होनेपर भी भगवान् कैसे कहते है कि इसमे अनेक प्रकारके क्लेश रह जाते है?"

"न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, वह उस तपमे सतुष्ट और परिपूर्ण सकल्प होता है। न्यग्रोध! यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—और फिर न्यग्रोध! (जब) तपस्वी तप करता है। वह उस तप करनेके कारण अपनेको बहुत बळा समझता है और दूसरोको छोटा। न्यग्रोध! ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश (=मल) है। —० वह उस तप करनेसे बळा घमण्ड करता है, बेसुध हो जाता है और प्रमाद करता है। ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस तपके करनेसे लोगोसे बहुत सत्कार और प्रशसा पाता है। वह उस सत्कार और प्रशसासे सतुष्ट और परिपूर्ण सकल्प हो जाता है। ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस सत्कार और प्रशसासे अपनेको बहुत बळा समझने लगता है, और दूसरोको छोटा ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस सत्कार और प्रशसासे घमण्ड करने लगता है, बेसुध हो जाता है और प्रमाद करता है।—० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।

"और फिर न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है। उसे भोजनमे द्वैधी भाव हो जाता है—यह भोजन मुझे खाना बनता है और यह नही। जो भोजन खाना उसे नही बनता, उसको इच्छा रहने पर भी छोळ देता है, और जो भोजन खाना बनता है उसे अत्यन्त लालचसे बिना उसके गुण-दोषको विचारे खूब ठूस ठूस कर खा लेता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी लाभ, सत्कार और प्रशसाकी प्राप्तिके हेतु तप करता है—राजा, मन्त्री क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति और दूसरे साधु लोग मेरा सत्कार करेगे। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी दूसरे श्रमण और ब्राह्मणोको बतलाता है—क्यो यह सब तरहकी जीविकावाला मूलबीज,[1] स्कन्धबीज (जैसे ईख), फलबीज, अग्रबीज और पाँचवे बीज-बीज असनिविचक्क दन्तकूट श्रमणोके प्रवादसे सब कुछ खा जाते है,। ० यह भी उपक्लेश।

"न्यग्रोध! दूसरे श्रमण या ब्राह्मणो को गृहस्थ-कुलोमे सत्कृत=गुरुकृत, सम्मानित, पूजित देखकर तपस्वी के मनमे यह होता है—इन्हीका गृहस्थ कुलोमे लोग सत्कार करते है, गुरुकार करते है, सम्मान करते है, पूजा करते है। मुझ रूखे रहनेवाले तपस्वीको गृहस्थ कुलोमे लोग न सत्कार करते है ० न पूजा करते है। अत वह गृहस्थ कुलोके प्रति ईर्ष्या और मात्सर्य उत्पन्न करता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी, लोगोके आने जानेके स्थानमे आसन लगाता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

---

[1] देखो पृष्ठ ६२-६३।

"न्यग्रोध ! तपस्वी अपने गुणोका वर्णन आप करते कुलोमे जाता है—'यह मेरा तप है, यह भी मेरा तप है।' ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी चुपचाप छिपाकर कुछ काम करता है। 'आपको ऐसा करना बनता है?' पूछे जानेपर जो बनता है उसे 'नही बनता है', और जो नही बनता है उसे 'बनता है' कह देता है। यह जान बूझकर झूठ बोलना होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी तथागत या तथागतके श्रावकोके धर्मोपदेशको अनुमोदन करनेके योग्य होनेपर भी नही अनुमोदन करता । ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी क्रोधी ० और बद्धवैरी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी कृतघ्न, डाह करनेवाला, ईर्ष्यालु, कृपण, शठ, मायावी, क्रूर, अभिमानी, दुष्ट इच्छावाला, पाप इच्छाओके वसमे पळा, बुरी धारणाओमे विश्वास करनेवाला, उच्छेद-दृष्टिवाला, अपने मतपर अभिमान करनेवाला, अपने मतपर हठ करनेवाला, जिद्दी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—तप करना क्लेश-सहित है या क्लेशके बिना?"

"भन्ते ! तप करना क्लेश-सहित होता है, क्लेशके बिना नही। भन्ते ! यही कारण है कि तपस्वी इन सभी उपक्लेशोके सहित होता है, इनमेंसे किन्ही किन्हीकी तो बात ही क्या?"

३—शुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध ! तपस्वी तप करता है। वह उस तपसे न तो सतुष्ट होता है और न परिपूर्ण-सकल्प। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह उस तपसे न तो अपनको बहुत बळा समझता है और न दूसरोको छोटा। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह न घमण्ड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध रहता है।—० लाभ, सत्कार और प्रशसासे न सतुष्ट होता और न परिपूर्ण-सकल्प। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न अपनेको बळा समझता है और न दूसरोको छोटा। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न घमड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध ०।—० भोजनमे द्वैधीभाव नही लाता ० न ठूस ठूसकर खाता है। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ, सत्कार और प्रशसाके लिये तप नही करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण, ब्राह्मणोको नही बताता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण या ब्राह्मणोको गृहस्थ कुलोमे सत्कृत ० देखकर उसके मनमे ऐसा नही होता ० न गृहस्थ कुलोके प्रति ईर्ष्या और मात्सर्य उत्पन्न करता है। ० परिशुद्ध ०।—न मनुष्योके आने जानेके स्थानपर बैठता है। ० परिशुद्ध ०।—० न अपने गुणोका वर्णन आप करते गृहस्थ कुलोमे जाता है ०। ० परिशुद्ध ०।—न अकेलेमे चुपचाप कोई काम करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० तथागत या तथागतके श्रावकोके धर्मोपदेशको अनुमोदन करने योग्य होनेपर अनुमोदन करता है। ० परिशुद्ध ०।—० क्रोध और वेरसे रहित रहता है। ० परिशुद्ध ०।—० कृतघ्न नही होता, डाह नही करता, ईर्ष्या नही करता, मात्सर्य नही करता ०। ० परिशुद्ध ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध?"

"भन्ते ! ऐसा होनेपर तप शुद्ध होता है अशुद्ध नही।"

४—वास्तविक तपस्या—चार भावनायें

"न्यग्रोध ! इतनेसे ही तप प्रशसनीय, सार्थक नही होता। यह तो वृक्षके ऊपरकी पपळी मात्र है।"

"भन्ते ! क्या होनेसे तप प्रशसनीय और सार्थक होता है? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे प्रशसनीय और सार्थक तप क्या है, उसे बतलावे।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार संयमों (=चातुर्याम संवर)से सुरक्षित (संवृत) होता है। कैसे तपस्वी चार संयमोंसे सुरक्षित होता है ? न्यग्रोध ! तपस्वी जीवहिंसा नहीं करता है, न करवाता है, न जीवहिंसा करवानेमें सहमत होता है। न चोरी करता है ०, न झूठ बोलता है ०, न पाँच भोगों (=काम गुणों)में प्रवृत्त होता है। न्यग्रोध ! इस प्रकार तपस्वी चार संयमोंसे सुरक्षित होता है।

"न्यग्रोध ! जो कि तपस्वी चार संयमोंसे संवृत होता है यही उसका तपस्वीपन है। वह प्रव्रज्याको निभाता है, ब्रह्मचर्य व्रतको नहीं छोळता। वह वन, वृक्षकी छाया, पर्वत-कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, खुले स्थान, या पुआलके ढेरमें एकान्तवास करता है। वह भिक्षाटनके बाद भोजन करके शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने रख आसन मारकर बैठता है। वह संसारके रागोंको छोळ वीतराग चित्तसे विहार करता है, रागोंसे चित्तको शुद्ध करता है। व्यापाद (=हिंसाभाव)को छोळ हिंसा-रहित चित्तसे विहार करता है, सभी प्राणियोंके हितकी इच्छा रखनेवाला हो व्यापाद-दोषसे चित्तको शुद्ध करता है। चित्त और चैतसिक आलस्यको छोळ उससे रहित होकर विहार करता है, परिशुद्ध संज्ञासे युक्त सावधान होकर चित्त और चैतसिकके आलस्यसे अपने चित्तको शुद्ध करता है। औद्धत्य और कौकृत्य (=चिन्ता)को छोळ अनुद्धत्त होकर विहार करता है, आध्यात्मिक शान्ति द्वारा अपने चित्तको औद्धत्य और कौकृत्यसे शुद्ध करता है। विचिकित्सा (=सन्देह)को छोळ, उससे रहित होकर विहार करता है, अच्छाइयों (=कुशल धर्मों)के प्रति निःशंक हो विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है। वह उन (औद्धत्य आदि) पाँच नीवरणोंको छोळ चित्तके उपक्लेशोंको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान करता है, वैसे ही दूसरी दिशा,[1] वैसे ही चौथी दिशा। ऊपर, नीचे, तिरछे, सभी तरहसे सभी ओर सारे संसारको उपेक्षा-युक्त चित्तसे विपुल, महान् और अप्रमाण (अत्यधिक) अवैर तथा अ-द्रोहसे भावनाकर विहार करता है।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध ?"

'भन्ते ! ऐसा होनेसे तप परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं, श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि, यह तो (वृक्षकी पपळीसे कुछ अधिक) वृक्षके छालोंके समान है।"

'भन्ते ! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार संयमके संवरो (=चातुर्याम संवर)से संवृत रहता है। कैसे ० ? ० होनेसे ०। यह उसकी तपस्यामें होता है। वह प्रव्रज्याको निभानेमें उत्साहित होता है ०। वह एकान्त-वास करता है ०। वह इन पाँच नीवरणोंको छोळ चित्तके उपक्लेशोंको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे०[1]० वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्व-जन्मोंको स्मरण करता है, जैसे एक जन्म०[2] अनेक लाख जन्म, अनेक संवर्त-कल्प, अनेक विवर्त-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्प—मैं वहाँ था, इस नामका ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तपश्चरण परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध ?"

"भन्ते। ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं। यही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि यह तो फल्गु (=हीर और छालके बीचवाला भाग) मात्र है।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४९१। [2] देखो पृष्ठ ३१।

"भन्ते! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है? साधु भन्ते! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलावे।"

"न्यग्रोध! तपस्वी चातुर्याम सवरो से सवृत होता है ० उत्साहित होता है। वह एकान्त-वास करता है ० उपक्लेशोको प्रज्ञासे दुर्वल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे ० उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्वजन्मोको स्मरण करता है, जैसे कि एक जन्म० अनेक लाख जन्म०। वह अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे प्राणियो (=सत्वो)को च्युत होते और उत्पन्न होते देखता है—नीच सत्वोको उत्तम सत्वोको, सुन्दर सत्वोको, कुरूप सत्वोको, अच्छी-गति-प्राप्त सत्वोको, वुरी-गति-प्राप्त सत्वोको, तथा अपने कर्मोके अनुसार ही गति-प्राप्त सत्वोको ठीक ठीक जान लेता है।—ये सत्व कायिक दुराचारसे, वाचिक दुराचारसे, मानसिक दुराचारसे युक्त हो, आर्य धर्मके निन्दक रह, वुरी धारणाओमे विश्वास कर, वुरी धारणाके अनुसार काम करके, मरकर नरकमे उत्पन्न हो अति-दुर्गतिको प्राप्त है। और ये दूसरे सत्व कायिक सदाचारसे ० युक्त हो आर्य धर्मको स्वीकार कर, ० सुगतिको प्राप्त है।

"न्यग्रोध! तो क्या समझते हो—० परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध?"

"भन्ते! ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नही। श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध! इतनेहीसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है। न्यग्रोध! तुमने जो मुझ पूछा था—'भन्ते! भगवान्‌का वह कौनसा धर्म है जिससे भगवान् अपने श्रावकोको विनीत करते है, ओर जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमे आश्वासन पाते है?' सो न्यग्रोध! यही कारण है, इससे भी वढ चढकर ओर इससे भी प्रणीत (कारण) है जिससे मै अपने श्रावकोको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमे आश्वासन पाते है।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक वहुत शोर करने लगे—"हाय! गुरु-सहित हम लोग नष्ट हो गये, विनष्ट हो गये। हम लोग इसमे कुछ अधिक नही जानते।"

५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप

जव सन्धान गृहपतिने समझा कि अव ये दूसरे मत-वाले परिव्राजक भगवान्‌के कहे हुएको सुनेगे, कान देगे, जानकर (उसमे) चित्त लगावेगे, तव उसने न्यग्रोध परिव्राजकसे कहा—"भन्ते न्यग्रोध! आपने जो मुझे कहा था—'सुनो गृहपति! जानते हो श्रमण गोतम किसके साथ सलाप करते है ० वे लोगोसे मुँह चुराकर अलग ही अलग रहते है। ० यदि श्रमण गौतम इस सभामे आवे तो ० उन्हे खाली घळेकी तरह जिधर चाहे हेर फेर दे।' भन्ते! वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्वुद्ध यहाँ पधारे है, उन्हे सभामे मुँहचोर वनाइये न, कानी गायकी तरह अलग ही अलग चलनेवाला वनाइये न? क्यो नही एक ही प्रश्नसे उन्हे चकरा देते, जैसे कि खाली घळेको हेर फेर देते है?"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजक चुप हो, गूँगा वन, कन्धा गिरा, नीचे मुँहकर, चिन्तित और उदास होकर वैठा रहा।

तव भगवान्‌ने न्यग्रोध परिव्राजकको चुप, गूँगा वन ० उदास होकर वैठा देख, यह कहा—"न्यग्रोध! क्या सचमुच तुमने ऐसी वात कही?"

"भन्ते! सचमुच मैंने वालक मूढ जैसे अजान वात कही।

"न्यग्रोध! तो तुम क्या समझते हो? क्या तुमने वृद्ध, वळे आचार्य और प्राचार्य परिव्राजकोको कहते सुना है कि अतीत कालमे (जो) अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध हो गये है, वे अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध क्या तुम्हारे जेसा हल्ला मचानेवाले और अनेक प्रकारकी निरर्थक कथाये कहनेवाले थे ०? या वे भगवान् जगलोमे एकान्तवास ० करनेवाले थे, जैसा कि इस समय मे?"

"भन्ते! ऐसा मैने ० आचार्य प्राचार्य परिव्राजकोको कहते सुना है ०। वे मेरे जैसा हल्ला मचाने ० वाले नही थे, किन्तु जगलोमे एकान्तवास ० करनेवाले थे जैसा कि इस समय भगवान्।"

"न्यग्रोध! तव क्या तुम्हारे जैसे सुविज्ञ पुरुषको यह भी समझमे नही आता—वुद्ध हो भगवान् वोधके लिये धर्मोपदेश करते है, दान्त हो भगवान् दमनके लिये धर्मोपदेश करते है, शान्त हो,

भगवान् शमनके लिये धर्मोपदेश करते हैं, तीर्ण (=भवसागर पार) हो, भगवान् तरणके लिये धर्मोपदेश करते हैं, परिनिवृत्त हो, भगवान् परिनिर्वाणके लिये धर्मोपदेश करते है।"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजकने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! बाल-मूढ अजानके जैसा मुझसे बळा भारी अपराध हो गया, कि मैंने आपके विषयमे ऐसा कह दिया। भन्ते! भविष्यमे सयमके लिये मेरे अपराधको क्षमा करें।"

"न्यग्रोध! सुनो, बाल०के जैसा तुमने बळा भारी अपराध किया, जो कि तुमने मेरे विषयमे वैसा कहा, किन्तु न्यग्रोध! जब तुम अपने अपराधको स्वय स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करते हो, तो मैं उसे क्षमा करता हूँ। न्यग्रोध! आर्य विनयमे यह बुद्धिमानी ही समझी जाती है, कि पुरुष भविष्यमें सयमके लिये अपने अपराधको स्वय स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करे।

६—बुद्ध-धर्मसे लाभ इसी शरीर में

"न्यग्रोध! मै तो ऐसा कहता हूँ—कोई सज्जन, निश्छल, और सरल स्वभाववाला बुद्धिमान् पुरुष आवे। मै उसे अनुशासन करता हूँ, धर्मोपदेश देता हूँ, मेरी शिक्षाके अनुसार आचरण करे, तो जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्तिम लक्ष्यको सात वर्षमे ही स्वय जानकर साक्षात्कार कर प्राप्तकर विहरेगा। न्यग्रोध! सात वर्ष तो जाने दो, छै वर्ष मे ही, ० पाँच ० चार ० तीन ० दो ० एक वर्षमे ० एक सप्ताहमे ०।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमे ऐसा हो—अपने चेलोकी सख्या बढानेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते है, तो न्यग्रोध! ऐसा नही समझना चाहिए। जो तुम्हारा आचार्य है वही तुम्हारे आचार्य रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमे ऐसा हो—हमे अपने उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते है, तो न्यग्रोध ऐसा नही समझना चाहिये। जो तुम्हारा अभी उद्देश्य है वही उद्देश्य रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमे ऐसा हो—हम लोगोको अपनी जीविका छुळा देनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा-कहते है, तो ०। जो तुम्हारी अभी जीविका है वही जीविका रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमे ऐसा हो—हमारे मताचार्यों की जो बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) हैं, उनमे प्रतिष्ठित करनेकी इच्छासे श्रमण गौतम ऐसा कहते है, तो न्यग्रोध! ऐसा नही समझना चाहिए। आचार्योके साथ तुम्हारे वे अकुशल धर्म अकुशल ही रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमे ऐसा हो— ० कुशल धर्म ०।

"न्यग्रोध! अत, न तो मैं अपने चेलोकी सख्या बढानेके लिये, न उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये ० ऐसा कहता हूँ।

"न्यग्रोध! जो अ-नष्ट (=अप्रहीण) बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) क्लेशोको उत्पन्न करनेवाली, आवागमनके कारणभूत, सभी प्रकारकी पीडाओको देनेवाली, दुख-परिणामवाली, जाति, जरा, और मरणके कारण है, उन्हीके प्रहाण (नाश)के लिये मै धर्मोपदेश करता हूँ जिसमे कि तुम्हारे क्लेश देनेवाले धर्म नष्ट हो जावे और शुद्ध धर्म बढे, और तुम प्रज्ञाकी पूर्णता और विपुलताको प्राप्त होकर, उसे इसी ससारमे जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहार करो।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो, गूंगे बन, ० बैठे रहे, जैसे कि उनके चित्त को मारने जकळ लिया हो।

तब भगवान्‌के मनमे यह हुआ—'ये सभी मूर्ख पुरुष मारके बन्धनमे बँधे हैं, जिससे इनमे एकके मनमे भी यह नही होता, कि 'मैं ज्ञान-प्राप्तिके लिये भगवान्‌के शासनमे रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करूँ। सप्ताह क्या करेगा?'

तब भगवान् उदुम्बरिका परिव्राजक-आराममे सिंहनादकर, आकाशमें ऊपर उठ, गृध्रकूट पर्वतपर जा विराजे।

सन्धान गृहपति भी राजगृह चला गया।

२६—चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (३।३)

१—स्वावलम्बी बनो। २—मनुष्य क्रमश: अवनतिकी ओर (दृढनेमि जातक)—(१) चक्रवर्ति व्रत। (२) व्रत त्यागसे लोगोमे असन्तोष और निर्धनता। (३) निर्धनता सभी पापोकी जननी। (४) पापोसे आयु और वर्णका ह्रास। (५) पशुवत् व्यवहार और नरसहार। ३—मनुष्य क्रमश उन्नतिकी ओर—(१) पुण्यसे आयु और वर्णकी वृद्धि। (२) मैत्रेय बुद्धका जन्म। ४—भिक्षुओके कर्तव्य।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् मगधके मातुला (स्थान)मे विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!"—कह उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दिया।

१—स्वावलम्बी बनो

भगवान् बोले—"भिक्षुओ! आत्मद्वीप=आत्मशरण (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, किसी दूसरेके भरोसे मत रहो, धर्मद्वीप और धर्मशरण होकर विहार करो, किसी दूसरे०।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु ०आत्मशरण, ०धर्मशरण होकर विहार करता है, किसी दूसरेके भरोसेपर नही रहता? भिक्षुओ! भिक्षु कायामे कायानुपश्यी[1] हो, सयमी, सावधान, स्मृतिमान्, और ससारके अनुचित लोभ और दौर्मनस्यको जीतकर विहार करता है—वेदनाओमे वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है, चित्तमे चित्तानुपश्यी होकर, धर्मोमे धर्मानुपश्यी होकर०।

"भिक्षुओ! भिक्षु इस तरह ०आत्मशरण ०धर्मशरण ०। भिक्षुओ! अपने पैतृक विषयगोचरमे विचरण करो। ०गोचरमे विचरण करनेसे मार कोई छिद्र नही पा सकेगा, मार कोई अवलम्ब नही पा सकेगा। भिक्षुओ! उत्तम धर्मोके ग्रहण करनेके कारण इस प्रकार पुण्य बढता है।

२—मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर

दृढनेमि जातक[2]—"भिक्षुओ! पुराने समयमे चारो दिशाओपर विजय पानेवाला, जनपदोमे स्थिरता और शान्ति रखनेवाला, सात रत्नोसे युक्त दृढनेमि नामक एक चक्रवर्त्ती धार्मिक, धर्म-राजा था। उसके ये सात रत्न थे, जैसे कि—(१) चक्र-रत्न, (२) हस्ति-रत्न, (३) अश्व-रत्न, (४) मणि-रत्न, (५) स्त्री-रत्न, (६) गृहपति-रत्न, और (७) सातवाँ पुत्र-रत्न। एक सहस्रसे भी अधिक उसके सूर ०पुत्र थे। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके विना ही धर्म और शान्तिसे जीतकर राज्य करता था।

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

[2] मिलाओ महासुदस्सनसुत्त पृष्ठ १५२।

"भिक्षुओ ! तव राजा दृढ-नेमि बहुत वर्षो, कई सौ वर्षो, कई सहस्र वर्षोके बीतनेपर एक पुरुषसे बोला—'हे पुरुष ! जव तुम दिव्य चक्र-रत्नको अपने स्थानसे खिसके और गिरे देखना तो मुझे सूचना देना।' 'देव ! बहुत अच्छा' कह उस पुरुषने राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षो०के बीतनेपर उस पुरुषने दिव्य चक्र-रत्नको अपने स्थानसे खिसककर गिरा देखा। देखकर वह पुरुष जहाँ राजा दृढ-नेमि था वहाँ गया, ० बोला—'सुनिये देव ! जानते है आपका दिव्य चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसककर गिर गया है।'

"भिक्षुओ ! तव राजा दृढ-नेमि अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको बुलाकर यह बोला—तात कुमार ! मेरा दिव्य चक्र-रत्न ० गिर गया है। मैने ऐसा सुना है—'जिस चक्रवर्त्ती राजाका चक्र-रत्न० गिर जाता है, वह राजा बहुत दिन नही जीता। मनुष्यके सभी भोगोको मैने भोग लिया, अब दिव्य भोगोके सग्रहका समय आया हे। तात कुमार ! सुनो, समुद्र-पर्यन्त इस पृथ्वीको ग्रहण करो। मै शिर और दाढी मुँळवा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।'

"भिक्षुओ ! तव राजा ० अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको राज्यका भार दे ० प्रव्रजित हो गया। भिक्षुओ ! उस राजर्षिके प्रव्रजित होनेके एक सप्ताह बाद ही दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तव एक पुरुष जहाँ मूर्धाभिषिक्त (=Sovereign) क्षत्रिय राजा था, वहाँ गया, ० और वोला—'देव ! जानते है, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।'

"भिक्षुओ ! तव वह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान होनेपर बळा खेद और असतोष प्रगट करने लगा। वह जहाँ राजर्षि था वहाँ गया, जाकर राजर्षिसे बोला—देव ! जानते है, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

(१) चक्रवर्ति-व्रत

"भिक्षुओ ! ऐसा कहनेपर राजर्षिने ० राजासे कहा—'तात ! दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान हो जानेसे तुम खेद और असतोष मत प्रकट करो। तात ! दिव्य चक्र-रत्न तुम्हारा पैतृक दायाद नही है। तात ! सुनो, तुम चक्रवर्ति-व्रतका पालन करो। ऐसी बात है, कि जब तुम आर्य चक्रवर्ति-व्रतका पालन करोगे, तो उपोसथकी पूर्णिमाके दिन शिरसे स्नानकर, उपोसथ व्रतकर जब तुम प्रासादके सबसे ऊपरवाले तल्लेपर जाओगे, तो तुम्हारे सामने सहस्र अरोसे युक्त, नेमि-नाभिके साथ, और सभी प्रकारसे परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होगा।'

'देव ! वह आर्य चक्रवर्ति-व्रत क्या है?'

'तात ! तो तुम अपने आश्रितोमे, सेनामे, क्षत्रियोमे, अनुगामियोमे, ब्राह्मणोमे, गृहपतियोमे, नैगमो और जानपदोमे, श्रमण और ब्राह्मणोमे, मृग और पक्षियोमे धर्महीके लिये, धर्मका सत्कार करते ० गुरुकार करते ० सम्मान करते, ० पूजन करते, श्रद्धाभाव रखते, धर्मध्वज हो, धर्मकेतु हो, धर्माधिपति हो, सभी धार्मिक बातोकी रक्षाके लिये विधान करो। तात ! तुम्हारे राज्यमे कही भी अधर्म न होने पावे। तात ! जो तुम्हारे राज्यमे निर्धन है, उन्हे धन दो। ० जो तुम्हारे राज्यमे श्रमण और ब्राह्मण मद-प्रमादसे विरत हो क्षान्तिके अभ्यासमे लगे है, केवल आत्म-दमन, केवल आत्म-शमन, केवल आत्म-निर्वापन करते है, उनके पास समय समयपर जाकर पूछना चाहिये—भन्ते ! क्या भलाई है, क्या बुराई क्या सदोष (=सावद्य) है, क्या निर्दोष (=अनवद्य), क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय क्या करनेसे मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये होगा, क्या करनेसे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये होगा? उनके कहे हुएको सुन, जो बुराई है उसका त्याग करो और जो भलाई है उसका ग्रहण करके पालन करो।—तात ! यही चक्रवर्ति-व्रत है।'

"भिक्षुओ ! 'वहुत अच्छा' कहकर ० राजर्षिको उत्तर दे राजा आर्य-चक्रवर्ति-व्रतका पालन करने लगा। उस आर्य चक्रवर्ति-व्रतके पालन करते हुए उपोसथकी पूर्णिमाके दिन ० उसके सामने सहस्र अरोवाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट हुआ। देखकर ० राजाके मनमे यह आया—मैंने ऐसा सुना है—जिस ० प्रासादके ऊपरके तल्लेपर स्थित राजाके सामने ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। मै चक्रवर्ती राजा होऊँगा। भिक्षुओ ! तव ० राजाने आसनसे उठ, चादरको एक कन्धेपर कर वाये हाथसे झारीको ले, दाहिने हाथसे चक्र-रत्नका अभिषेक किया ०—'आप चक्र-रत्न प्रवृत्त हो, =आप चक्ररत्न विजय करे)।' भिक्षुओ ! तव चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत ०[1] अन्त पुरमें न्याय-प्राङ्गणके द्वारपर आ अक्षाहत (=दृढ) हो गया ०।

(२) व्रतके त्यागसे लोगोमें असन्तोष और निर्धनता

"भिक्षुओ ! दूसरा भी राजा चक्रवर्ती ० तीसरा ० चौथा ० पाँचवाँ ० छठाँ ० सातवाँ भी राजा चक्रवर्ती वहुत वर्षो ०के बीतनेपर एक पुरुपको बुलाकर वोला—० जब चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसक ०। भिक्षुओ ! तव ० राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान हो जानेसे खेद, असतोप प्रकट करने लगा। उसने राजर्पिके पास जाकर आर्य चक्रवर्ति-व्रत नही पूछा। वह अपनी ही वुद्धिसे राज करने लगा। उसके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेपर उसका राज्य वैसा ही उन्नतिको प्राप्त नही हुआ, जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओका राज्य।

"भिक्षुओ ! तव, अमात्य (=मन्त्री), सभासद्, कोपाध्यक्ष, महामन्त्री, अनीकस्थ (=सेनापति) द्वार-पाल, और वे जो अपनी विद्याके वलसे जीविका चलाते थे, सभी आकर ० राजासे वोले—'देव ! आपके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेके कारण आपका राज्य वैसा उन्नति नही कर रहा है, जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओका। देव ! आपके राज्यमे अमात्य, सभासद् ०, हम लोग, और जो दूसरे लोग है सभी चक्रवर्ति-व्रत धारण करे। देव ! आप हम लोगोसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछे। आपके आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछनेपर हम लोग वतलायेगे।'

(३) निर्धनता सभी पापोकी जननी

"भिक्षुओ ! तव ० राजाने अमात्यो० को बुलाकर (इकट्ठाकर) उनसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछा ० उन लोगोने उसे सब कुछ वतलाया। उसे सुनकर उसने धार्मिक वातोकी रक्षाका प्रवन्ध तो कर दिया, किन्तु निर्धनोको धन नही दिया, ० उससे दरिद्रता वहुत वढ गई, ० उससे एक मनुष्य दूसरेकी चीज चुराने लगा। उस (चोर)को पकळकर लोग राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने दूसरोकी चीज चोरी की है।'

"भिक्षुओ ! ऐसा कहनेपर ० राजा उस पुरुपसे वोला—'क्या सचमुच तुमने दूसरोकी चीज चुराई है ?' 'हाँ देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?' 'देव ! रोजी नही चलती थी।'

"भिक्षुओ ! तव राजाने उस पुरुपको धन दिलवाया—'हे पुरुष ! इस धनसे तुम अपनी रोजी चलाओ, माता पिताको पालो, पुत्र और दाराको पोसो, अपने कारवारको चलाओ, ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्तिके लिये श्रमण तथा ब्राह्मणोको दान दो।'

"भिक्षुओ ! 'देव ! वहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुपने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! एक दूसरे पुरुपने भी चोरी की। उसे ० राजाके पास ले गये ०।'

---

[1] देखो पृष्ठ १५३-४ (महासुदस्सन सुत्त १७)।

'० राजा ०—क्या सचमुच ० ?'

'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोजी नही चलती थी।'

"भिक्षुओ ! ० राजाने उस पुरुषको धन दिलवाया—'हे पुरुष ! इस धनसे ० दान दो।'

"भिक्षुओ ! 'देव ! बहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुषने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! मनुष्योने सुना—जो दूसरेकी चीजको चुराता है, उसे राजा धन दिलवाता है। सुनकर उन लोगोके मनमे यह आया—'हम लोग भी दूसरोकी चीजको चुरावे।'

"भिक्षुओ ! तब किसी पुरुषने चोरी की। उसे लोग पकळकर ० राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—क्या सचमुच ० ?' 'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोजी नही चलती थी।'

"भिक्षुओ ! तब राजाके मनमे यह आया—यदि जो जो चोरी करता जावे उसे उसे मै धन दिलवाता रहूँ, तो इस प्रकार चोरी बहुत बढ जायगी। अत मै इसे कळी चेतावनी दूँ, जळहीको काट दूँ, इसका शिर कटवा दूँ। भिक्षुओ ! तब राजाने पुरुषोको आज्ञा दी—इस पुरुषको एक मजबूत रस्सीसे ० बाँधकर ० इसका शिर काट दो।'

'देव ! बहुत अच्छा' कह ० उसका शिर काट दिया।

"भिक्षुओ ! तब मनुष्योने सुना—जो चोरी करते है राजा ० उनका शिर कटवा देता है। सुनकर उनके मनमे यह हुआ—हम लोग भी तेज तेज हथियार बनवावे, ० बनवाकर जिनकी चोरी करेगे उनका ० शिर काट लेगे। उन लोगोने तेज तेज हथियार बनवाये, ० बनवाकर उन्होने ग्राम-घात भी करना आरम्भ कर दिया, निगम-घात भी ०, नगर-घात भी ०, मार्गमे यात्रियोको लूट लेना भी ०। वे जिसकी चोरी करते थे, उसका ० शिर काट लेते थे।

(४) पापोसे आयु और वर्णका ह्रास

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोको धन न दिये जानेसे दरिद्रता बहुत बढ गई, (उससे) ० चोरी बहुत बढ गई, ० (उससे) हथियार बहुत बढ गये, ० (उससे) खून खराबी बहुत बढ गई, ० (उससे) उनकी आयु घटने लगी, वर्ण (=रूप) भी घटने लगा। आयु और वर्णके घटनेपर अस्सी हजार वर्षकी आयुवाले पुरुषोके पुत्र चालीस सहस्र वर्षकी आयुवाले हो गये।

"भिक्षुओ ! चालीस सहस्र वर्षोकी आयुवाले पुरुषोमे भी कोई चोरी करने लगा। उसे लोग ० राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—सचमुच ० ?'

'नही, देव।'

यह जानबूझकर झूठ बोलना हुआ।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोको धन न दिये जानेसे ० झूठ बोलना बढा, ० उन सत्वोकी आयु और उनका वर्ण भी घटने लगा। ० उनके पुत्र बीस सहस्र वर्षोंहीकी आयुवाले हो गये।

"० उनमेसे भी किसीने चोरी की। तब, किसी पुरुषने ० राजाको इसकी सूचना दी—देव ! अमुक पुरुषने ० चोरी की है। ऐसी चुगली हुई।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोको, धन न दिये जानेके कारण ० चुगली उत्पन्न हुई। चुगली खाना वढनेसे उन सत्वोकी आयु घट गई, वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र दस सहस्र वर्षोकी ही आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! दस सहस्र वर्षोकी आयुवाले मनुष्योमे कोई तो सुन्दर, ओर कोई कुरूप हुए। वहाँ जो प्राणी (=सत्व) कुरूप थे वे सुन्दर प्राणियोके प्रेममे पळ दूसरेकी स्त्रियोसे दुराचार करने लगे।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोको धन न दिये जानेसे ० दुराचार वढा।

"० उनके पुत्र पाँच सहस्र वर्षोहीकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोमे दो वाते वहुत वढी—कठोर वचन, और निरर्थक प्रलाप करना। ० (उससे) उन प्राणियोकी आयु घट गई, और वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र कितने ढाई सहस्र वर्षोकी आयुवाले, और कितने दो सहस्र वर्षोकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ढाई सहस्र वर्षोकी आयुवाले मनुष्योमे अनुचित लोभ और बहुत हिसाभाव बढा। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र एक सहस्र वर्षोकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ० उनमे मिथ्या-दृष्टि (बुरे सिद्धान्तोमे विश्वास करना) बहुत बढ गई। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र पाँच सौ वर्षोकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोमे तीन बाते बहुत बढी—अधर्ममे राग, अनुचित लोभ और मिथ्या-धर्म। इन तीन बातो (=धर्मो)के बहुत बढनेपर उन सत्वोकी आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र कोई ढाई सौ वर्षोकी आयुवाले, और कोई दो सौ वर्षोकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! ढाई सौ वर्षोकी आयुवाले मनुष्योमे ये बाते वढी, माता पिताके प्रति गौरव का अभाव श्रमणोके प्रति, ब्राह्मणोके प्रति, और परिवारके ज्येष्ठ पुरुषोके प्रति श्रद्धाका अभाव।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोको धन न देनेके कारण ० श्रद्धाका अभाव। इन वातोके वढनेसे उन प्राणियोकी आयु ० वर्ण ०। ० उनके पुत्र सौ वर्षोकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! एक समय आवेगा जव इन मनुष्योके पुत्र दस वर्षोकी आयुवाले होगे। भिक्षुओ ! ० उनमे पाँच वर्षकी कुमारी ही पतिगृह जाने योग्य हो जायगी। भिक्षुओ ! दस वर्षोकी आयुवाले मनुष्योमे ये रस लुप्त (=अन्तर्धान) हो जायेगे, जैसे कि, घी, मक्खन, तेल, मधु, गुळ और नमक। ० उस समय मनुष्योका कोदो (=कुद्रूस) ही श्रेष्ठ (=अग्र) भोजन होगा, जैसा कि इस समय शालिमासौदन(=पोलाव) प्रधान भोजन है। भिक्षुओ ! दस वर्षोकी आयु वाले मनुष्योमे दस सदाचार (=कुशल कर्म-पथ) बिलकुल लुप्त हो जायेगे, दस अ-सदाचार (=अकुशल कर्म-पथ) अत्यन्त वढ जायेगे। ० कुछ कुशल नही रह जायगा, फिर कुशलका करनेवाला कहाँ ?

(५) पशुवत् व्यवहार और नरसहार

भिक्षुओ ! ० उनमेंसे जो माता पिता का गौरव नही करनेवाले ० होगे वे ही अच्छे, प्रशसनीय समझे जायेगे, जैसे कि इस समय माता पिता का गौरव करनेवाले ० प्रशसनीय समझे जाते है।

"० उन लोगोमे भेळ-बकरे, कुक्कुट-सूकर, श्वान-शृगालकी भाँति माँका, या मौसीका, या मामीका, या गुरुपत्नीका, या वळे लोगोकी स्त्रियोका कुछ विचार न रहेगा। बिलकुल अनर्थ हो जावेगा।

"० उन लोगोमे एक दूसरेके प्रति बळा तीव्र क्रोध, तीव्र व्यापाद (=प्रतिहिसा), तीव्र दुर्भावना, तीव्र वधकचित्त उत्पन्न होगे। माताको पुत्रके प्रति, पुत्रको माताके प्रति, भाईको भाईके प्रति, भाईको वहनके प्रति, वहनको भाईके प्रति तीव्र क्रोध ०। भिक्षुओ ! जैसे व्याधको मृग देखकर तीव्र क्रोध ० होता है, उसी तरह ० उन सत्वोमे परस्पर तीव्र क्रोध ० माताको पुत्रके प्रति ०।

"भिक्षुओ ! ० उनमे एक सप्ताह शस्त्रान्तरकल्प होगा—वे एक दूसरेको मृग समझने लग जायेगे। उनके हाथोमे तीक्ष्ण शस्त्र प्रकट होगे। वे तीक्ष्ण शस्त्रोसे—यह मृग है, यह मृग है—करके एक दूसरेको जानसे मार डालेगे।

३–मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर

"भिक्षुओ ! तव उन सत्वोमे कुछके मनमे ऐसा होगा—'न मुझे दूसरोसे काम और न दूसरोको मुझसे काम ! अत चलो हम लोग घने तृणोमे, या घने जगलोमे, या घने वृक्षोमे, या नदीके किसी दुर्गम स्थानम, या कठिन पर्वतोपर, जाकर वन्य (जगली) मूल और फल खाकर रहे।' फिर वे घने तृणोमे ० जाकर एक सप्ताह वन्य फल मूल खाकर रहेगे। एक सप्ताह वहाँ रहनेके वाद घने तृणोसे ० निकलकर वे एक दूसरेको आलिङ्गनकर एक दूसरेके प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट करेगे।

(१) पुण्यकर्मसे आयु और वर्णकी वृद्धि

"भिक्षुओ ! तव उन सत्वोके मनमे यह होगा—हम लोग पापो (=अकुशल धर्मो)के करनेके कारण इस प्रकारके घोर जाति-विनाशको प्राप्त हुए है, अत पुण्य का आचरण करना चाहिये। किन पुण्यो (=कुशल धर्मो)का आचरण करना चाहिये ? हम लोग जीवहिंसासे विरत रहे, इस कुशल धर्मको ग्रहण करे (इसीके अनुकूल) आचरण करे।' तव वे जीवहिसामे विरत रह, ० आचरण करने लगेगे। उस कुशल धर्मको ग्रहण करनेके कारण वे आयसे भी और वर्णमे भी वढेगे। आयुसे भी, वर्णमे भी वढते हुए उन दस वर्षोकी आयुवाले मनुष्योके पुत्र वीस वर्षकी आयुवाले होगे।

"भिक्षुओ ! तव उन सत्वोके मनमे यह होगा—'हम लोग कुशल धर्म ग्रहण करनेके कारण आयुसे भी और वर्णसे भी वढ रहे है। अत, हम लोग और भी अधिक सुकर्म (=कुशल धर्म) करे। क्या कुशल करे ? हम लोग चोरी करनेसे विरत रहे, मिथ्याचारसे विरत रहे, मिथ्याभाषणसे विरत रहे, चुगली खानेसे विरत रहे, कठोर वोलनेसे विरत रहे, व्यर्थके वकवादसे विरत रहे, अनुचित लोभको छोळ दे, हिसाभावको छोळ दे, मिथ्यादृष्टिको छोळ दे। अधर्ममे राग, दुष्ट लोभ, मिथ्याधर्म इन तीन वातो को छोळ दे, माता पिताके प्रति गौरव करे ०। इन कुशल धर्मोको धारणकर आचरण करे।'

"वे माता पिताके प्रति गौरव करेगे ० इन कुशल धर्मोको धारणकर आचरण करेगे। आचरण करनेक कारण वे आयुसे भी वर्णसे भी वढेगे। ० उनके पुत्र चालीस वर्ष ०। ० उनके पुत्र अस्सी वर्ष ०। ० उनके पुत्र सौ वप ०। ० उनके पुत्र वीस सौ वर्ष ०। ० चालीस सौ वर्ष ०। ० दो सहस्र ०। ० चार ०। ० आठ ०। ० वीस ०। ० चालीस ०। ० अस्सी सहस्र वर्ष ०।

(२) मैत्रेय बुद्धका जन्म

"भिक्षुओ ! अस्सी सहस्र वर्षकी आयुवाले मनुष्योमे पाँच सौ वर्षोकी आयुवाली कुमारी, पतिके गृह जानेके योग्य होगी। ० उनके तीन ही रोग रहेगे—इच्छा, उपवास और जरा। ० (उस समय) जम्बुद्वीप समृद्ध ओर सम्पन्न होगा—ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी कुक्कुट-सम्पातिक (=मुर्गीकुदान घरोवाली) रहेगे। ० नर्कट या सरकडेके वनकी तरह जम्बुद्वीप मानो नरक तक मनुष्योकी आवादीसे भर जायेगा। ० (उस समय) यह वाराणसी समृद्ध, सुन्दर, सम्पन्न और सुभिक्ष केतुमती नामकी राजधानी होगी। ० जम्वूद्वीपमे केतुमती राजधानी आदि चौरासी हजार नगर होगे। ० केतुमती राजधानीमे शख नामक चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्म-राजा ० उत्पन्न होगा। वह सागर-पर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके विना ही धर्मसे जीतकर राज्य करेगा। ० उस समय मैत्रेय नामक भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ससारमे उत्पन्न होगे। ० जैसे कि इस समय मै ०। वे देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित, देव-मनुष्य-युक्त इस लोकको, स्वय (परम ज्ञानको) जान और साक्षात् कर उपदेश देगे, जैसे कि इस समय मै ० उपदेश देता हूँ। वे आदि कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण धर्मका उपदेश करेगे। सार्थक, स्पष्ट, बिल्कुल पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको वतलायेगे। जैसे कि

इस समय मै ०। वे कई लाख भिक्षुओके सघके साथ रहेगे, जैसे कि अभी मै कई सौ भिक्षुओके साथ ०।

"भिक्षुओ! तब शख राजा उस प्रासादको, जिसे कि इन्द्र (विश्वकर्मासे) बनवायेगा, तैयार करा उसमे रहकर, उसे दानकर देगा। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, राही, साधु और याचकोको दान देकर मैत्रेय भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके पास ० प्रव्रजित हो जायेगा। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, अकेला रह, वीतराग हो, अप्रमत्त हो, सयमी और आत्मनिग्रही हो विहार करते शीघ्र ही ० उस अनुपम ब्रह्मचर्यके फलको इसी जन्ममे स्वय जान और साक्षात् कर विहार करेगा।

४--भिक्षुओंके कर्तव्य

"भिक्षुओ! आत्म-शरण होकर विहार करो, आत्मद्वीप (=स्वावलम्वी) होकर विहार करो, दूसरेके भरोसेपर मत रहो, धर्म-शरण, धर्मद्वीप ०। भिक्षुओ! कैसे भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है?

"भिक्षुओ! भिक्षु कायामे **कायानुपश्यी** होकर विहार करता है ०[1]।

"भिक्षुओ! इस प्रकार भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है ०।

"भिक्षुओ! ० (ऐसा करनेसे) आयुसे भी वढोगे और वर्णसे भी। सुखसे भी वढोगे, भोगसे भी वढोगे, वलसे भी वढोगे।

"भिक्षुओ! भिक्षुकी आयु क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु छन्द समाधि प्रधान सस्कारसे युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करता है। वीर्य समाधि ० चित्त समाधि ० वीमसा-समाधि प्रधान सस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। वह इन चार ऋद्धिपादोकी भावना करनेसे, वार वार अभ्यास करनेसे, इच्छा रहनेपर अपनी आयु (अभी १०० वर्ष) कल्प भरकी उससे कुछ अधिक तक रख सकता है। यही भिक्षुकी आयु है?

"भिक्षुओ! भिक्षुका वर्ण क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्षके सयमसे सयत होकर विहार करता है, आचार विचारसे युक्त होता है, थोळे भी वुरे कर्मसे भय खाता है, नियमो (=शिक्षा-पदो)के अनुसार आचरण करता है। भिक्षुओ! भिक्षुका यही वर्ण है।

"भिक्षुओ! भिक्षुका सुख क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु भोग (=काम) और पापो (=अकुशल धर्मो)से अलग रह सवितर्क, सविचार विवेक-ज प्रीतिसुखवाले प्रथम ध्यान[2]को प्राप्त होकर विहार करता है। द्वितीय, ० तृतीय ० चतुर्थ ध्यान ०। भिक्षुओ! यही भिक्षुका सुख है।

"भिक्षुओ! भिक्षुका भोग क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशा ०[3]। करुणा ०। मुदिता ०। उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। भिक्षुओ! यही भिक्षुका भोग है।

"भिक्षुओ! भिक्षुका क्या बल है? भिक्षुओ! भिक्षु आस्रवो (=चित्तमलो)के क्षय हो जानेसे आस्रव-रहित चित्तकी विमक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममे जानकर, साक्षात् कर विहार करता है। भिक्षुओ! यही भिक्षुका वल है।

"भिक्षुओ! मै दूसरा एक भी वल नही देखता, जो ऐसे मार-वलको जीत सके। भिक्षुओ! अच्छे(=कुशल) धर्मोके करनेके कारण इस प्रकार पुण्य वढता है।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो महासतिपट्ठानसुत्त २२ पृष्ठ १९०।

[2] देखो पृष्ठ २९-३२। [3] देखो पृष्ठ ९१।

२७—अग्गञ्ञ-सुत्त (३।४)

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन। २—मनुष्य जातिकी प्रगति। (१) प्रलयके बाद सृष्टि (२) सत्वोका आरम्भिक आहार। (३) स्त्री-पुरुषका भेद। (४) वैयक्तिक सम्पत्तिका आरम्भ। ३—चारो वर्णोका निर्माण। (१) राजा (क्षत्रिय) की उत्पत्ति। (२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति। (३) वैश्यकी उत्पत्ति। (४) शूद्रकी उत्पत्ति। (५) श्रमण (=संन्यासी)की उत्पत्ति। ४—जन्म नही कर्म प्रधान है।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमे मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममे विहार करते थे।

उस समय वाशिष्ट और भारद्वाज प्रव्रज्या लेनेकी इच्छासे भिक्षुओके साथ परिवास कर रहे थे।

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन

तब भगवान् सायकाल समाधिसे उठ प्रासादसे उतर प्रासादके पीछे छायामे, खुले स्थानमे टहल रहे थे। ० वाशिष्टने भगवान्को ० टहलते देखा। देखकर भारद्वाजको सबोधित किया—

"आवुस भारद्वाज! भगवान् ० टहल रहे है। आओ, आवुस भारद्वाज! जहाँ भगवान् है, वहाँ चले। भगवान्के पास धर्मोपदेश सुननेको मिलेगा।"

"हाँ आवुस!" कह भारद्वाजने वाशिष्टको उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर भगवान्के पीछे पीछे चलने लगे।

तब भगवान्ने वाशिष्टको सबोधित किया—"वाशिष्ठ! तुम तो ब्राह्मण-जाति और ब्राह्मण-कुलके हो। ब्राह्मण कुलसे घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहते हो। वाशिष्ट! क्या तुम्हे ब्राह्मण लोग नही निंदते है? क्या तुम्हारी हँसी नही उळाते है?"

"हाँ, भन्ते! ब्राह्मण लोग अपने अनुरूप पूरे परिहाससे हमे निन्दते, हँसते है।"

"वाशिष्ट! किस प्रकार ० ब्राह्मण लोग निदते हँसी उळाते है?"

"भन्ते! ब्राह्मण लोग कहते है—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन है, ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं, ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नही, ब्राह्मण ही ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुये पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित, और ब्राह्मदायाद है। सो तुम लोग श्रेष्ठ वर्णसे गिरकर नीच हो गये। ये मुण्डी, श्रमण, नीच (=इब्भ), कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्माके पैरसे उत्पन्न है। यह आप लोगोको नही चाहिये, यह आप लोगोके अनुरूप नही है, कि आप लोग श्रेष्ठ वर्णको छोळ नीच वर्णके हो जाये, जो ०। भन्ते! ब्राह्मण लोग इसी तरह ० निदते और हँसी उळाते है।"

"वाशिष्ट! वे ब्राह्मण पुरानी बातोको भूल जानेके कारण ही ऐसा कहते है—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ०। वाशिष्ट! ब्राह्मणोकी ब्राह्मणियाँ ऋतुनी होती देखी जाती है, गर्भिणी होती, ० प्रसव

करती ० और वच्चोको दूध पिलाती ० । वे ब्राह्मण योनिसे उत्पन्न होकर भी ऐसा कहते है—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ०। वे ब्रह्माके विषयमे झूठी वात कहते हैं, मिथ्या भाषणकरके वहुत अ-पुण्य कमाते हैं।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। क्षत्रियोमे भी कितने जीवहिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, मिथ्याचार करते हैं, झूठ वोलते है ० मिथ्या-दृष्टिवाले होते हैं। वाशिष्ठ ! इस तरह जो धर्म बुरा (=अकुशल), सदोष, असेवनीय, अनार्य, कृष्ण, कृष्णविपाक (=बुरे फल वाला), विद्वान् लोगोमे निन्दित है, उन्हे वे करते देखे जाते हैं।

"वाशिष्ट ! कितने ब्राह्मण भी ० वैश्य भी ० शूद्र भी जीव-हिंसा करनेवाले ० मिथ्या-दृष्टि-वाले होते हैं। इस तरह जो धर्म अकुशल ०, शूद्र भी उनको करते देखे जाते है।

"वाशिष्ट ! कितने क्षत्रिय भी जीव-हिंसासे विरत देखे जाते हैं, चोरी करनेसे विरत ० सम्यक् दृष्टिवाले देखे जाते हैं। वाशिष्ट ! इस तरह जो धर्म अच्छे निर्दोष ० उन्हे करते कितने क्षत्रिय भी देखे जाते हैं, ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। कितने शूद्र भी जीव-हिंसासे विरत ०।

"वाशिष्ट ! इन चारो वर्णोमे इस प्रकार कृष्ण और शुक्ल धर्मोको करनेवाले, विद्वान् पुरुषोसे निन्दित और प्रशंसित कार्योको करनेवाले, दोनो तरहके मनुष्य पाये जाते है, तो ब्राह्मण कैसे कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ० ? किंतु विद्वान् लोग इसे वैसा नही मानते। सो क्यो ? वाशिष्ट ! इन्ही चार वर्णोमे जो भिक्षु अर्हत्, क्षीणास्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भव-बंधन-मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वह सभीसे बढ जाता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं।

"वाशिष्ट ! मनुष्यमे धर्मही श्रेष्ठ है, इस जन्ममे भी परजन्ममे भी। वाशिष्ट ! तब इस तरह भी समझना चाहिये कि मनुष्यमे ०। वाशिष्ट ! कोसलराज प्रसेनजित् जानता है, कि अनुपम श्रमण गोतम शाक्य कुलसे प्रव्रजित हुआ है। वाशिष्ट ! शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित्के आधीन (=अनुयुत्त=आनुयुक्त) हैं। शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित्को नमन, अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, तथा सत्कार करते हैं। वाशिष्ट ! जिस तरह शाक्य लोग ० प्रसेनजित्को करते हैं वैसे ही ० प्रसेनजित् तथागतके प्रति करता है।—वह क्या इसलिये कि श्रमण गौतम सुजात है, मैं दुर्जात हूँ, श्रमण गौतम बलवान् है, मैं दुर्बल हूं, श्रमण गौतम सुन्दर है, मैं कुरूप हूँ, श्रमण गौतम बळे भारी है, मैं बहुत छोटा हलका हूँ ? (नही) धर्महीका सत्कार करते, गुरुकार करते ० कोसलराज प्रसेनजित् इस प्रकार तथागतको वळा मानता है ० सत्कार करता है।

"वाशिष्ट ! इस प्रकार भी जानना चाहिये कि धर्म ही मनुष्यमे श्रेष्ठ है ०। वाशिष्ट ! नाना जातिके, नाना नामके, नाना गोत्रके, नाना कुलके तुम लोग घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हो। 'तुम लोग कौन हो ?' पूछे जानेपर 'हम लोग शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं'—ऐसा कहते हो। वाशिष्ट ! तथागतमे जिसकी श्रद्धा गळी है, जमी है, प्रतिष्ठित है, दृढ है, वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसारमे और किसी (व्यक्ति)से डिगाया नहीं जा सकता। (और) उसीका कहना ठीक है—मैं भगवान् के मुखसे उत्पन्न, धर्मसे उत्पन्न, धर्म-निर्मित और धर्म-दायाद पुत्र हूँ। सो किस हेतु ? वाशिष्ट ! धर्म-काय ब्रह्म-काय, धर्म-भूत, ब्रह्म-भूत—यह तथागतका ही नाम (=अधिवचन) है।

२—मनुष्य जातिकी प्रगति

(१) प्रलयके बाद सृष्टि

वाशिष्ट ! बहुत दिनोंके बीतनेके बाद एक समय आवेगा जब इस लोकका संवर्त (=प्रलय) होगा। संवर्त हो जानेपर लोकमे रहनेवाले अधिकतर प्राणी (=सत्त्व) आभास्वर (देवो)मे रहते हैं। वे वहाँ मनोमय प्रीतिभक्ष, स्वयंप्रभ, आकाशचारी, शुभस्थायी होकर बहुत दिन रहते हैं। बहुत दिनोंके बीतनेके बाद कभी एक समय आवेगा जब इस लोकका विवर्त (=सृष्टि) होगा। विवर्त

होनेपर अनेक सत्व आभास्वर लोकसे च्युत हो यहाँ आते है। वे यहाँ मनोमय ०। उस समय सभी जगह पानी ही पानी होता है। बहुत अन्धकार फैला रहता है। न चाँद और न सूरज दिखाई देते है। न नक्षत्र और न तारे दिखाई देते हैं। न रात और न दिन मालूम पळते हैं। न मास और न पक्ष मालूम पळते है। न ऋतु और न वर्ष ०। न स्त्री और न पुरुष ०। सत्व है, सत्व है—बस यही उनकी सज्ञा होती है।

(२) सत्वों (मनुष्यों)का आरम्भिक आहार

"तब वाशिष्ट! बहुत दिनोके बीतनेके बाद उन सत्वोके लिये जलपर, गरम दूधके ठडा होनेपर ऊपर मलाईके जमनेकी भाँति रसा पृथिवी फैली। वह वर्ण सम्पन्न, गन्धसम्पन्न, रससम्पन्न थी, जैसे कि मक्खन घीसे सम्पन्न रहता है, इसी तरहसे०। जैसे कि मधु-मक्खियोका निर्दोष मधु होता है वैसा उसका स्वाद था।

"वाशिष्ट! तब कोई सत्व लालची था। 'अरे, यह क्या है', (सोच, वह) रसा पृथिवीको अँगुलीसे चाटने लगा। ० चाटनेसे उसे तृष्णा उत्पन्न हुई। दूसरे भी सत्व उस सत्वकी देखा देखी रसा पृथ्वीके रसको पाकर अँगुलीसे चाटने लगे। ० उन्हे भी तृष्णा उत्पन्न हुई।

"वाशिष्ट! तब वे सत्व हाथोंसे रसा पृथ्वीको ग्रास-ग्रास करके खाने लगे। ० खानेसे उन सत्वोकी स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेसे चाँद और सूरज प्रकट हुये। चाँद और सूरजके प्रकट होनेपर नक्षत्र और तारे प्रकट हुये। रात और दिनके मालूम होनेसे मास और पक्ष मालूम पळने लगे। मास और पक्षके मालूम ० ऋतु और वर्ष मालूम पळने लगे। वाशिष्ट! इस तरहसे फिर भी लोकका विवर्त (=सृष्टि, उदघाटन) होता है।

"तब, वे सत्व रसा पृथ्वीको (जैसे जेसे) बहुत दिनो तक खाते रहे। ० वैसे वैसे उनका शरीर कर्कश होने लगा, उनके वर्णमें विकार मालूम पळने लगा। कोई सत्व सुन्दर थे तो कोई कुरूप। जो सत्व सुन्दर थे, सो अपनेको कुरूप सत्वोसे ऊँचा समझते थे—हम लोग इन लोगोंसे सुन्दर (वर्णवान्) है, हम लोगोसे ये लोग दुर्वर्ण (=कुरूप) है। उनके अपने वर्णके अभिमानसे रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। रसा पृथ्वीके अन्तर्धान हो जानेपर वे सत्व इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—'अहो रस, अहो रस! उसी से आज भी जब मनुष्य कुछ सुरस (चीज) पाते हैं तो कहने लगते हैं—'अहो रस! अहो रस!' यह उसी अग्र (=प्रथम) पुराने अक्षर (=बात)को स्मरण करते है, किंतु उसके अर्थको नही जानते।

"तब वाशिष्ट! उन प्राणियोके (लिये) रसा पृथ्वीके अन्तर्हित हो जानेपर अहिच्छत्रक (=नागफनी) सी भूमिकी पपळी प्रकट हुई। वह वर्णसम्पन्न, गन्धसम्पन्न और रससम्पन्न थी, जैसे कि मक्खन घीसे सम्पन्न०। जैसे० मधु०। वाशिष्ट! तब वे सत्व भूमिकी पपळीको खाने लगे। वे उसीको बहुत दिनो तक खाते रहे।० उन सत्वोके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे, उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा। ०। उनके वर्णके अभिमानसे भूमिकी पपळी अन्तर्धान हो गई।

"तब वाशिष्ट! ० उसके अन्तर्धान होनेपर भद्रलता (=एक स्वादिष्ट लता) प्रकट हुई। जैसे कि कलम्बुक (=सरकण्डा) प्रकट होता है। वह वर्ण-सम्पन्न (थी) ० मधु ०।

"वाशिष्ट! तब वे सत्व भद्रलताको खाने लगे। ० उसे बहुत दिनो तक खाते रहे। ० उनके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा। ०। उनके वर्णके अभिमानसे उनकी वह भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर वे इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—"हाय रे हमे! हाय हमारी कैसी अच्छी भद्रलता थी।' उसीसे आज भी मनुष्य लोग कुछ दुःखमे पळनेपर ऐसा कहा करते है—'हाय रे हमे! हाय हमारी भद्रलता थी!!' आज भी दुःख पळनेपर मनुष्य उसी पुरानी बातको स्मरण करते है, किन्तु उसके अर्थको नही जानते।

(३) स्त्री-पुरुषका भेद

"वाशिष्ट ! तब उनकी भद्रलताके अन्तर्धान हो जानेपर, अकृष्ट-पच्य (=बिना बोया जोता) धान प्रादुर्भूत हुआ, वह चावल कण और तुषके विना (तथा) सुगन्धित था। जिसे वह शामके भोजनके लिये शामको लाते थे। फिर वह प्रात बढकर पककर तैयार हो जाता था। जिसे वह प्रात प्रातराशके लिये लाते थे, वह शामको बढकर पक जाता था। काटा मालूम नही होता था। तब ० उस अकृष्ट-पच्य शालीको वह वहुत दिनो तक खाते रहे। ० उन सत्वोके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमे विकार मालूम पळने लगा। स्त्रियोको स्त्री-लिग, पुरुषोको पुरुष-लिग उत्पन्न हो गये। स्त्री, पुरुषको वार बार आँख लगाकर देखने लगी, पुरुष स्त्रीको ०। परस्पर आँख लगाकर देखनेसे, राग उत्पन्न हो गया, शरीरमे (प्रेमकी) दाह लगने लगी। दाहके कारण उन्होने मैथुन कर्म किया। वाशिष्ट ! उस समय लोग जिन्हे मैथुन करते देखते उनपर कोई धूली फेकता, कोई कीचळ फेकता और कोई गोवर फेकता था—'हट जा वृषली (=शूद्री) ! हट जा वपली ! कैसे एक सत्व दूसरे सत्वको ऐसा करेगा !' सो आज भी लोग किन्ही किन्ही देशोमे (नवोढा) वधूको ले जाते समय, धूली, फेकता ०। वह उसी पुरानी वातको स्मरण कर किंतु उसका अर्थ नही जानते। वाशिष्ट ! उस समय जो अधर्म समझा जाता था, वही अब धर्म समझा जाता है। वाशिष्ट ! जो सत्व उस समय मैथुन-कर्म करते, वह तीन मास भी, दो मास भी गाँव या निगममे नही आने पाते थे, उस समय वार वार गिरने लगे, अधर्ममे पतित हुये थे, तव, उसी अधर्मको छिपाने के लिये घर वनाना आरम्भ किया।

(४) वैयक्तिक सम्पतिका आरम्भ

"वाशिष्ट ! तब किसी आलसीके मनमे यह आया—'शाम सुवह, दोनो समय धान (=शाली) लानेके लिये जानेका कष्ट क्यो उठावे ? क्यो न एक ही वार शाम-सुबह दोनोके खानेके लिये शालि ले आवे।' तव वह प्राणी एक ही वार ० ले आया। तव, कोई दूसरा प्राणी उस प्राणीके पास गया, जाकर वोला—'आओ, हम लोग शालि लानेके लिये चले।' 'हे सत्व ! हम ० एक ही वार ० ले आये है।'

"तव वाशिष्ट ! वह सत्व भी उस सत्वकी देखादेखी एक ही वार शालि ले आया—'यह तो वहुत अच्छा है' (सोचा)। वाशिष्ट ! तव कोई प्राणी जहाँ वह पुरुष था वहाँ गया, जाकर वोला—'आओ ! शालि लाने चले।' 'हे सत्व ! हम ० एक ही वार ० दो दिनोके लिये ले आये है।' वाशिष्ट ! तब वह सत्व भी उसकी देखादेखी एक ही वार चार दिनोके लिये शालि ले आया यह तो बहुत अच्छा है'।० देखादेखी आठ दिनके लिये०।

"तवसे प्राणी शालि एक जगह जमा करके खाने लगे। तव चावलके ऊपर कन भी भूसी भी होने लगी। (तव किसी जगहसे) एक वार उखाळ लेनेपर फिर नही जमनेके कारण वह स्थान (खाली) मालूम होने लगा। शालि (का खेत) खड खड दिखलाई देने लगी।

"वाशिष्ट ! तव वे सत्व इकट्ठे हो, ० चिल्लाने लगे—'हम प्राणियोमे पाप धर्म प्रकट हो रहे है। हम लोग पहले मनोमय ० थे, बहुत दिन तक जीते थे। वहुत दिनोके वीतनेके वाद जलमे रसा पृथ्वी हुई, वर्ण-सम्पन्न ०। उस रसा पृथ्वीको हम लोग ग्रास ग्रास करके खाने लगे ० स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। उसके अन्तर्धान होनेसे चाँद सूरज ० नक्षत्र और तारे ० रात-दिन ० मास-पक्ष ० ऋतु-वर्ष ०। रसा पृथ्वीको हम लोग वहुत दिनो तक खाते रहे। तव, हम लोगोके पाप अकुशल धर्मके प्रादुर्भूत होनेके कारण रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर भूमिमे पपळी ०। उसे हम लोग ० खाते रहे। ० ।० पाप (=अकुशल धर्म)के प्रादुर्भूत होनेके कारण भूमिकी पपळी अन्तर्धान हो गई। ० भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० उस शालिको हम लोग वहुत दिनो तक खाते रहे। तव, हम

लोगोके पाप=अकुशल धर्मके प्रकट होनेसे कन भी, भूसी भी चावलके ऊपर आ गई ०। आओ, हम लोग शालि(–खेत)बाँट ले, मेड(=मर्यादा)बाँध दे। तब उन लोगोने शालि बाँट ली, और मेड बाँध दी।

"वाशिष्ट! तब कोई लालची सत्व अपने भागकी रक्षा करता दूसरेके भागको चुरा कर खा गया। उसे लोगोने पकळ लिया, पकळकर बोले—'हे सत्व! तुम यह पाप-कर्म करते हो, जो कि० दूसरेके भागको चुराकर खा रहे हो। मत फिर ऐसा करना।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उन सत्वोको उत्तर दिया। दूसरी बार भी वह ० दूसरेके भागको चुराकर खा गया। लोगोने उसे पकळ लिया,० बोले—तुम यह पाप कर्म ०। तीसरी बार भी ०। कोई हाथसे मारने लगा, कोई डलेसे, कोई लाठीसे। वाशिष्ट! उसीके बादसे चोरी, निन्दा, मिथ्या-भाषण और दण्ड-कर्म होने लगे।

"वाशिष्ट! तब वे प्राणी इकट्ठे हो कहने लगे—'प्राणियोमे पाप-धर्म प्रकट हुये है, जो कि चोरी ०। अत हम लोग ऐसे एक प्राणीको निर्वाचित करे, जो हम लोगोके निन्दनीय कर्मोकी निन्दा करे, उचित कर्मोको बतलावे, निकालने योग्यको निकाल दे। और हम लोग उसे अपने शालिमेसे भाग दे।'

३–चारों वर्णोंका निर्माण

(१) *राजा (क्षत्रिय)की उत्पत्ति*

"वाशिष्ट! तब वे प्राणी, जो उनमे वर्णवान्(=सुन्दर), दर्शनीय, प्रासादिक, और महाशक्तिशाली था उसके पास जाकर बोले—'हे सत्व! उचितानुचितका ठीकसे अनुशासन करो, निन्दनीय कर्मोकी निन्दा करो, उचित कर्मोको बतलाओ, निकालने योग्यको निकाल दो, हम लोग तुम्हे शालिका भाग देगे।' 'बहुत अच्छा' कह ० स्वीकार कर लिया। वह ठीकसे उचितानुचितका अनुशासन करता था ० लोग उसे शालिका भाग देते थे। "वाशिष्ट! महाजनो द्वारा सम्मत होनेसे '**महासम्मत** महासम्मत' करके उसका पहला नाम पळा। क्षेत्रोका अधिपति होनेसे 'क्षत्रिय क्षत्रिय' करके दूसरा नाम (क्षत्रिय)पळा। धर्मसे दूसरोका रञ्जन करता था, अत 'राजा राजा' करके तीसरा नाम (राजा) पळा।

"वाशिष्ट! इस तरह इस क्षत्रिय मडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ। उन्ही पुरुषोका, दूसरोका नही, धर्मसे, अधर्मसे नही। "वाशिष्ट! मनुष्यमे धर्म ही श्रेष्ठ है, इस जन्ममे भी और परजन्ममे भी।

(२) *ब्राह्मणकी उत्पत्ति*

तब, उन्ही प्राणियोमे किन्ही किन्हीके मनमे यह हुआ—प्राणियोमे पापधर्म प्रादुर्भूत हो गये है, जो कि चोरी ० होती है। अत हम लोग पाप=अकुशल धर्मोको छोळ दे। उन लोगोने पाप अकुशल धर्मोको छोळ दिया। वाशिष्ट! पाप अकुशल धर्मोको छोळ (=बाह) दिया, इसीलिये 'ब्राह्मण ब्राह्मण' करके उनका पहला नाम पळा। वे जगलमे पर्णकुटी बनाकर वही ध्यान करते थे। उनके पास अगार न था, धुआ न था, मुसल न था, वह शामको शामके भोजनके लिये सुबहको सुबहके भोजनके लिये ग्राम, निगम और राजधानियोमे जाते थे। भोजन कर फिर जगलमे अपनी कुटीमे आकर ध्यान करते थे। उन्हे देखकर मनुष्योने कहा—ये सत्व जगलमे पर्णकुटी बना ध्यान करते है, इनके पास अगार नही, धुआ नही, मुसल नही ० ध्यान करते है। 'ध्यान करते है' 'ध्यान करते है' करके उनका दूसरा नाम ध्यायक पळा। वाशिष्ट! उन्ही सत्वोमे कितने जगलमे पर्णकुटी बना ध्यान न पूरा कर सकनेके कारण ग्राम या निगमके पास आकर ग्रथ बनाते हुये रहने लगे। उन्हे देखकर मनुष्योने कहा—० ग्रथ बनाते हुये रहते है, ध्यान नही करते। 'ध्यान नही करते', 'ध्यान नही करते' करके **अध्यायक** यह तीसरा नाम पळा। वाशिष्ठ! उस समय वह नीच समझा जाता था, किंतु आज वह श्रेष्ठ समझा जाता है।

"वाशिष्ट! इस तरह इस ब्राह्मण-मडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ, उन्ही प्राणियोका, दूसरोका नही, धर्मसे अ-धर्मसे नही। वाशिष्ट! धर्म ही मनुष्यमे श्रेष्ठ है, इस जन्ममे भी और परजन्ममे भी।

(३) वैश्यकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्ही प्राणियोमे कितने मैथुन कर्म करके नाना कामोमे लग गये। वाशिष्ट ! मैथुन कर्म करके नाना कामोमे लग जानेके कारण 'वैश्य' 'वैश्य' नाम पळा। वाशिष्ट ! इस तरह इस वैश्य-मडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे नाम पळा। ० वाशिष्ट ! धर्मही मनुष्यमे श्रेष्ठ है ०।

(४) शूद्रकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्ही प्राणियोमे बचे जो क्षुद्र-आचारवाले प्राणी थे। 'क्षुद्र-आचार' 'क्षुद्र-आचार' करके शूद्र अक्षर उत्पन्न हुआ। वाशिष्ट ! इस तरह ०। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमे श्रेष्ठ है ०।

(५) श्रमण (=सन्यासी)की उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! एक समय था जब क्षत्रिय भी—'मै श्रमण होऊँगा' (सोच) अपने धर्मको निदते घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाता था। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्ही चार मडलोसे श्रमण-मडलकी उत्पत्ति हुई। उन्ही प्राणियोका ०। धर्म ही मनुष्योमे श्रेष्ठ ०।

४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे दुराचार, वचन और मनसे दुराचारकर, मिथ्या-दृष्टिवाले हो, मिथ्या-दृष्टिके (=झूठी धारणा) अनुकूल आचरण करते है। और उसके कारण मरनेके बाद ० दुर्गति ० नरकमे उत्पन्न होते है। ब्राह्मण भी०। वैश्य भी०। शूद्र भी०। श्रमण भी०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे सदाचार करके ० सम्यग्-दृष्टि ०। और उसके कारण मरनेके बाद ० स्वर्गमे उत्पन्न होते है। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे दोनो (तरहके) कर्म करके, (सच झूठ दोनो)-से मिश्रित दृष्टि (=धारणा) रख, मिश्रित दृष्टिवाले कर्मको करके काया छोळ मरनेके बाद सुख दुख (दोनो) भोगनेवाले । ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे सयत ० हो सैंतीस **बोधि-पाक्षिक**[१] धर्मोकी भावना करके इसी लोकमे निर्वाणको प्राप्त करता है। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्ही चार वर्णोमे जो भिक्षु अर्हत्=क्षीणास्रव, समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भार-मुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भवबधन-मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वही उनमे श्रेष्ठ कहा जाता है। धर्मसे, अधर्मसे नही। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमे श्रेष्ठ है, इस जन्ममे भी और परजन्ममे भी।

"वाशिष्ट ! ब्रह्मा सनत्कुमारने भी गाथा कही है—

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोमे क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योमे श्रेष्ठ है' ॥१॥

"वाशिष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने ठीक ही कही है, बेठीक नही कही। सार्थक कही, अनर्थक नही। इसका मै भी अनुमोदन करता हूँ—

'गोत्र लेकर ०' ॥१॥

भगवान्‌ने यह कहा। सतुष्ट हो वाशिष्ट और भारद्वाजने भगवान्‌के भाषणका अनमोदन किया।

---

[१] देखो पृष्ठ २४७।

२८--सम्पसादनिय-सुत्त (३।५)

१--परमज्ञानमें बुद्ध तीनो कालमें अनुपम। २--बुद्धके उपदेशोकी विशेषतायें। ३--बुद्धमें अभिमान-शून्यता।

ऐसा मैने सुना--एक समय भगवान् नालन्दाके प्रावारिक-आम्रवनमे विहार करते थे।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा[1]--

१--परमज्ञानमें बुद्ध तीनों कालमें अनुपम

"भन्ते! मै ऐसा प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ--'सबोधि (=परम ज्ञान)मे भगवान्‌से बढकर =भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। एकाश सिहनाद किया--'मै ऐसा प्रसन्न हूँ ०।' सारिपुत्र! अतीतकालमे जो अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हुए थे, क्या (तूने) उन सब भगवानोको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहारवाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नही, भन्ते!"

"सारिपुत्र! जो वह भविष्यकालमे अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध होगे, क्या उन सब भगवानोको चित्तसे जान लिया ०?" "नही, भन्ते!"

"सारिपुत्र! इस समय मै अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मै) ऐसी प्रज्ञा-वाला ० हूँ?" 'नही भन्ते!"

"(जब) सारिपुत्र! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोके विषयमे चेत-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नही है, तो सारिपुत्र! तूने क्यो यह बहुत उदार=आर्षभी वाणी कही ०?"

"भन्ते! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धोमे मुझे चेत-परिज्ञान नही है, किन्तु (सबका) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते! राजाका सीमान्त-नगर दृढ नीववाला, दृढ-प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातो (=अपरिचितो)को निवारण करने-वाला, ज्ञातो (=परिचितो)को प्रवेश करानेवाला पडित=व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगर-के चारो ओर, अनुपर्याय (=क्रमसे) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमे अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी सधि=विवर न पाये, उसको ऐसा हो--'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमे प्रवेश करते है, सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते! मैने धर्म-अन्वय जान लिया--'जो अतीतकालमे

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२२)।

अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् चित्तके मल, प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले पाँचो **नीवरणोको** छोळ, चारो **स्मृति-प्रस्थानोमें** चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात **बोध्यगोकी** यथार्थसे भावनाकर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक्-सबोधिका अभि-सबोधन किये थे—' । और भन्ते ! अनागतमे भी जो अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध होगे, वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-सबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।"

२—बुद्धके उपदेशोंकी विशेषतायें

१—"भन्ते ! एक बार मै धर्म सुननेके लिये जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, तब मुझे भगवान्ने अच्छे बुरेको विभक्त करके उत्तरोत्तर सुन्दर धर्मका उपदेश किया, जैसे जैसे भगवान्ने मुझे अच्छे बुरेको विभक्तकर उत्तरोत्तर सुन्दर धर्मका उपदेश किया, वैसे वैसे उन धर्मोमेसे कुछको जानकर उन धर्मोमे मेरी निष्ठा हुई, मै शास्ताके प्रति वळा प्रसन्न हुआ—भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध है, भगवान्का धर्म अच्छी तरह व्याख्यात है, भगवान्का श्रावक-सघ सुमार्गारूढ है।

२—"भन्ते ! इससे भी और वढकर है, जो कि भगवान् कुशल धर्मो (=अच्छाइयो)का उपदेश करते है। (वे कुशल धर्म ये है) जैसे कि—चार **स्मृति-प्रस्थान**, चार **सम्यक्-प्रधान**, चार **ऋद्धि-पाद**, पाँच **इन्द्रिय**, पाँच **बल**, सात **बोध्यङग**, आर्य **अष्टागिडक मार्ग**[1]। भन्ते ! भिक्षु आस्रवो (=चित्त-मलो)के क्षयसे आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति (=चित्तकी मुक्ति) और प्रज्ञाविमुक्ति (=ज्ञान द्वारा मुक्ति)को इसी जन्ममे स्वय जान और साक्षात्करके विहार करता है। भन्ते ! कुशल धर्मोमे यह सबसे वढकर है जिन्हे कि भगवान् अशेष जानते है। अशेष जाननेवाले भगवान्के लिये कुछ और ज्ञातव्य नही छूटा है, जिसे कि जानकर दूसरा श्रमण या ब्राह्मण भगवान्से कुशल धर्मोमे वढ जाये।

३—"भन्ते ! इससे भी और वढकर है, जो कि भगवान् आयतन **प्रज्ञप्तियो** (=आयतनोके व्याख्यान)का उपदेश करते है। भन्ते ! वाहर और भीतर मिलाकर छै आयतन है—(१) चक्षु और रूप, (२) श्रोत्र और शब्द , (३) घ्राण और गन्ध, (४) जिह्वा और रस, (५) काया और स्पर्श, (६) मन और धर्म। भन्ते ! आयतनप्रज्ञप्तिमे यह सबसे बढकर है, जिसे कि भगवान् अशेप जानते है। अशेप जाननेवाले ० जिसे कि जानकर दूसरा श्रमण या ब्राह्मण भगवान्से आयतन प्रज्ञप्तिमे वढ जाये।

४—"भन्ते ! इससे भी और वढकर है जो कि भगवान् प्राणियोके **गर्भ-प्रवेशके** विपयमे उपदेश करते है। भन्ते ! प्राणियोका गर्भमे प्रवेश चार प्रकारसे होता है। भन्ते ! कोई प्राणी (१) न जानते हुए माताकी कोखमे प्रवेश करता है, न जानते हुए माताकी कोखमे ठहरता है, न जानते हुए माताकी कोखसे निकलता है। यह गर्भमे आनेका पहला प्रकार है। (२) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है, न जानते हुए ० ठहरता ० निकलता है। यह ० दूसरा प्रकार है। (३) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है, ठहरता है, न जानते हुए निकलता है। यह ० तीसरा प्रकार है। (४) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है ० ठहरता ० निकलता है। यह ० चोथा प्रकार है। भन्ते ! यह अनुपम गर्भ-प्रवेश (के व्याख्यानो)मे है।

५—"भन्ते ! इससे भी और वढकर है जो कि भगवान् **आदेशनाविधिका** धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! चार प्रकारकी आदेशनाविधि है। (१) भन्ते ! कोई निमित्त (=लक्षण) जानकर आदेश करता है—तुम्हारा ऐसा मन है, तुम्हारा वैसा मन है, तुम्हारा ऐसा चित्त है। वह यदि वहुत भी आदेश करता है, तो (भी वह) ठीक वैसा ही होता है, अन्यथा नही। यह पहली आदेशनाविधि है।

---

[1] यही ३७ बोधिपाक्षिक धर्म है, और यही सक्षिप्त वौद्धधर्म है।

(२) भन्ते ! कोई बिना निमित्तहीके आदेश करता है। मनुष्यके, अमनुष्य (=देवता) के, या देवताओके शब्दको सुनकर आदेश करता है—तुम्हारा ऐसा मन ०। यह दूसरी आदेशनाविधि है। (३) भन्ते ! फिर कोई न निमित्तसे और न मनुष्य-अमनुष्यके शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क और विचार समाधिमे आरूढके चित्तको अपने चित्तसे जान कर आदेश करता है—ऐसा भी तुम्हारा मन ०। यह तीसरी आदेशनाविधि है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० न वितर्कसे निकले शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क विचार रहित समाधिमे स्थित हुए चित्तसे चित्तकी बात जान लेता है—आप (लोगो) के मानसिक सस्कार प्रणिहित (=एकाग्र) है, जिससे इस चित्तके बाद ही यह वितर्क होता है। यह चौथी आदेशनाविधि है।०।

६—"भन्ते ! इससे भी और बढकर है जो कि भगवान् **दर्शनसमापत्तिके** विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! चार प्रकारकी दर्शन-समापत्तियाँ है। (१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण, उद्योग प्रधान, अनुयोग, अन्-आलस्य (=अ-प्रमाद), ठीक मनोयोगके साथ वैसी चित्त-एकाग्रता (=समाधि) को प्राप्त होता है, जैसी चित्त-एकाग्रतासे कि उस एकाग्र (=समाहित) चित्तमे तलवेसे ऊपर, शिरसे नीचे, और चमळा मँढे इस शरीरको नाना प्रकारकी गन्दगीसे भरा पाता है—इस शरीरमे है—केश, रोम, नख, दन्त, चर्म, मास, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, उदरस्थ (वस्तुये), पाखाना, पित्त, कफ, पीव, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्वी), लार, नासामल, लसिका (=शरीरके जोळोमे स्थित तरल द्रव्य) और मूत्र। यह पहली दर्शन-समापत्ति है। (२) भन्ते ! फिर, कोई० उस एकाग्र चित्तमे० तलवेसे ऊपर ० इस शरीरको गन्दगी ० केश, रोम०। पुरुषके भीतर केवल चमळा, मास, खून और हड्डी देखता है। यह दूसरी दर्शसमापत्ति है। (३) भन्ते ! फिर, कोई ० उस एकाग्र चित्तमे ० पुरुषके भीतर ०। इस लोक और परलोकमे अ-खडित, इस लोकमे प्रतिष्ठित और परलोकमे भी प्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत (=भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो कालोमे बहती जीवनधारा) को जान लेता है। यह तीसरी दर्शनसमापत्ति है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० उस एकाग्र चित्तमे ०। ० इस लोकमे अप्रतिष्ठित और परलोकमे अप्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत ० अ-खडित। यह चौथी ०।

७—"भन्ते ! इससे भी और बढकर है कि भगवान् **पुद्गलप्रज्ञप्ति** विषयक धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! पुद्गल (=पुरुष) सात प्रकारके होते है—(१) रूपसमापत्ति और अरूप समापत्ति दोनो भागोसे विमुक्त (२) प्रज्ञा-विमुक्त (३) कायसाक्षी (४) दृष्टिप्राप्त (५) श्रद्धाविमुक्त (६) धर्मानुसारी, (७) श्रद्धानुसारी। भन्ते ! इसके ०।

८—"भन्ते ! इससे भी और बढकर है जो कि भगवान् **प्रधानोके** विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! सम्बोधि (=परमज्ञान) के सात अङ्ग है (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग (२) धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग (३) वीर्य-सम्बोध्यङ्ग (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धि-सम्बोध्यङ्ग (६) समाधि-सम्बोध्यङ्ग (७) उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग। भन्ते ! इसके ०।

९—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **प्रतिपदा** (=मार्ग) के विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! प्रतिपदा चार है। (१) दुखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, (२) दुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, (३) सुखाप्रतिपदा-दन्धाभिज्ञा, (४) सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा। भन्ते ! जो यह दुखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है वह दोनो प्रकारसे हीन समझी जाती है—दुख(-मय) होनेके कारण और दन्ध (=धीमी) होनेके कारण। भन्ते ! जो यह दुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है, वह दुख(-मय) होनेसे हीन समझी जाती है। भन्ते ! जो सुखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है, वह दन्धा (=धीमी) होनेके कारण हीन समझी जाती है।

भन्ते ! जो यह सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है वह दोनो प्रकारसे अच्छी समझी जाती है, सुख (मय) होनेके कारण और क्षिप्र (=शीघ्र) होनेके कारण। भन्ते ! इसके ०।

१०—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **भस्स-समाचार** (=वाचिक आचरण)के विपयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई (भिक्षु) जीत जानेकी इच्छासे न झूठ बोलता है, न लळाई लगानेवाली बात कहता है, न चुगली खाता है और न वैरकी बाते करता है। प्रज्ञापूर्वक सोच समझकर हृदयङ्गम करने योग्य समयोचित बात बोलता है। भन्ते ! इसके ०।

११—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् पुरुपके **शील-समाचार** (=शील सबधी आचरण)के विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! कोई भिक्षु सच्ची श्रद्धावाला होता है, न पाखडी, न बकवादी, न नैमित्तिक न निष्प्रेषिक न लाभसे लाभ पानेकी इच्छावाला होता है, इन्द्रियोमे सयम रखनेवाला, मात्रासे भोजन करनेवाला, समान आचरण करनेवाला, जागरणमे तत्पर, आलस्यसे रहित, वीर्यवान्, ध्यानपरायण, स्मृतिमान्, कल्याणी प्रतिभावाला, अच्छी गतिवाला, धृतिमान्, (और) मतिमान् होता है। सासारिक भोगोमे लिप्त न हो, स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। भन्ते ! इसके ०।

१२—"भन्ते ! इससे भी बढकर है जो कि भगवान् **अनुशासनविधि**-विषयक धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! अनुशासनविधि चार प्रकारकी होती है—(१) भन्ते ! भगवान् अच्छी तरह मन लगाकर दूसरे मनुष्योके भीतरकी बात जान लेते है—यह मनुष्य किसके अनुसार आचरण करता, तीन सयोजनो (=सासारिक बन्धनो)के क्षयसे मार्गसे च्युत न होनेवाला हो, दृढतापूर्वक सम्बोधिपरायण **स्रोत-आपन्न** होगा। (२) भन्ते ! भगवान् ० भीतरकी बात जान लेते है—यह मनुष्य ० तीन सयोजनोके क्षयसे, राग, द्वेप और मोहके दुर्बल हो जानेसे **सकृदागामी** होगा, और एक ही बार इस लोकमे आकर अपने दु खोका अन्त करेगा। (३) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० पाँच इसी ससारमे फँसाकर रखनेवाले बन्धनो (=अवरभागीय सयोजनो)के कट जानेसे **औपपातिक** (=देवता) होगा= उस लोकसे फिर कभी नही लौटेगा (=अनागामी)। (४) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० आस्रवोके क्षय-हो जानेसे आस्रव-रहित चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको यही जानकर, साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत होगा)। भन्ते ! इसके ०।

१३—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **परपुद्गलविमुक्तिज्ञानके** विपयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! भगवान् ० जान लेते है—यह मनुष्य ० स्रोतआपन्न ० सकृदागामी ० अनागामी ० चेतोविमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्तिको यही जान और साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत् होगा) ।

१४—"भन्ते ! इससे भी बढकर है, जो कि भगवान् **शाश्वत-वादोके** विषयमें धर्मोपदेश करते है। भन्ते ! शाश्वतवाद तीन है—(१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ०[1] उस समाधिको प्राप्त करता है जिससे एकाग्र चित्त होनेपर अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोको स्मरण करता है—जैसे, एक जन्म ०[1]। वह ऐसा कहता है—मै अतीत और अनागत कालकी बाते भी जानता हूँ, लोकका सवर्त (=प्रलय) होगा विवर्त (=प्रादुर्भाव) होगा। आत्मा और लोक शाश्वत, वन्ध्य=कूटस्थ अचल है। प्राणी (नाना योनियोमे) दौळते है, फिरते है, मरते है, उत्पन्न होते है। उनका अस्तित्व सदा रहेगा। यह पहला शाश्वतवाद है। (२) भन्ते ! फिर, कोई ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है एक सवर्त ०। वह ऐसा कहता—मै अतीत और अनागत कालकी बात जानता हूँ ०। आत्मा और लोक शाश्वत है। यह

---

[1] देखो पृष्ठ ३१।

दूसरा शाश्वतवाद है। (३) भन्ते! फिर कोई ० स्मरण करता है ० दस सवर्त-विवर्त ०। वह ऐसा कहता है—मैं अतीत और अनागतकी बाते जानता हूँ। आत्मा और लोक शाश्वत है ०। यह तीसरा शाश्वतवाद है। भन्ते! इसके०।

१५—"भन्ते! इससे भी वढकर है, जो कि भगवान् पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान (=पूर्व जन्मके स्मरण) के विपयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है—एक जन्म ०, अनेक सवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक सवर्त-विवर्त कल्प। भन्ते! ऐसे देव है जिनकी आयुको न कोई गिन सकता है और न कह सकता है, किन्तु सरूप योनिमे या अरूप योनिमे, सज्ञावाले होकर या सज्ञाके विना, या नैवसज्ञा-नासज्ञा होकर जिस जिस आत्म-भाव(=शरीर)मे वे पहले रह चुके है, उन अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोको आकार और नामके साथ स्मरण करते है। भन्ते! इसके ०।

१६—"भन्ते! इससे भी वढकर है, जो कि भगवान् सत्वोके जन्म-मरणके ज्ञानके विपयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे मरते, जनमते, अच्छे, वुरे, सुन्दर, कुरूप, अच्छी गतिको प्राप्त, वुरी गतिको प्राप्त सत्वोको देखता है। तथा ० अपने कर्मानुसार गतिको प्राप्त सत्वोको जान लेता है—ये सत्व कायिक दुराचारसे युक्त थे। ये मरनेके वाद ० दुर्गतिको प्राप्त होगे।—ये सत्व कायिक सदाचारसे युक्त है। ये मरनेके वाद ० सुगतिको प्राप्त होगे। इस प्रकार अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे ० सत्वोको देखता है। मरते, जनमते ० सत्वोको जान लेता है। भन्ते! इसके अलावे ०।

१७—"भन्ते! इससे भी वढकर है, जो कि भगवान् ऋद्धिविध (=दिव्यशक्ति)के विषयमे धर्मोपदेश करते है। भन्ते! ऋद्धिविध दो प्रकारकी है। भन्ते! जो आस्रव-युक्त और उपाधि-युक्त ऋद्धियाँ है, वह अच्छी नही कही जाती। भन्ते! जो आस्रव-रहित और उपाधि-रहित ऋद्धियाँ है, वह अच्छी कही जाती है। (१) भन्ते! वह कोनसी उपाधि-युक्त और आस्रव-युक्त ऋद्धियाँ है, जो अच्छी नही कही जाती?—

ऋद्धियाँ—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धिकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोको प्राप्त करता है—एक होकर वहुत होता है, वहुत होकर एक होता है, प्रकट होता है। अन्तर्धान होता है। दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार विना टकराये चला जाता है, मानो आकाशमे (जा रहा हो)। पृथिवीमे गोते लगाता है मानो जलमे (लगा रहा हो)। जलके तलपर भी चलता है जैसे कि पृथिवीके तलपर। आकाशमे भी पालथी मारे हुए उळता है, जैसे पक्षी (उळ रहा हो), महातेजस्वी सूरज ओर चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है, ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमे किये रहता है।

"भन्ते! यह ऋद्धि आस्रव-युक्त आधि-युक्त है, जो कि अच्छी नही कही जाती। (२) भन्ते! वह कौन सी आस्रव-रहित और उपाधि-रहति ऋद्धि है, जो कि अच्छी कही जाती है?—भन्ते! यदि भिक्षु चाहता है—'प्रतिकलमे, अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'अप्रतिकूलमे प्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह प्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूलमे अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल ओर अप्रतिकूलमे प्रतिकूल ख्याल रख (=सज्ञावाला हो)कर विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनोका ख्याल न कर स्मृतिमान् और सावधान हो उपेक्षा भावसे

विहार करूँ', तो स्मृतिमान् ओर सावधान हो उपेक्षा भावसे ही विहार करता है। भन्ते ! यह ऋद्धि आस्रवरहित और उपाधि-रहित होनेसे अच्छी समझी जाती है ।

१८—"भन्ते ! इसके ०। उसे भगवान् अशेष जानते है। आपको ० जानने के लिये कुछ वचा नही है, जिसे जानकर कि दूसरे श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिविध (=दिव्यशक्ति)मे आपसे बढ जाये।

"भन्ते ! वीर्यवान्, दृढ, पुरुषोचित स्थिरतासे युक्त, पुरुषोचित वीर्यसे युक्त, पुरुषोचित पराक्रमसे युक्त, श्रद्धायुक्त महापुरुष कुलपुत्रके लिये जो प्राप्तव्य है, उसे आपने प्राप्तकर लिया है। भन्ते ! भगवान् न तो हीन, ग्राम्य, अज्ञ लोगोके करने लायक, अनार्य और अनर्थक सासारिक सुखविलासमे पळे है, और न आप दु ख, अनार्य और अनर्थक आत्मक्लमथानुयोगमे (=शरीरको नाना प्रकारकी तपस्यासे कष्ट देना) युक्त है, इसी लोकमे सुख देनेवाले चार आधिचैतसिक (=चित्तसवधी) ध्यानोको भगवान् इच्छानुसार सुखपूर्वक वहुत प्राप्त करते है।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछे—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमे कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमे भगवान्से वढकर था ? ० भन्ते ! मै उत्तर दूँगा—'नही'। ० क्या अनागत कालमे ० होगा ? ० मै उत्तर दूँगा—'नही'। क्या अभी कोई ० है ? ० मै उत्तर दूँगा—'नही'।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछे—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमे कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमे भगवान्के सदृश था ? ० मै उत्तर दूँगा—'नही'। ० क्या अनागत कालमे कोई ० होगा ? ० 'नही'। ० क्या अभी कोई ० है ? ० 'नही'।

"भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे—क्या आयुष्मान् सारिपुत्र ! (भगवान्) कुछको जानते है और कुछको नही जानते ? ऐसा पूछे जानेपर, भन्ते ! मै यह उत्तर दूँगा—'आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैने ऐसा सुना है, भगवान्के मुँहसे जाना है।—अतीत काल मे जो अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध थे, वे सम्वोधिमे मेरे वरावर थे।' आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैने ऐसा सुना है०। अनागतमे ० होगे। ० ऐसा सुना है०। एक ही लोकधातुमे एक ही समय एक साथ दो अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध नही हो सकते है। ऐसा सम्भव नही है।'

"भन्ते ! किसीके पूछनेपर यदि मै ऐसा उत्तर दूँ तो भगवान्के विपयमे मेरा कहना ठीक तो होगा, भगवान्के विपयमे कोई झूठी निन्दा तो नही होगी, यह कथन धर्मानुकूल तो होगा ?"

"सारिपुत्र ! ० किसीके पूछनेपर यदि तुम ऐसा उत्तर दो, तो ० यह कथन धर्मानुकूल ही होगा०।"

३—बुद्धमें अभिमान शून्यता

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् उदायीने भगवान्से कहा—"भन्ते ! आश्चर्य है ० तथागतकी अल्पेच्छता, सतोष, निर्मलचित्तताको, कि तथागत इस प्रकारकी बळी ऋद्धिवाले होते भी, इस प्रकार महानुभाव होते भी, अपनेको प्रकट नही करते। भन्ते ! यदि इनमेसे एक वातको भी दूसरे मतवाले साधु अपनेमे पावे तो उसीको लेकर वे पताका उळाते फिरे। भन्ते ! आश्चर्य है ०।"

"उदायि ! देखो—तथागतकी अल्पेच्छता ० कि अपनेको प्रकट नही करते। यदि इनमेसे एक भी वात०को लेकर वे पताका उळाते फिरे। उदायि ! देखो।"

तव भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको सम्वोधित किया—"सारिपुत्र ! तो तुम भिक्षु-भिक्षुणियोको, उपासक-उपासिकाओको यह धर्मपर्याय (=धर्मोपदेश) कहते रहो। सारिपुत्र ! जिन अज्ञोको सन्देह होगा—तथागतमे काक्षा=विमति (=सदेह) होगी, वह दूर हो जायेगी।"

इस प्रकार आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्के सम्मुख अपने सम्प्रसाद (=श्रद्धा)को प्रकट किया। इसलिये इस उपदेशका नाम **सम्पसादनिय** पळा।

२९–पासादिक-सुत्त (३।६)

१—तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद। २—विवादके कारण—गुरु और धर्मकी अयोग्यता। ३—योग्य गुरु और धर्म। ४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म। ५—बुद्ध वचनकी कसौटी। ६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये है। ७—अनुचित उचित आरामपसन्दी। ८—भिक्षु बुद्धधर्मपर आरूढ। ९—बुद्ध कालवादी यथार्थवादी। १०—अव्याकृत और व्याकृत बाते। ११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन। १२—स्मृति प्रस्थान।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में वेधञ्ञा नामक शाक्योके आम्रवन-प्रासादमें विहार कर रहे थे।

१–तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद

उस समय निगण्ठ नाथपुत्त (=तीर्थंकर महावीर)की पावामे हालहीमे मृत्यु हुई थी। उनके मरनेपर निगण्ठोमें फूट हो गई थी, दो पक्ष हो गये थे, लड़ाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक दूसरेको वचन-रूपी वाणोसे वेधते हुए विवाद करते थे—'तुम इस धर्मविनय (=धर्म)को नही जानते मै इस धर्मविनयको जानता हूँ। तुम भला इस धर्मविनयको क्या जानोगे? तुम मिथ्या-प्रतिपन्न हो(=तुम्हारा समझना गलत है), मैं सम्यक्-प्रतिपन्न हूँ। मेरा कहना सार्थक है और तुम्हारा कहना निरर्थक। जो (वात) पहले कहनी चाहिये थी वह तुमने पीछे कही, और जो पीछे कहनी चाहिये थी, वह तुमने पहले कही। तुम्हारा वाद विना विचारका उल्टा है। तुमने वाद रोपा, तुम निग्रह-स्थानमे आ गये। इस आक्षेपसे वचनेके लिये यत्न करो, यदि शक्ति है तो इसे सुलझाओ।' मानो निगण्ठोमे युद्ध (=वध) हो रहा था।

निगण्ठ नाथपुत्तके जो श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे, वे भी निगण्ठके वैसे दुराख्यात (=ठीकसे न कहे गये), दुष्प्रवेदित (=ठीकसे न साक्षात्कार किये गये), अ-नैर्याणिक (=पार न लगानेवाले), अन्-उपशम-सवर्तनिक (=न-शान्तिगामी), अ-सम्यक्-सबुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्ध द्वारा न साक्षात् किया गया), प्रतिष्ठा(=नीव)-रहित=भिन्न-स्तूप, आश्रय-रहित धर्ममें अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त हो रहे थे।

तव, चुन्द समणुद्देस पावामे वर्षावास कर जहाँ **सामगाम**[1] था और जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गये। ० वैठ गये। ० वोले—"भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्तकी अभी हालमे पावामे मृत्यु हुई है। उनके मरनेपर निगण्ठोमे फूट०।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्द वोले—"आवुस चुन्द! यह कथा भेंट रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् है वहाँ चले। चलकर यह वात भगवान्से कहे।"

---

[1] मिलाओ सामगाम-सुत्त १०४ (मज्झिम-निकाय, पृष्ठ ४४१)।

"बहुत अच्छा" कह चुन्दने० उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द ० श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। ० एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द बोले—"भन्ते ! चुन्द ० ऐसा कहता है—'निगण्ठ ० पावामे ०' ।"

२—विवाद के लक्षण

१—अयोग्य गुरु—"चुन्द ! जहाँ शास्ता (=गुरु) सम्यक् सम्बुद्ध नही होता, धर्म दुराख्यात होता है ० और उस धर्ममे शिष्य (=श्रावक) धर्मानुसार मार्गारूढ होकर नही विहार करते, न सामीचि (=ठीक मार्ग) पर आरूढ होते, और न धर्मानुसार चलनेवाले होते है। वहाँ शास्ताकी भी निन्दा होती है, उस धर्मसे ० उस धर्मको छोळकर चलते हो,' धर्मकी भी निन्दा होती है। इस प्रकार शिष्य प्रशसनीय है, जो ऐसे श्रावकको ऐसा कहे—'आओ, आयुष्मान् (अपने) गुरुके उपदेश=प्रज्ञप्तिके अनुसार धर्मपर आरूढ हो।' तो जो उसे कहता है, जिसे कहता है और जो कहनेपर वैसा कहता है, वह सभी बहुत पाप करतेहै। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म०में ऐसा ही होता है।

२—अयोग्य धर्म—"चुन्द ! शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध धर्म दुराख्यात ०, और यदि श्रावक उस धर्ममे धर्मानुसार मार्गारूढ० होकर विहार करता हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हे अलाभ है, दुर्लभ है। शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध है, धर्म दुराख्यात० है, और तुम वैसे धर्ममे मार्ग रूढ० हो।'

"चुन्द ! ऐसी हालतमे शास्ता भी निन्द्य, धर्म भी निन्द्य और श्रावक भी वैसा ही निन्द्य है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानसम्पन्न और ज्ञानानुकूल आचरण करनेवाले है'—तो जो प्रशसा करता है, जिसकी प्रशसा करता है, और जो प्रशसित होकर अधिकाधिक उसी ओर उत्साहित होता है, वह सभी बहुत पाप करते है। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म-विनय०मे ऐसा ही होता है।

३—योग्य गुरु और धर्म

१—अधन्य शिष्य—"चुन्द ! जहाँ शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात (=अच्छी तरह कहा गया), सुप्रवेदित=नैर्याणिक (=मुक्तिकी ओर ले जानेवाला), शान्ति देनेवाला, तथा सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित हो, और उस धर्ममे श्रावक धर्मानुसार मार्गारूढ नही हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हे बळा अलाभ है, बळा दुर्लभ है, तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध है, धर्म स्वाख्यात ० है और तुम उस धर्ममे धर्मानुसार मार्गारूढ ० नही हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामे शास्ता भी प्रशसनीय है, धर्म भी प्रशसनीय है ओर श्रावक ही उस प्रकार निन्द्य है। चुन्द ! जो उस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—आप वैसा ही करे, जैसा आपके शास्ता ०—तो जो कहता है ० सभी बहुत पुण्य करते है। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात ० धर्ममे ऐसा ही होता है।

२—धन्य शिष्य—"चुन्द ! शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात ० हो, और श्रावक उस धर्ममे धर्मानुसार मार्गारूढ ० हो। उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हे लाभ है, तुम्हारा लाभ बळा सुन्दर है, (जो) तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध है, धर्म स्वाख्यात ० है, ओर तुम भी उस धर्ममे धर्मानुसार मार्गारूढ ० हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामे शास्ता भी प्रशसनीय है, धर्म भी प्रशसनीय है, और श्रावक भी उसी तरह प्रशसनीय है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानप्रतिपन्न है=ज्ञानानुकूल आचरण करते है'—तो जो प्रशसा करता है ० वह सभी बहुत पुण्य करते है। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात धर्मविनय०मे ऐसा ही होता है।

३—गुरुकी शोचनीय मृत्यु—"चुन्द ! जहाँ अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमे उत्पन्न हुए हो, धर्म भी स्वाख्यात ०, (किन्तु) श्रावकोने सद्धर्मको नही समझा, उनके लिये शुद्ध, पूर्ण ब्रह्मचर्य ठीकसे आविष्कृत सरल, सुज्ञेय, युक्तिसगत नही किया गया, देव-मनुष्योमे अच्छी तरह प्रकाशित नही हुआ, और

इसी बीच उनके शास्ता अन्तर्धान हो गये। चुन्द ! इस प्रकार शास्ताकी मृत्यु श्रावकोंके लिये शोचनीय होती है। सो क्यो ? हम लोगोके अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमे उत्पन्न हुए धर्म भी स्वाख्यात ०, किन्तु हम लोगोने इस सद्धर्मका अर्थ नही समझा, और हमारे लिये ब्रह्मचर्य भी आविष्कृत ० नही ०। जब ऐसे शास्ताका अन्तर्धान होता है, जब ऐसे शास्ताकी मृत्यु होती है, तो शोच-नीय होती है।

४—गुरुकी अशोचनीय मृत्यु—"चुन्द ! लोकमे अर्हत् ० शास्ता, धर्म स्वाख्यात ० और श्रावकोको सद्धर्म समझाया गया होता है, उनके लिये ब्रह्मचर्य ० आविष्कृत होता है। उस समय उनका शास्ता अन्तर्धान हो जाता है। चुन्द ! इस प्रकारके शास्ताकी मृत्यु शोचनीय नही होती। सो किस हेतु ? 'हम लोगोके अर्हत् ० शास्ता लोकमे उत्पन्न हुए, धर्म स्वाख्यात ० और हम लोग भी ० अर्थ समझे। ० हम लोगोके शास्ताका अन्तर्धान हो गया'। चुन्द ! शोचनीय नही है।

५—अपूर्णसन्यास—"चुन्द ! ब्रह्मचर्य इन अगोमे युक्त होता है, किन्तु शास्ता स्थविर, वृद्ध, चिरप्रव्रजित, अनुभवी, वय प्राप्त नही होते, तो इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य इस अङ्गसे अ-पूर्ण होता है। चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोमे युक्त होता है, और शास्ता स्थविर ० होते है, तब वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूरा होता है।

"चुन्द ! ब्रह्मचर्य उन अङ्गोसे भी युक्त होता है, शास्ता भी स्थविर ० होते है, किन्तु उनके रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) स्थविर भिक्षु-श्रावक (=भिक्षु शिष्य) व्यक्त, विनीत, विशारद, योगक्षेम-प्राप्त (=मुक्त) सद्धर्म कथनमे समर्थ, दूसरे पक्षके किये गये आक्षेप (=वाद)को धर्मानुकूल अच्छी तरह समझाकर युक्तिसहित धर्म-देशना करनेमे समर्थ नही होते, तो वह भी ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है। चुन्द ! जब इन अङ्गोसे ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है, शास्ता भी स्थविर ०, और उनके ० स्थविर भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० इस प्रकारका ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूर्ण होता है।

"चुन्द ! इन अङ्गोसे युक्त ब्रह्मचर्य हो, शास्ता स्थविर ०, ० भिक्षु-श्रावक व्यक्त, ० किन्तु वहाँ मध्यम (वयस्क) भिक्षु-श्रावक व्यक्त नही ० मध्यम भिक्षु श्रावक व्यक्त ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त नही ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०। ० स्थविर ०, ० मध्यम ०, ० नई भिक्षुणी व्यक्त नही ०।

"० उनके गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी उपासक-श्रावक (=गृहस्थ शिष्य) नही ०। ० कामभोगी उपासक श्रावक, व्यक्त ० नही ०, कामभोगी है, ० ब्रह्मचारिणी उपासिका व्यक्त नही, ०। ब्रह्मचारिणी है, कामभोगिनी उपासिका ० नही ०।

"० ब्रह्मचर्य ० देव और मनुष्योमे सुप्रकाशित, समृद्ध, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल (=पृथुभूत) नही होता ०। ० ब्रह्मचर्य ० विशाल होता है। इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है, लाभ और यश नही पाता।

६—पूर्ण सन्यास—"चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोसे युक्त होता है—शास्ता स्थविर ० होते है। स्थविर भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०, मध्यम भिक्षु-श्रावक ०, नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०, स्थविर ०, मध्यम ० नई भिक्षुणी-श्राविका व्यक्त ०, ब्रह्मचारी उपासक गृहस्थ ०, कामभोगी उपासक ०, ० ब्रह्मचारिणी उपासिका ०—तो ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत ० होता है। इस प्रकार उस अङ्गसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्य, लाभ और यशको पाता है।

"चुन्द ! इस समयमे लोकमे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुआ हूँ, धर्म स्वाख्यात ०, और मेरे श्रावक सद्धर्मके अर्थको समझे, है उनका ब्रह्मचर्य ० बिलकुल पूर्ण है।

"चुन्द ! मै शास्ता ० स्थविर ०। मेरे स्थविर भिक्षु-श्रावक व्यक्त, विनीत, विशारद ०, मध्यम भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ०, नये भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० है। चुन्द ! स्थविर भिक्षुणी-श्राविका, मध्यम भिक्षुणी-श्राविका और नई भिक्षुणी-श्राविका भी व्यक्त ० चुन्द ! मेरे उपासक-श्रावक ० ब्रह्मचारी, कामभोगी है, उपासिका श्राविका ब्रह्मचारिणी कामभोगिनी ०।

"चुन्द ! मेरा यह ब्रह्मचर्य समृद्ध उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, विशाल और देव मनुष्योमे सुप्रकाशित है। चुन्द ! आज जितने शास्ता लोकमे उत्पन्न हुए है उनमे मै किसी एकको भी नही देखता हूँ, जो मेरे जैसा लाभ और यश पानेवाले हो। चुन्द ! आज तक लोकमे जितने सघ या गण उत्पन्न हुए है, उनमे एक सघको भी नही देखता हूँ जिसने मेरे भिक्षुसघके समान लाभ और यश पाया हो। चुन्द ! जिसके बारेमे अच्छी तरह कहनेवाले कहते है कि (इस सघका) ब्रह्मचर्य सब तरहसे सम्पन्न, सब तरहसे परिपूर्ण, अ-न्यून अन्-अधिक, सु-आख्यात=सु-प्रकाशित और परिपूर्ण है। अच्छी तरह कहनेवाले यही कहते है।

"चुन्द ! उद्दक रामपुत्र कहता था—'देखते हुए नही देखता'। क्या देखते हुए नही देखता ? अच्छी तरह तेज किये छुरेके फलको देखता है, धारको नही। चुन्द ! इसीको कहते है—देखते हुए भी ०। चुन्द ! जो कि उद्दक राम-पुत्र हीन, ग्राम्य, मूर्खोके योग्य, अनार्य, अनर्थक कहता था वह छुरेका ही ख्याल करके। चुन्द ! जिसे कि अच्छी तरह कहनेवाले कहते है—देखते हुए भी नही देखता।

"० क्या देखते हुए नही देखता ? इस प्रकारके सब तरहसे सम्पन्न ० ब्रह्मचर्यको वैसा नही देखता है, इस प्रकार इसे नही देखता। 'यहाँसे इसे निकाल दे, तो वह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नही देखता, 'यहाँ इसे मिला दे, तो वह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नही देखता। इसे कहते है—'देखते हुए नही देखता'। चुन्द ! जिसके बारेमे अच्छी तरह कहनेवाले ०।

४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म

"अत चुन्द ! जिस धर्मको मैने बोधकर तुम्हे उपदेश किया है, उसे सभी मिल जुलकर ठीक समझे बूझे, विवाद न करे। जिसमे कि यह ब्रह्मचर्य अच्छा ओर चिरस्थायी होगा, जो कि लोगोके हित, सुखके लिये, ससारपर अनुकम्पाके लिये, देव मनुष्योके अर्थके लिये, हितके लिये, सुखके लिये होगा।

"चुन्द ! मैने किन धर्मोको बोधकर तुम्हे उपदेश किया है, जिन्हे कि सभी मिलजुलकर समझे बूझे, विवाद न करे ० ? (वे ये है[1]) जैसे कि—चार **स्मृतिप्रस्थान**, चार **सम्यक् प्रधान**, चार **ऋद्धिपाद**, पाँच **इन्द्रिय**, पाँच **बल**, सात **बोध्यङग** और **आर्य अष्टाङगिक** मार्ग। चुन्द ! मैने इन्ही धर्मोको बोधकर उपदेश किया है, जिसे कि सभी लोग मिलजुलकर ०। चुन्द ! उन्हीके विपयमे विना विवाद किये, मिलजुलकर समझना बूझना चाहिये, ऐसा समझो।

५—बुद्ध-वचनकी कसौटी

"यदि कोई सब्रह्मचारी सघमे **धर्म** (=बुद्धवचन)-भापण करता हो और वहाँ तुम्हारे मनमे ऐसा हो—'यह आयुष्मान् इस अर्थको गलत लगाते है, और वाक्य-योजना (=व्यजन) ठीक नही लगाते'—तो न उसका अभिनन्दन करना चाहिये और न निन्दना चाहिये। बिना अभिनदन किये विना निन्दे उससे यो कहना चाहिये—'आवुस ! इस अर्थके लिये ऐसा वाक्य या वैसा वाक्य है ? कौन इनमे अधिक ठीक जँचता है, इन वाक्योका यह अर्थ या वह अर्थ, कौन अधिक ठीक जँचता है ?' यदि तो भी वह ऐसा कहे—'आवुस ! इस अर्थमे यही वाक्य अधिक ठीक जँचते है, इन वाक्योका यही अर्थ ठीक है (जैसा मैने कहा)। तो उसे न लेना चाहिये, न हटाना चाहिये। विना लिये या हटाये उस अर्थ और उन वाक्योको ठीकसे लगानेके लिये स्वय अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"चुन्द ! यदि सघमे और भी कोई सब्रह्मचारी (=गुरुभाई) **धर्म** भापण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमे हो—'ये आयुष्मान् 'अर्थ' गलत समझते है वाक्योको ठीक जोळते है' तो न तो उसका

---

[1] यही सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्म कहे जाते है।

अभिनन्दन करना चाहिये और न उसे निन्दना चाहिये। ० बल्कि उससे यो कहना चाहिये—'आवुस ! ० कौन ठीक है ?' यदि तो भी वह वैसा कहे ० तो ० उसे अच्छी तरह समझाना चाहिये।

"चुन्द ! यदि ० सब्रह्मचारी धर्म भाषण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमे हो—'० अर्थ ठीक समझते है, किन्तु, वाक्योको ठीक नही जोळते'। ० तो उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"यदि सघमे ० धर्म भाषण करता हो। और तुम्हारे मनमे ऐसा हो—'ये आयुष्मान् अर्थको भी ठीक समझते है, वाक्योको भी ठीक जोळते है'—तो उसे साधुकार देना चाहिये, अभिनन्दन, अनुमोदन करना चाहिये। ० उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! हम लोगोको लाभ है, हम लोगोको सुन्दर लाभ है, कि आप आयुष्मान् जैसे अर्थज्ञ वाक्यज्ञ ब्रह्मचारीके दर्शनका अवसर मिलता है।

६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये

"चुन्द ! मै दृष्टधार्मिक (=इसी जन्ममे) आस्रवो (=चित्तमलो)के सवर (=सयम)के ही लिये धर्मोपदेश नही करता, और न चुन्द ! केवल परजन्मके आस्रवोहीके नाशके लिये। चुन्द ! मै दृष्टधार्मिक और पारलौकिक दोनो ही आस्रवोके सवर और नाशके लिये धर्मोपदेश करता हूँ। इसलिये, चुन्द ! मैने जो तुम्हे चीवर-सबधी अनुज्ञा दी है, वह सर्दी रोकनेके लिये, गर्मी रोकनेके लिये, मक्खी-मच्छर-हवा-धूप-साँप-बिच्छूके आघात (=स्पर्श)को रोकनेके लिये, तथा लाज शर्म ढाँकनेके लिये पर्याप्त है।

"जो मैने पिण्डपात(=भिक्षा)-सबधी अनुज्ञा दी है सो इस शरीरको कायम रखनेके लिये, निर्वाह करनेके लिये, (क्षुधाकी) पीडा शात करनेके लिये, और ब्रह्मचर्यकी सहायताके लिये पर्याप्त है—'इस तरह पुरानी वेदनाओका (इस समय)सामना करता हूँ, और नई वेदनाओको उत्पन्न नही करूँगा, मेरी जीवन-यात्रा चलेगी, निर्दोष और सुखमय विहार होगा'।

"जो मैने शयनासन(=घर बिस्तरा)सबधी अनुज्ञा दी है, सो सर्दी रोकनेके लिये ० साँप बिच्छूके आघातको रोकनेके लिये और ऋतुओके प्रकोपसे बचने तथा ध्यानमे रमण करनेके लिये पर्याप्त है।

"जो मैने रोगीके पथ्य-औषधकी वस्तुओ (=ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारो)के सबधमे अनुज्ञा दी है, सो होनेवाले रोगोके रोकने और अच्छी तरह स्वस्थ रहनेके लिये पर्याप्त है।

७—अनुचित और उचित आराम पसन्दी

१—अनुचित—"चुन्द ! ऐसा हो सकता है कि दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहे—'**शाक्यपुत्रीय** श्रमण आरामपसद हो विहार करते है। ऐसा कहनेवाले० को यह कहना चाहिये—'आवुस ! वह आरामपसदी क्या है ? आरामपसन्दी नाना प्रकारकी होती है।' चुन्द ! यह चार प्रकारकी आरामपसदी निकृष्ट=ग्राम्य, मूढ-सेवित, अनर्थ-युक्त है, जो न निर्वेदके लिये, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शान्तिके लिये, न **अभिज्ञा**के लिये, न सम्बोधिके लिये, न निर्वाणके लिये है। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! कोई कोई मूर्ख जीवोका वध करके आनन्दित होता है, प्रसन्न होता है। यह पहली आरामपसन्दी है। (२) चुन्द ! कोई चोरी करके ०। यह दूसरी ०। (३) चुन्द ! कोई झूठ बोलकर०। यह तीसरी०। (४) चुन्द ! कोई पाँच भोगोसे सेवित होकर०। यह चौथी०। यह चार सुखोपभोग आरामपसदी निकृष्ट० है। हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतवाले साधु ऐसा कहे—'इन चार सुखोपभोग, आरामपसन्दीसे युक्त हो शाक्यपुत्रीय श्रमण विहार करते है'। उन्हे कहना चाहिये—'ऐसी बात नही है। उनके विषयमे ऐसा मत कहो, उनपर झूठा दोषारोपण न करो।'

२—उचित—"चुन्द ! चार आरामपसन्दी पूर्णतया निर्वेद=विरागके लिये, निरोधके लिये, शान्तिके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये है। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! भिक्षु कामोको छोळ, अकुशल धर्मोको छोळ, वितर्क-विचार-युक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह पहली ० है। (२) चुन्द ! भिक्षु ०[1] समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह दूसरी ० है। (३) चुन्द ! ० तृतीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह तीसरी ०। (४) चुन्द ! ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह चौथी०। चुन्द ! यही चार आरामपसन्दी एकान्त निर्वेदके लिये० है। चुन्द ! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिव्राजक कहे—शाक्यपुत्रीय श्रमण ० आरामपसदी०। उन्हे 'हाँ' कहना चाहिये—वह तुम्हारे लिये ठीक कहते हैं, मिथ्या झूठा दोष नही लगाते।

३—उचितका फल—"हो सकता है चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक पूछे—'आवुस ! इन चार आरामपसदियोसे युक्त हो विहार करनेपर क्या फल=आनृशस होता है ? तो चुन्द ! ० उन्हे ऐसे उत्तर देना चाहिये—'आवुस ! इन ०के चार फल, चार आनृशस हो सकते हैं। कौनसे चार ? (१) ० भिक्षु तीन सयोजनो (=बन्धनो)के नाशसे अविनिपातधर्मा, नियत, सम्वोधिपरायण स्रोत-आपन्न होता है। यह पहला फल, पहला आनृशस है। (२) ० ! फिर भिक्षु तीन ० सयोजनोके नाश, राग, द्वेष, मोहके दुर्बल हो जानेसे सकृदागामी होता है, वह एक ही बार इस लोकमे आकर दु खका अन्त करता है। (३) ० फिर, भिक्षु पाँच अवरभागीय सयोजनो (=इसी ससारमें फँसाये रखनेवाले बन्धनो) के नष्ट होनेसे औपपातिक (देवता) हो वहाँ निर्वाणको पाता है, उस लोकसे नही लौटता। (४) ० और फिर भिक्षु ० आस्रवोके क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको यही स्वय जान, साक्षात् कर विहार करता है। यह चौथा फल=आनृशस है। आवुस ! इन चार आरामपसदियोमे युक्त हो विहार करनेवालोके ये ही चार आनृशस होने चाहिये।

८—भिक्षु धर्मपर आरूढ़

"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक ऐसा कहे—'**शाक्यपुत्रीय** श्रमण अस्थितधर्मा (=जिन्हे धर्ममे स्थिरता नही है) होकर विहार करते हैं।' तो चुन्द ! ऐसे कहनेवाले ० को ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! उन जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्ने शिष्यो (=श्रावको)को जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुल्लघनीय है। आवुस ! जैसे नीचेतक गळा, अच्छी तरह गळा इन्द्रकील (=किलेके द्वारपर गळा कील) या लोहेका कील, अचल और दृढ होता है, उसी तरह उन ० भगवान्ने श्रावकोको जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुलघनीय है। आवुसो ! जो भिक्षु समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त (=अनुप्राप्त-सदर्थ) सासारिक बधनोसे मुक्त, सम्यक् ज्ञानसे विमुक्त क्षीणास्रव, अर्हत् है, वह नौ बातोके अयोग्य है। आवुसो ! (१) अनास्रव भिक्षु जान बूझकर जीव मारनेके अयोग्य है। (२) ० चोरी ०। (३) मैथुन सेवन ०। (४) जान बूझकर झूठ बोलने ०। (५) पहिले गृहस्थ के वक्त के सासारिक भोगोके जोळने बटोरने ०। (६) राग के रास्ते जाने मे ०। (७) ० द्वेषके रास्ते जाने मे ०। (८) ० मोहके रास्ते जानेमे ०। (९) क्षीणास्रव भिक्षु भयके रास्ते जानेमे अयोग्य है। आवुसो ! जो ० अर्हत् है ० वह इन नौ बातोके अयोग्य है।

९—बुद्ध कालवादी यथार्थवादी

१—कालवादी—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक कहे—'अतीत कालको लेकर श्रमण **गौतम** अधिक ज्ञान=दर्शन बतलाता है, अनागत कालको लेकर अधिक ज्ञान=दर्शन नही बतलाता—सो यह क्या है, सो यह कैसे' ? वे दूसरे मतके परिव्राजक बाल=अजानकी भाँति दूसरे प्रकारके ज्ञान=दर्शनसे दूसरे प्रकारके ज्ञानदर्शनका ज्ञापन करना मानते हैं। चुन्द ! अतीत कालके विषयमे तथागतको स्मृतिके अनुसार ज्ञान होता है, वह जितना चाहते हैं, उतना स्मरण करते हैं।

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

चुन्द ! अनागत कालके विषयमे तथागतको बोधिसे उत्पन्न ज्ञान उत्पन्न होता है—'यह मेरा अन्तिम जन्म है, फिर आवागमन नही है।' चुन्द ! यदि अतीत की वात अतथ्य=अभूत और अनर्थक हो, तो तथागत उसे नही कहते। चुन्द ! अतीतकी वात तथ्य=भूत किन्तु अनर्थक हो, तो उसे भी तथागत नही कहते। वहाँ तथागत उस प्रश्नके उत्तर देनेमे काल जानते हैं। ० अनागतकी ०। वर्तमानकी ० । चुन्द ! इस प्रकार तथागत अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न धर्मोके विषयमे कालवादी (=कालोचित वक्ता), भूतवादी (सत्यवक्ता), अर्थवादी, धर्मवादी विनयवादी है। इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।

२—**यथार्थवादी**—"चुन्द ! देवताओ, मार, ब्रह्मा सहित सारे लोक, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण-सहित सारी जनताने जो कुछ देखा, सुना, पाया, जाना, खोजा, मनसे विचारा है, सभी तथागतको ज्ञात है। इसीलिये वे तथागत कहे जाते हैं। चुन्द ! जिस रातको तथागत अनुपम सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त करते है, और जिस रातको उपाधिरहित परिनिर्वाण प्राप्त करते है, इन दो समयोके बीचमे जो कहते है, और निर्देश करते है, वह सव वैसा ही होता है, अन्यथा नही। इसी लिये ०। चुन्द ! तथागत यथावादी तथाकारी और यथाकारी, तथावादी होते हैं। इस प्रकार यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी। इसलिये ०। चुन्द ! इस ० सारे लोक ० मे तथागत विजेता (=अभिभू), =अ-पराजित (=अनभिभूत), एक वात कहनेवाले, द्रष्टा और वशवर्ती होते हैं। इसलिये ०।

१०—अव्याकृत और व्याकृत बातें

१—**अव्याकृत**—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक ऐसा पूछे—'आवुस ! क्या तथागत मरनेके वाद रहते हैं' यही सच है और वाकी सव झूठ ? ०' (उन्हे) ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्‌ने ऐसा नही कहा है—'तथागत मरनेके वाद रहते है, यही सच, और वाकी सव झूठ।' यदि दूसरे ० ऐसा पूछे—० 'क्या तथागत मरनेके वाद नही रहते, यही सच ० ?' ० उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्‌ने ऐसा भी नही कहा है—तथागत मरनेके वाद नही रहते, यही सच ०'। यदि ० पूछे—० क्या तथागत मरनेके वाद रहते भी है और नही भी रहते है, यही सच०?' ०भगवान्‌ने ऐसा भी नही कहा है। ०यदि पूछे—०'क्या०न रहते है और न नही रहते है०?'०भगवान्‌ने ऐसा भी नही कहा है। ० यदि पूछे—'आवुस ! श्रमण गौतमने इस विषयमे क्यो कुछ नही कहा ?' ०तो उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! न तो यह अर्थोपयोगी है, न धर्मोपयोगी, न ब्रह्मचर्योपयोगी न निर्वेदके लिये है, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शाति (=उपशम)के लिये है, न ज्ञानके लिये, न सम्बोधिके लिये है, न निर्वाणके लिये। इसी लिये भगवान्‌ने उसे नही कहा।'

२—**व्याकृत**—"०यदि ऐसा पूछे—'श्रमण गौतमने क्या कहा है ?'०ऐसा उत्तर देना चाहिये—भगवान्‌ने कहा है—'यह दु ख है, यह दु ख-समुदय है, यह दु ख-निरोध है, यह दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् है।'०यदि ऐसा पूछे—'आवुस ! श्रमण गौतमने इसे किस लिये वताया है ?'०ऐसा उत्तर देना चाहिये—'आवुसो ! यही अर्थोपयोगी, धर्मोपयोगी ० है। इसीलिये भगवान्‌ने इसे बताया है।'

११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन

"चुन्द ! जो पूर्वान्त सबधी दृष्टियाँ (=मत) है, मैने उन्हे भी ठीकसे कह दिया, बेठीकके विषयमे मै और क्या कहूँगा ? चुन्द ! जो अपरान्त-सबधी दृष्टियाँ है, मैने उन्हे भी ० कह दिया ०।

१—**पूर्वान्त दर्शन**—"चुन्द ! वे पूर्वान्त सबधी दृष्टियाँ कौन है जिन्हे मैने ० कह दिया ० ? चुन्द ! कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहनेवाले और इस सिद्धान्तके माननेवाले है—'आत्मा और लोक शाश्वत (=नित्य) है', यही सच है और दूसरा झूठ।—'आत्मा और लोक अशाश्वत है' ०। 'आत्मा और लोक शाश्वत और अशाश्वत दोनो है' ०। 'आत्मा और लोक न शाश्वत और न अशाश्वत है ०'। 'आत्मा और लोक स्वयकृत ०। 'आत्मा और लोक परकृत ०। 'आत्मा और लोक अधीत्य-(=अभावसे)

समुत्पन्न है', यही सच और दूसरा झूठ। सुख-दुःख शाश्वत है ०। ० अशाश्वत है ०। ० शाश्वत-अशाश्वत दोनो है ०। ० न शाश्वत न अशाश्वत ३ ०। ० स्वयकृत ०। ० परकृत ०। ० स्वयकृत और परकृत ० सुख-दुःख न स्वयकृत न परकृत बल्कि अधीत्य-समुत्पन्न है, यही सच और दूसरा झूठ।'

"चुन्द ! जो श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते है—'आत्मा और लोक शाश्वत है'—यही सच और दूसरा झूठ', उनके पास जाकर मै ऐसा पूछता हूँ—'आवुस ! ऐसा जो कहते हो—'आत्मा और लोक शाश्वत है ?' सो कहा जाता है, किन्तु जो कि वह ऐसा कहते है—'यही सच है और दूसरा झूठ' उससे मै सहमत नही। सो किस हेतु ? चुन्द ! क्योकि दूसरा समझनेवाले भी प्राणी है।

"चुन्द ! इस प्रज्ञप्ति (=व्याख्यान) मे मै किसी को अपने समान भी नही देखता, बढकर कहाँ-से ? बल्कि प्रज्ञप्तिमे मै ही बढ-चढकर हूँ।

"तो चुन्द ! जो श्रमण या ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते है—'आत्मा और लोक शाश्वत है ०। अशाश्वत ०। ०। सुख-दुःख शाश्वत ०, यही सच और दूसरा झूठ—उनके पास जाकर मै ऐसा कहता हूँ—आवुस ! ऐसा जो कहते हो ० सो० है ? किन्तु जो कि वह ऐसा कहते है—'यही सच और दूसरा झूठ', उससे मै सहमत नही। सो किस हेतु ? चुन्द ! क्योकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी है।

"चुन्द ! इस प्रज्ञप्तिमे, मै किसीको अपने समान भी नही देखता, बढकर कहाँसे ! बल्कि प्रज्ञप्तिमे मै ही बढ-चढकर हूँ।

"चुन्द ! जो पूर्वान्त-सबधी दृष्टियाँ है, मैने उन्हे भी जैसा कहना चाहिये था, कह दिया, और जैसा नही कहना चाहिये था, उसके विषय मे मै और क्या कहूँगा ?

२—अपरान्त दर्शन—"चुन्द ! अपरान्त-सबधी दृष्टियाँ कौन है जिन्हे जैसा कहना चाहिये था मैने कह दिया०, जैसा नही कहना चाहिये था, उसके विषयमे मै और क्या कहूँगा ? चुन्द ! कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसे वादके ऐसे मतके माननेवाले है—'आत्मा रूपवान् है, मरनेके बाद अरोग (=परम सुखी) रहता है'—०। आत्मा रूप-रहित है ०। आत्मा रूपवान् और रूपरहित है ०। ० न रूपवान् और न रूपरहित ०। ० सज्ञावाला है ०। ० सज्ञा-रहित ०। ० न सज्ञावान् और न सज्ञा-रहित ०। ० उच्छिन्न और नष्ट हो जाता है, मरनेके बाद नही रहता ०।

"चुन्द ! ० उनके पास जाकर मै ऐसा कहता हूँ—"आवुस ! है ऐसा, जैसा कि कहते हो—आत्मा रूपवान् है ०। किन्तु जो कि वह ऐसा कहते है—'यही सच और दूसरा झूठ', उससे मै सहमत नही। सो किस हेतु ? चुन्द ! क्योकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी है। ० किसीको अपने समान नही देखता ०।

चुन्द ! अपरान्त-सबधी दृष्टियाँ ये ही है जिन्हे कि ० मैने कह दिया ०।

१२—स्मृति प्रस्थान

"चुन्द ! इन्ही पूर्वान्त और अपरान्त सबधी दृष्टियो[1] के दूर करनेके लिये, अतिक्रमण करनेके लिये, इस तरह मैने चार स्मृतिप्रस्थानोका उपदेश किया है। कौनसे चार ?—(१) ०[1] कायामे कायानुपश्यी हो ०[2] विहरता है। चुन्द ! इन पूर्वान्त और अपरान्त सबधी दृष्टियोके दूर करनेके लिये ही ० मैने चार स्मृतिप्रस्थानोका उपदेश किया है।"

उस समय आयुष्मान् उपवाण भगवान्के पीछे हो, भगवान्को पखा झल रहे थे।

तब आयुष्मान् उपवाणने भगवान्से कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! भन्ते ! यह धर्मोपदेश (=धर्मपर्याय) पासादिक (=बळा सुन्दर) है।"

"तो उपवाण ! तुम इस धर्मपर्यायको पासादिक ही करके धारण करो।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो आयुष्मान् उपवाणने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] पूर्वान्त अपरान्त दर्शनोके लिये देखो पृष्ठ ५–१४।

[2] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

३०—लक्खण-सुत्त (३।७)

१—बत्तीस महापुरुष-लक्षण। २—किस कर्म विपाकसे कौन लक्षण।

ऐसा मैने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे।

वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" कह उन भिक्षुओने भगवान्‌को उत्तर दिया।

१—बत्तीस महापुरुष-लक्षण

भगवान्‌ने यह कहा—"भिक्षुओ! महापुरुपोके वत्तीस **महापुरुष-लक्षण** है, जिनसे युक्त महापुरुपोकी दो ही गतियाँ होती है तीसरी नही।—(१) यदि वह घरमे रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारो ओर विजय पानेवाला, शान्ति-स्थापक, सात रत्नोसे युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते है—चक्र-रत्न, हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न गृहपति-रत्न, और सातवाँ पुत्र-रत्न—एक हजारसे भी अधिक सूर-वीर, दूसरेकी सेनाओका मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते है। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) ससारके आवरणको हटा देनेवाला अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होता है।

भिक्षुओ! वह महापुरुपोके वत्तीस लक्षण[1] कौनसे है, जिनसे युक्त होनेसे०? यदि वह घरमे रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है०। भिक्षुओ! (१) सुप्रतिष्ठित-पाद (=जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी महापुरुष लक्षणोमे एक है। (२) नीचे पैरके तलवेमे सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=पुट्ठी)-युक्त सहस्र अरोवाला चक्र होता है। (३) आयत-पार्ष्णि (=चौळी घुट्ठीवाला) है। (४) ० दीर्घ-अगुल०। (५) ० मृदु-तरुण-हस्त पाद०। (६)० जाल-हस्त-पाद (=अगुलिया) ०। झिल्लीसे जुळी (७) ० उस्सखपाद (=गुल्फ जिस पादमे ऊपर अवस्थित है)०। (८) ० एणी-जघ (=मृग जैसा-पेंडुलीवाला) ०। (९) ० (सीधे) खळे, विना झुके दोनो घुटनोको अपने हाथके तलवेसे छूता है (आजानुबाहु) ०। (१०) कोषाच्छादित वस्ति-गुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) ०। (११) सुवर्ण वर्ण० काचन समान त्वचावाला०। (१२) सूक्ष्म-छवि (छवि=ऊपरी चमळा) है० जिससे काया पर मैल-धूल नही चिपटती०। (१३) एकैक लोम, एक एक रोम कूपमे एक एक रोम वाला ०। (१४) ० ऊर्ध्वाग्र-लोम ० उसके अजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (=वायेसे दाहिनी ओर)से कुडलित लोमोके सिरे ऊपरको उठे है०। (१५) ब्राह्म-ऋजु-गात्र (-लम्बे अकुटिल शरीरवाला) ०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातो अगोमे पूर्ण आकारवाला) ०।

---

[1] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त ९१ (मज्झिमनिकाय पृष्ठ ३७४-७५)।

(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=जिसका छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति विशाल हो) ०। (१८) चितान्तरास (=जिसका दोनो कंधोका बिचला भाग चितपूर्ण है) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमडल ० जितनी शरीरकी ऊँचाई, उतना व्यायाम (=चौळाई) (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कधेवाला) ०। (२१) रसग्ग-सग्गी (=सुन्दर शिराओवाला) ०। (२२) सिंह-हनु (=सिंह-समान पूर्ण ठोळीवाला) ०। (२३) चव्वालीस-दन्त०। (२४) सम-दन्त०। (२५) अविवर-दन्त (=दाँतोके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ (=खूब सफेद दाढवाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ०। (२८) ब्रह्मस्वर, करविक (पक्षीसे) स्वरवाला०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली आँखोवाला) ०। (३०) गो-पक्ष्म (गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) भौहोके बीचमे श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगळी शिरवाला) ० है। भिक्षुओ! यह महापुरुष-लक्षणोमे है।

२—किस कर्म-विपाकमें कौन लक्षण

"भिक्षुओ! इन बत्तीस महापुरुष-लक्षणोको बाहरके ऋषि भी जानते है, किंतु यह नही जानते कि किस कर्मके करनेसे किस लक्षणका लाभ होता है।

१—कायिक सदाचार—(१) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म=पूर्व-भव, पूर्व-निवासमे मनुष्य हो, कायिकसदाचार,—दान, शीलाचरण, उपोसथ-व्रत, माता-पिता, श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, बळे लोगोके सत्कार और दूसरे सुकर्मोको स्थिर दृढ हो करनेवाले थे। उन पुण्य कर्मोके सचय, विपुलतासे काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमे जन्मते है। वहाँ अन्य देवोसे दिव्य आयु, वर्ण, सुख, यश, प्रभुत्व, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श दस बातोमे बढ जाते है। वे वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पा सुप्रतिष्ठितपाद होते है ०। उस लक्षणसे युक्त हो, यदि घरमे रहते है, तो ० चक्रवर्ती राजा होते है। राजा हो क्या पाते है? किसी भी मनुष्य शत्रुसे अजेय होना—राजा हो यही पाते है। यदि ० प्रव्रजित होते है, तो ० अर्हत् सम्यक् सबुद्ध होते है। बुद्ध हो क्या पाते है? आन्तरिक शत्रु=अमित्र—राग, द्वेष, मोह, और श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या ससारमे किसी भी दूसरे विरोधी, बाह्य शत्रुसे अजेय रहते है।" बुद्ध हो भगवान्ने यह बात कही। वहाँ यह कहा गया है—

सत्य, धर्म, दम, सयम, शौच शील और उपोसथ-कर्म,
दान, अहिसा, और अच्छे कामोमे रत रहकर, दृढ हो उन्होने आचरण किया ॥१॥
वह उस कर्मसे स्वर्ग गये, और क्रीडा, रति तथा सुखको अनुभव करते रहे।
फिर, वहाँसे च्युत हो यहाँ आ, उन्होने सम-पादोसे पृथ्वीको स्पर्श किया ॥२॥
सामुद्रिक वालोने आकर कहा—सम्प्रतिष्ठित पादवालेकी पराजय कभी नही होती।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, यह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥३॥
घरपर रहते वह विजयी शत्रुओ द्वारा अजेय रहता है।
उस कर्मके फलसे इस ससारमे वह किसी भी मनुष्यसे जेय नही होता ॥४॥
यदि वह विचक्षण निष्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रज्या लेता है,
तो वह श्रेष्ठ नरोत्तम फिर आवागमनमे नही पळता, यही उसकी धर्मता है ॥५॥

२—प्रिय कारिता—(२) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म ० मे मनुष्य होकर लोगोके बळे प्रियकारी थे। उन्होने उद्वेग, चचलता और भयको हटा, धार्मिक बातोकी रक्षाका विधानकर विधिपूर्वक दान दिया। (अत) वे ० सुगतिको प्राप्त हुये। (फिर) वहाँसे च्युत हो यहाँ आ पैरके तलवेमे चक्र—इस

महापुरुप-लक्षणको पाते हैं। वे इस लक्षणसे युक्त हो यदि घरमें रहते हैं ०। राजा होकर क्या पाते हैं? ब्राह्मण, गृहपति, नैगम (=नागरिक सभासद्), जानपद (=दीहाती सभासद्), कोपाध्यक्ष, मन्त्री, शरीररक्षक, द्वारपाल, सभासद्, राजा और अधीनस्थ कुमार—यह उनका वहुत वळा परिवार होता है। राजा होकर यह पाते हैं। यदि ० प्रव्रजित होते हैं, ० अर्हत् सम्यक् सवुद्ध होते हैं। वुद्ध होकर क्या पाते हैं? यह भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव-मनुष्य, असुर-नाग-गन्धर्व यह उनका वहुत वळा परिवार होता है। बुद्ध होकर यही पाते हैं।" भगवान्‌ने यह वात कही। वहाँ यह कहा गया है—

पहले, पूर्व जन्मोमें मनुष्य हो वहुतोके सुखदायक थे।
उद्वेग, त्रास और भयको दूर करनेवाले, रक्षा=आवरण=गुप्तिमें लगे रहे थे ॥६॥
सो उस कर्मसे देवलोकमें जा, उन्होने सुख, क्रीडा रतिको अनुभव किया।
वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ, दोनो पैरोमें सहस्र अरोवाले फैली पुट्ठीके चक्रको पाये ॥७॥
सौ पुण्य लक्षणोवाले कुमारको देख, आये हुये ज्योतिपियोने कहा—
यह शत्रुमर्दन (तथा) वळे परिवारवाले होगे क्योकि (इनके पैरमें) समन्तनेमि चक्र है ॥८॥
यदि ऐसा (पुरुप) प्रव्रजित नही हो तो चक्र चलाता है, पृथ्वीका शासन करता है।
क्षत्रिय उस महायशके अनुगामी सेवक वनते हैं ॥९॥
यदि वह विचक्षण निप्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रजित हो जाता है।
तो देव, मनुष्य, असुर, प्राणी, राक्षस, गन्धर्व, नाग, पक्षी, चतुष्पाद।
उस देव-मनुष्योसे पूजित अनुपम महायशस्वीकी सेवा करते हैं ॥१०॥

३—जीवहिंसाका त्याग—(३-५) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व जन्म ० में मनुष्य होकर जीव-हिंसाको छोळ, जीव-हिसासे विरत रहते थे—दण्ड और शस्त्र छोळ, कृपालु, लज्जालु, दयालु सभी जीवोके हितेच्छु विहार करते थे। सो उस कर्मके करनेके कारण ० तीन लक्षणोको पाते हैं—(३) घुट्ठी वळी (४) अँगुली लम्बी (५) लम्वा सीधा शरीर होता है। ० राजा हो क्या पाते हैं? दीर्घ आयुवाले हो, वहुत दिन जीते हैं। कोई मनुष्य शत्रु उन्हे मार नही सकता। ० वुद्ध होकर क्या पाते है? ० कोई श्रमण-ब्राह्मण या देव ० नही मार सकता ०।" वहाँ यह कहा गया है—

अपनी मृत्यु, क्षय और भयको देख, वह दूसरेको मारनेसे विरत रहे।
उस सुचरितसे स्वर्ग सुकृतके फल-विपाकको भोगा ॥११॥
वहाँसे च्युत हो यहाँ आ तीन लक्षण पाये—
घुट्ठी वळी होती है, ब्रह्माके ऐसा सीधा, शुभ और सुजात शरीर होता है ॥१२॥
और शिशुकी भुजाके समान मनोहर सुन्दर भुजाये तथा अँगुली मृदु, तरुण और लम्बी होती हैं।
महापुरुषके इन तीन श्रेष्ठ लक्षणोसे युक्त कुमारको दीर्घजीवी बतलाते हैं ॥१३॥
यदि गृहस्थ होता हैं तो दीर्घायु होता है, और यदि प्रव्रजित होता है तो उससे भी अधिक दिन जीता है।
(स्व-)वशी हो ऋद्धिभावनाके लिये जीता है इस प्रकार वह लक्षण दीर्घायुता का है ॥१४॥

४—सुन्दर भोजनका दान—(६) "जो कि भिक्षुओ! ० सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेयका दान देते थे। ० इस कर्मके करनेसे ० लक्षण ० —सप्त-उत्सद—दोनो हाथ, दोनो पैर, दोनो कधे और गर्दन भरे रहते हैं। ० राजा होकर सुन्दर भोजन, और पान पाते हैं ०। ० बुद्ध होकर सुन्दर भोजन और पान पाता है।'

० यह कहा गया है—
सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य भोज्य लेह्य अशनके दाता थे।
इस सुचरित कर्मसे वह नन्दन-काननमे बहुत दिनो तक प्रमोद करते रहे ॥१५॥
यहाँ आकर वह सप्त-उत्सद प्राप्त करते है उनके हाथ पैरके तलवे मृदु होते है।
लक्षणज्ञ उनको खाद्य भोज्यका लाभी होना वतलाते है ॥१६॥
यह (लक्षण) गृहस्थ होनेपर भी यही वतलाता है, प्रव्रजित होने पर भी वह उसे पाते है।
उन्हे उत्तम खाद्य-भोज्यका लाभी, (तथा) सभी गृहस्थ-बधनोका छेदक कहा गया है ॥१७॥

५—मेल कराना—(७-८) "जो कि भिक्षुओ! ० दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या (=उपकारका काम) और समानताका व्यवहार—इन चार सग्रह-वस्तुओसे लोगो का सग्रह करते थे उस कर्मके करनेसे ० लक्षण०—(७) हाथ पैर मृदु तरुण, तथा (८) जालवाले होते है। ० राजा होनेपर ब्राह्मण, गृहपति, कोषाध्यक्ष ० सभी परिजन उनके मेलमे रहते है। ० बुद्ध होनेपर भिक्षु, भिक्षुणी ० उनके सभी परिजन मेलमे रहते है।"०

दान, अर्थ-चर्या, प्रिय वचन और समान भावसे,
करके बहुत लोगोका सग्रह, उस अप्रमाद गुणसे स्वर्ग जाता है ॥१८॥
वहाँसे च्युत हो यहाँ आ मृदु=तरुण और जालवाले।
अत्यन्त रुचिर, सुन्दर और दर्शनीय शिशु जैसे हाथ पैरको पाता है ॥१९॥
परिजनका प्रिय होता है, सग्रह करके इस पृथ्वीको वश मे करता है।
प्रियवक्ता और हित-सुखका अन्वेषक वन प्रिय गुणोका आचरण करता है ॥२०॥
यदि सभी काम-भोगोको छोळता है, तो जितेन्द्रिय हो लोगोको धर्म कहता है,
उसके धर्मोपदेशसे प्रसन्न हो लोग धर्मानुसार आचरण करते है ॥२१॥

६—अर्थ-धर्मका उपदेश—(९-१०) "भिक्षुओ। ० लोगोको अर्थ-सवधी, और धर्म-सबधी बाते करते, निर्देश करते थे, प्राणियोके हित और सुखके लिये धर्म-यज्ञ करते थे ० दो लक्षण—उत्सग-पाद (=ऊपरे उठे गुल्फोवाला पैर), और ऊर्ध्वाग्रलोम (=शरीरके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते है, साधारण लोगोके लोम नीचेकी ओर)। ० राजा होकर कामभोगियोमे अग्र, श्रेष्ठ=प्रमुख उत्तम और प्रवर होते है ०। बुद्ध होकर सभी सत्वोमे अग्र, श्रेष्ठ ०।"

० यह कहा गया—
पहले बहुतोको अर्थधर्म सवधी-वाते कही, उपदेश की।
प्राणियोके हित और सुखका दाता वन, मत्सर रहित हो धर्म-यज्ञ किया ॥२२॥
उस सुचरित कर्मसे वह सुगतिको प्राप्त हो प्रमुदित होता है।
यहाँ आकर उत्तम और प्रमुख होनेके लिये दो लक्षण पाता है ॥२३॥
उसके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते है, पैरकी घुट्ठी (=गुल्फ) मिली होती है।
वह मास, रुधिर तथा चमळेसे अच्छी तरह ढकी, और चरणके ऊपर शोभायमान रहती है ॥२४॥
वैसा व्यक्ति घरमे रहता है तो काम-भोगियोमे श्रेष्ठ होता है।
उससे बढकर कोई नही होता। वह सारे जम्बूद्वीपको जीतकर रहता है ॥२५॥
अनुपम गृह-त्यागकर प्रव्रजित हो सभी प्राणियोमे श्रेष्ठ होता है।
उससे बढकर कोई नही होता, वह सारे लोकको जीतकर विहार करता है ॥२६॥

७—सत्कार पूर्वक शिक्षण—(११) "जो कि भिक्षुओ! पहले जन्मने ० शिल्प, विद्या,

आचरण और (नाना) कर्मोको बळे सत्कारपूर्वक सिखाते थे—कि (विद्यार्थी) शीघ्र जान जाये, शीघ्र सीख जाये, देर तक हैरान न हो। ० लक्षण—मृगके समान जघा होती है। ० चक्रवर्त्ती राजा हो राजाके योग्य, राजाके अनुकूल (वस्तुओ) को शीघ्र पाते है ०।० बुद्ध होकर श्रमणोके योग्य० वस्तुओ तथा भोगो को शीघ्र पाते है ०।"

"०यहाँ कहा गया है—

'शिल्प, विद्या और आचरणके कर्मोको कैसे शीघ्र जान ले, यह चाहता है।'

जिसमे किसीको कष्ट न हो, इसलिये बहुत शीघ्र पढाता है, क्लेश नही देता ॥२७॥

उस सुखदायक पुण्यकर्मको करके परिपूर्ण सुन्दर जघाको पाता है।

(जो कि) गोल, सुजात, चढाव-उतार, ऊर्ध्वरोमा तथा सूक्ष्म चर्म-वेष्टित होती है ॥२८॥

उस पुरुपको लोग **एणीजघ** कहते है, इस लक्षणको शीघ्र सम्पत्तिदायक बताते है,

यदि वह घरहीमे रहना पसद करता है, और ससारमे आकर प्रव्रजित नही होता ॥२९॥

यदि वैसा विचक्षण (पुरुप) निष्कामताकी इच्छासे प्रव्रजित होता है,

तो योग्यताके अनुकूल ही वह अनुपम गृहत्यागी उसे शीघ्र पा लेता है ॥३०॥

८—हितकी जिज्ञासा—(१२) "जो कि भिक्षुओ! वह ० श्रमणो—ब्राह्मणोके पास जाकर प्रश्न करते थे—"भन्ते! क्या कुशल (=भलाई) है, और क्या अ-कुशल? क्या सदोष है, क्या निर्दोष? क्या सेवनीय है, क्या अ-सेवनीय है? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक अहित, दुखके लिये होगा? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक हित, सुखके लिये होगा? वह इस कर्मके करनेसे ० ० लक्षण ०—० सूक्ष्म-छवि (=पतलेचिकने चर्मवाला) होते है। ० उनके शरीरपर धूली नही जमती।० चक्रवर्त्ती राजा होकर महाप्रज्ञ होते है। काम-भोगियोमे न तो कोई उनके समान और न कोई उनसे बढकर प्रज्ञावाले होते है। ० बुद्ध होकर महाप्रज्ञ, पृथुप्रज्ञ, तीव्रबुद्धि, क्षिप्रबुद्धि, तीक्ष्णप्रज्ञ, निर्वेधिकप्रज्ञ होते है। समस्त प्राणियोमे उनके समान या बढकर कोई नही होता। ०

० यहाँ कहा गया है—

पहले पूर्व-जन्मोमे, जाननेकी इच्छासे प्रव्रजितोके पास

उनकी सेवा करके प्रश्न किया करता था, और उनके उपदेशोपर ध्यान देता था ॥३१॥

प्रज्ञा-प्रदाता कर्मोसे मनुष्य होकर **सूक्ष्म-छवि** होता है।

उत्पत्तिके लक्षणको जाननेवाले कहते है—वह सूक्ष्मबातोको झट समझ जायेगा ॥३२॥

यदि वह प्रव्रजित नही होता, तो चक्रवर्त्ती राजा होकर पृथ्वीपर राज करता है।

न्याय करने, अर्थोके अनुशासन और परिग्रहमे उसके समान या उससे बढकर कोई नही होता ॥३३॥

यदि वह ० प्रव्रजित हो जाता है,

तो अनुपम विशेष प्रज्ञाका लाभ करता है, वह श्रेष्ठ महामेधासे बोधि प्राप्त करता है ॥३४॥

९—अक्रोध और वस्त्र-दान—(१३) "जो कि भिक्षुओ! ० क्रोधरहित बहुत परेशानकरनेवाले नही थे, और बहुत कहनेपर भी द्वेप, कोप, द्रोहको नही प्राप्त होते थे, बहुत कहनेपर भी उन्हे बाते नही लगती थी, न वह कुपित होते थे, न मारपीट करते थे और न कुछ कहते थे। क्रोध, द्वेप, दौर्मनस्य नही प्रकट करते थे। और उन्होने अलसी, कपास, कौषेय और कम्बलके सूक्ष्मवस्त्रोके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणो (=बिछौनो) और प्रावरणो (=ओढनो)का दान दिया था। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह लक्षण पाये—सुवर्ण-वर्ण=काचनके समान चर्मवाले। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर अलसी, कपास, कौषेय और कम्बलके सूक्ष्म

वस्त्रोके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणो और प्रावरणोके पानेवाले होते है। ० बुद्ध होकर ० प्रावरणोके पानेवाले होते है ०। ० यहाँ कहा गया है—

वह पूर्वजन्ममे अ-क्रोधी रहा, और सूक्ष्म तलवाले सूक्ष्म वस्त्रोको,
जैसे पृथ्वीको सूर्य वैसे दान करता रहा ॥३५॥
उसके कारण यहाँसे मरकर स्वर्गमे उत्पन्न हुआ, और पुण्यफलको भोगकर,
कल्पतरुको जैसे इन्द्र वैसे कनकके शरीर जैसे (शरीर)वाला हो यहाँ उत्पन्न हुआ ॥३६॥
प्रव्रज्याकी चाह छोळ यदि गृहमे रहता है, तो महती पृथ्वीको जीतकर शासन करता है।
वह सात रत्नोको तथा शुचि, विमल, सूक्ष्म चर्मको भी पाता है ॥३७॥
यदि बेघरवाला होता है, तो सुन्दर आच्छादन और प्रावरणके वस्त्रोको पाता है।
वह पूर्वके कियेका फल भोगता है, (क्योकि) कियेका लोप नही होता ॥३८॥

१०—मेल करना—(१४) "जो कि भिक्षुओ ! ० चिरकालसे लुप्त, अतिचिरकालसे चले गये जातिभाइयो, मित्रो, सुहृदो और सखाओको मिलानेवाले थे। माताको पुत्रसे मिलानेवाले थे, पुत्रको मातासे मिलानेवाले थे। पिताको पुत्रसे ०। पुत्रको पितासे ०। भाईको भाईसे ०। भाईको भगिनीसे०। भगिनीको भाईसे। मिलाकर मोद करते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह महापुरुष-लक्षण पाते है—कोषाच्छादित-वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) इस लक्षणसे युक्त होते है।० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० बहुत पुत्रोवाले होते हैं। उनके शूर, वीर, परसेना-प्रमर्दक सहस्रसे अधिक पुत्र होते है ०। ० बुद्ध होकर ० बहुत पुत्रो (=शिष्यो)वाले होते है। उनके शूर, वीर पर (=मार)-सेना-प्रमर्दक अनेको हजार पुत्र होते है ०।" यहाँ यह कहा गया है—

पहले अतीतके पूर्वजन्मोमे चिर-लुप्त चिर-प्रवासी
जातिवालो, सुहृदो, सखाओको उसने मिलाया, मिलाकर मोद करता था ॥३९॥
उस कर्मसे स्वर्ग जा, उसने सुख, क्रीडा, रतिको अनुभव किया।
वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ कोशाच्छादित ढँकी वस्तिको पाता है ॥४०॥
गृहस्थ होनेपर उसके बहुतसे पुत्र, सहस्रसे अधिक आत्मज होते है,
जो कि शूर, वीर, शत्रु-सन्तापक, प्रीति-उत्पादक और प्रियवद होते है ॥४१॥
प्रव्रजित रहनेपर उसके बहुतसे वचनानुगामी पुत्र होते है।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥४२॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

११—योग्य-अयोग्य पुरुषका ख्याल—(१५, १६) "जो कि भिक्षुओ ! ०जनता (=महाजन)के सग्राहक, सम-विषम पुरुषका ज्ञान रखते थे, विशेष पुरुषका ज्ञान रखते थे—'यह इसके योग्य है', 'यह उसके योग्य है'। इस प्रकार पहले उस उस विषयमे पुरुषोकी विशेषता (का ख्याल) करनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ दो महापुरुष-लक्षण पाते है—(१५) न्यग्रोध परिमडल, और (१६) (आजानु-बाहु) सीधे खळे विना झुके वह दोनो जानुको अपने हाथके तलवोसे छूते है, परिमार्जित करते है। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० आढच=महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोने चाँदीवाले, बहुत वित्त-उपकरणवाले, बहु-धनधान्यवाले, भरे कोश-कोठारवाले होते है ०। ० बुद्ध होकर ० आढच, महाधनी, महाभोगवान् होते है। उनके यह धन होते है, जैसे कि श्रद्धा-धन, शील-धन, ह्री (=लज्जा)-धन, अपत्रपा (=सकोच)-धन, श्रुत (=विद्या)-धन, त्याग-धन, प्रज्ञा-धन०। ० यहाँ यह कहा गया है—

तुलना, परीक्षा और चिन्तन करके जनताके सग्रहको देख,

यह इसके योग्य है—इस प्रकार पहले वह पुरुषोमे विशेषताका (ख्याल) करता था ।।४३।।
(इसीसे)पृथिवीपर खळा हो बिना झुके हाथसे दोनो जानुओको छूता है ।
और बचे हुए पुण्यके विपाकसे (बर्गद) वृक्ष जैसे परिमडल (भरे शरीरवाला) होता है ।।४४।।
नाना प्रकारके लक्षणोके जानकार, चतुर पुरुषोने यह भविष्य कथन किया—
(वह) छोटे बच्चेपनसे अनेक प्रकारके गृहस्थोके योग्य (भोगो)को पाता है ।।४५।।
यहाँ राजा हो भोगोका भोगनेवाला होता है, उसके गृहस्थोके योग्य (भोग) बहुत होते है।
यदि सारे भोगोका त्याग करता है तो अनुपम, उत्तम, श्रेष्ठ धनको पाता है ।।४६।।

१२—**परहिताकांक्षा**—(१७-१९) "जो कि भिक्षुओ ! ० बहुत जनोका अर्थाकाक्षी=हिताकाक्षी,=प्राशु-आकाक्षी, मगलाकाक्षी थे—इनकी श्रद्धा बढे, शील बढे, पुत्र बढे, त्याग बढे, धर्म बढे, प्रज्ञा बढे, धन-धान्य बढे, खेत-घर बढे, दोपाये-चौपाये बढे, पुत्र-दारा बढे, दास-कमकर बढे, जातिभाई बढे, मित्र बढे, बधु बढे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ तीन महापुरुष-लक्षणोको पाते है—(१७) सिह-पूर्वार्द्ध काय होते है, (१८) चितातरास (=दोनो कधोके बीचका भाग भरा), (१९) समवर्त्त-स्कध (=समान परिमाणकी गर्दन) होते है। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० अपरिहाण धर्मा होते है—उनका धन-धान्य क्षीण (=परिहाण) नही होता, खेत-घर, दोपाये-चौपाये, पुत्र-दारा, दास-कमकर जाति-भाई, बधु, मित्र—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० बुद्ध होकर ० अपरिहाणधर्मा होते है—उनकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा—सभी सम्पत्ति क्षीण नही होती ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

दूसरोकी श्रद्धा, शील, श्रुत, बुद्धि, त्याग, धर्म, बहुतसी भलाइयो,
धन, धान्य, घर-खेत, पुत्र, दारा, चौपाये, ।।४७।।
जाति-भाई, बन्धु, मित्र, बल, वर्ण, और सुख दोनो,
न क्षीण हो—यह चाहता था, और उन्हे समुन्नत (देखना) चाहता था ।।४८।।
(इस) पूर्वके किये सुचरित कर्मसे वह सिहपूर्वार्द्ध-काय,
समवर्त्तस्कध, और चितान्तरास होता है, इसका पूर्व कारण क्षय न (चाहना) है ।।४९।।
गृहस्थ रहनेपर धन-धान्य, पुत्र-दारा, चौपायोसे बढता है।
धनत्यागी प्रव्रजित हो महान् धर्मता सम्बोधि (=बुद्धत्व)को पाता है ।।५०।।

१३—**पीळा न देना**—(२०) "जो कि भिक्षुओ ! ० हाथ, डला, दण्ड या शस्त्रसे प्राणियोको पीडा न देते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते है—रसग्गसग्गी=उनके कठमे शिराये (=रसवाहिनियाँ) समान वाहिनी और ऊपरकी ओर जानेवाली उत्पन्न होती है। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० नीरोग=निरातक, न-अतिशीत-न-अति उष्ण, समान विपाक-वाली पाचनशक्ति (=गहनी)से युक्त होते है ०।० बुद्ध होकर ० नीरोग, निरातक ० समान विपाक-वाली पाचनशक्तिसे युक्त होते है। ० यहाँ यह कहा गया है—

हाथ, दड, डले, या शस्त्रसे मारने-पीटनेसे
पीडा देने या डरानेके लिये नही सताया, वह जनताको न सतानेवाला था ।।५१।।
उससे वह मरकर सुगति पा आनन्द करता है, सुखफलवाले कर्मोसे सुख पाता है,
(उसकी) पाचनशक्ति स्वय ठीक रहती है। यहाँ आकर वह रसग्गसग्गी होता है ।।५२।।
इसीसे अतिचतुरो और विचक्षणोने कहा—यह नर बहुत सुखी होगा।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ।।५३।।

१४—**प्रिय दृष्टि**—(२१, २२) "जो कि भिक्षुओ ! ० तिर्छी उल्टी नजर न देखते थे, सरल सीधे मन, और प्रिय चक्षुसे लोगोको देखते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत

हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते है—(२१) अभिनीलनेत्र, और (२२) गोपक्ष्म ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० जनता (=बहुजन)के प्रिय-दर्शन होते है, ब्राह्मण, वैश्य, नागरिक सभासद् (=नैगम), दीहाती सभासद् (=जानपद), गणक[1] (=एकौटेन्ट), महामात्य, अनीकस्थ (=सेनानायक), द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य राजा, भोग्य(=भोगिय) कुमारोका प्रिय=मनाप होते है ०। ० बुद्ध होकर जनताके प्रिय दर्शन होते है, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गधर्व—सबके प्रिय=मनाप होते है।' ० यहाँ यह कहा गया है—

न तिर्छी न उल्टी नजरसे देखता था,
सरल तथा सीधे मन, प्रिय चक्षुसे लोगोको देखता था ॥५४॥
सुगति (=स्वर्ग)में वह फलविपाक भोगता है, मोद करता है।
और यहाँ (आ) अभिनील नेत्र, और गोपक्ष्म सु-दर्शन होता है ॥५५॥
अभियुक्त=चतुर, लक्षणोमे बहु पडित,
सूक्ष्म नेत्रो (की परख)में कुशल पुरुष उसे प्रियदर्शन कहते है ॥५६॥
प्रिय दर्शन (पुरुष) गृहस्थ रहनेपर लोगोका प्रिय होता है।
यदि गृहस्थ न हो श्रमण होता है, तो बहुतोका प्रिय, शोकनाशक होता है ॥५७॥

१५—सुकार्यमें अगुआपन—(२३) "जो कि भिक्षुओ! ० अच्छे कामोमे बहुत जनोके अगुआ थे, कायिक सुचरित, मानसिक सुचरित, दान देने, शील ग्रहण करने, उपोसथ (=उपवास) करने, माता-पिता-श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, कुल ज्येष्ठके सम्मान, और (दूसरे) उन उन अच्छे कामोमे लोगोके प्रधान थे। सो उस कर्मके करनेमे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते है, उष्णीष-शीर्षा होते है ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ०—ब्राह्मण-वैश्य, नैगम-जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल (=दौवारिक), अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोगीय, कुमार—जनता उनकी अनुयायिनी होती है ०। ० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गधर्व—महाजन उनके अनुयायी होते है ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

धर्मके सु-आचरणमे प्रमुख था, धर्मचर्यामें रत था,
जनताका अगुआ था, अत (उसने) स्वर्गमे पुण्यका फल भोगा ॥५८॥
सुचरितका फल अनुभवकर यहाँ आ उष्णीष-शीर्षत्व फल पाया।
लक्षण-पारखियोने भविष्यकथन किया—यह बहुत जनोका प्रधान होगा ॥५९॥
यहाँ मनुष्य(लोक)मे पहले उसके पास प्रतिभोग्य (=बलि) ले जाते है,
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो बहुतसे प्रतिहारक[2] पाता है ॥६०॥
यदि वह मनुज प्रव्रजित होता है, तो धर्मोका जानकार=विसवी होता है।
गुणमें अनुरक्त हो, उसके अनुशासन पर बहुतसे चलनेवाले होते है ॥६१॥

१६—सत्यवादिता—(२४-२५) "जो कि भिक्षुओ! ० झूठको त्याग सत्यवादी, सत्यसध, स्थाता=विश्वासपात्र, लोगोके अविश्वासपात्र नही थे सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते है—(२४) एकैकलोमा और (२५) उनके दोनो भौहोके बीच श्वेत कोमल रुईकी जैसी ऊर्णा उत्पन्न होती है ०। ० चक्रवर्त्ती राजा

---

[1] यह सब उस समयके राजकार्यसे सबध रखनेवाले पदोके नाम है।

[2] ऊपर गिनाये ब्राह्मण, वैश्य आदि प्रतिहारक है। इसीसे पीछे प्रतिहार, और प्रतिहारी शब्द बने। पीछे प्रतिहार एक राजपूत राजवशकी उपाधि हो गया।

होकर ० ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार—महाजन उनके समीपवर्त्ती होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग- गधर्व—महाजन उनके सपीमवर्त्ती होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

पूर्वजन्ममे उसने सत्यप्रतिज्ञ, दोहरी वात न वोलनेवाला हो झूठको त्यागा था,
किसीका वह अ-विश्वासी न था, भूत=तथ्य (=सत्य) ही वोलता था ॥६२॥
(इसीसे) भौहोके वीच श्वेत, सुशुक्ल कोमल तूल जैसी ऊर्णा उत्पन्न हुई।
रोम-कूपोमे दोहरे (रोम) नही जन्मे, वह एकैक लोमचिताग था ॥६३॥
वहुतसे उत्पत्तिके लक्षणोके जानकार लक्षणज्ञोने आकर उसका भविष्यकथन किया—
इसकी ऊर्णा और लोम जैसे सुस्थित है, उससे इसके वहुत मे लोग पार्श्ववर्त्ती होगे ॥६४॥
गृहस्थ रहनेपर लोग पार्श्ववर्त्ती होगे (यह) किये कर्मोसे (उनका) अग्रस्थायी होगा।
त्यागमय अनुपम प्रव्रज्या ले बुद्ध होनेपर लोग उपवर्त्तन पार्श्वचर होगे ॥६५॥

१७—झगळा मिटाना—(२६, २७) "जो कि भिक्षुओ! ० चुगली त्याग, चुगलकी वातसे विरत थे, इनमे फूट डालनेके लिये यहाँ सुनकर वहाँ कहनेवाले न थे, न उनमे फूट डालनेके लिये वहाँ सुनकर यहाँ कहनेवाले थे। वल्कि फूटे हुओको मिलानेवाले, मिले हुओके अनुप्रदाता हो, एकता-प्रेमी, एकता-रस, एकतानन्दी हो एकता करनेवाली वाणीके वोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते हैं—(२६) चौवालीस दाँतोवाले, (२७) अ-विरल दाँतोवाले ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० अभेद्य-परिषद् होते है, उनकी परिषद्—ब्राह्मण-वैश्य नैगम, जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोग्य कुमार अभेद्य (=न फूटनेवाले) होते हैं ०। ० बुद्ध होकर अभेद्य-परिषद् होते हैं, उनकी परिषद् भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गधर्व अभेद्य होते हैं ०। ० यहाँ यह ०—

एकतावालोको फोळनेवाली, फूट वढानेवाली, विवादकारी,
कलहप्रवर्द्धक, अकृत्यकारी, और मिलोको फोळनेवाली वातको नही वोलते थे ॥६६॥
अविवाद-वर्द्धक, फूटोको मिलानेवाले सुवचनको ही वोलते थे,
लोगोके कलहको दूर करते थे, एकता-सहितोके साथ आनन्द और प्रमोद करते थे ॥६७॥
इससे स्वर्गमे वह फलविपाकको अनुभव करता, वहाँ मोद करता रहा,
यहाँ (जन्मकर) उसके मुखमे चालीस अविरल, जुळे दाँत होते हैं ॥६८॥
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो उसकी परिषद् न फूटनेवाली होती है।
यदि विरज विमल श्रमण होता है, तो उसकी परिषद् अनुरक्त अचल होती हैं ॥६९॥

१८—मधुरभाषिता—(२८, २९) "जो कि भिक्षुओ! ० कठोर वचन त्याग कठोर वचनसे विरत रहते थे। जो वह वाणी नेला सरल कर्णसुखा, प्रेमणीया, हृदयगमा, पौरी (=सभ्य, नागरिक), वहु-जनकान्ता=वहुजनमनापा है, वैसी वाणीके वोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते हैं—(२८) ब्रह्मस्वर, (२९) करविकभाणी ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० आदेय-वाक् होते हैं, उनकी वातको ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार ग्रहण करते हैं ०। ० बुद्ध होकर आदेय-वाक् होते है, उनकी वातको भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गधर्व ग्रहण करते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

गाली झगळा और पीडादायक, वाधक, वहुजनमर्दक,
कठोर तीखे वचनको वह नही बोलता था, सुसगत सकारण मधुर वचनको ही वोलता था ॥७०॥
मनको प्रिय, हृदयगम, कर्णसुख वचनको वह बोलता था
(इस) वाचिक सुचरितके फलको (उसने) अनुभव किया, स्वर्गमे पुण्यफलको भोगा ॥७१॥

सुचरितके फलको भोगकर यहाँ आ वह ब्रह्मस्वर होता है,
उसकी जिह्वा विपुल और पृथुल होती है, और वह आदेय-वाक् होता है ॥७२॥
बात करनेपर गृहस्थको सतुष्ट करता है। यदि वह मनुष्य प्रव्रजित होता है,
बहुतोको बहुतसा सुभाषित सुनानेवाले (उस पुरुष)के वचनको जनता ग्रहण करती है ॥७३॥

१९—भावपूर्ण वचन—(३०) "जो कि भिक्षुओ! ० बकवाद छोळ बकवादसे विरत रहते थे, कालवादी (=समय देखकर बोलनेवाले), भूत(=यथार्थ)-वादी, अर्थवादी, धर्मवादी, विनयवादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, भावपूर्ण (=निधानवती) वाणी बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं—सिंह-हनु होते हैं। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० किसी मानव शत्रु=प्रत्यर्थिकसे अजेय होते हैं ०। ० बुद्ध होकर राग, द्वेष, मोह—भीतरी शत्रुओ, तथा किसी भी श्रमण-ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा—ससारके बाहरी शत्रुओसे अजेय होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

बुद्धके वचनमे बकवाद नही थी, अ-सयत बातका वहाँ रास्ता न था,
(वचनसे उसने) अहितको हटा, और बहुजनोके हित-सुखको कहा था ॥७४॥
इसलिये यहाँसे च्युत हो स्वर्गमे उत्पन्न हो (उसने) सुकृतके फलविपाकको भोगा,
च्युत हो यहाँ आकर सिंह-हनुत्वको प्राप्त किया ॥७५॥
(इससे वह) मनुजेन्द्र, मनुजाधिपति, महानुभाव, सुदुर्जेय राजा होता है,
देवपुरमे कल्पद्रुमके नीचे इन्द्रसा समान ही होता है ॥७६॥
यदि वैसा पुरुष वैसे शरीरवाला होता है, तो यहाँ दिशाओ, प्रतिदिशाओ और विदिशाओमे,
गधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सुर द्वारा सुजेय नही होता ॥७७॥

२०—सच्ची जीविका—(३१, ३२) "जो कि भिक्षुओ! ० मिथ्या-आजीव (=बुरी रोजी) को छोळ सम्यग्-आजीवसे जीविका चलाते थे—तराजूकी ठगी, कस (=बटखरे)की ठगी, मान (=नाप)की ठगी, रिश्वत (=उत्कोटन), वचना, कृतघ्नता (=निकति), साचियोग (=कुटिलता), छेदन, बध, बधन, विपरामोस (=डाका), आलोप (=लूटना), सहसाकार (=खून आदि कार्य)से विरत थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोको पाते हैं—(३१) समदन्त होते है, और (३२) सु-शुक्ल-दाढ। ० चक्रवर्ती राजा होकर ० शुचि-परिवार होते है, उनके परिवार—ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार शुचि होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० शुचि-परिवार होते है, उनके परिवार—भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गधर्व शुचि होते हैं। बुद्ध होकर यह पाते हैं।" भगवान्ने यह बात कही। वहाँ यह (गाथाये) कही गई है—

मिथ्या-आजीवको छोळ उसने सम्यक्, शुचि, धर्मानुकूलजीविका की।
अ-हितको हटाया, और बहुत जनोके हित-सुखका आचरण किया ॥७८॥
निपुण, विद्वान्, सत्पुरुषो द्वारा प्रशसित (कर्मो)को करके वह पुरुष स्वर्गमे सुख-फल
अनुभव करता है, श्रेष्ठ देवलोकके समान रति क्रीडासे युक्त हो रमण करता है ॥७९॥
वहाँसे च्युत हो बँचे सुकृतके फलसे मनुष्य-योनि पा
समान और शुद्ध सुशुक्ल दाँतोको पाता है ॥८०॥
चतुरो द्वारा सम्मत बहुतसे सामुद्रिक-ज्ञाता मनुष्योने आकर उसका भविष्य-कथन किया—
समदन्त और शुचि-सुशुक्ल-दन्त, शुचि परिवारगणसे युक्त होता है ॥८१॥
राजाका शुचि परिवार बहुत जनोवाला होता है, वह महापृथिवीका शासन करता है,
किन्तु जबर्दस्तीसे नही, न (वहाँ) देशको पीडा होती है, वह जनताके हित-सुखको करता है ॥८२॥

यदि साधु होता है, तो पापरहित, उघळे कपाटवाला, डर-वाधा-रहित,
शमित-मल श्रमण होता है, और इस लोक परलोक दोनोहीको देखता है ॥८३॥
उसके उपदेशानुगामी बहुतसे गृहस्थ और साधु निन्दित अ-शुचि, पापको हटाते है,
वह शुचि परिवारसे युक्त होता है, और मलके काँटे तथा कलि-क्लेश (=पापके मालिन्य)
को हटाता है ॥८४॥

३१–सिगालोवाद-सुत्त (३।८)

गृहस्थके कर्तव्य (इह लोक और परलोककी विजय)। १—चार कर्म-क्लेशोका नाश। २—चार पापके स्थान। ३—छै सम्पत्तिके नाशके कारण। ४—मित्र और अमित्र। ५—छै दिशाओकी पूजा।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमे, वेणुवन कलन्दकनिवापमे विहार कर रहे थे। उस समय शृगाल (=सिगाल) गृहपति-पुत्र (=वैश्यका लळका) सवेरे उठकर राजगृहसे निकल भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओको हाथ

बुरे मित्रोका होना; और बहुत कंजूसी, यह छ मनुष्यको बर्बाद कर देते है ॥७॥

(जो) जुआ खेलते है, सुरा पीते है, पराई प्राण-प्यारी स्त्रियो (का गमन करते है),
पडितका नही, नीचका सेवन करते है, (वह) कृष्ण-पक्षके चन्द्रमाजैसे क्षीण होते है ॥८॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कळ, प्रमादी (होता है),
(जो) पानीकी तरह ऋणमे अवगाहन करता है, (वह) शीघ्र ही अपनेको व्याकुल करता है ॥९॥
दिनमे निद्राशील, रातके उठनेको बुरा माननेवाला,
सदा (नशामे) मस्त=शौड गृहस्थी(=घर-आवास) नही चला सकता ॥१०॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत सध्या हो गई',
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते है ॥११॥
जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नही मानता।
वह सुखसे वचित होनेवाला नही होता ॥१२॥

४–मित्र और अमित्र

क–मित्र रूपमे अमित्र—"गृहपति-पुत्र ! इन चारोको मित्रके रूपमे अमित्र(=शत्रु) जानना चाहिये—(१)पर-धनहारकको मित्र-रूपमे अमित्र जानना चाहिये। (२) केवल बात बनाने वालेको०। (३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको०। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यो मे) सहायकको०। गृहपति-पुत्र !

१—पर-धनहारक—"चार बातोसे पर-धन-हारकको०।—पर-धन-हारक होता है, थोळे (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है, (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥१३॥

२—बातूनी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे वचीपरम (=केवल बात बनानेवाले)को०।—(१) भूत (कालिक वस्तु)की प्रशसा करता है। (२) भविष्यकी प्रशसा करता है। (३) निरर्थक (बात)की प्रशसा करता है ! (४) वर्तमानके काममे विपत्ति दिखलाता है।

३—खुशामदी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे प्रियभाणी (=जी हुजूर)को०।—(१) बुरे काममे भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममे भी अनुमनि देता है। (३) सामने तारीफ करता है। और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है।

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृपावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनकी) पंडित जन प्रशसा नही करते ॥१॥

२–चार स्थानोंसे पाप नहीं करना

ख "किन चार स्थानोसे पापकर्मको नही करता? (१) छन्द (=राग)के रास्तेमे जाकर पापकर्म करता है। (२) द्वेषके रास्तेमे जाकर०। (३) मोहके०। (४) भयके०। चूँकि गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है, न द्वेपके०, न मोहके०, न भयके०। (अत) इन चार स्थानोसे पाप-कर्म नही करता।—भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेप, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश क्षीण होता है ॥२॥
छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण नही करता।
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति उसका यश बढ़ता है ॥३॥

६—आलस्य—"गृहपति-पुत्र! आलस्यमे पळनेमे यह छै दोष है—(१) '(इस समय) बहुत ठडा है' (सोच) काम नही करता। (२) 'बहुत गर्म है'—(सोच) काम नही करता। (३) 'बहुत शाम हो गई' (सोच) ०। (४) 'बहुत सवेरा है' ०। (५) 'बहुत भूखा हूँ' ०। (६) 'बहुत खाये हूँ' ० इस प्रकार बहुतसी करणीय बातोको (न करनेसे) , अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नही होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते है। ।"

भगवान्ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

'जो (मद्य)पानमे सखा होता है, (सामनेही), प्रिय बनता है, (वह मित्र नही)
जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥४॥
अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना, और अनर्थ करना,
बुरेकी मित्रता, और बहुत कजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते है ॥५॥
पाप-मित्र (=बुरे मित्रवाला), पाप-सखा और पापाचारमे अनुरक्त,
मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोहीसे नष्ट-भ्रष्ट होता है ॥६॥
जुआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिनकी निद्रा अ-समयकी सेवा,
बुरे मित्रोका होना, और बहुत कजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते है ॥७॥
(जो) जुआ खेलते है, सुरा पीते है, पराई प्राण-प्यारी स्त्रियो (का गमन करते है),
पडितका नही, नीचका सेवन करते है, (वह) कृष्ण-पक्षके चन्द्रमाजैसे क्षीण होते है ॥८॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कळ, प्रमादी (होता है),
(जो) पानीकी तरह ऋणमे अवगाहन करता है, (वह) शीघ्र ही अपनेको व्याकुल करता है ॥९॥
दिनमे निद्राशील, रातके उठनेको बुरा माननेवाला,
सदा (नशामे) मस्त=शौड गृहस्थी(=घर-आवास) नही चला सकता ॥१०॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत सध्या हो गई',
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते है ॥११॥
जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नही मानता।
वह सुखसे वचित होनेवाला नही होता ॥१२॥

४—मित्र और अमित्र

क—*मित्र रूपमें अमित्र*—"गृहपति-पुत्र! इन चारोको मित्रके रूपमे अमित्र(=शत्रु) जानना चाहिये—(१)पर-धनहारकको मित्र-रूपमे अमित्र जानना चाहिये। (२) केवल बात बनाने वालेको०। (३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको०। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यो मे) सहायकको०। गृहपति-पुत्र!

१—पर-धनहारक—"चार बातोसे पर-धन-हारकको०।—पर-धन-हारक होता है, थोळे (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है, (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥१३॥

२—बातूनी—"गृहपति-पुत्र! चार बातोसे वचीपरम (=केवल बात बनानेवाले)को०।—(१) भूत (कालिक वस्तु)की प्रशसा करता है। (२) भविष्यकी प्रशसा करता है। (३) निरर्थक (बात)की प्रशसा करता है। (४) वर्तमानके काममे विपत्ति दिखलाता है।

३—खुशामदी—"गृहपति-पुत्र! चार बातोसे प्रियभाणी (=जी हुजूर)को०।—(१) बुरे काममे भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है। (३) सामने तारीफ करता है। और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है।

४—नाश में सहायक—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे अपाय-सहायकको० —(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमादके काममे फँसनेमे साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमनेमे साथी होता है (३) समज्या देखनेमे साथी होता है। (४) जुआ खेलने (जैसे) प्रमादके काममे साथी होता है।

भगवान्‌ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

'पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायोमे सखा है ॥१४॥
यह चारो अमित्र है, ऐसा जानकर पडित पुरुष,
खतरे-वाले रास्तेकी भाँति (उन्हे) दूरसे ही छोळ दे ॥१५॥

ख—मित्र—"गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रोको सुहृद् जानना चाहिये—(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये। (२) सुख दु खको समान भोगनेवाले मित्रको०। (३) अर्थ (की प्राप्तिका उपाय) बतलानेवाले मित्रको०। (४) अनुकपक मित्रको०।

१—उपकारी—"गृहपति-पुत्र चार बातोसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) प्रमत्त (=भूल करनेवाले)की रक्षा करता है। (२) प्रमत्तकी सपत्तिकी रक्षा करता है। (३) भयभीतका रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पळ जानेपर, उसे दुगना लाभ उत्पन्न करवाता है।

२—समान सुख दुःखी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे समान-सुख-दु ख मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) इसे गोप्य (बात) बतलाता है। (२) इसकी गोप्य-बातको गुप्त रखता है। (३) आपद्‌मे इसे नही छोळता (४) इसके लिये प्राण भी देनेको तैयार रहता है।

३—हितवादी—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे अर्थ-आख्यायी (=हितवादी) मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) पापका निवारण करता है। (२) पुण्यका प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या)को श्रुत करता है। (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है।

४—अनुकम्पक—"गृहपति-पुत्र ! चार बातोसे अनुकपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) मित्रके (धनसपत्ति) होनेपर खुश नही होता। (२) न होनेपर भी खुश नही होता। (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोकता है। (४) प्रशसा करनेपर प्रशसा करता है।

यह कहकर फिर यह भी कहा—

"जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दु खमे जो सखा (बना) रहता है,
जो मित्र हितवादी होता है, और जो मित्र अनुकपक होता है ॥१६॥
यही चार मित्र है, बुद्धिमान् ऐसा जानकर,
सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भाँति उनकी सेवा करे ॥१७॥
सदाचारी पडित मधुमक्खीकी भाँति भोगोको सचय कर,
प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशमान होता है।
(उसके) भोग (=सपत्ति) जैसे वल्मीक बढता है, वैसे बढते है ॥१८॥
इस प्रकार भोगोका सचयकर अर्थ-सपन्न कुलवाला (जो) गृहस्थ,
चार भागमे भोगोको विभाजित करे, वही मित्रोको पावेगा ॥१९॥
एक भागको स्वय भोगे, दो भागोको काममे लगावे।
चौथे भागको आपत्कालमे काम आनेके लिये रख छोळे ॥२०॥

५—छै दिशाओंकी पूजा

"गृहपति-पुत्र ! यह छै—दिशाये जाननी चाहिये। (१) माता-पिताको पूर्व-दिशा जानना चाहिये। (२) आचार्योको दक्षिण-दिशा जानना चाहिये। (३) पुत्र-स्त्रीको पश्चिम-दिशा०। (४) मित्र-अमात्योको उत्तर-दिशा०। (५) दास-कमकरको नीचेकी दिशा०। (६) श्रमण-ब्राह्मणोको ऊपरकी दिशा०।

१—माता पिताकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच तरहसे माता-पिताका प्रत्युपस्थान (=सेवा) करना चाहिये—(१) (इन्होने मेरा) भरण-पोषण किया है, अत मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये। (२) (मेरा काम किया है, अत) मुझे इनका काम करना चाहिये। (३) (इन्होनें कुल-वश कायम रक्खा, अत) मुझे कुल-वश कायम रखना चाहिये। (४) (इन्होनें मुझे दायज्ज =वरासत दिया, अत) मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये। (५) मृत प्रेतोके निमित्त श्राद्ध-दान देना चाहिये। इस प्रकार पाँच तरहसे सेवित (माता-पिता) पुत्रपर पाँच प्रकारसे अनुकपा करते है—(१) पापसे निवारित करते है। (२) पुण्यमे लगाते है। (३) शिल्प सिखलाते है। (४) योग्य स्त्रीसे सबध कराते है। (५) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते है। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच बातोसे पुत्रद्वारा माता-पिता-रूपी पूर्वदिशाका प्रत्युपस्थान होता है। इस प्रकार इस (पुत्र)की पूर्वदिशा प्रतिच्छन्न (=ढँकी, सुरक्षित) क्षेम-युक्त, भय-रहित होती है।

२—आचार्यकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच बातोसे शिष्यको आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) उत्थान (=तत्परता)से, (२) उपस्थान (=हाजिरी=सेवा)से, (३) सुश्रूषासे, (४) परिचर्या=सत्सगसे, (५) सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखनेसे। गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार पाँच बातोसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकारसे शिष्यपर अनुकपा करते है—(१) सु-विनयसे युक्त करते है। (२) सुन्दर शिक्षाको भली-प्रकार सिखलाते है। (३) 'हमारी (विद्याये) परिपूर्ण रहेंगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत(=विद्या)को सिखलाते है। (४) मित्र-अमात्योको सुप्रतिपादन करते है। (५) दिशाकी सुरक्षा करते है।

३—पत्नीकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे स्वामीको भार्या-रूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) सन्मानसे, (२) अपमान न करनेसे, (३) अतिचार (पर-स्त्री-गमन आदि) न करनेसे, (४) ऐश्वर्य-प्रदानसे, (५) अलकार-प्रदानसे गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोसे स्वामिद्वारा भार्यारूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान होनेपर, (वह) स्वामिपर पाँच प्रकारसे अनुकपा करती है—(१) (भार्याद्वारा) कर्मान्त (=काम-काज) भली प्रकार होते है। (२) परिजन (=नौकर-चाकर) वशमे रहते है। (३) (स्वय) अतिचारिणी नही होती। (४) अर्जितकी रक्षा करती है। (५) सब कामोमे निरालस और दक्ष होती है।

४—मित्रोकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे मित्र-अमात्य-रूपी उत्तर-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दानसे, (२) प्रिय-वचनसे, (३) अर्थ-चर्या (=कामकर देने)से, (४) समानता (प्रदर्शन)से, (५) विश्वास-प्रदानसे। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोसे प्रत्युपस्थान की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-दिशा, पाँच प्रकारसे (उस) कुल-पुत्रपर अनुकपा करती है—(१) प्रमाद (=भूल, आलस्य)कर देनेपर रक्षा करते है। (२) प्रमत्तकी सपत्तिकी रक्षा करते है। (३) भयके समय शरण (=रक्षक) होते है। (४) आपत्कालमे नही छोळते। (५) दूसरी प्रजा (=लोग) भी (ऐसे मित्र-अमात्यवाले) इस पुरुषका सत्कार करती है।

५—सेवककी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे आर्यक(=मालिक)को दास-कर्मकर रूपी

निचली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) बलके अनुसार कर्मान्त (=काम) देनेसे, (२) भोजन-वेतन (=भत्त-वेतन)-प्रदानसे, (३) रोगि-सुश्रूपासे, (४) उत्तम रसो (वाले पदार्थो)को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (=वोसग्ग) देनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँचो प्रकारोसे प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्म-कर पाँच प्रकारसे मालिकपर अनुकपा करते है—(१) (मालिकसे) पहिले (विस्तरसे) उठ जानेवाले होते है। (२) पीछे सोनेवाले होते है। (३) दियेको (ही) लेनेवाले होते है। (४) कामोको अच्छी तरह करनेवाले होते है। (५) कीर्ति-प्रशसा फैलानेवाले होते है।

६—**साधु-ब्राह्मणकी सेवा**—"गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकारसे कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण-रूपी ऊपरकी-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्मसे, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक-कर्मसे, (४) (उनके लिये) खुला द्वार रखनेसे, (५) आमिष (=खान-पानकी वस्तु)के प्रदान करनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारोसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण-ब्राह्मण . इन छै प्रकारोसे कुल-पुत्रपर अनुकपा करते है—(१) पाप(=बुरा) से निवारण करते है। (२) कल्याण (=भलाई)मे प्रवेश कराते है। (३) कल्याण(-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकपा करते हैं (४) अ-श्रुत (विद्या)को सुनाते हैं। (५) श्रुत (विद्या)को दृढ कराते हैं। (६) स्वर्गका रास्ता बतलाते है।"

माता-पिता पूर्वदिशा है, आचार्य दक्षिण दिशा।
पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा ॥२१॥
दास-कर्मकर नीचेकी दिशा है, श्रमण-ब्राह्मण ऊपरकी दिशा।
गृहस्थको अपने कुलमे इन दिशाओको अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिये ॥२२॥
पडित, सदाचारपरायण स्नेही, प्रतिभावान्,
एकान्तसेवी तथा आत्मसयमी (पुरुष) यशको पाता है ॥२३॥
उद्योगी, निरालस आपत्तिमे न डिगनेवाला,
अटूट नियमवाला, मेधावी (पुरुष) यशको प्राप्त होता है ॥२४॥
(मित्रोका) सग्राहक, मित्रोका काम करनेवाला उदार डाह-रहित
नेता, विनेता, तथा अनुनेता (पुरुष) यशको पाता है ॥२५॥
जो कि यहाँ दान प्रिय-वचन, अर्थचर्या करता है, ।
और उस उस (व्यक्ति)मे योग्यतानुसार समानताका (बर्तावकरता है) ॥२६॥
ससारमे यह सग्रह चलते रथकी आणी (=नाभि)की भाँति है।
यदि यह सग्रह न हो, तो न माता पुत्रसे
मान-पूजा पावे, और न ही पिता पुत्रसे ॥२७॥
पडित लोग इन सग्रहोको चूँकि अच्छी तरह ख्याल रखते हैं,
इसीसे वे वळप्पन पाते है, और प्रशसनीय होते है ॥२८॥"

ऐसा कहनेपर शृगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्से यह कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ०[1]आजसे मुझे भगवान् अजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करे।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

३२—आटानाटिय-सुत्त (३।९)

१—आटानाटिय (=भूतो-यक्षोसे) रक्षा। (१) सातो बुद्धोको नमस्कार। (२) चारो महाराजोका वर्णन। (३) रक्षा न माननेवाले यक्षोको दंड। (४) प्रबल यक्षोका नामस्मरण। २—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति।

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके **गृध्रकूट** पर्वतपर विहार करते थे।

तब, चारो महाराज (अपने) यक्षो, गन्धर्वो, कूष्माडो, और नागोकी बळी भारी सेना लेकर, चारो दिशाओमे रक्षकोको बैठा, योद्धाओकी टोलियोको नियुक्तकर, रात बीतनेपर, प्रकाशमान हो, सारे गृध्रकूट पर्वतको प्रकाशित करते जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर बैठ गये। कितने भगवान्‌का समोदनकर, कितने भगवान्‌को अञ्जलिबद्ध प्रणामकर, कितने नाम और गोत्र सुनाकर, और कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

१—आटानाटिय (=भूतों-यक्षोंसे) रक्षा

एक ओर बैठे **वैश्रवण** (=कुवेर) महाराज भगवान्‌से बोले—"भन्ते! कितने ही बळे बळे यक्ष आपपर अश्रद्धावान् (=अप्रसन्न) है, और कितने श्रद्धावान्, कितने मध्यम यक्ष०, कितने नीच यक्ष०। भन्ते! जो इतने यक्ष आपपर अप्रसन्न है, सो क्यो? (क्योकि) भगवान् जीव-हिसा न करनेके लिये धर्मोपदेश करते हं, चोरी न करनेके०। भन्ते! जो यक्ष जीव-हिसासे विरत नही हैं, चोरीसे विरत नही हैं, उन्हे यह अप्रिय और मनके प्रतिकूल मालूम होता है। भन्ते! भगवान्‌के श्रावक जगलमे एकान्तवास करते है०। (किंतु) वहाँ जो बळे बळे यक्ष रहते है, वे भगवान्‌के इस प्रवचनसे अप्रसन्न है। भन्ते! भिक्षुओकी ० उपासिकाओकी रक्षा, अ-पीडा और सुख-पूर्वक विहार करनेके लिये उन लोगोको प्रसन्न रखनेको भगवान् आटानाटिय रक्षाका उपदेश करे।

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब वैश्रवण महाराजने भगवान्‌की स्वीकृति जान उस समय यह **आटानाटिय** रक्षा कही—

(१) सातो बुद्धोको नमस्कार

"चक्षुमान, श्रीमान् विपश्यीको नमस्कार हो।
सर्वभूतानुकम्पी शिखीको नमस्कार हो ॥१॥
स्नातक तपस्वी विश्वभूको नमस्कार हो।
मार-सेनाको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले ककुच्छन्दको नमस्कार हो ॥२॥
ब्रह्मचारी कोणागमन ब्राह्मणको नमस्कार हो,
सभी प्रकारसे विमुक्त काश्यपको नमस्कार हो ॥३॥
आगिरस श्रीमान् शाक्यपुत्रको नमस्कार हो
जिनने सब दुःखोके नाश करनेवाले धर्मका उपदेश किया ॥४॥
और जो दूसरे भी यथार्थ ज्ञान पा निर्वाणको प्राप्त हुये है,

वे सभी महान् निर्भय आस्रव-रहित (अर्हत्) सुने ॥५॥
वह देव मनुष्योके हितके लिये है।
उन विद्याचरणसम्पन्न, महान् और निर्भय **गौतमको** नमस्कार करते हैं ॥६॥

(२) *चारों महाराजोंका वर्णन*

१-धृतराष्ट्र-जहाँसे महान् मण्डलवाला, आदित्य, सूर्य उगता है,
जिसके कि उगनेसे रात नष्ट हो जाती है ॥७॥
जिस सूर्यके उगनेसे कि दिन कहा जाता है,
(वहाँ एक) गम्भीर जलाशय, नदियोके जलवाला समुद्र है ॥८॥
उसे वहाँ नदी-जलवाला समुद्र समझते हैं।
यहाँसे वह पूर्व दिशामे है—ऐसा उसके विषयमे लोग कहते हैं।
जिस दिशाको कि वह यशस्वी महाराजा पालन करता है ॥९॥
(वह) गन्धर्वोका अधिपति है, उसका नाम **धृतराष्ट्र** है,
गन्धर्वोके आगे हो नृत्य गीतमे रमण करता है ॥१०॥
उसके बहुतसे पुत्र एक नामवाले सुने जाते है,
और एकानवे (पुत्र) महाबली इन्द्र नामवाले हैं ॥११॥
वे भी बुद्ध, आदित्य-वशज निर्भय महान् बुद्धको देख
दूरहीसे नमस्कार करते हैं—हे पुरुष श्रेष्ठ! पुरुषोत्तम! तुम्हे नमस्कार हो ॥१२॥
तुम कुशलसे समीक्षा करते हो, अमनुष्य (=देवता) भी तुम्हे प्रणाम करते हैं—
हम लोग ऐसा सदा सुनते है, इसीसे ऐसा कहते हैं ॥१३॥
जिन (=विजयी) गौतमको प्रणाम करो, जिन गौतमको हम प्रणाम करते है।
विद्या-आचरण-सम्पन्न **गौतम** बुद्धको हम प्रणाम करते है ॥१४॥
२-विरूढक-जीव-हिसक, रुद्र, चोर, शठ, और चुगलखोर,
पीछेमे निन्दा करनेवाले प्रेतजन कहे जाते है, वे जहाँ (रहते हैं) ॥१५॥
वह (स्थान) यहाँसे दक्षिण दिशामे है—ऐसा लोग कहते हैं।
उस दिशाको ये यशस्वी महाराज पालन करते हैं ॥१६॥
(वह) कूष्माडोके अधिपति है, उनका नाम **विरूढक** है,
वह कूष्माडोको आगे होके नृत्य गीतमे रमण करते है ॥१७॥
उनके बहुतसे पुत्र ० इन्द्र नामक ०। ॥१८॥
वे भी बुद्धको० देखकर ० नमस्कार ० ॥१९॥
तुम कुशल-समीक्षा करते हो ० ॥२०॥
विजयी गौतमको प्रणाम ० ॥२१॥
३-विरूपाक्ष-जहाँ महान् मडलवाला आदित्य सूर्य अस्त होता है,
जिसके कि अस्त होनेसे दिन नष्ट हो जाता है ॥२२॥
जिस सूर्यके अस्त हो जानेसे रात कही जाती है।
वहाँ (एक) गम्भीर जलाशय, नदीजलवाला समुद्र है ॥२३॥
उसे वहाँ ० पश्चिम दिशा ० ॥२४॥
(वह) नागोका अधिपति है, उसका नाम **विरूपाक्ष** है।
वह नागोके आगे हो, नृत्य गीतमे रमण करता है ॥२५॥
उसके बहुत पुत्र ० इन्द्र नाम ० ॥२६॥
वे भी बुद्धको देखकर ० ॥२७॥

तुम कुशलमे समीक्षा ० ।।२८।। विजयी गौतमको प्रणाम ० ।।२९।।
४—वैश्रवण—जहाँ रमणीय उत्तर-कुरु और सुदर्शन सुमेरु पर्वत हैं,
जहाँपर मनुष्य परिगह-रहित, ममता-रहित उत्पन्न होते हैं ।।३०।।
वे न बीज बोते हैं, और न हल जोतते हैं।
वे मनुष्य अकृष्ट-पच्य (=स्वय उत्पन्न) शालीको खाते हैं ।।३१।।
कन और भूसीसे रहित, शुद्ध और सुगन्धित,
चावलको दूधमे पकाकर भोजन करते हैं ।।३२।।
बैलकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं ।
पशुकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं ।।३३।।
स्त्रीको वाहन (=सवारी) बना, ० ।
पुरुषको वाहन बना सभी ओर जाते हैं ।।३४।।
कुमारी ० कुमारको वाहन बना सभी ओर जाते हैं।
उस राजाकी सेवामें यानोपर सवार होकर सभी दिशाओंसे आते हैं ।।३५।।
उस यशस्वी महाराजके पास हस्तियान, अश्वयान,
और दिव्ययान, प्रासाद और शिविकाये हैं ।।३६।।
उनके नगर आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा,
नाटसुरिया, परकुसितनाटा—अन्तरिक्षमे बने हैं ।।३७।।
उसके उत्तरमे कपीवन्त और दूसरी ओर जनौघ, (तथा) निन्नावे दूसरे नगर हैं।
अम्बर, अम्बरवती नामक नगर हैं, आलकमन्दा नामकी (उनकी) राजधानी है ।।३८।।
मार्ष ! कुवेर महाराजकी राजधानी विसाणा नामकी है।
इसीलिये कुवेर महाराज वेस्सवण (=वैश्रवण) कहे जाते हैं ।।३९।।
ततोला, तत्तला, ततोतला, ओजसि, तेजसि, ततोजसि,
अरिष्टनेमि, सूर, राजा अन्वेषण करते प्रकाशते हैं ।।४०।।
वहाँ धरणी नामक एक सरोवर है, जहाँसे जल लेकर,
मेघ वृष्टि करते हैं, और जहाँसे वृष्टि प्रसरित होती है।
सागलवती (भागलवती) नामक सभा है, जहाँ यक्ष लोग एकत्रित होते हैं ।।४१।।
वहाँ नाना पक्षि-समूहोमे युक्त नित्य फलनेवाले वृक्ष हैं,
जो मयूर, क्रौञ्च, कोकिल आदि (पक्षियो)के मधुर कूजनसे व्याप्त रहते हैं ।।४२।।
वहाँ जीवजीव शब्द करते हैं, और आठवे, चित्रक (शब्द करते हैं)।
वनोमे कुकुत्यक, कुलीरक, पोक्खरसातक, शुक, सारिका, दयळमान और वक शब्द करते हैं।
वहाँ सदा सर्वकाल कुवेरकी नलिनी शोभायमान रहती है ।।४३-४४।।
'यहाँसे उत्तर दिशामे है'—ऐसा लोग कहते हैं,
जिस दिशाको कि वह यशस्वी महाराज पालन करते हैं ।।४५।।
यक्षोके अधिपति ० ।।४६।।
उनके बहुतसे पुत्र० इन्द्र नामक० ।।४७।।
वे भी बुद्धको देखकर ० ।।४८।।
तुम कुशलसे समीक्षा ० ।।४९।। विजयी गौतमको प्रणाम ० ।।५०।।

(३) रक्षा न माननेवाले यक्षोको दण्ड

"मार्ष ! यह आटानाटिय रक्षा भिक्षु ० रक्षाके लिये ०। जो कोई भिक्षु ० इस ० रक्षाको ठीकसे पढेगा और धारण करेगा, उसके पीछे यदि अमनुष्य—यक्ष, यक्षिणी, यक्षका वच्चा, यक्षकी

वच्ची, यक्ष-महामात्य, यक्ष-पार्षद, यक्ष-सेवक, गन्धर्व ०, कूष्माण्ड ०, नाग ० बुरे चित्तसे चले, खळे हो, बैठे, सोये, तो मार्ष ! वह अमनुष्य मेरे ग्राममे या निगममे सत्कार=गुरुकार न पावेगे। मार्ष ! वह अमनुष्य मेरी आलकमन्दा राजधानीमे रहने नही पावेगे, और न वह यक्षोकी समितिमें जा सकेगे। मार्ष ! दूसरे अमनुष्य उससे रोटी-बेटीका सम्बन्ध हटा लेगे, बहुत परिहास करेगे, खाली बर्तनसे उसका शिर भी ढँक देगे। उसके शिरके सात टुकळे कर देगे।

"मार्ष ! कितने अमनुष्य चण्ड, रुद्र और तेज स्वभावके है। वे न तो महाराजाओको मानते है, न उनके अधिकारियो (=पुरुषक)को, और न अधिकारियोके अधिकारियोको। मार्ष ! वे अमनुष्य महाराजोके बागी (=अवरुद्ध) कहे जाते है। मार्ष ! जैसे मगधराजके राज्यमे महाचोर (=डाकू) है, वे न तो राजाको मानते है, न राजाके अधिकारियोको ०। वे महाचोर डाकू राजाके बागी कहे जाते है। मार्ष ! उसी तरह चण्ड, रुद्र ० अमनुष्य है, जो न तो ०।

(४) प्रबल यक्षोंका नाम-स्मरण

"मार्ष ! कोई भी अमनुष्य—यक्ष या यक्षिणी ०, गन्धर्व ०, कुम्भण्ड ० या नाग ०, द्वेषयुक्त चित्तसे भिक्षु ०के पीछे जाय तो इन यक्षो, महायक्षो, सेनापतियो और महासेनापतियोको पुकारना चाहिये, टेर देनी चाहिये, चिल्लाना चाहिये—यह यक्ष पकळ रहा है, शरीरमे प्रवेश कर रहा है, सताता है, ० बहुत सताता ०। ० डराता ०। ० बहुत डराता ०। यह यक्ष नही छोळता। किन यक्षो, महायक्षो, सेनापतियो, महासेनापतियोको (पुकारना चाहिये)?—

"इन्द्र, सोम, वरुण, भारद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्डु और निर्घण्डु ॥५१॥
प्रणाद (=पनाद), औपमन्यव, देवसूत मातलि, गन्धर्व चित्रसेन और देवपुत्र राजा नल ॥५२॥
सातागिर, हैमवत, पूराणक, करती, गुळ, शिवक[1], मुचलिन्द, वैश्वामित्र और युगन्धर ॥५३॥
गोपाल, सुप्परोध, हिरि, नेत्ति, मन्दिय, पञ्चाल चण्ड आलवक[2],
पर्जन्य (=पज्जुन्न) सुमन, सुमुख, दधिमुख, मणि (भद्र) मणिचर, दीर्घ और सेरिसिक ॥५४॥

"इन यक्षो०को पुकारना ० चाहिये—० यह यक्ष पकळ रहा है ०।
"मार्ष ! यह आटानाटिय-रक्षा भिक्षु ०।
"मार्ष ! अब हम लोग जायेंगे, हम लोगोको बहुत काम है, बहुत करणीय है।"
"जैसा महाराजो ! तुम काल समझते हो (वैसा करो)।"
तब चारो महाराज आसनसे उठ ० अन्तर्धान हो गये। वे यक्ष भी ० अन्तर्धान हो गये।

प्रथम भाणवार ॥१॥

२—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति

तब भगवान्‌ने उस रातके बीतनेपर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! रातको चारो महाराज ० जहाँ मैं था वहाँ आये। ० बैठ गये। ० वैश्रवण महाराजने कहा—भन्ते ! कितने बळे बळे यक्ष ०[3] आसनसे उठ अन्तर्धान हो गये।

"भिक्षुओ ! आटानाटिय-रक्षाको पढो, ग्रहण करो, धारण करो। भिक्षुओ ! आटानाटिय रक्षा भिक्षुओ०की रक्षा, अ-पीडा अविहिंसा और सुखपूर्वक विहारके लिये सार्थक है।"

भगवान्‌ने यह कहा। सतुष्ट हो भिक्षुओने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] राजगृह नगरके एक द्वारपर रहता था। [2] आलवी (वर्तमान अरव, कानपुर)में रहनेवाला यक्ष। [3] पहलेकी ही गाथायें।

३३—संगीति-परियाय-सुत्त (३।१०)

१—पावाके नवीन सस्थागारमें बुद्ध। २—गुरुके मरनेपर जैनोमें विवाद। ३—बौद्ध मन्तव्योकी सूची

ऐसा मैने सुना—एक समय भगवान् पाँच-सौ भिक्षुओके महाभिक्षु-सघके साथ मल्ल (देश)-मे चारिका करते, जहाँ [1]पावा नामक मल्लोका नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावामे भगवान् चुन्द कर्म्मार-पुत्रके आम्रवनमे विहार करते थे।

१—पावाके नवीन संस्थागारमें बुद्ध

उस समय पावा-वासी मल्लोका ऊँचा, नया, सस्थागार (=प्रजातत्र-भवन) हालही में बना था, (वहाँ अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्यने वास नही किया था। पावा-वासी मल्लोने सुना—'भगवान्० मल्लमे चारिका करते पावामे पहुँचे है, और पावामे चुन्द कर्मार(=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमे विहार करते है।' तव पावा-वासी मल्ल जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्-को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पावा-वासी मल्लोने भगवान्से कहा—

"भन्ते! यहाँ पावा-वासी मल्लोका ऊँचा (=उब्भतक) नया सस्थागार, किसी भी श्रमण, या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न वसा, अभी ही वना है। भन्ते! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करे। भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लोके लिये दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक हित सुखके लिये होगा।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया।

तव पावाके मल्ल भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, जहाँ सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर सस्थागारमे सव ओर फर्श विछा, आसनोको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक जलाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खळे हो बोले—

"भन्ते! सस्थागार सव ओर विछा हुआ है, आसन स्थापित है, पानीके मटके रक्खे है, तेल-प्रदीप जलाये गये है। भन्ते! अव भगवान् जिसका काल समझे (वैसा करे)।"

तव भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर पैर पखार, सस्थागारमे प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर, वीचके खम्भेके आश्रयसे बैठे। भिक्षु-सघ भी पैर पखार, सस्थागारमे प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, भगवान्को आगेकर पश्चिमकी भीतके सहारे बैठा। पावा-वासी मल्लभी पैर पखार, सस्थागारमे प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर, भगवान्को सामने करके पूर्वकी भीतके सहारे वैठे। तव भगवान्ने पावा-वासी मल्लोको वहुत राततक धार्मिक-कथासे सदर्शित=समादपित, समुत्तेजित, सप्रहर्षितकर विसर्जित किया—

"वाशिष्टो! रात तुम्हारी वीत गई, अव तुम जिसका काल समझो (वैसा करो)।"

---

[1] पडरौनाके समीप पप-उर (=पावा-पुर) जि० गोरखपुर।

"अच्छा भन्ते!" पावा-वासी मल्ल आसनसे उठकर अभिवादन, कर चले गये।"

तब मल्लोके जानेके थोळीही देर बाद, भगवान्‌ने शात (=तूष्णीभूत) भिक्षु-सघको देख, आयुष्मान् सारिपुत्रको आमन्त्रित किया—"सारिपुत्र! भिक्षु-सघ स्त्यान-मृद्ध-रहित है, सारिपुत्र! भिक्षुओको धर्म-कथा कहो, मेरी पीठ [1]अगिया रही है, मै लेटूँगा।"

२—गुरुके मरनेपर जैनोंमें विवाद

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को "अच्छा भन्ते!" कह उत्तर दिया। तब भगवान्‌ने चौपेती सघाटी बिछवा, दाहिनी करवटके बल, पैरपर पैर रख, स्मृति-सप्रजन्यके साथ, उत्थान-सज्ञा मनमे कर, सिंह-शय्या लगाई। उस समय निगठ नात-पुत्त (=तीर्थंकर महावीर) अभी अभी पावामे काल किये थे। उनके काल करनेसे निगठोमे फूट पळ दो भाग हो गये थे। वह भडन=कलह=विवादमे पळ, एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्तिसे चीरते हुये विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय (=मत, धर्म)को नही जानता, मै इस धर्म-विनयको जानता हूँ'। 'तू क्या इस धर्मको जानेगा'? 'तू मिथ्यारूढ है, मै सत्यारूढ हूँ' 'मेरा (कथन अर्थ-)सहित है, तेरा अ-सहित है'। 'तूने पूर्व बोलने (की बात)को पीछे कहा, पीछे बोलने(की बात)को पहिले कहा'। 'तेरा (वाद) बिना विचारका उल्टा है। तूने वाद रोपा, (किन्तु) तू निग्रह-स्थानमे आगया (=निगृहीतोसि)'। 'जा वादसे छूटनेकेलिये फिरता फिर'। यदि सकता है तो समेट'।० मानो [2]नाथ-पुत्तिय निगठोमे एक युद्ध (=वध) ही चल रहा था। जो भी निगठ नाथपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे०।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"आवुसो! निगठ नात-पुत्तने पावामे अभी अभी काल किया है। उनके काल करनेसे० निगठ० भडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुख-शक्तिसे छेदते विहर रहे हैं—'तू इस धर्मको नही जानता०। निगठ नात-पुत्तके जो श्वेतवस्त्रधारी गृही शिष्य है, वे भी नातपुत्तिय निगठोमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त=प्रति-वाण रूप है, जैसे कि वह (नात-पुत्तके) दुराख्यात, दुष्प्र-वेदित, अ-नैर्याणिक, अन्-उपशम-सवर्तनिक, अ-सम्यक्-सबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित, आश्रय-रहित धर्ममे। किन्तु आवुसो! हमारे भगवान्‌का यह धर्म सु-आख्यात (=ठीकसे कहा गया), सु-प्रवेदित (=ठीकसे साक्षात्कार किया गया), नैर्याणिक (=दुःखसे पार करनेवाला), उपशम-सवर्तनिक (=शान्ति-प्रापक), सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित (=बुद्धद्वारा जाना गया) है। यहाँ सबको ही अ-विरुद्ध वचनवाला होना चाहिये, विवाद नही करना चाहिये, जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक=(चिर-स्थायी) हो, और वह बहुजन हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकके अनुकम्पाके लिये, देव-मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिये हो। आवुसो! कैसे हमारे भगवान्‌का धर्म ० देव-मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिये होगा?

३—बौद्ध-मन्तव्योंकी सूची

१—एकक—"आवुसो! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धने एक धर्म ठीकसे बतलाया है। उसमे सबको ही अविरोध वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये, जिसमे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक हो ०। कौनसा एक धर्म? (१) सब प्राणी आहारपर स्थित (=निर्भर) है। आवुसो! उन भगवान्‌ने ० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया। इसमे सबको ही ०।

२—द्विक—"आवुसो! उन भगवान्०ने दो धर्म यथार्थ कहे है।०। कौनसे दो? (१)नाम और रूप। अविद्या और भव(=आवागमनकी)-तृष्णा। भव(=नित्यता-)दृष्टि और विभव(=उच्छेद-)दृष्टि।

---

[1] अ. क. "क्यो अगियाती थी? भगवान्‌के छै वर्षतक महातपस्या करते वक्त शरीरको बळा दुःख हुआ। तब पीछे बुढापेमें उन्हे पीठमें वात(-रोग) उत्पन्न हुआ।" [2] पृष्ठ २५२।

अह्रीकता (=निर्लज्जता), और अन्-अवत्राप्य (=सकोच-भयरहितता)। ह्री (=लज्जा) और अवत्रपा (=सकोच)। दुर्वचनता और पाप (=दुष्टकी)-मित्रता। सुवचनता और कल्याण (=सु) मित्रता। आपत्ति (=दोष)-कुशलता (=चतुराई), और आपत्ति-व्युत्थान (=०उठाना)-कुशलता। समापत्ति (=ध्यान) कुशलता, और समापत्ति-व्युत्थान-कुशलता। [1]धातु-कुशलता, और [2]मनसिकार-कुशलता। (१०) [3]आयतन-कुशलता, और [4]प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशलता। स्थान (=कारण)-कुशलता, और अ-स्थानकुशलता। आर्जव (=सीधापन) और मार्दव (=कोमलता)। क्षांति (=क्षमा) और सौरत्य (=आचारयुक्तता)। साखिल्य (=मधुर वचनता) और प्रति-सस्तार (=वस्तु या धर्मका छिद्र-पिधान)। अविहिंसा (=अहिसा) और शौचेय (=मैत्रीभावना)। मुपित-स्मृतिता (=स्मृति-लोप) और अ-सप्रजन्य (=ध्यान न देना)। स्मृति और सप्रजन्य (=ज्ञान, ख्याल)। इन्द्रिय-अगुप्त-द्वारता (=अ-जितेन्द्रियता), और भोजनमे अ-मात्रज्ञता (=भोजनमे अपने लिये मात्रा न जानना)। इन्द्रिय-गुप्त-द्वारता और भोजन-मात्रज्ञता। (२०) प्रतिसख्यान (=अकपन-ज्ञान)-वल और भावना-वल। स्मृति-वल और समाधि-वल। शमथ (=समाधि) और विपश्यना (=प्रज्ञा)। शमथ-निमित्त और विपश्यना-निमित्त। प्रग्रह (=चित्त-निग्रह) और अ-विक्षेप। शील-विपत्ति (=आचार-दोष), और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धान्त-दोष)। शील-सम्पदा (=आचारकी सम्पूर्णता) और दृष्टि-सम्पदा। शील-विशुद्धि (=कायिक वाचिक अदुराचार), और दृष्टि-विशुद्धि (=सत्यके अनुसार ज्ञान)। दृष्टि-विशुद्धि कहते है सम्यक्-दृष्टिके निरतर अभ्यास (=प्रधान)को। सवेग कहते है सवेजनीय (=वैराग्य करनेवाले) स्थानोमे सविग्न (-चित्तता)का कारण-पूर्वक निरतर अभ्यास। (३०) कुशल (=उत्तम) धर्मोमे अ-सतुष्टिता, और प्रधान (=निरतर अभ्यास)मे अ-प्रतिवानता (=निरालसता)। विद्या (=तीन विद्याओ)से विमुक्ति (=आस्रवोसे चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण। (३२) आवुसो! उन भगवान्०ने इन दो (=जोळे) धर्मोको ठीकसे कहा है०।

३—त्रिक—"आवुसो! उन भगवान्०ने यह तीन धर्म यथार्थ ही कहे है०।" कौनसे तीन? तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोकी जळ) है। कौनसे तीन०? लोभ अकुशल-मूल, द्वेष अकुशल-मूल, मोह अकुशल-मूल।

२—तीन कुशल-मूल है—अलोभ०, अ-द्वेष० और अ-मोह अकुशलमूल।

३—तीन दुश्चरित है—काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन-दुश्चरित।

४—तीन सुचरित है—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित।

५—तीन अकुशल (=बुरे) वितर्क—काम-वितर्क, व्यापाद (=द्रोह) ० विहिसा ०।

६—तीन कुशल (=अच्छे)-वितर्क—नेक्खम्म (=निष्कामता)-वितर्क, अ-व्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।

७—तीन अकुशल-सकल्प (=०वितर्क)—काम-सकल्प, व्यापाद ०, विहिसा ०।

८—तीन कुशल सकल्प—नेक्खम्म-सकल्प, अव्यापाद ० अविहिसा ०।

९—तीन अकुशल सज्ञाये—काम-सज्ञा, व्यापाद ०, विहिसा ०।

१०—तीन कुशल सज्ञाये—नेक्खम्म-सज्ञा, अव्यापाद ० अ-विहिसा ०।

११—तीन अकुशल धातु (=० तर्क-वितर्क)—काम-धातु, व्यापाद ०, विहिसा ०।

---

[1] अ. क. 'धातु अठारह है—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।' [2] 'उन धातुओको प्रज्ञासे जाननेकी निपुणता।' [3] आयतन बारह है, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।' [4] देखो महानिदान-सुत्त १५ (पृष्ठ ११०)।

१२—तीन कुशल धातु—निष्कामता धातु, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।

१३—दूसरे भी तीन धातु (=लोक)—कामधातु, रूप-धातु अ-रूप-धातु।

१४—दूसरे भी तीन धातु (=चित्त)—हीन-धातु, मध्यम-धातु, प्रणीत (=उत्तम)-धातु।

१५—तीन तृष्णाये—काम—तृष्णा, भव(=आवागमन) ०, विभव ०।

१६—दूसरी भी तीन तृष्णाये—काम—तृष्णा, रूप ०, अ-रूप ०।

१७—दूसरी भी तीन तृष्णाये—रूप—तृष्णा, अरूप ०, निरोध ०।

१८—तीन सयोजन (=बधन)—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (=सदेह), शीलव्रत-परामर्श।

१९—तीन आस्रव (=चित्तमल)—काम—आस्रव, भव ०, अविद्या ०।

२०—तीन भव (=आवागमन)—काम(-धातुमे) ०, रूप ०, अरूप ०।

२१—तीन एपणाये (=राग)—काम—एपण, भव ०, ब्रह्मचर्य ०।

२२—तीन विध (=प्रकार)—मैं सर्वोत्तम हूँ, मै समान हूँ, मै हीन हूँ।

२३—तीन अध्व(=काल)—अतीत(=भूत)—अध्व, अनागत(=भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) ०।

२४—तीन अन्त—सत्काय—अन्त, सत्काय-समुदय (=० उत्पत्ति) ०, सत्काय-निरोध ०।

२५—तीन वेदनाये (=अनुभव)—सुखा—वेदना, दु खा ०, अदु ख-असुखा ०।

२६—तीन दु खता—दु ख-दुखता, सस्कार ०, विपरिणाम ०।

२७—तीन राशियाँ—मिथ्यात्त्व-नियत—राशि, सम्यक्त्व-नियत, अ-नियत ०।

२८—तीन काक्षाये(=सन्देह)—अतीतकालको लेकर काक्षा=विचिकित्सा करता है, नही छूटता, नही प्रसन्न होता है। अनागत कालको लेकर ०। अब प्रत्युत्पन्न कालको ०।

२९—तीन तथागतके अरक्षणीय—आवुसो! तथागतका कायिक आचार परिशुद्ध है, तथागतको कायदुश्चरित नही है, जिसकी कि तथागत आरक्षा (=गोपन) करे—'मत दूसरा कोई इसे जान ले।' आवुसो! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ०। ० तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ०।

३०—तीन किंचन (=प्रतिबध)—राग—किंचन, द्वेष ०, मोह ०।

३१—तीन अग्नियाँ—राग—अग्नि, द्वेप ०, मोह ०।

३२—और भी तीन अग्नियाँ—आहवनीय—अग्नि, गार्हपत्य ०, दक्षिण ०।

३३—तीन प्रकारसे रूपोका सग्रह—सनिदर्शन(=स्व-विज्ञान-सहित दर्शन)अ-प्रतिघ (=अ-पीडाकर)रूप, अ-निदर्शन सप्रतिघ ०, अ-निदर्शन अप्रतिघ ०।

३४—तीन संस्कार—पुण्य-अभिसस्कार, अ-पुण्य-अभिसस्कार, आनिज्य(=आनेञ्ज) अभिसस्कार।

३५—तीन पुद्गल (=पुरुप)—शैक्ष्य (=अमुक्त) ०, अ-शैक्ष्य (=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अ-शैक्ष्य ०।

३६—तीन स्थविर (=वृद्ध)—जाति(=जन्मसे)—स्थविर, धर्म ०, सम्मति-स्थविर।

३७—तीन पुण्य-क्रियावस्तु—दानमय-पुण्यक्रियावस्तु, शीलमय ०, भावनामय ०।

३८—तीन दोपारोप (=चोदना)-वस्तु—देखे (दोप)से, सुने (दोप)से, शका किये (दोप)से।

३९—तीन काम(=भोगोकी)-उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति)—आवुसो! कुछ प्राणी वर्तमान काम(=भोग)उपपत्तिवाले है; वह वर्तमान कामोके वशवर्ती होते है, जैसे कि मनुष्य, कुछ देवता, और कुछ विनिपातिक (=अवमयोनिवाले), यह प्रथम काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी

निर्मितकाम है, वह (स्वय अपने लिये) निर्माणकर कामोके वशवर्ती होते है, जैसे कि निर्माणरति-देव लोग, यह दूसरी काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी पर-निर्मित-काम है, वह दूसरोके निर्मित कामोके वशवर्ती होते है, जैसे कि पर-निर्मित-वशवर्ती देव लोग, यह तीसरी कामउपपत्ति है।

४०—तीन सुख-उपपत्तियाँ—आवुसो! कुछ प्राणी सुख उत्पन्नकर सुख-पूर्वक विहरते है, जैसे कि ब्रह्मकायिक देव लोग, यह प्रथम सुख-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे अभिषण्ण=परि-पण्ण=परिपूर्ण=परिस्फुट है। वह कभी कभी उदान (=चित्तोल्लाससे निकला वाक्य) कहते हैं—'अहो सुख!' 'अहो सुख!!' जैसे कि आभास्वर देव ०। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे ० परिपूर्ण ०, है, वह उत्तम (सुखमे) सतुष्ट हो चित्त-सुखको अनुभव करते है, जैसे शुभ-कृत्स्न देव लोग। यह तीसरी सुख-उपपत्ति है।

४१—तीन प्रज्ञाये—शैक्ष्य(=अमुक्त-पुरुषकी)-प्रज्ञा, अ-शैक्ष्य(=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अशैक्ष्य-प्रज्ञा।

४२—और भी तीन प्रज्ञाये—चिन्ता-मयी प्रज्ञा, श्रुतमयी ०, भावनामयी ०।

४३—तीन आयुध—श्रुत (=पढा)-आयुध ०, प्रविवेक (=विवेक) ०, प्रज्ञाविवेक ०।

४४—तीन इन्द्रियाँ—अन्-आज्ञात-आज्ञास्यामि (=नजानेको जानूँगा)-इन्द्रिय, आज्ञा ०, आज्ञातावी (=अर्हत्-ज्ञान) ०।

४५—तीन चक्षु (=नेत्र)—मास-चक्षु, दिव्य-चक्षु, प्रज्ञा-चक्षु।

४६—तीन शिक्षाये—अधिशील(=शीलविषयक)-शिक्षा, अधि-चित्त (=चित्तविषयक)०, अधि-प्रज्ञा (=प्रज्ञाविषयक) ०।

४७—तीन भावनाये—काय-भावना, चित्त-भावना, प्रज्ञा-भावना।

४८—तीन अनुत्तरीय (=उत्तम, श्रेष्ठ)—दर्शन(=विपश्यना, साक्षात्कार)-अनुत्तरीय, प्रतिपद् (=मार्ग)०, विमुक्ति(=अर्हत्व, निर्वाण)-अनुत्तरीय।

४९—तीन समाधि—स-वितर्क-सविचार-समाधि, अवितर्क-विचार-मात्र-समाधि, अवितर्क-अविचार-समाधि।

५०—और भी तीन समाधि—शून्यता-समाधि, आनिमित्त ०, अ-प्रणिहित-समाधि।

५१—तीन शौचेय (=पवित्रता)—काय ०, वाक् ०, मन-शौचेय।

५२—तीन मौनेय (=मौन)—काय ०, वाक् ०, मन-मौनेय।

५३—तीन कौशल्य—आय ०, अपाय (=विनाश) ०, उपाय-कौशल्य।

५४—तीन मद—आरोग्य-मद, यौवन-मद, जाति-मद।

५५—तीन आधिपत्य (=स्वामित्व)—आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म ०।

५६—तीन कथावस्तु (=कथा-विषय)—अतीत कालको ले कथा कहे,—'अतीतकाल ऐसा था।' अनागत कालको ले कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा'। अबके प्रत्युत्पन्नकालको ले कथा कहे—'इस समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है'।

५७—तीन विद्याये—पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान-विद्या (=पूर्वजन्म-स्मरण), प्राणियोके च्युति (=मृत्यु)-उत्पाद (=जन्म)का ज्ञान ०, आस्रवोके क्षयका ज्ञान ०।

५८—तीन विहार—दिव्य-विहार, ब्रह्म-विहार, आर्य-विहार।

५९—तीन प्रातिहार्य (=चमत्कार)—ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य। यह आवुसो! उन भगवान् ०।

४—चतुष्क—"आवुसो! उन भगवान् ०ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे है ०। कौनसे चार?

१—चार[1] स्मृति-प्रस्थान—आवुसो! भिक्षु कायामे ० कायानुपश्यी विहरता है। वेदनाओमे०। लोकमे०। धर्ममे ० धर्मानुपश्यी ०।

२—चार सम्यक् प्रधान—(१) भिक्षु अनुत्पन्न पापक (=बुरे)=अकुशल धर्मोकी अनुत्पत्तिके लिये रुचि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह=प्रधारण करता है। (२) उत्पन्न पापक=अकुशल धर्मोके विनाशके लिये (३)०। अनुत्पन्न कुशल धर्मोकी उत्पत्तिके लिये०। (४) उत्पन्न कुशल धर्मोकी स्थिति, अ-विनाश, वृद्धि=विपुलता, भावनासे पूर्ति करनेके लिये०।

३—चार ऋद्धिपाद—आवुसो! भिक्षु (१) छन्द(=रुचिसे उत्पन्न)-समाधि(के)-प्रधान सस्कारसे युक्त ऋद्धिपादको भावना करता है। (२) चित्त-समाधि-प्रधान-सस्कारसे ०। (३) वीर्य (=प्रयत्न)-समाधि-प्रधान-सस्कार ०। (४) विमर्श-समाधि-प्रधान-सस्कार ०।

४—चार ध्यान—आवुसो! भिक्षु (१) [2]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ० द्वितीय ध्यान ०। (३) ० तृतीय-ध्यान ०। (४) चतुर्थ-ध्यान ०।

५—चार समाधि-भावना—(१) ०आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममे सुख-विहारके लिये होती है। (२) आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार)के लाभके लिये होती है। (३) आवुसो! ० स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है। (४) ० आस्रवोके क्षयके लिये होती है। आवुसो! कौनसी समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, बहुली-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममे सुख-विहारके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु ० प्रथम-ध्यान[2] ०, ० द्वितीय-ध्यान ०, ० तृतीय-ध्यान ०, ० चतुर्थ ध्यानको-प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (१) आवुसो! कौनसी ० जो भावित होनेपर ० ज्ञान-दर्शनके लाभके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु आलोक(=प्रकाश)-सज्ञा (=ज्ञान) मनमे करता है, दिन-सज्ञाका अधिष्ठान (=दृढ-विचार) करता है—'जैसे दिन वैसी रात, जैसी रात वैसा दिन'। इस प्रकार खुले, बन्धन-रहित, मनसे प्रभा-सहित चित्तकी भावना करता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (३) आवुसो! कौनसी ० जो ० स्मृति, सप्रजन्यके लिये होती है? आवुसो! भिक्षुको विदित (=ज्ञानमे आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती है, विदित (ही) ठहरती है, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती है। विदित सज्ञा उत्पन्न होती है, ० ठहरती ०, ० अस्त होती है। विदित वितर्क उत्पन्न ०, ठहरते०, अस्त होते है। आवुसो! यह समाधि-भावना० स्मृति-सप्रजन्यके लिये होती (४) है। आवुसो! कौनसी है० जो आस्रव-क्षयके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु पाँच उपादान-स्कधोमे उदय (=उत्पत्ति)-व्यय (=विनाश)-अनुपश्यी (=देखनेवाला) हो विहरता है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तगमन (=अस्त होना), ऐसी वेदना है ०, ऐसी सज्ञा ०, ० सस्कार ०, ० विज्ञान ०। यह आवुसो ०।

६—चार अप्रामाण्य (=अ-सीम)—यहाँ आवुसो! भिक्षु (१) मैत्री-युक्त चित्तसे ०[3] विह-रता है ०। (२) करुणा-युक्त ०। (३) ० मुदिता-युक्त ०। (४) ० उपेक्षा-यक्त ०।

७—चार अरूप्य (=रूप-रहित-ता)—आवुसो! (१) रूप-सज्ञाओके सर्वथा अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) सज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्व(=नानापन)-सज्ञाके मनमे न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य (=आकाशकी अनन्तता)-आयतन(=स्थान)को प्राप्त हो विहार करता है। आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अनन्त है' इस, विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे,

---

[1] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९०। [2] पृष्ठ २९-३२। [3] पृष्ठ ९१।

'कुछ नही (=नत्थि किंचि)' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। आकिंचन्यायतनके सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, नैवसज्ञा(=न होश ही है)-न-असज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है।

८—चार **अपाश्रयण** (=अवलबन)—आवुसो ! भिक्षु (१) सख्यान(=जान)कर किसीको सेवन करता है। (२) सख्यानकर किसी (=एक)को स्वीकार करता है। (३) सख्यानकर किसीको परिवर्जन (=अस्वीकार) करता है। (४) सख्यानकर किसीको हटाता है (=विनोदेति)।

९—चार **आर्य-वंश**—आवुसो ! भिक्षु (१) जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होता है। जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होनेका प्रशसक होता है। चीवरके लिये अनुचित नही करता। चीवरको न पाकर दु खित नही होता, चीवरको पाकर अलोभी, अलिप्त, अमूर्च्छित, अनासक्त, दुष्परिणाम-दर्शी=नि सरण प्रज्ञावाला हो, परिभोग (=उपभोग) करता है। (अपने) उस जिस तिस चीवरके सन्तोषसे, अपनेको बळा नही मानता, दूसरेको नीच नही समझता। जो कि वह दक्ष, निरालस, सप्रज्ञान (=जाननेवाला) प्रतिस्मृत (=याद रखनेवाला), होता है, यह कहा जाता है, आवुसो ! भिक्षु पुराने अग्रण्य (=सर्वोत्तम) आर्य-वशमे स्थित है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु जैसे तैसे पिडपात (=भिक्षा)से सन्तुष्ट होता है ०। (३) ० जैसे तैसे शयनासन (=निवास)से ०। (४) ओर फिर आवुसो ! प्रहाण (=त्याग)मे रमण करनेवाला, प्रहाण-रत होता है। भावनाराम= भावनारत होता है। उस प्रहाणारामतासे प्रहाण-रतिसे, भावनारामतासे भावना-रतिसे न अपनेको बळा मानता है, न दूसरेको नीच मानता है ०।

१०—चार **प्रधान** (=अभ्यास, योग)—सवर(=सयम)-प्रधान, प्रहाण ०, भावना ०, अनुरक्षणा-प्रधान। (१) आवुसो ! सवर-प्रधान क्या है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षु(=आँख)से रूप देख निमित्त(=रग आकार आदि)-ग्राही नही होता, अनुव्यजन-ग्राही नही होता। जिसमे कि चक्षु-इन्द्रिय-अधिकरणको अ-सवृत (=अ-रक्षित) रख विहरते समय अभिध्या (=लोभ), दौर्मनस्य पापक=अ-कुशल-धर्म उसे मलिन न करे, इसके लिये सवर (=सयम, रक्षा)के लिये यत्न करता है। चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है। चक्षु-इन्द्रियमे सयम-शील होता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०। काय (=त्वक्)से स्पर्श छूकर ०। मनसे धर्मको जानकर०। यह कहा जाता है, आवुसो ! सवर-प्रधान। (२) क्या है, आवुसो ! प्रहाणप्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्कको नही पसन्द करता, अस्वीकार (=प्रहाण) करता है, हटाता है, अन्त करता है, नाशको पहुँचाता है। उत्पन्न व्यापाद(=द्रोह)-वितर्कको ०। उत्पन्न विहिसा-वितर्कको ०। तब तब उत्पन्न हुए, पाप=अकुशल धर्मोको ०। आवुसो ! यह प्रहाण-प्रधान कहा जाता है। (३) क्या है आवुसो ! भावना-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु विवेक-नि श्रित(=०आश्रित), विराग नि श्रित निरोध-नि श्रित व्यवसर्ग (=त्याग)-परिणामवाले [१]स्मृति-सबोध्यगकी भावना करता है। धर्मविचय-सबोध्यगकी भावना करता है। ० वीर्य-सबोध्यग ०। ० प्रीति-स०। ० प्रश्रब्धि-सबोध्यग ०। ० समाधि-सबोध्यग ०। ० उपेक्षा-सबो०। यह कहा जाता है, आवुसो ! (४) भावना-प्रधान। क्या है, आवुसो ! अनुरक्षणा-प्रधान? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न हुए अस्थिक[२]-सज्ञा, पुलवक-सज्ञा, विनीलक-सज्ञा, विच्छिद्रकसज्ञा, उद्धुमातक सज्ञा(रूपी) उत्तम(=भद्रक) समाधि-निमित्तोकी रक्षा करता है। यह आवुसो ! अनुरक्षणा-प्रधान है।

११—चार **ज्ञान**—धर्म-विषयक-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, समति-ज्ञान।

१२—और भी चार ज्ञान—दु ख-ज्ञान, दु ख-समुदय-ज्ञान, दु ख-निरोध-ज्ञान, दु ख-निरोध-गामिनी प्रदिपद्का ज्ञान।

---

[१] १९४-५। [२] देखो श्मशानयोग पृष्ठ १९२।

१३—चार स्रोतआपत्तिके अग—सत्पुरुष-सेवन, सद्धर्म-श्रमण, योनिश मनसिकार (=कारण-पूर्वक विचार), धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति।

१४—चार स्रोत-आपन्नके अग—आवुसो! आर्य-श्रावक (१) बुद्धमे अत्यन्त प्रसाद (=श्रद्धा) से युक्त होता है—[1] वह भगवान् अर्हत् सम्यक्, सबुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे सपन्न, सुगत (=सुदर गतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोको सन्मार्गपर लानेके लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योके उपदेशक बुद्ध भगवान् है'। (२) धर्ममे अत्यन्त प्रसादसे युक्त होता है—[2] 'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुदर व्याख्यात), है वह इसी शरीरमे फल देनेवाला (सादृष्टिक), सद्य फलप्रद (=अकालिक), यही दिखाई देनेवाला, (निर्वाणके) पास ले जानेवाला, विज्ञ (पुरुषो)को अपने अपने (ही) भीतर विदित होनेवाला है'। (३) सघमे०[3] भगवान्का शिष्य-सघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का शिष्य-सघ सीधे मार्गपर आरूढ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ है, ० ठीक मार्गपर आरूढ है। यह जो चार पुरुष-युगल और आठ पुरुष-पुद्गल[4] है, यही भगवान्का शिष्य-सघ है, जो कि आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोळने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है। (४) अ-खड=अछिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, योग्य=विज्ञ-प्रशसित, अपरामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी, आर्य, कमनीय (=कात) शीलोसे युक्त होता है।

१५—चार श्रामण्य(=भिक्षुपनके)फल—स्रोतआपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्फल।

१६—चार धातु (=महाभूत)—पृथिवी-धातु, आप-धातु, तेज-धातु, वायु-धातु।

१७—चार आहार—(१) औदारिक (=स्थूल) या सूक्ष्म कवलीकार आहार। (२) स्पर्श०। (३) मन-सचेतना ०। (४) विज्ञान ०।

१८—चार विज्ञान (=चेतन, जीव)-स्थितियाँ—(१) आवुसो! रूप प्राप्तकर ठहरे, रूपमे रमण करते, रूपमे प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है, नन्दी (=तृष्णा)के सेवनसे वृद्धि=विरूढता-को प्राप्त होता है। (२) वेदना प्राप्तकर ०। (३) सज्ञा प्राप्तकर ०। (४) सस्कार प्राप्तकर ०।

१९—चार अगति-गमन—छन्द (=राग)-गति जाता है, द्वेष-गति ०, मोह-गति ०, भय-गति ०।

२०—चार तृष्णा-उत्पाद (=०उत्पत्ति)—(१) आवुसो! भिक्षुको चीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। (२) ० पिडपातके लिये ०। (३) ० शयनासन (=निवास)०। (४) अमुक जन्म-अजन्म (=भवाभव)के लिये०।

२१—चार प्रतिपद् (=मार्ग)—(१) दु खवाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (२) दु खवाली प्रतिपद् और क्षिप्र (=जल्दी) ज्ञान। (३) सुखवाली (=सहल) प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (४) सुखवाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान।

२२—और भी चार प्रतिपद्—अ-क्षमा-प्रतिपद्। क्षमाप्रतिपद्। दमकी प्रतिपद्। शमकी प्रतिपद्।

२३—चार धर्मपद—अन्-अभिध्या (=अ-लोभ)-धर्मपद। अ-व्यापाद (=अ-द्रोह-) ०। सम्यक्-स्मृति ०। सम्यक्-समाधि ०।

---

[1] वही बुद्धानुस्मृति है। [2] धर्मानुस्म्। [3] संघानुस्मृति।
[4] देखो आठ दक्षिणेय पृष्ठ २९६।

२४—चार **धर्म-समादान**—(१) आवुसो ! वैसा धर्म-समादान (=०स्वीकार), जो वर्तमानमे भी दु खमय, भविष्यमे भी दु ख-विपाकी (२) ०वर्तमानमे दु खमय, भविष्यमे सुख-विपाकी। (३)०वर्तमानमे सुख-मय, भविष्यमे दु ख-विपाकी। (४) ० वर्तमानमे सुख-मय, और भविष्यमे सुख-विपाकी।

२५—चार **धर्म-स्कन्ध**—शील-स्कन्ध (=आचार-समूह)। समाधि-स्कन्ध। प्रज्ञा-स्कन्ध। विमुक्ति-स्कन्ध।

२६—चार **बल**—वीर्य-बल। स्मृतिबल। समाधि-बल। प्रज्ञाबल।

२७—चार **अधिष्ठान** (=सकल्प)—प्रज्ञा-बल। सत्य ०। त्याग ०। उपशम ०।

२८—चार **प्रश्न-व्याकरण** (=सवालका जवाब)—एकाश-(=है या नही एकमे)-व्याकरण करने लायक प्रश्न। प्रतिपृच्छा (=सवालके रूपमे) व्याकरणीय प्रश्न। विभज्य (=एक अश हाँ भी, दूसरा अश नही भी करके) व्याकरणीय प्रश्न। स्थापनीय (=न उत्तर देने लायक) प्रश्न।

२९—चार कर्म—आवुसो ! (१) कृष्ण (=काला, बुरा) कर्म और कृष्ण-विपाक (=बुरे परिणाम वाला)। (२) ० शुक्लकर्म शुक्ल-विपाक। (३) शुक्ल-कृष्ण-कर्म, शुक्ल-कृष्ण-विपाक। (४)० अकृष्ण-अ-शुक्लकर्म, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

३०—चार साक्षात्करणीय धर्म—(१) पूर्व-निवास (=पूर्व-जन्म) स्मृतिसे साक्षात्करणीय। (२) प्राणियोका जन्म-मरण (=च्युति-उत्पाद), चक्षुसे साक्षात्करणीय। (३) आठ विमोक्ष, कायासे०। (४) आस्रवोका क्षय, प्रज्ञासे ०।

३१—चार **ओघ**(=बाढ)—काम-ओघ। भव(=जन्म)०। दृष्टि(=मतवाद)०। अविद्या०।

३२—चार योग(=मिलना)—काम-योग। भव०। दृष्टि०। अविद्या०।

३३—चार विसयोग(=वियोग)—काम-योग-विसयोग। भवयोग०। दृष्टियोग०। अविद्यायोग०।

३४—चार गन्ध—अभिध्या (=लोभ)-काय-गन्ध। व्यापाद(=द्रोह) कायगन्ध। शील-व्रत-परामर्श०। 'यही सच है' पक्षपात ०।

३५—चार **उपादान**—काम-उपादान। दृष्टि ०। शील-व्रत-परामर्श ०। आत्म-वाद ०।

३६—चार **योनि**—अडजयोनि। जरायुज योनि। सस्वेदज०। औपपातिक(=अयोनिज)०।

३७—चार गर्भ-अवक्रान्ति(=गर्भप्रवेश)—(१) आवुसो ! कोई कोई (प्राणी) ज्ञान(=होश) बिना माताकी कोखमे आता है, ज्ञान-बिना मातृ-कुक्षिमे ठहरता है, ज्ञानबिना मातृ-कुक्षिसे निकलता है, यह पहली गर्भावक्रान्ति है। (२) और फिर आवुसो ! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृकुक्षिमे आता है, ज्ञान-बिना ० ठहरता है, ज्ञान-बिना ० निकलता है ०। (३) ० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित ० ठहरता है, ज्ञान-बिना ० निकलता है ०। (४)० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान-सहित ० निकलता है ०।

३८—चार **आत्म-भाव-प्रतिलाभ**(=शरीर-धारण)—(१) आवुसो ! (वह) आत्म-भाव-प्रतिलाभ जिस आत्म-भाव-प्रतिलाभमे आत्म-सचेतना (=अपनेको जानना) ही पाता है, पर-सचेतना, नही पाता (२) ० पर सचेतनाको ही पाता है, आत्मसचेतनाको नही। (३) ० आत्म-सचेतना भी ०, पर-सचेतना भी ० (४) ०। न आत्म-सचेतना ०, न पर-सचेतना ०।

३९—चार **दक्षिणा-विशुद्धि**(=दान-शुद्धि)—(१) आवुसो ! दक्षिणा(=दान) दायकसे शुद्ध किन्तु प्रतिग्राहकसे नही (२)० प्रतिग्राहकसे शुद्ध०, किन्तु दायकसे नही। (३) ० न दायकसे०, न प्रतिग्राहकसे ०। (४) ० दायकसे भी ०, प्रतिग्राहकसे भी ०।

४०—चार **संग्रह-वस्तु**—दान, वैयावर्त्य (=सेवा), अर्थ-चर्या, समानार्थता।

४१—चार **अनार्य-व्यवहार**—मृषावाद (=झूठ), पिशुन-वचन (=चुगली), सप्रलाप (=बकवाद), परुष-वचन।

४२—चार **आर्य-व्यवहार**—मृषा-वाद-विरतता, पिशुन-वचन-विरतता, सप्रलाप-विरतता, परुष-वचन-विरतता।

४३—चार अनार्य-व्यवहार—अदृष्टमे दृष्ट-वादी वनना, अ-श्रुतमे श्रुत-वादिता, अ-स्मृतमे स्मृतवादिता, अ-विज्ञातमे विज्ञात-वादिता।

४४—और भी चार **अनार्य-व्यवहार**—दृष्टमे अदृष्ट-वादिता, श्रुतमे अश्रुत-वादिता। स्मृतिमें अस्मृतवादिता, विज्ञातमे अ-विज्ञात-वादिता।

४५—और भी चार **आर्य-व्यवहार**—दृष्टमे दृष्टवादिता, श्रुतमे श्रुत-वादिता, स्मृतमे स्मृत-वादिता, विज्ञातमे विज्ञात-वादिता।

४६—चार **पुद्गल** (=पुरुष)—(१) आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्म-तप, अपनेको सताप देनेमे लगा रहता है।(२) कोई कोई पुद्गल परन्तप, पर(=दूसरे)को सताप देनेमे लगा रहता हैं। (३) ० आत्म-तप ० भी ० रहता है, परन्तप, भी ०। (४) ० न आत्म-तप ०, न परन्तप ०, वह अनात्मतप अपरतप हो इसी जन्ममे शोकरहित, सुखित, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्माके साथ विहार करता है।

४७—और भी चार **पुद्गल**—(१)आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्म-हितमे लगा रहता है, परहितमे नही। (२) ० परहितमे लगा रहता है, आत्महितमे नही। (३) ० न आत्म-हितमे लगा रहता है, न परहितमे। (४) ० आत्महितमे भी लगा रहता है, पर-हितमे भी०।

४८—और भी चार पुद्गल—(१) तम तम-परायण। (२) तम ज्योति-परायण। (३) ज्योति तमपरायण (४) ज्योति ज्योति-परायण।

४९—और भी चार पुद्गल—(१) श्रमण अचल। (२) श्रमण पद्म (=रक्त कमल)। (३) श्रमण-पुडरीक (=श्वेतकमल)। (४) श्रमणोमे श्रमण-सुकुमार।

यह आवुसो! उन भगवान् ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—**पचक**—"आवुसो! उन भगवान् ० ने पाँच धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे पाँच?—

१—पाँच स्कध—रूप०, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान-स्कध।

२—पाँच **उपादान-स्कन्ध**—रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना०, सज्ञा०, सस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कन्ध।

३—पाँच **काम-गुण**—(१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय, काम-सहित=रजनीय (=चित्तको रजन करनेवाले) रूप। (२) श्रोत-विज्ञेय ० शब्द। (३) घ्राण-विज्ञेय ० गन्ध। (४) जिह्वा-विज्ञेय ० रस। (५) काम-विज्ञेय ० स्पर्श।

४—पाँच गति—निरय (=नर्क)। तिर्यक् (=पशु पक्षी आदि) योनि। प्रेत्य-विषय (=भूत प्रेत आदि)। मनुष्य। देव।

५—पाँच **मात्सर्य** (=हसद)=आवासमात्सर्य, कुल ०, लाभ ०, वर्ण ०, धर्म ०।

६—पाँच **नीवरण**—कामच्छन्द(=काम-राग) ०, व्यापाद ०, स्त्यान-मृद्ध ०। औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०।

७—पाँच **अवरभागीय** सयोजन—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत-परामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद।

८—पाँच **उर्ध्व-भागीय** सयोजन—रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।

९—पाँच **शिक्षापद**—प्राणातिपात(=प्राण-वध)-विरति, अदत्तादान-विरति, काम-मिथ्याचारविरति, मृषावाद-विरति, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति।

१०—पाँच अभव्य (=अयोग्य) स्थान—(१) आवुसो ! क्षीणास्रव (=अर्हत्) भिक्षु जानकर प्राण-हिंसा करनेके अयोग्य है। (२) अदत्तादान (=चोरी)=स्तेय करनेके अयोग्य है। (३) ० मैथुन-सेवन करनेके अयोग्य है। (४) ० जानकर मृषावाद (=झूठ वोलने)के ०। (५) ० सन्निधि-कारक हो (=जमाकर) कामोको भोगकरनेके ०; जैसे कि पहिले गृहस्थ होते वक्त था।

११—पाँच व्यसन—ज्ञातिव्यसन, भोग०, रोग०, शील०, दृष्टि०। आवुसो ! प्राणी ज्ञाति-व्यसनके कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोळ मरनेके वाद अपाय . दुर्गति विनिपात, निरय (=नर्क)को प्राप्त होते है। आवुसो ! शीलव्यसनके कारण या दृष्टि-व्यसनके कारण प्राणी०।

१२—पाँच सम्पद् (=प्राप्ति)—ज्ञाति-सम्पद्, भोग०, आरोग्य०, शील०, दृष्टि०। आवुसो ! प्राणी ज्ञाति-सम्पद्के कारण०, भोग-सम्पद्०, आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोळ मरनेके वाद सुगति स्वर्गलोकमे नही उत्पन्न होते। आवुसो ! शीलसपद्के कारण या दृष्टिसपद्के कारण प्राणी०।

१३—पाँच आदिनव (=दुष्परिणाम) है, शील-विपत्ति (=आचार-दोष)के कारण दु शील (पुरुष)को—(१) आवुसो ! शील-विपन्न=दु शील(=दुराचारी) प्रमादसे वळी भोग-हानिको प्राप्त होता है, शील-विपन्न दु शीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है। (२) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न,=दु शीलके लिये वुरे निन्दा-वाक्य उत्पन्न होते है, यह दूसरा दुष्परिणाम है। (३) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दु शील, चाहे क्षत्रिय-परिषद्, चाहे व्राह्मण-परिषद, चाहे गृहपति-परिषद्, चाहे श्रमण-परिषद्, चाहे जिस परिषद् (=सभा)मे जाता है, अ-विशारद होकर, मूक होकर, जाता है। यह तीसरा०। (४) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दु शील, समूढ (=मोहप्राप्त) होकर काल करता है, यह चौथा ०। (५) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न काया छोळ मरनेके वाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (=नर्क)मे उत्पन्न होता है, यह पाँचवाँ ०।

१४—पाँच गुण (=आनृशस्य) है, शील-सम्पदासे शीलवान्को—(१) आवुसो ! शील-सम्पन्न शीलवान्को अप्रमादके कारण, वळी भोग-राशिकी प्राप्ति होती है, शीलवान्को शील-सपदासे यह प्रथम गुण है। (२) ० सुन्दर कीर्ति शव्द उत्पन्न होते है०। (३) ० जिस जिस परिषद्मे जाता है, विशारद होकर, अ-मूक होकर, जाता है०। (४) ० अ-समूढ हो काल करता है०। (५) ० काया छोळ मरनेके वाद सुगति=स्वर्गलोकमे उत्पन्न होता है०।

१५—पाँच धर्मोको अपनेमे स्थापितकर आवुसो ! आरोपी (=दूसरेपर दोषारोप करनेवाले) भिक्षुको दूसरेपर आरोप करना चाहिये—(१) कालसे कहूँगा, अकालसे नही। (२) भूत (=यथार्थ) कहूँगा, अभूत नही। (३) मधुर कहूँगा, कटु नही। (४) अर्थ-सहित (=स-प्रयोजन) कहूँगा, अनर्थसहित नही। (५) मैत्री-भावसे कहूँगा, द्रोह-चित्तसे नही। ।

१६—पाँच प्रधानीय (=प्रधानके) अग—(१) यहाँ आवुसो ! भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी वोधि (=परमज्ञान)पर श्रद्धा रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सवुद्ध०। (२) आवाधा (=रोग)-रहित आतक-रहित होता है। न वहुत शीतल, न वहुत उष्णसम-विपाक-वाली, प्रधान (=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है। (३) शास्ताके पास, या विज्ञोके पास, या स-ब्रह्मचारियोके पास अपनेको यथाभूत (=जैसा है वैसा) प्रकट करनेवाला, अशठ=अ-मायावी होता है। (४) अकुशल धर्मोके विनाशके लिये, कुशल धर्मोकी प्राप्तिके लिये, आरव्ध-वीर्य (=यत्नशील) हो विहरता है, कुशल धर्मोमे स्थाम-वान्=दृढपराक्रम=धुरा (कवेसे) न फेकनेवाला (होता है)। (५) निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक् दु ख-क्षयकी ओर ले जाने-वाली, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य प्रज्ञासे सयुक्त, प्रज्ञावान् होता है।

१७—पाँच शुद्धावास (=देवलोक विशेष)—अविह, अतप्प (=अतप्प), सुदस्स (=सुदर्श), सुदस्सी (=सुदर्शी), अकनिष्ट।

१८—पाँच अनागामी—अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्य-परिनिर्वायी, असस्कार०, स-सस्कार०, ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठ-गामी।

१९—पाँच चेतोखिल (=चितके कीले)—(१) आवुसो! भिक्षु शास्ता (=धर्माचार्य)मे काक्षा =विचिकित्सा (=सदेह) करता है, (सदेह)-मुक्त नही होता, प्रसन्न नही होता। उसका चित्त उद्योग-के लिये, अनुयोगके लिये, सातत्य(=निरन्तर लगन)के लिये प्रधानके लिये नही झुकता, जो कि यह इसका चित्त० नही झुकता, यह प्रथम चेतो-खिल (चित्त-कील) है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु धर्ममे काक्षा=विचिकित्सा करता है०। (३) ० सघमे काक्षा=विचिकित्सा करता है०। (४) सब्रह्मचारियोमे दुष्ट-चित्त, असन्तुष्ट-मन, कील समान, कुपित होता है, जो वह आवुसो! भिक्षु सब्रह्म-चारियोमे ० कुपित होता है, (इसलिये) उसका चित्त ० प्रधानके लिये नही झुकता, यह पाँचवाँ चेतो-खिल है।

२०—पाँच चित्त-विनिबन्ध—(१) आवुसो! भिक्षु कामो (=कामवासनाओ)में अवीतराग अ-वीतच्छन्द अविगत-प्रेम अविगत-पिपास, अविगत-परिदाह अविगत-तृष्णा (=तृष्णा-रहित नही) होता; उसका चित्त ० प्रधानके लिये नही झुकता। जो इसका चित्त० नही झुकता, यह प्रथम चित्त-विनिबन्ध है। (२) और आवुसो! कायामे ० अविगत-तृष्णा होता ०। (३) रूपमे अ-वीत-राग० होता है०। (४) और फिर आवुसो! भिक्षु यथेच्छ पेटभर खाकर, शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (= आलस्य) सुख लेते विहरता है०। (५) और फिर आवुसो! भिक्षु किसी एक देव-निकाय (=देव-लोक)की इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है—'इस शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे मै (अमुक) देव . होऊँगा'। जो आवुसो! वह भिक्षु किसी एक देव-निकायकी इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है०, उसका चित्त० प्रधानके लिये नही झुकता,०, यह पाँचवाँ चित्त-विनिबध है।

२१—पाँच इन्द्रिय—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा, काया (=त्वक्)०।

२२—और भी पाँच इन्द्रिय—सुख-इन्द्रिय, दुख०, न-सुख-न-दुख०, सौमनस्य०, उपेक्षा०।

२३—और भी पाँच इन्द्रिय—श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा०।

२४—पाँच निसरणीय-धातु—(१) आवुसो! भिक्षुको काम (=भोग)मे मन करते, काममे चित्त नही दौळता, प्रसन्न नही होता, स्थित नही होता, विमुक्त नही होता, किन्तु, नैष्काम्यको मनमे करते चित्त दौळता, प्रसन्न होता, स्थित होता, विमुक्त होता है। उसका वह चित्त सुगत, सुभावित, सु-उत्थित, सु-विमुक्त, कामोसे वियुक्त होता है, और कामोके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते है, उनसे वह मुक्त है, उस वेदनाको वह नही झेलता—यह कामोका निसरण कहा गया है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको व्यापाद (=द्रोह) मनमे करते व्यापादमे चित्त नही दौळता०, किन्तु अव्यापाद (=अद्रोह)को मनमे करते०, यह व्यापादका निस्सरण कहा गया है। (३) ० भिक्षुको विहिसा (=हिसा) मनमे करते०, किन्तु, अ-विहिसाको मनमे करते०, यह विहिसा-निस्सरण कहा गया है। (४) ० रूपोको मनमे करते०, किन्तु, अ-रूपको मनमे करते०, यह रूपोका निस्सरण कहा गया है। (५) और फिर आवुसो! भिक्षुको सत्काय (=आत्मवाद)मनमे करते०, किन्तु, सत्काय-निरोधको मनमे करते०, यह सत्कायका निस्सरण कहा गया है।

२५—पाँच विमुक्ति-आयतन—(१) आवुसो! भिक्षुको शास्ता (=गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरु-स्थानीय) स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरु-स्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममे, अर्थ समझता है, धर्म समझता है। अर्थ-सवेदी (=अर्थ समझनेवाला), धर्म-प्रतिसवेदी हो, उसे प्रमोद (=प्रामोद्य) प्राप्त होता है।

प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति पैदा होती है। प्रीति-मान्‌की काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है, प्रश्रब्ध-काय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है। यह प्रथम विमुक्त्यायतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी, वल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा-पर्याप्त (=धर्म-शास्त्रके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोको धर्म-उपदेश करता है०। (३) ० वल्कि यथाश्रुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है०। (४) ० वल्कि यथाश्रुत यथा-पर्याप्त धर्मको चित्तसे अनु-वितर्क करता है, अनु-विचार करता है, मनसे सोचता है०। (५) ० वल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त, (=०आकार) सुगृहीत=सुमनसीकृत=सु-प्रधारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रज्ञासे सु-प्रतिविद्ध (=तहतक जाना गया) होता है, जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कोई एक समाधि-निमित्त०।

२६—पाँच विमुक्ति-परिपाचनीय सज्ञा—अनित्य-सज्ञा, अनित्यमे दु ख-सज्ञा, दु खमे अनात्म-सज्ञा, प्रहाण-सज्ञा, विराग-सज्ञा।

यह आवुसो! उन भगवान्०ने०।

६—षट्क "आवुसो! उन भगवान्०ने छै धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे छै?

१—छै अध्यात्म (=शरीरमे)-आयतन—चक्षु-आयतन, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन-आयतन।

२—छै वाह्य-आयतन—रूप-आयतन, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य(=स्पर्श)०, धर्म-आयतन।

३—छै विज्ञान-काय (=०समुदाय)—चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय० मनो-विज्ञान।

४—छै स्पर्श-काय—चक्षु-सस्पर्श, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन सस्पर्श।

५—छै वेदना-काय—चक्षु-सस्पर्शज वेदना, श्रोत्र-सस्पर्शज०, घ्राणसस्पर्शज०, जिह्वा-सस्पर्शज०, काय-सस्पर्शज०, मन सस्पर्शज-वेदना।

६—छै सज्ञा-काय—रूप-सज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य० धर्म०,।

७—छै सचेतना-काय—रूप-सचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म०।

८—छै तृष्णा-काय—रूप-तृष्णा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म-तृष्णा।

९—छै अ-गौरव—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु शास्तामे अ-गौरव(=सत्कार-रहित), अ-प्रतिश्रय (=आश्रय-रहित) हो विहरता है। (२) धर्ममे अगौरव०। (३) सघमे अगौरव०। (४) शिक्षामे अगौरव०। (५) अप्रमादमे अ-गौरव०। (६) स्वागत(=प्रति-सस्तार)मे अ-गौरव०।

१०—छै गौरव—(१) ० शास्तामे सगौरव, स-प्रतिश्रय, हो विहरता है, (२) धर्ममे०, (३) सघमे ०, (४) शिक्षामे०, (५) अप्रमादमे०, (६) प्रतिसस्तारमे०।

११—छै सौमनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर सौमनस्य (=प्रसन्नता)-स्थानीय रूपोका उपविचार (=विचार) करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। (३) घ्राणसे गन्ध सूँघकर०। (४) जिह्वासे रस चखकर०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म जानकर०।

१२—छै दौर्मनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दौर्मनस्य (=अप्रसन्नता)-स्थानीय रूपोका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म०।

१३—छै उपेक्षा-उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्थानीय रूपोका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य०। (६) मनसे धर्म०।

१४—छै सारणीय धर्म—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षुको सब्रह्मचारियोमे गुप्त या प्रकट मैत्री

युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है, यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है, सग्रह, अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको० मैत्री युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है०। (३) ०मैत्री-युक्त मानस-कर्म्म०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ है—अन्तत पात्रमे चुपळने मात्र भी, उस प्रकारके लाभोको बॉटकर भोगनेवाला होता है, शीलवान् स-ब्रह्म-चारियो सहित भोगनेवाला होता है, यह भी०। (५) ०जो अखड=अ-छिद्र, अ-शवल=अ-कल्मष, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशसित, अ-परामृष्ट (=अनिदित), समाधिगामी शील है, वैसे शीलोमे स-ब्रह्मचारियोके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ०जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है, (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दु ख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०।

१५–छै विवाद-मूल—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है, जो वह आवुसो! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामे भी अगौरव=अप्रतिश्रय हो विहरता है, धर्ममे भी ०, सघमे भी ०, शिक्षा (=भिक्षु-नियम)को भी पूरा करनेवाला नही होता है। आवुसो! जो वह भिक्षु शास्तामे भी अगौरव ० होता है, वह सघमे विवाद उत्पन्न करता है, जो विवाद कि बहुत लोगोके अहितके लिये=बहुजन-असुखके लिये, देव-मनुष्योके अनर्थ, अहित, दु खके लिये होता है। आवुसो! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमे या बाहर देखना, (तो) वहाँ आवुसो! तुम उस दुष्ट विवाद-मूलक नाशके लिये प्रयत्न करना। यदि आवुसो! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमे या बाहर न देखना, तो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमे न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना। इस प्रकार इस दुष्ट (=पापक) विवाद-मूलका प्रहाण होता है, इस प्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमे उत्पत्ति नही होती। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु मर्षी (=अमरखी) पलासी (=निष्ठुर), होता है। (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है ०। (४) ० शठ, मायावी होता है ०। (५) ० पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है ० (६) ० सदृष्टि-परामर्शी (=तुरन्त चाहनेवाला), आधान-ग्राही (=हठी), दु प्रति-निस्सर्गी (=मुश्किल से छोळनेवाला) होता है ०।

१६–छै धातु—पृथिवी-धातु, आप०, तेज०, वायु०, आकाश०, विज्ञान०।

१७–छै निस्सरणीय-धातु—(१) आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया, किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहे, भगवान्की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करे, भगवान्का अभ्याख्यान करना अच्छा नही है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नही कहते। यह मुमकिन नही, इसका अवकाश नही, कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो, और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह सभव नही। आवुसो! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (४) ० उपेक्षा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये है, ०। (५) अनिमितत्ता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है'।०। (६) ० 'अस्मि' (=मै हूँ), मेरा चला गया, 'यह मै हूँ' नही देखता, तो भी विचिकित्सा (=सदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये है०।'

१८–छै अनुत्तरीय—दर्शन०, श्रवण०, लाभ०, शिक्षा०, परिचर्या०, अनुस्मृति०।

१९–छै अनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, सघ०, शील०, त्याग०, देवता-अनुस्मृति।

२०—छै शाश्वत-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देखकर न सुमन होता है, न दुर्मन होता है। स्मरण करते, जानते उपेक्षक हो विहार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। (३) घ्राणसे गध सूँघकर ० (४) जिह्वासे रस चखकर ०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ०। (६) मनसे धर्मको जानकर ०।

२१—छै अभिजाति (=जाति, जन्म)—(१) यहाँ आवुसो ! कोई कोई कृष्ण-अभिजातिक (=नीच कुलमे पैदा) हो, कृष्ण (=काले=बुरे) धर्म करता है। (२) ० कृष्णाभिजातिक हो शुक्ल-धर्म करता है। (३) ० कृष्णाभिजातिक हो अ-कृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है। (४) ० शुक्लाभिजातिक (=ऊँचे कुलमे उत्पन्न) हो शुक्ल-धर्म (=पुण्य) करता है। (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण-धर्म (=पाप) करता है। (६) ० शुक्लाभिजातिक हो अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है।

२२—छै **निर्वेध-भागीय** सज्ञा—(१) अनित्य सज्ञा। (२) अनित्यमे दु ख सज्ञा। (३) दु खमें अनात्म-सज्ञा। (४) प्रहाण-सज्ञा। (५) विराग-सज्ञा। (६) निरोध-सज्ञा।

आवुसो ! उन भगवान्‌ने यह ०।

७—सप्तक—"आवुसो ! उन भगवान्०ने (यह) सात धर्म यथार्थ कहे है ०।

१—सात आर्य-धन—श्रद्धा-धन, शील ०, ह्री (=लज्जा) ०, अपत्रपा (=सकोच) ०, श्रुत०, त्याग०, प्रज्ञा ०।

२—सात **बोध्यंग**—स्मृति-सबोध्यग, धर्म-विचय०, वीर्य०, प्रीति०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा०,।

३—सात समाधि-परिष्कार—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-सकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक्-व्यामाम, सम्यक्-स्मृति।

४—सात अ-सद्धर्म—भिक्षु अ-श्रद्ध होता है, अह्रीक (=निर्ल्लज्ज)०, अन्-अपत्रपी (=अपत्रपा-रहित) ०, अल्पश्रुत ०, कुसीत (=आलसी) ०, मूढ-स्मृति ०, दुष्प्रज्ञ ०।

५—सात सद्धर्म—श्रद्धालु होता है, ह्रीमान् ०, अपत्रपी ०, बहुश्रुत ०। आरब्ध-वीर्य (=निरालसी), उपस्थित-स्मृति ०, प्रज्ञावान् ०।

६—सात सत्पुरुप-धर्म— धर्मज्ञ ०, अर्थज्ञ ०, आत्मज्ञ ०, मात्रज्ञ ०, कालज्ञ ०, परिपतज्ञ०, पुद्गलज्ञ ०।

७—सात [1]निर्दश-वस्तु—(१) आवुसो ! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करनेमे तीव्र-छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमे भी शिक्षा ग्रहण करनेमे प्रेम-रहित नही होता। (२) धर्म-निशाति (=विपश्यना)मे तीव्र-छन्द होता है, भविष्यमे भी धर्म-निशातिमे प्रेम-रहित नही होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग)मे ०। (४) प्रतिसत्लयन (=एकातवास)मे ०।

---

[1] अ क "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगठ (जैन साधु)को निर्दश कहते है, वह (मरा निगठ) फिर दश वर्ष तक नही होता। । इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विश। निस्त्रिश, निश्चत्वारिंश, निष्पंचाश कहते है। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राममें विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—'आनन्द ! यह तीर्थिकोका ही वचन नही है, मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परि-निर्वाण प्राप्त हो फिर दश वर्षका नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष ..एक वर्ष एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नही होता। किसलिये ? (पुन) जन्मके न होनेसे .... ।"

(५) वीर्यारम्भ (=उद्योग)मे ०। (६) स्मृतिके निष्पाक(=परिपाक)मे ०। (७) दृष्टि-प्रति-वेध (=सन्मार्ग-दर्शन)मे ०।

८—सात संज्ञा—अनित्य-सज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदिनव०, प्रहाण०, विराग०, निरोध०।

९—सात बल—श्रद्धाबल, वीर्य ०, स्मृति ०, समाधि, प्रज्ञा ०, ह्री०, अपत्राप्य ०।

१०—सात विज्ञान-स्थिति—(१) आवुसो ! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासज्ञा (=नाम)वाले है, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ० नाना-काय किन्तु एक-सज्ञावाले, जैसे कि प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव०। (३) एक-काया नाना-सज्ञावाले, जैसे कि आभास्वर देवता ०। (४)० एक-काया एक-सज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता ०। (५) आवुसो ! कोई कोई सत्त्व रूपसज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिसा) सज्ञाके अस्त होनेसे, नाना सज्ञाके मनमे न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह पाँचवी विज्ञानस्थिति है। (६) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह छठी विज्ञान-स्थिति है, (७) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नही,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त है। यह सातवी विज्ञान-स्थिति है।

११—सात दक्षिणेय (=दान-पात्र) व्यक्ति है—उभयतोभाग-विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त, काय-साक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, धर्मानुसारी, श्रद्धानुसारी।

१२—सात अनुशय—काम-राग-अनुशय, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ० अविद्या ०।

१३—सात संयोजन—अनुनय-सयोजन, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ०, अविद्या ०।

१४—सात—अधिकरण-शमथ तब तब उत्पन्न हुए अधिकरणो (=झगळो)के शमनके लिये—(१) समुख-विनय देना चाहिये (२) स्मृतिविनय ०, (३) अमूढ-विनय ०, (४) प्रतिज्ञातकरण। (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

यह आवुसो ! उन भगवान्‌०ने ०।

८—अष्टक—"आवुसो ! उन भगवान्‌०ने आठ धर्म यथार्थ कहे है ०।

१—आठ मिथ्यात्व (=झूठ)—मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासकल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि।

२—आठ सम्यक्त्व (=सच)—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि।

३—आठ दक्षिणेय पुद्गल—स्रोत आपन्न, स्रोतआपत्ति-फल साक्षात्कार करनेमे तत्पर, सकृदागामी, सकृदागामी-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अनागामी, अनागामि-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अर्हत्, अर्हत्फल-साक्षात्कार-तत्पर।

४—आठ कुसीत(=आलस्य)वस्तु—(१)यहाँ आवुसो ! भिक्षुको(जब)कर्म करना होता है,उसके (मनमे) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यो न मै लेट (=चुप) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नही करता। यह प्रथम कुसीत-वस्तु है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने कामकर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया,

क्यो न मैं पळ रहूँ। वह पळ रहता है, ० उद्योग नही करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमे मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यो न मैं पळ रहूँ।' वह पळ रहता है, ० उद्योग नही करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमे मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममे पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही मिलता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममे पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यो न मैं लेट रहूँ०।(६) ० पिंडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मैं ० पिंडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अस्वस्थ है, मानो मासका ढेर है, क्यो न पळ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोळी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है, पळ रहना उचित है, क्यो न मैं पळ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

५—आठ **आरब्ध-वस्तु**—(१)जब आवुसो! भिक्षुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये, बुद्धोके शासन (=धर्म)को मनमे लाना मुझे सुकर नही, क्यो न मै अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ।' सो ० उद्योग करता है, यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मै काम कर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धोके शासनको मनमे न कर सका', क्यो न मैं ० उद्योग करूँ ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममे पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० सूखा-रूखा भोजन पूरा पाता है, ०सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ जाय, क्यो न मैं०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यो न मैं०।

६—आठ **दान-वस्तु**—(१) आसक्त हो दान देता है। (२) भयसे ०। (३) 'मुझको उसने दिया है'—(सोच) दान देता है। (४) 'देगा' (सोच) ०। (५) 'दान करना अच्छा है' (सोच) ०। (६) 'मैं पकाता हूँ, ये नही पकाते, पकाते हुए न पकानेवालोको न देना अच्छा नही' (सोच) देता है। (७) 'यह दान देनेसे मेरा मगलकीर्ति शब्द फैलेगा' (सोच) देता है। (८) चित्तके अलकार, चित्तके परिष्कारके लिये दान देता है।

७—आठ दान-उपपत्ति (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो! कोई कोई पुरुष, श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गध, विलेपन, शय्या, आवसथ (=निवास), प्रदीप दान देता है। वह, जो देता है, उसकी भी तारीफ करता है। वह क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी) ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशालको पाँच भोगो (=काम-गुणो)से समर्पित=सयुक्त हो विचरते देखता है। उसको ऐसा होता है—अहो! मैं भी काया छोळ मरनेके बाद क्षत्रिय-महाशालो०की स्थिति (=सहव्यता) मे उत्पन्न होऊँ। वह इसको चित्तमे धारण करता है, इसका चित्तमे अधिष्ठान (=दृढ सकल्प) करता है, इसकी चित्तमे भावना करता है। उसका वह चित्त, हीन (-उत्पत्ति) छोळ, उत्तमकी भावनाकर, वही उत्पन्न होती है। यह मैं शीलवान् (=सदाचारी)का कहता हूँ, दुःशीलका नही। आवुसो! विशुद्ध होनेसे शीलवान्की मानसिक प्रणिधि (=अभिलाषा) पूरी होती है। (२) और फिर आवुसो! ० दान देता है। वह जो देता है, उसकी प्रशसा करता है। वह सुने होता है—चातुर्महाराजिक देव लोग दीर्घायु सुरूप, बहुत सुखी, (होते हैं)। उसको ऐसा होता है—अहो! मैं शरीर छोळ मरनेके बाद

चातुर्महाराजिक देवोमे उत्पन्न होऊँ ०। (३) ० वह सुने होता—**त्रायस्त्रिंश** देव लोग ०। (४) ० **याम** देव ०। (५) ० **तुषित**०। (६) ० **निर्माण-रति-देव** ०। (७) ० **परनिर्मित-वशवर्ती** देव ०। (८) ब्रह्मकायिक देव ०।

८—आठ परिषद्—क्षत्रिय-परिषद्। ब्राह्मण ०। गृहपति ०। श्रमण ०। चातुर्महाराजिक ०। त्रायस्त्रिंश ०। **मार** ०। ब्रह्म ०।

९—आठ **अभिभ्वायतन**—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्म) रूप-सञ्ज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है, 'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ'—सञ्ज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममे अरूप-सञ्ज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (३) ० अध्यात्ममे अरूपसञ्ज्ञी बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (४) ० अध्यात्ममे अरूप-सञ्ज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको ०। (५) ० अध्यात्ममे अरूपसञ्ज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन नील-निर्भास रूपोको देखता है, **जैसे** कि नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन **अलसी**का फूल, या **जैसे** दोनो ओरसे रगळा (=पालिश किया) नीला० **काशी** वस्त्र। ऐसे ही अध्यात्ममे अरूप-सञ्ज्ञी बाहर नील० रूपोको देखता है। उन्हे अभिभवनकर०। (६) ० अध्यात्ममे अरूप-सञ्ज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीतवर्ण, पीत-निदर्शन, पीत-निभास रूपोको देखता है, **जैसे** कि ० **कर्णिकार** पुष्प, या जैसे ० पीला ० बनारसी वस्त्र ०। (७) ० बाहर लोहित (=लाल) ० रूपोको देखता है, **जैसे** कि ० **बंधुजीवक-पुष्प**, या जैसे ० लोहित ० बनारसी वस्त्र ०। (८) ० ० बाहर अवदात (=सफेद) ० रूपोको देखता है, **जैसे** कि अवदात ० **ओषधी-तारका** (=शुक्र), या जैसे अवदात ० बनारसी वस्त्र। ०

१०—आठ **विमोक्ष**—(१) (स्वय) रूपी (=रूपवान्) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममे अरूपी-सञ्ज्ञी बाहर रूपोको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र) हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है ०। (४) सर्वथा रूप-सञ्ज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-सञ्ज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी सञ्ज्ञा (=ख्याल)को मनमे न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है ०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नही' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नही सञ्ज्ञा है, न असञ्ज्ञा' इस नैव-सञ्ज्ञा-न-असञ्ज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसञ्ज्ञा-नासञ्ज्ञायतनको अतिक्रमणकर, सञ्ज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

आवुसो! उन भगवान्०ने ० यह।

९—**नवक**—"आवुसो! उन भगवान्०ने यह नव धर्म यथार्थ कहे हैं ०।

१—नव **आघात-वस्तु**—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाळ) किया', इसलिये आघात (=बदला-लेनेका ख्याल) रखता है। (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है ०। (३) 'मेरा अनर्थ करेगा ०। (४) 'मेरे प्रिय=मनापका अनर्थ किया ०। (५) ० ० अनर्थ करता है ०। (६) ० ० अनर्थ करेगा ०। (७) 'मेरे अ-प्रिय-अमनापके अर्थ (=प्रयोजन)को किया ०। (८) ० करता है ०। (९) ० करेगा ०।

२—नव **आघात-प्रतिविनय** (=हटाना)—(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलेमे अनर्थ करनेसे मुझे) क्या मिलनेवाला है' इससे आघातको हटाता है। (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे ०। (३) ० करेगा ०। (४) मेरे प्रिय-मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है'०। (५)०अनर्थ करता है०। (६) ० अनर्थ करेगा०। (७) 'मेरे अप्रिय=अमनापके अर्थको किया है०। (८) ० करता है ०। (९) ० करेगा ०।

३—नव **सत्त्वावास** (=जीवलोक)—(१)आवुसो ! कोई सत्त्व नानाकाय (=०शरीर) और नाना सज्ञा (=नाम)वाले है, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम सत्त्वावास है। (२) ० नाना-काय एक-सज्ञावाले, जैसे प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव। (३) ० एक-काय नाना-सज्ञावाले, जैसे **आभास्वर** देव लोग। (४) ० एक-काया एक सज्ञावाले, जैसे **शुभकृत्स्न** देव लोग। (५) ० सज्ञा-रहित, प्रतिवेदन (=होश)-रहित जैसे कि **असज्ञी-सत्त्व** देव लोग। (६) रूप-सज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-सज्ञा (=प्रतिहिंसाके ख्याल)के अस्त होने, नानापन की सज्ञाको मनमे न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है ०। (७)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है ०। (८) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'किंचित् नही' इस आकिंचन्य-आयतन-को प्राप्त है ०। (९) आवुसो ! ऐसे सत्त्व है, (जो कि) आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, नैव-सज्ञा-नासज्ञा (=न होश न बेहोश)-आयतनको प्राप्त है, यह नवम सत्त्वावास है।

४—नव **अक्षण**=असमय (है) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमे तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध उत्पन्न होते है, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, **सुगत** (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) सबोधिगामी, धर्मको उपदेश करते है। (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नर्क)मे उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)मे उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि)मे उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-योनि)मे०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोमे अ-पडित म्लेच्छोमे उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओकी गति (=जाना) नही, न भिक्षुणियोकी, न उपासकोकी, न उपासिकाओकी०। (७) ० **मध्यदेश** (=मज्झिमजनपद)मे उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टीमत)=विपरीत-दर्शनका होता है—'दान दिया (-कुछ) नही है, यज्ञ किया०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोका फल=विपाक कुछ नही, यह लोक नही, परलोक नही, माता नही, पिता नही, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नही, लोकमे सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नही, जो कि इस लोक और परलोकको स्वय साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ०। (८) ० मध्य-देशमे होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड-मूक (=भेळसा गूँगा), सुभापित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमे असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९)तथागत ० लोकमे उत्पन्न नही होते ० ० मध्य-देशमे उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञा-वान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभापित दुर्भापितके अर्थको जाननेमे समर्थ होता है०।

५—नव **अनुपूर्व** (=क्रमश)-**विहार**—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय-ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्तहो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिंचन्यायतन ०। (८) ० नैवसज्ञाना-सज्ञायतन ०। (९) ० सज्ञा-वेदयित-निरोध ०।

६—नव **अनुपूर्व-निरोध**—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तको काम-सज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका आश्वास-प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-सज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-सज्ञा०। (७) आकिंचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन सज्ञा०। (८) नैव-सज्ञा-नासज्ञा-यतन-प्राप्तकी आकिंचन्यायतन सज्ञा०। (९) सज्ञा-वेदयित-निरोध-प्राप्तकी (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती है।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

आवुसो! उन भगवान्‌०ने यह०।

१०—**दशक**—"आवुसो! उन भगवान्‌०ने दश धर्म यथार्थ कहे०। कौनसे दश?—

१—दश **नाथ-करण धर्म**—(१) आवुसो! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-सवर (=कवच)से सवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयो (=वद्य)मे भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोको) ग्रहणकर शिक्षापदोको सीखता है। जो यह आवुसो! भिक्षु शीलवान्‌०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-सचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक =सव्यजन है, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते है, वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखें) होते है, यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ० भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-सप्रवक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ० भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुर-भापिता)वाले धर्मोसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)मे प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी०। (५) ० भिक्षु सब्रह्मचारियोके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते है, उनमे दक्ष=आलस्यरहित होता है, उनमे उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमे समर्थ, होता है। ० यह भी०। (६) ० भिक्षु **अभिधर्म** (=सूत्रमे), **अभि-विनय** (=भिक्षु-नियमोमे) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वय उपदेश करनेमे उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी ०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है०। (८) ० भिक्षु अकुशल-धर्मोके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढपराक्रम होता है। कुशल-धर्मोमे अनिक्षिप्त-धुर (=भगोळा नही) होता०। (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है, बहुत पुराने किये, बहुत पुराने कथितका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य, निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दु ख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है०।

२—दश **कृत्स्नायतन**—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे टेढे अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब कुछ पृथिवी है) जानता है। (२) ० आप-कृत्स्न ०। (३) ० तेज कृत्स्न ०। (४) ० वायु-कृत्स्न ०। (५) ० नील-कृत्स्न ०। (६) ० पीत-कृत्स्न ०। (७) ० लोहित-कृत्स्न ०। (८) ० अवदात-कृत्स्न ०। (९) ० आकाश-कृत्स्न ०। (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ०।

३—दश **अकुशलकर्म-पथ** (=दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (=हिंसा)। (२) अदत्तादान (=चोरी)। (३) काम-मिथ्याचार (=व्यभिचार)। (४) मृषावाद (=झूठ)। (५) पिशुन-वचन (=चुगली)। (६) परुप-वचन (=कटुवचन)। (७) सप्रलाप (=बकवास)। (८) अभिध्या (=लोभ)। (९) व्यापाद (=द्रोह)। (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टीमत)।

४—दश **कुशलकर्म-पथ** (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात-विरति। (२) अदत्तादान-विरति। (३) काम-मिथ्याचार-विरति। (४) मृषावाद-विरति। (५) पिशुनवचन-विरति। (६) परुप-वचन-विरति। (७) सप्रलाप-विरति। (८) अन्-अभिध्या। (९) अ-व्यापाद। (१०) सम्यग्दृष्टि।

५—दश आर्य-वास—(१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अगो (=वातो)से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्र-हीण) होता है। (२) छै अगोसे युक्त (=षडग-युक्त) होता है। (३) एक रक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय)वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेकसच्च (=मतोके आग्रहका पूर्णतया त्यागी) होता है। (६) समवय-सट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-सकल्प ० (८) प्रश्रब्ध-काय-सस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ ०।

(१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अगोसे हीन कैसे होता है ? यहाँ आवुसो ! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण ०, स्त्यान-मृद्ध ०, औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो ! भिक्षु षडग-युक्त होता है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन, स्मृति-सप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर ०, मनसे धर्म जानकर ० ०। (३) आवुसो ! एकारक्ष कैसे होता है ? आवुसो ! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो ! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो ! भिक्षु सख्यान (=समझ) कर एकको सेवन करता है, सख्यानकर एकको स्वीकार करता है, सख्यानकर एकको हटाता है, सख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो ! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है ? आवुसो ! जो वह पृथक् (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धात) होते है, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते है ०। (६) आवुसो ! कैसे 'समवसट्ठेसन, (=सम्यग्-विसृष्टैषण) होता है ? आवुसो ! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा ०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो ! भिक्षु कैसे अनाविल-सकल्प होता है ? आवुसो ! भिक्षुका काम-सकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-सकल्प ०, हिसा-सकल्प ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु अनाविल (=निर्मल)-सकल्प होता है। (८) आवुसो ! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है ? ० भिक्षु ०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो ! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे मुक्त होता है, ० द्वेषसे विमुक्त होता है, ० मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार ०। (१०) कैसे ० सुविमुक्त-प्रज्ञ होता है ? आवुसो ! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमे उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०। ० मेरा मोह ०। ०।

६—दश अशैक्ष्य (=अर्हत्)-धर्म—(१) अशैक्ष्य सम्यग्-दृष्टि। (२) ० सम्यक्-सकल्प। (३) ० सम्यक्-वाक्। (४) ० सम्यक्-कर्मान्त। (५) ० सम्यक्-आजीव। (६) ० सम्यक्-व्यायाम। (७) ० सम्यक्-स्मृति। (८) ० सम्यक्-समाधि। (९) ० सम्यक्-ज्ञान। (१०) अशैक्ष्य सम्यक्-विमुक्ति।

"आवुसो ! उन भगवान्०ने ०।"

तब भगवान्ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्रको आमत्रित किया—

"साधु, साधु, सारिपुत्र ! सारिपुत्र तूने भिक्षुओको अच्छा सङ्गीति-पर्याय (=एकताका ढग) उपदेशा।"

आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा; शास्ता (=बुद्ध) इससे सहमत हुए। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओने (भी) आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२ ।

३४—दसुत्तर-सुत्त (३।११)

१—बौद्ध-मन्तव्यो की सूची उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानभागीय विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय. साक्षात्करणीय धर्म,

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् पाँचसौ भिक्षुओके बळे सघके साथ **चम्पामे** गग्गरा पुष्करणी के तीरपर विहार कर रहे थे।

वहाँ आयुष्मान् **सारिपुत्रने** भिक्षुओको आमन्त्रित किया—"आवुसो भिक्षुओ!"

"आवुस!" कहकर उन भिक्षुओने ० उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—

"निर्वाणकी प्राप्ति और दु खके अन्त करनेके लिये,
सारी गाँठोके खोलनेवाले **दशोत्तर** धर्मको कहता हूँ ॥१॥

१—बौद्ध मन्तव्यों की सूची[1]

१—एकक—आवुसो! (१) एक धर्म बहुत उपकारक है। (२) एक धर्म भावना करने योग्य है। (३) एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है। (४) एक धर्म प्रहातव्य (=छोळ देने योग्य) है। (५) एक धर्म=हानभागीय है। (६) एक धर्म विशेष भागीय है। (७) एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य (=समझनेमे अति कठिन) है। (८) एक धर्म उत्पादनीय है। (९) एक धर्म अभिज्ञेय (=विचारपूर्वक ज्ञातव्य) है। (१०) एक धर्म साक्षात्करणीय है।

१—कौन एक धर्म बहुत उपकारक है? कुशल धर्मोमे **अप्रमाद**। यही एक धर्म बहुत उपकारक है।

२—कौन एक धर्मकी भावना करने योग्य है? अनुकूल **कायगत-स्मृति**[2] (प्राणायाम आदि चार ध्यान)। इसी एक धर्मकी भावना करनी चाहिये।

३—कौन एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है? **आस्रव** (=चित्त-मल)-सहित उपादान किया जाननेवाला स्पर्श, यही एक धर्म परिज्ञेय है।

४—कौन एक धर्म प्रहातव्य है? अहभाव (=अहकार) यही एक धर्म प्रहातव्य है।

५—कौन एक धर्म हानभागीय (=अवनतिकी ओर ले जानेवाला) है? अ-योनिश मनस्कार। ०

६—कौन एक धर्म विशेषभागीय है? योनिश मनस्कार (=मूलके साथ विचारना)। ०

७—कौन एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य है? *आनन्तरिक चित्त-समाधि*। ०

८—कौन एक धर्म उत्पादनीय है? **अ-कोप्य(=अटल) ज्ञान**। ०

---

[1] मिलाओ पृष्ठ २८२-३०१।

[2] देखो कायगतासति-सुत्तन्त (मज्झिमनिकाय ११९, पृष्ठ ४९४)।

९—कौन एक धर्म अभिज्ञेय है? सभी प्राणी आहारपर स्थित हैं। ०

१०—कौन एक धर्म साक्षात्करणीय है? अ-कोप्य (=अटल) चित्तविमुक्ति।

यही दस धर्म भूत (=वास्तविक) तथ्य=तथा=अवितथ, अन्-अन्यथा, (यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसम्बुद्ध (=बोध किये गये) हैं।

२–द्विक—आवुसो! दो धर्म बहुत उपकारक हैं, दो धर्मोकी भावना करने योग्य है! दो धर्म परिज्ञेय हैं० दो धर्म साक्षात्करणीय हैं।

१—कौन दो धर्म बहुत उपकारक हैं?—स्मृति और सम्प्रजन्य। ०

२—कौन दो धर्म भावना करने योग्य हैं? शमथ और विपश्यना। ०

३—कौन दो धर्म परिज्ञेय हैं? नाम और रूप। ०

४—कौन दो धर्म प्रहातव्य हैं? अविद्या और भवतृष्णा (=आवागमनका लोभ)। ०

५—कौन दो धर्म हानभागीय हैं? दुर्वचन और पापीकी मित्रता। ०

६—कौन दो धर्म विशेषभागीय हैं? सुवचन और कल्याणमित्रता। ०

७—कौन दो धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं? सत्वोके सक्लेश (=मालिन्य)के जो हेतु=प्रत्यय, और विशुद्धिके हेतु-प्रत्यय।

८—कौन दो धर्म उत्पादनीय हैं? दो ज्ञान—क्षयका ज्ञान और उत्पादका ज्ञान।

९—कौन दो धर्म अभिज्ञेय हैं? दो धातु—सस्कृत (स्कध आदि) और अ-सस्कृत (=अ-कृत निर्वाण)। ०।

१०—कौन दो धर्म साक्षात-करणीय हैं? विद्या और विमुक्ति।०

ये बीस धर्म भूत ०।

३—त्रिक—० तीन धर्म ०।

१—कौन तीन धर्म बहुत उपकारक हैं? सत्पुरुषसहवास, सद्धर्मश्रवण, धर्मानुसार-आचरण।

२—कौन भावना करने योग्य है? तीन समाधि—वितर्क विचार सहित समाधि, अवितर्क-रहित विचारमात्र समाधि, वितर्क-विचार-रहित समाधि। ०।

३—कौन ० परिज्ञेय (=त्याज्य) है? तीन वेदनायें—सुखा, दुखा, न सुखा न दुखा। ०।

४—तीन धर्म प्रहातव्य हैं? तीन तृष्णायें—कामतृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

५—कौन ० हान-भागीय ०? तीन अकुशल-मूल (=पापोकी जळ)—लोभ, द्वेष और मोह। ०।

६—कौन ० विशेषभागीय? तीन कुशल-मूल—अ-लोभ, अ-द्वेष और अ-मोह। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य है? तीन निस्सरणीय धातु—कामो (=भोगो)से निस्सरण निष्का-मता है। रूपोसे निस्सरण अ-रूपता है। जो कुछ उत्पन्न=सस्कृत=प्रतीत्य-समुत्पन्न है उसका निस्सरण निरोध है। ०

८—कौन० उत्पादनीय है? तीन ज्ञान—अतीत अशमे, भविष्य अशमे, और वर्तमान अशमे।

९—कौन ० अभिज्ञेय है? तीन धातु—काम-धातु, रूप-धातु, और अरूप-धातु। ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय है? तीन विद्यायें—पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान, सत्वोके जन्म मरण का ज्ञान, आस्रवोके क्षय होनेका ज्ञान। ०

ये तीस धर्म भूत ०।

४—चतुष्क—० चार धर्म ०—

१—कौन चार धर्म बहुत उपकारक है? चार चक्र—अनुकूल देशमे वास, सत्पुरपका आश्रय, अपनी सम्यक् प्रणिधि (=ठीक अभिलाषा), पूर्वजन्मके उपार्जित पुण्य।

२—कौन ० भावना करने योग्य है ? चार **स्मृतिप्रस्थान**—भिक्षु कायामे कायानुपश्यी होकर विहार करता है ०[१], वेदनामे वेदनानुपश्यी ०, चित्तमे ०, धर्ममे ० ।

३—कौन ० परिज्ञेय है ? चार **आहार**—स्थूल या सूक्ष्म कौर करके खाया जानेवाला आहार, स्पर्श ०, मन सचेतना ०, और विज्ञान ० ।

४—कौन ० प्रहातव्य है ?

चार **ओघ** (=बाढ)—काम-ओघ, भव-ओघ, दृष्टि-ओघ, और अविद्या-ओघ।

५—कौन ० हानभागीय ० ? चार **योग** (=मिलन)—काम-योग, भव-योग, दृष्टि-योग और अविद्या-योग।

६—कौन ० विशेषभागीय० ? चार **विसयोग** (=वियोग)—कामयोग-विसयोग, भवयोग०, दृष्टियोग ० और अविद्यायोग ०।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य ० ? चार **समाधि**—हानभागीय समाधि, स्थितिभागीय विशेष-भागीय समाधि, निर्वेधभागीय समाधि।०

८—कौन उत्पादनीय है ? चार **ज्ञान**—धर्म-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, सम्मति-ज्ञान। ०।

९—कौन अभिज्ञेय है ? चार **आर्यसत्य**—दु ख, समुदय, निरोध, मार्ग।०

१०—कौन साक्षात्करणीय है ? चार **श्रामण्यफल**—स्रोतआपत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्-फल। ०

ये चालीस धर्मभूत ०।

५—**पचक**—० पॉच धर्म ०।

१—कौन ० पॉच धर्म वहुत उपकारक है ? पॉच **प्रधान-अङग**—(१) भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधिमे श्रद्धा रखता है—वे भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०। (२) नीरोग=आतक रहित होता है, न अधिक शीतल न अधिक उष्ण समविपाकवाली योगाभ्यासके योग्य पाचनशक्तिसे युक्त होता है। (३) शठ नही होता, मायावी नही होता, शास्ताके पास, विद्वानोके पास, या सब्रह्मचारियो-के पास अपनेको यथार्थ यथाभूत प्रकट करता है। (४) अकुशल धर्मोको दूर करनेके लिये, कुशल धर्मोके उत्पादके लिये, साहसी दृढपराक्रम हो वीर्यवान् होकर विहार करता है। कुशल धर्मो स्थामवान्=दृढ-पराक्रमहो, भगोळा नही होता। (५) निर्वेधिक, उदयास्तगामिनी और सम्यक् दु खक्षयगामिनी आर्य प्रज्ञासे युक्त होता है।

२—कौन भावना करने योग्य है ? पॉच अङ्गोवाली **सम्यक्-समाधि**—प्रीति स्फुरण (=प्रीतिसे व्याप्त होना), सुख ०, चित ०, आलोक ०, प्रत्यवेक्षण-निमित्त।

३—कौन ० परिज्ञेय है ? पञ्च **उपादान-स्कन्ध**—रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान ०।

४—कौन ० प्रहातव्य है ? पॉच **नीवरण**—कामच्छन्द ० (=भोगोका लोभ), व्यापाद (=द्रोह) ०, स्त्यान-मृद्ध (=काय-मनके आलस्य),औद्धत्य—कौकृत्य (=हिचकिचाहट), विचिकित्सा (=सदेह)।०

५—कौन ० हानभागीय ० ? पॉच **चित्तके कील** (=कॉटे)—भिक्षु शास्ताके प्रति सदेह =विचिकित्सा करता है, उनके प्रति श्रद्धा नही रखता, प्रसन्न नही होता। उसका चित्त सयम, अनुयोग और प्रधान (=अनवरत अध्यवसाय)की ओर नही झुकता। यह पहला चित्तका कील है। फिर भिक्षु

---

[१] देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।

धर्मके प्रति सदेह ०। ० प्रधानकी ओर नही झुकता। यह दूसरा ०। सघके प्रति ०। शिक्षाके प्रति ०। सब्रह्मचारियोसे कुपित, असतुष्ट, खिन्न, रहता है तथा उनके प्रति मनमे बुरे भाव रखता है। उसका चित्त ० प्रधानकी ओर नही झुकता।

६—कौन ० विशेषभागीय है? पाँच **इन्द्रियाँ**—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा।

७—कौन ० अप्रतिवेध्य है? पाँच **निस्सरणीय धातु**—(१) भिक्षु, कामो (=भोगो)मे मन करते वक्त नही दौळता, न प्रसन्न होता है, न स्थित होता है, न विमुक्त होता है। नैष्काम्य (=अनासक्ति, निष्कामता)मे मन करते वक्त दौळता है, प्रसन्न होता है, स्थित होता है, और विमुक्त होता है। उसका वह चित्त सु-गत, सु-भावित, सुव्यवस्थित, सुविमुक्त, कामोसे विमुक्त होता है और कामोके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, वह उनसे मुक्त हो जाता है। वह उस वेदनाको नही झेलता। यही कामोका निस्सरण कहा गया है। (२) विपक्षके व्यापाद (=द्रोह)मे मन करते ० यही व्यापादका निस्सरण कहा गया है। (३) ० विहिसा ०। (४) ० रूप ०। (५) ० सत्काय मनमे करते ०।

८—कौन उत्पादनीय है? पाँच **ज्ञान-सबंधी सम्यक्-समाधि**—(१) यह समाधि वर्तमानमे सुखमय और भविष्यमे भी सुख देनेवाली है।—ऐसा भीतर ज्ञान उत्पन्न होता है। यह समाधि आर्य और निरामिष (=निर्विषय) ०। यह समाधि कापुरुष (=अनुत्साही पुरुषो) द्वारा सेवित है ०। यह समाधि शान्त, प्रणीत, एकाग्रता प्राप्त और सस्कारोसे अबाधित है। सो, मै स्मृति-सहित इस समाधिको प्राप्त होता हूँ, और स्मृति-सहित इससे उठता हूँ ०। ०

९—"कौन पाँच धर्म अभिज्ञेय है? पाँच **विमुक्ति-आयतन**—आवुसो! भिक्षुको शास्ता (=गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरुस्थानीय) सब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, जैसे जैसे भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरुस्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममे अर्थ समझता है, धर्म समझता है, अर्थ-सवेदी (=अर्थ समझनेवाला), धर्म-प्रतिसवेदी हो, उसे प्रमोद प्राप्त होता है। प्रमुदित (पुरुप)को प्रीति पैदा होती है। प्रीतिमान्‌की काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है, प्रश्रब्धकाय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है।—यह प्रथम विमुक्ति-आयतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न कोई दूसरा गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी, वल्कि यथाश्रुत (=सुने पढेके अनुसार), यथापर्याप्त (=धर्मग्रथके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोको धर्म उपदेश करता है ०। (३) ० वल्कि यथाश्रुत, यथापर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है ०। (४) ० वल्कि यथाश्रुत, यथापर्याप्त धर्मको चित्तसे अनुवितर्क करता है, अनुविचार करता है, मनसे सोचता है ०। (५) ० वल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त सुगृहीत=सुमनसीकृत =सुप्रधारित (=अच्छी तरह समझा), और प्रज्ञासे सुप्रतिविद्ध (=तह तक जाना गया) होता है, जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कई एक समाधि-निमित्त ०। ०

(१०) "कौन पाँच धर्म साक्षात्कर्त्तव्य है? पाँच **धर्मस्कन्ध**—शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रज्ञा०, विमुक्ति ०, विमुक्ति ज्ञानदर्शन स्कन्ध। यह पाँच धर्म साक्षात्कर्त्तव्य है ०।

यही पचास **धर्म भूत** ०।

६—**षट्क**—० छै धर्म।

१—कौन छै धर्म वहुत उपकारक है?

छै साराणीय धर्म—(१) जब आवुसो! भिक्षुको सब्रह्मचारियोमे गुप्त या प्रकट मैत्री युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है, यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है, सग्रह, अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको० मैत्री-युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है०। (३) ० मैत्री-युक्त मानस-कर्म्म ०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ है—अन्तत पात्रमे

चुपळने मात्र भी, उस प्रकारके लाभोको बाँटकर भोगनेवाला होता है, शीलवान् स-ब्रह्म-चारियो सहित भोगनेवाला होता है, यह भी ०। (५) ० जो अखड=अ-छिद्र, अ-शवल=अ-कल्मप, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी शील है, वैसे शीलोमे स-ब्रह्म-चारियोके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ० जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है, (जोकि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दु ख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०।

२—कौन ० धर्म भावना करने योग्य है ? छै **अनुस्मृतिस्थान**—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म-अनुस्मृति, सघ-अनुस्मृति, शील-अनुस्मृति, त्याग-अनुस्मृति, देव-अनुस्मृति।०

३—कौन ० धर्म परिज्ञेय है ? छै **आध्यात्मिक आयतन**—चक्षु-आयतन, श्रोत्र-आयतन, घ्राण-आयतन, जिह्वा-आयतन, काय-आयतन और मन-आयतन।०

४—कौन ० प्रहातव्य है ? छै **तृष्णा-काय** (=० समूह)—रूप-तृष्णा, शब्द ०, गन्ध ०, रस ०, स्पर्श ०, धर्म-तृष्णा। ०

५—कौन ० हानभागीय है ? छै **अगौरव**—भिक्षु शास्ता (=गुरु) मे गौरव सम्मान नही रखता। धर्म ०। सघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसस्तार (=स्वागत) मे गौरव ० नही रखता।०

६—कौन ० विशेषभागीय है ? छै **गौरव**।—भिक्षु शास्तामे गौरव ० रखता है। धर्म ०। सघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसस्तारमे गौरव रखता है। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य है ? छ **निस्सरणीय धातु**—(१) आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया, किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहे, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करे, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नही है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नही कहते। यह मुमकिन नही, इसका अवकाश नही, कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो, और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह सभव नही। आवुसो ! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो ! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है' ।०। (४) ० उपेक्षा चित्तविमुक्तिको भावित० किया, तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये हैं, ०। (५) अनिमित्तता चित्तविमुक्तिको भावित० किया, तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है' ।०। (६) ० 'अस्मि' (=मै हूँ), मेरा चला गया, 'यह मै हूँ' नही देखता, तो भी विचिकित्सा (=सदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये है०।'

८—कौन ० उत्पादनीय है ? अनित्य सज्ञा, अनित्यमे दु ख-सज्ञा, दु खमे अनात्म-सज्ञा, प्रहाण ०, विराग ०, निरोध-सज्ञा ०।

९—कौन ० अभिज्ञेय है ? छै **अनुत्तर** (=अनुपम)—दर्शन-अनुत्तर, श्रवण-अनुत्तर, लाभ-अनुत्तर, शिक्षा-अनुत्तर, परिचर्यानुत्तर, अनुश्रुतानुत्तर। ०

१०—कौन साक्षात्करणीय है ? छै **अभिज्ञेय**—भिक्षु अनेक प्रकारकी सिद्धियो (=ऋद्धि-बलो) को प्राप्त करता है ०[1] ब्रह्मलोक तक को शरीरसे वशमे कर लेता है। अलौकिक दिव्य श्रोत-धातुसे

---

[1] देखो पृष्ठ ३०।

दिव्य और मानुप, दूर और निकटके दोनो शब्दोको सुनता है, दूरके दूसरे जीवो, और दूसरे मनुष्योके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—सराग या विराग०। अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोको स्मरण करता है। आस्रवोके क्षयसे अनास्रव चित्तविमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको यही जान, और साक्षात्कर विहार करता है।

ये साठ धर्म भूत ०।

७—**सप्तक**—० सात धर्म ०।

१—कौन सात धर्म वहुत उपकारक है? सात **आर्यधन**—श्रद्धा, शील, ह्री (=पापकर्मोसे लज्जा), आत्म-सयम, ज्ञान, पुण्य और प्रज्ञा।

२—कौन भावना करने योग्य है? सात **सम्बोध्यङ्ग**—स्मृति सम्वोध्यङ्ग, धर्मविचय सम्वोध्यङ्ग, वीर्य सम्वोध्यङ्ग, प्रीति ०, प्रश्रब्धि ०, समाधि ०, उपेक्षा ०।

३—कौन ० परिज्ञेय है? सात विज्ञानस्थितियाँ—

सात **विज्ञान-स्थिति**—(१) आवुसो! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासज्ञा (=नाम)वाले है, जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ० नाना-काय किन्तु एक-सज्ञावाले, जैसे कि प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव०। (३) एक-काया नाना-सज्ञावाले, जैसे कि **आभास्वर** देवता ०। (४) ० एक-काया एक-सज्ञावाले, जैसे कि **शुभकृत्स्न** देवता ०। (५) आवुसो! कोई कोई सत्त्व रूपसज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिसा) सज्ञाके अस्त होनेसे, नाना सज्ञाके मनमे न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह पाँचवी विज्ञानस्थिति है। (६) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त है, यह छठी विज्ञान-स्थिति है, (७) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नही,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त है। यह सातवी विज्ञान-स्थिति है।

४—कौन ० प्रहातव्य है? सात **अनुशय**—कामराग-अनुशय, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा०, मान ०, भव-राग ०, और अविद्या-अनुशय।

५—कौन ० दानभागीय है? सात **असद्धर्म**—भिक्षु अश्रद्ध होता है, अह्रीक ०, अन्-अपत्रपी ०, अल्प-श्रुत ०, कुसीत ०, मूढ-स्मृति ०, दुष्प्रज्ञ ०।

६—कौन ० विशेपभागीय है? सात **सद्धर्म**—भिक्षु श्रद्धालु होता है, ह्रीमान्०, अपत्रपी ०, वहुश्रुत ०, आरब्धवीर्य ०, उपस्थित-स्मृति ०, प्रज्ञावान् ०। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य है? सात **सत्पुरुष-धर्म**—भिक्षु धर्मज्ञ होता है, अर्थज्ञ, आत्मज्ञ, मात्रज्ञ, कालज्ञ, पुरुषज्ञ, पुद्गल (=व्यक्तिज्ञ)।

८—कौन ० उत्पादनीय है? सात **संज्ञायें**—अनित्य-सज्ञा, अनात्म ०, अशुभ ०, आदिनव (दोप), प्रहाण०, विराग ०, और निरोध-सज्ञा। ०

९—कौन ० अभिज्ञेय है?

सात [1]**निर्देश-वस्तु**—(१) आवुसो! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करने मे तीव्र-

---

[1] अ. क. "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगठ (=जैन साधु)को निर्दश कहते हैं। वह (मरा निगठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता।..."। इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विंश, निस्त्रिंश, निश्चत्त्वारिंश, निष्पचाश कहते है। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राम में विचरण करते इस वातको सुनकर विहारमें जा भगवान्को कहा। भगवान्ने कहा—'आनन्द!

छन्द (=वहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमे भी शिक्षा ग्रहण करनेमे प्रेम-रहित नही होता। (२) धर्म-निशाति (=विपश्यना)मे तीव्र-छन्द होता है, भविष्य मे भी धर्म-निशाति प्रेम-रहित नही होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग)मे ०। (४) प्रतिसल्लयन (=एकातवास)मे ०। (५) वीर्यारम्भ (=उद्योग)मे ०। (६) स्मृतिके निष्पाक(=परिपाक)में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन)मे ०।

१०—(१) फिर क्षीणास्रव भिक्षुका चित्त विवेककी ओर झुका=प्रवण=प्राग्भार होता है। (२) और विवेकमे स्थित होता है। (३) निष्कामतामे रत होता है। (४) आस्रवोके उत्पन्न करनेवाले सभी धर्मोसे रहित होता है। (५) ० चारो स्मृति प्रस्थान भावित होते है, सुभावित। ० (६) ० पाँच इन्द्रियाँ भावित और सुभावित होती है ०। (७) ० आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग भावित और सुभावित होते है ०। यह भी उसका वल होता है, जिसके सहारे वह जानता है कि मेरे सभी आस्रव क्षीण हो गये।

ये सत्तर धर्म भूत ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

८—अष्टक—० आठ धर्म ०।

१—"कौन ० वहुत उपकारक है? आठ हेतु-प्रत्यय, जो कि अ-प्राप्त आदि-ब्रह्मचर्य (=शुद्ध मन्यास) सवधिनी प्रज्ञाकी प्राप्ति और प्राप्तकी वृद्धि, विपुलता और भावनाके पूरा करनेके लिये है। कौन आठ?—(१) भिक्षु शास्ता या दूसरे गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारीके आश्रयसे विहार करता है, जिससे उसमे तीव्र ह्री (=लज्जा)=अपत्रपा, प्रेम और गौरव वर्तमान रहता है। यह प्रथम हेतु और प्रथम प्रत्यय ० भावना पूरा करनेके लिये है। (२) ० आश्रयसे विहार करता है ०, और समय समयपर उनके पास जाकर प्रश्नोको पूछता है—'भन्ते! यह कैसे? इसका क्या अर्थ है?' उसे वे आयुष्मान् अ-स्पष्टको स्पष्ट, अ-सरलको सरल करते है, अनेक प्रकारसे शका-स्थानीय वातोमे शका दूर करते है। यह दूसरा हेतु ०। (३) उस धर्मको सुनकर शरीर और मन दोनोसे पालन करता है—यह तीसरा हेतु ०। (४) ० भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष सवर (=भिक्षुसयमो)से सयत होकर विहार करता है, आचारविचार-सम्पन्न होता है, थोळेसे भी दोपोमे भय देखता है, शिक्षापदोको मन लगाकर सीखता है। यह चौथा हेतु ०। (५) ० भिक्षु वहुश्रुत और श्रुतसचयी (=पढेको याद रखनेवाला) होता है। जो धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण—सार्थक=सव्यञ्जन है जो केवल=शुद्ध, परिपूर्ण ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते है, उस प्रकारके धर्म उसने वहुत सुने धारण किये होते है, वचनसे परिचित, मनसे आलोचित, दर्शनसे खूव अच्छी तरह जाने होते है। यह पाँचवाँ हेतु ०। (६) ०बुराइयो (=अकुशल धर्मो)के नाश (=प्रहाण)के और कुशल धर्मोको पैदा करनेके लिये, भिक्षु आरब्धवीर्य (=यत्नशील) होकर विहार करता है।०। यह छठा हेतु०। (७) ०भिक्षु स्मृतिमान् होता है, परम स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। वहुत दिन पहले किये या कहेको स्मरण करता है। यह सातवाँ हेतु०। (८) ०भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्धोके उदय (=उत्पत्ति) और व्यय (=विनाश)को देखते हुए विहार करता है—यह रूप है, यह रूपका समुदय, यह रूपका अस्त हो जाना, यह वेदना०, सज्ञा ०, सस्कार ० और विज्ञान ०। यह आठवाँ हेतु ०।

यह तीर्थिकोका ही वचन नहीं है; मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (=अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दश-वर्ष नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नही नव वर्ष··एक वर्ष···एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नही होता। किसलिए? (पुन.) जन्मके न होने से·····।"

२—कौन ० भावना करने योग्य है ? आर्य अष्टाडगिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-सकल्प, सम्यग्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम्, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ।

३—कौन ० परिज्ञेय है ? आठ लोकधर्म—लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशसा, सुख, दु:ख ।०

४—कौन ० प्रहातव्य है ? आठ झूठी बाते—मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-सकल्प, मिथ्या-वाग्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-अजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति, मिथ्या-समाधि । ०

५—कौन ० हानभागीय है ?

आठ कुसीत (=आलस्य) वस्तु—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको (जब) कर्म करना होता है, उसके (मनमे) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यो न मै लेट (=चुप) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नही करता। यह प्रथम कुसीत-वस्तु है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने कामकर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया, क्यो न मै पळ रहूँ। वह पळ रहता है, ० उद्योग नही करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमे मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यो न मै पळ रहूँ।' वह पळ रहता है, ० उद्योग नही करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मै मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमे मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममे पिडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही मिलता। उसको ऐसा होता है—'मै ग्राम या निगममे पिडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यो न मै लेट रहूँ०। (६) ० पिडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मै ० पिडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अस्वस्थ है, मानो मासका ढेर है, क्यो न पळ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोळी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है, पळ रहना उचित है, क्यो न मै पळ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

६—कौन ० विशेषभागीय ?

आठ आरब्ध वस्तु—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये , बुद्धोके शासन (=धर्म)को मनमे लाना मुझे सुकर नही, क्यो न मै अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ।' सो ० उद्योग करता है, यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मै कामकर चुका हूँ, कर्म करते हुये मै बुद्धोके शासनको मनमे न कर सका', क्यो न मै ० उद्योग करूँ ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममे पिडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नही पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० सूखा-रूखा भोजन पूरा पाता है, ० सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ जाय, क्यो न मै०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है , ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यो न मै०[1]।

---

[1]हानभागीयकी भाँति ही।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य है ? ब्रह्मचर्य-वासके आठ अक्षण=असमय (है) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमे तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध उत्पन्न होते है, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, सबोधिगामी, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) धर्मको उपदेश करते है, (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुप) निरय (=नरक)मे उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)में उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि)मे उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-योनि)मे ०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोमे अ-पडित म्लेच्छोमे उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओकी गति (=जाना) नही, न भिक्षुणियोकी, न उपासकोकी, न उपासिकाओंकी०। (७) ० मध्यदेश (=मज्झिमजनपद)मे उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उरटा मत)=विपरीत-दर्शनका होता है—दान दिया (-कुछ) नहीं है, यज्ञ किया ०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोका फल=विपाक नही, यह लोक नही, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नही, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वय साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ०। (८) ० मध्य-देशमे होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड-मूक (=भेळसा गूँगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमे असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९)तथागत ० लोकमे उत्पन्न नही होते ० ० मध्य-देशमे उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञावान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमे समर्थ होता है०।

८—कौन० उत्पाद्य है ? आठ महापुरुषवितर्क—यह धर्म अल्पेच्छो (त्यागियो)का है, महेच्छोका नहीं, सतुष्टका, असतुष्टका नहीं, एकान्तवासप्रियका, जनसमारोहप्रियका नही, उत्साहीका, आलसीका नही, उपस्थितस्मृतिका, मूढस्मृतिका नही, समाहित (=एकाग्रचित्त)का, असमाहितका नही, प्रज्ञावान्का, मूर्खका नही, प्रपञ्च-रहित पुरुषका, प्रपञ्चीका नही। ०

९—कौन ० अभिज्ञेय है ?

आठ अभिभ्वायतन—एक (पुरुप) अपने भीतर (=अध्यात्म) रूप-सज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है—'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ' इस सज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुप) अध्यात्ममे अरूप-सज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (३) ० अध्यात्ममे अरूपसज्ञी, बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको देखता है०। (४) ० अध्यात्ममे अरूप-सज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोको ०। (५) ० अध्यात्ममे अरूपसज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन, नील-निर्भास रूपोको देखता है, जैसे कि नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन अलसीका फूल, या जैसे दोनो ओरसे रगळा (=पालिश किया) नीला० काशीका वस्त्र, ऐसे ही अध्यात्ममे अरूप-सज्ञी बाहर नील० रूपोको देखता है। उन्हे अभिभवनकर०। (६) ० अध्यात्ममें अरूप-सज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीत वर्ण, पीत-निदर्शन, पीत-निर्भास रूपोको देखता है, जैसे कि ० कर्णिकार पुष्प, या जैसे ० पीला ० काशीका वस्त्र ०। (७) ० ० बाहर लोहित (=लाल) ० रूपोको देखता है, जैसे कि ० बन्धु-जीवक पुष्प, या जैसे ० लोहित ० काशीका वस्त्र ०। (८) ० ० बाहर अवदात (=सफेद) ० रूपोको देखता है, जैसे कि अवदात ० ओषधी-तारक (=शुक्र), या जैसे अवदात ० बनारसी वस्त्र। ०

१०—किनको साक्षात् करना चाहिये ? आठ विमोक्ष—(१) (स्वय) रूपी (=रूपवान्) रूपोको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुप) अध्यात्ममे अरूपी-सज्ञी बाहर रूपोको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र)हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है ०। (४) सर्वथा रूप-सज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रतिहिसा)-सज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी सज्ञा (=ख्याल)के मनमे

न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है ०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञाना नन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नही सज्ञा है, न असज्ञा' इस नैव-सज्ञा-न-असज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसज्ञा-नासज्ञायतनको अतिक्रमणकर, सज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

ये अस्सी धर्म भूत ०।

९—**नवक**—० नव धर्म ०।

१—कौन वहुत उपकारक—ठीकसे मनमे लानेवाले नव धर्म है?—ठीकसे मनमे लानेसे प्रमोद उत्पन्न होता है, प्रमुदितको प्रीति होती है, प्रीतियुक्त मनवालेका शरीर शान्त ०। शान्त शरीर वाला सुख अनुभव करता है, सुखीका चित्त एकाग्र होता है। एकाग्र चित्त ठीकसे जानता देखता है। ठीकसे जानते देखते निर्वेद (=उदासीनता) को प्राप्त होता हे। उदास हो विरक्त होता है। विरागसे मुक्त होता है। यह नव ०।

२—कौन ० भावना करने योग्य है? नव **पारिशुद्धिप्रधानीय** अङ्ग—शील-विशुद्धि पारिशुद्धि प्राधानीय अङ्ग, चित्त-विशुद्धि ०, दृष्टि ०, कांक्षावितरण०, मार्गामार्गज्ञान-दर्शन०, प्रतिपद्ज्ञानदर्शन ०, ज्ञानदर्शन ०, प्रज्ञा ०, विमुक्ति। ०

३—कौन ० परिज्ञेय है? नव **सत्वावास**—नानाकाया और नानासज्ञावाले सत्व है, जैसे—मनुष्य—कितने देव, और कितने औपपातिक। यह प्रथम सत्वावास है।

० एकात्मसज्ञा ० जैसे—प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव। यह दूसरा०।

एककाया और नानासज्ञा ० जेसे—**आभास्वर** देव। तीसरा ०।

एककाया और एकसज्ञा ०, जैसे—**शुभकिकुत्स्न** देव। यह चौथा।

असज्ञी और अप्रतिसवेदी सत्व है जैसे—**असज्ञीसत्व** देव। यह पाँचवाँ।

सर्वश रूपसज्ञाओके हट जानेसे, प्रतिघ सज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानात्मसज्ञाओको ठीकसे मनमे न लानेसे, अनन्त आकाश करके आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त करता है। यह छठा।

सर्वश आकाश०को छोळ अनन्त विज्ञान ०। यह सातवाँ।

० नैवसज्ञानासज्ञाको प्राप्त करता है। यह नवाँ।

४—कोन ० प्रहातव्य है? नव **तृष्णामूलक** धर्म—तृष्णाके होनेसे खोजना, खोजनेसे पाना, ० विनिश्चय, ० छन्दराग, ० अध्यवसान, ० परिग्रह, ० मात्सर्य, ० आरक्षा, आरक्षाधिकरणके होनेसे दण्डादान, शस्त्रादान, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू, मैं मैं' चुगली और झूठ बोलना होते हैं, अनेक पाप, अकुशल धर्म होने लगते हैं। ०

५—कोन ० हानभागीय है? नव **आघात** (=द्वेप) **वस्तु**—'मेरा अनर्थ किया है,' (सोच) द्वेप करता है।' अनर्थ करता हे,' ०, ०करेगा०। मेरे प्रिय मनापका अनर्थ किया है ०, ०करता०, करेगा०।

मेरे अ-प्रिय=अ-मनापका अर्थ किया ० करता० करेगा।

६—कौन ० विशेप-भागीय है? नव **आघात-प्रतिविनय** (=द्रोहका हटाना) मेरा अनर्थ किया, तो उससे क्या हुआ?' अपने द्वेपको दवाता है। ० करता है ० अनर्थ करेगा ०।

० प्रिय=मनापका अनर्थ किया। ० करता ० करेगा ० ० अपने द्वेपको दवाना है।

अप्रिय और अमनापका अर्थ किया। ० करता ० करेगा द्वेपको दवाता है।

७—कौन०दुष्प्रतिवेध्य है? नव **नानात्व**—धातुओके नानात्वसे स्पर्श नानात्व उत्पन्न होता है, स्पर्श-नानात्वसे ० वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है, वेदना-नानात्वसे सज्ञा-नानात्व०, सज्ञा-नानात्वसे

सकल्प-नानात्त्व ०, सकल्प-नानात्त्वमे छन्द-नानात्त्व ०, छन्द-नानात्त्वसे परिदाह-नानात्त्व०, ० पर्येषण-नानात्त्व ०, ० लाभ-नानात्त्व ०, ०

८—कौन ० उत्पाद्य है? **नव सज्ञा**—अशुभ, मरण, आहारमे प्रतिकूल, सारे ससारमे अ-रति, अनित्यमे दु ख, दु खमे अनात्म, प्रहाण और विरागसज्ञा।

९—कौन अभिज्ञेय है? नव अनपूर्व (=क्रमश)-विहार—(१) आवुसो! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय-ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिचन्यायतन ०। (८) ० नैवसज्ञाना-सज्ञायतन ०। (९) ० सज्ञा-वेदयित-निरोध ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय है? नव **अनुपूर्व-निरोध**—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तकी काम-सज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका आश्वास-प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-सज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-सज्ञा ०। (७) आकिचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन सज्ञा ०। (८) नैव-सज्ञा-नासज्ञायतन-प्राप्तकी आकिचन्यायतन सज्ञा ०। (९) सज्ञा-वेदयित-निरोध-प्राप्तकी सज्ञा (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती है।

ये नब्बे धर्म भूत०।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

१०—**दशक**—० दश धर्म ०।

(१) "कौन दश धर्म बहुत उपकारक है? दश **नाथ-करण** धर्म—(१) आवुसो! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-सवर (=कवच)से सवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयो (=वद्य)मे भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोको) ग्रहणकर शिक्षापदोको सीखता है। जो यह आवुसो! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-सचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक=सव्यजन है, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते है; वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखे) होते है, यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ० भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-सप्रवक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ० भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुरभापिता) वाले धर्मोसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)मे प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है), यह भी०। (५) ० भिक्षु सब्रह्मचारियोके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते है, उनमे दक्ष=आलस्य-रहित होता है, उनमे उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमे समर्थ=विधानमे समर्थ, होता है। ० यह भी०। (६) ० भिक्षु **अभिधर्म** (=सूत्रमे), **अभि-विनय** (=भिक्षु-नियमोमे) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वय उपदेश करनेमे उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी ०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है ०। (८) ० भिक्षु अकुशल-धर्मोके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढपराक्रम होता है। कुशल-धर्मोमे अनिक्षिप्त-धुर (=भगोळा नही) होता ०। (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकमे युक्त होता है, वहुत पुराने किये, वहुत पुराने भाषण कियेका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है ०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दु ख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है ०।

२—कौन दश धर्म भावना करने योग्य है?—दश **कृत्स्नायतन**—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे आळे-बेळे अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सव पृथिवी) जानता है। (२) ० आप-कृत्स्न ०। (३) ० तेज-कृत्स्न ०। (४) ० वायु-कृत्स्न ०। (५) ० नील-कृत्स्न ०। (६) ० पीत-कृत्स्न ०। (७) ० लोहित-कृत्स्न ०। (८) ० अवदात-कृत्स्न ०। (९) ० आकाश-कृत्स्न ०। (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ०।

३—"कौन दश धर्म परिज्ञेय है?—दश **आयतन** (=इन्द्रिय और विषय)। (१) चक्षु-आयतन, (२) रूप-आयतन, (३) श्रोत्र ०, (४) शब्द ०, (५) घ्राण ०, (६) गध ०, (७) जिह्वा ०, (८) रस ०, (९) काय-आयतन, (१०) स्प्रष्टव्य-आयतन।

४—"कौन दश धर्म प्रहातव्य है?—दश **मिथ्यात्त्व** (=झूठा)। (१) मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणा), (२) मिथ्या-सकल्प, (३) मिथ्या-वचन, (४) मिथ्या-कर्मान्त (=झूठा कारवार), (५) मिथ्या-आजीव (=झूठी रोजी), (६) मिथ्या-व्यायाम (=० उद्योग), (७) मिथ्या-स्मृति, (८) मिथ्या-समाधि, (९) मिथ्या-ज्ञान, (१०) मिथ्या-विमुक्ति। ०

५—"कौन दश धर्म हानभागीय है?—दश **अकुशल कर्मपथ** (=दुष्कर्म)। (१) हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) झूठ, (५) चुगली, (६) कटुभाषण, (७) वकवास, (८) लोभ, (९) द्रोह, (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टा मत)। ०

६—"कौन दश धर्म विशेषभागीय है?—दश **कुशल कर्मपथ** (=पुण्यके कर्म)। (१) हिंसा-त्याग, (२) चोरीत्याग, (३) व्यभिचारत्याग, (४) झूठत्याग, (५) चुगलीत्याग, (६) कटुभाषण-त्याग, (७) वकवासत्याग, (८) लोभ-त्याग, (९) द्रोह-त्याग, (१०) उल्टी मतका त्याग। ०

७—"कौन दस धर्म (=वाते) दुष्प्रतिवेध्य है?—दश **आर्यवास**[2] (१) आवुसो! भिक्षु पाँच अगो (=वातो) से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छै अगोसे युक्त (=षडग-युक्त) होता है। (३) एक आरक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय) वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेक-सच्च (होता है)। (६) समवयसट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-सकल्प०। (८) प्रश्रब्ध-काय-सस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ ०। (१) आवुसो! भिक्षु कैसे पाँच अगोसे हीन होता है? यहाँ आवुसो! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण ०, स्त्यान-मृद्ध ०, औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो भिक्षु षडग-युक्त होता है? आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन, स्मृति-सप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर ०, मनसे धर्म जानकर ० ०। (३) आवुसो! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो! भिक्षु सख्यानकर (=समझकर) एकको करता

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२। [2] देखो सगीतिपरियाय सुत्त ३३, पृष्ठ ३०१।

है, सख्यानकर एकको स्वीकार करता है, सख्यानकर एकको हटाता है, सख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो ! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है ? आवुसो ! जो वह (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धात) होते है, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते है ०। (६) आवुसो ! कैसे समवयसट्ठेसन, (=सम्यक्-विसृष्टैषण) होता है ? आवुसो ! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा ०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो ! भिक्षु कैसे अनाविल-सकल्प होता है ? आवुसो ! भिक्षुका काम-सकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-सकल्प ०, हिसा-सकल्प ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु अनाविल (=निर्मल)-सकल्प होता है। (८) आवुसो ! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है ? ० भिक्षु ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो ! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार ०। (१०) कैसे ० सुविमुक्ति-प्रज्ञ होता है ? आवुसो ! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमे उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०। ० मेरा मोह ०। ०।

८—"कौन दश धर्म उत्पादनीय है ?—दश सज्ञा (=ख्याल)। (१) अ-शुभसज्ञा (=वस्तुओकी बनावटमे गदगी देखना), (२) मरण-सज्ञा, (३) आहारमे प्रतिकूलताका ख्याल, (४) सब ससारमे अनभिरति (=अनासक्ति)-सज्ञा, (५) अनित्य-सज्ञा, (६) अनित्यमे दु ख-सज्ञा, (७) दु खमे अनात्म-सज्ञा, (८) प्रहाण (=त्याग)-सज्ञा, (९) विराग-सज्ञा, (१०) निरोध (=नाश)-सज्ञा०।

९—"कौन दश धर्म अभिज्ञेय है ?—दश निर्जर (=जीर्ण करनेवाले, नाशक) वस्तु। (१) सम्यग्-दृष्टि (=ठीक मत)से इस (पुरुष)की मिथ्या-दृष्टि जीर्ण होती है, और जो मिथ्या-दृष्टिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती है, वह भी उसकी जीर्ण होती है। सम्यग्-दृष्टिके कारण अनेक अच्छाइया (=कुशल धर्म=पुण्य) भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती है, (२) सम्यक्-सकल्पसे उसका मिथ्या-सकल्प जीर्ण होता है ०। (३) सम्यक्-वचनसे इसका मिथ्या-वचन जीर्ण होता है ०। (४) सम्यक्-कर्मान्त (=ठीक कारबार)से उसका मिथ्या-कर्मान्त जीर्ण होता है ०। (५) सम्यग्-आजीव (=ठीक रोजी)से उसका मिथ्या-आजीव जीर्ण होता है ०। (६) सम्यग्-व्यायाम (=ठीक उद्योग)से उसका मिथ्या-व्यायाम जीर्ण होता है ०। (७) सम्यक्-स्मृतिसे उसकी मिथ्या-स्मृति जीर्ण होती है ०। (८) सम्यक्-समाधिसे उसकी मिथ्या-समाधि जीर्ण होती है ०। (९) सम्यग्-ज्ञानसे उसका मिथ्या-ज्ञान जीर्ण होता है ०। (१०) सम्यग्-विमुक्ति (=ठीक मुक्ति)से उसकी मिथ्या-विमुक्ति जीर्ण होती है। और जो मिथ्या-विमुक्तिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती है, वह भी उसकी जीर्ण होती है। सम्यग्-विमुक्तिके कारण अनेक अच्छाइयाँ भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती है। यह दश धर्म अभिज्ञेय है।

१०—"कौन दश धर्म साक्षात्कर्तव्य है ?—दश अशैक्ष्यधर्म—(१) अशैक्ष्य (=अर्हत्, =मुक्त पुरुष)-सम्यग्-दृष्टि, (२) ० सम्यक्-सकल्प, (३) ० सम्यग्-वाक्—(४) ० सम्यक्-कर्मान्त, (५) ० सम्यग्-आजीव, (६) ० सम्यग्-व्यायाम, (७) ० सम्यक्-स्मृति, (८) ० सम्यक्-समाधि, (९) ० सम्यग्-ज्ञान, (१०) अ-शैक्ष्य सम्यग्-विमुक्ति। यह दश धर्म साक्षात्-कर्त्तव्य है।

"इस प्रकार ये सौ धर्म (=वस्तुये) भूत, तथ्य=तथा=अ-वितथ=अन्-अन्यथा, सम्यक् (=यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसबुद्ध (=बोध किये गये) है।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

(इति पाथिकवग्ग ।।३।।)

दीघनिकाय समाप्त ।।

परिशिष्ट

१—उपमा-सूची

अचिरवती पार जानेवाला आलसी — ८९
अचिरवती पार जानेवाला उद्योगी — ८९
अनाज (नाना प्रकारके) — १९२
अन्धोकी पाँती — ८८
अरणीको काटकर आग निकालना — २०६
अलसीका नीला फूल — १३२, २९८, ३१०
आकाशमे चलना — २५०
आमके पूछनेपर कटहल जवाब — २०, २१, २२
इन्द्रकील — २५७
ऋण — २८
ओषधी-तारका — २९८, २१०
कपासका फाहा — ३५४
कमलवन — २९, २०९
कर्णिकारका पीला फूल — १३२, २९८, २१०
काशीका वस्त्र, नीला, पीला, लाल — १३२, २९८, २१०
काशीके वस्त्रमे लिपटी मणि — ९९
कुम्हार — ३०
क्षत्रियमूर्धाभिषिक्त — १६३
खरादकार, चतुर — १९१
खेत—अपना छोळ परायेका जोतना — ८५
खेत खराव बीज खराव — २०९
गगा यमुनाका सगम — १६८
गर्भ चीरकर पुत्र-प्रसव — २०३
गायसे दूध, दूधसे दही — ७५
गोघातक — १९२
चोरवध — २००
चौरस्तेपर प्रासाद — ३२
चौरस्तेपर सीढी — ७३, ८८
जनपदकल्याणीको चाहनेवाला — ७३, ८८
जन्मान्धके लिये रग — २०२
जलाशय गम्भीर — २९
जलाशय निर्मल — ३२
जेल — २८
तलवारको म्यानसे निकालना — ३०
त्रायस्त्रिंश देवोका दिन — २०२
दन्तकार — ३०
दर्पणमे मुख देखना — ३१
दास — २८
नरककी खड्ड — ८५
पहाळकी चोटीसे देखना — १०९
पानीमे तैरना — २५०
पासेका निगलना — २०८
प्रासादके नीचे सीढी — ७४
बन्धुजीवकका लाल फूल — १३२, २९८, २१०
बलवान् पुरुष — ८०, १०५, १२५, १६३, १७२
भेरी आदिका शब्द — ३१
भोजनके वादका आलस्य — १५८
मक्खन — २४२
मगधराजका बागी (मरा चोर) — २८०
मधु — २८२
मार्ग अनेक एक ही ग्रामको — ८७
मार्गके गाँवोका स्मरण — ३१
मूँजसे सरकडा निकालना — ३०
रोग — २८
लटुकिका (गौरय्या) — ३६
लोहगोला दहकता — १०४
वस्त्रशुद्ध रग पकळता है — १०७

वाद्य १५३, १५६
वृष्टिको सुनकर पानी लुढकाना २०६
वैदूर्यमणि ३०, ९८
व्याधका मृग देखना २३७
शंखध्मा (=शख बजानेवाला) ९१, २०५
शरद्का आकास १५६
शिर श्वेत वस्त्रसे ढँका २९
शुक्र तारा १३२
संडाससे निकला फिर क्या वहाँ २०१
सरकण्डा २४२
साँपको पिटारीसे निकालना ३०
सिह—स्यार २२१
सीमान्त दुर्गका अेकही द्वार १२३, २४६
सुवर्णकार ३०
सूखेमे तैरना ९०
सूतकी गोली फेकना २०
सोना छोळ सनको ढोना २०८
स्नानचूर्ण २९
हाथसे हाथ धोना ४६
हीरा (देखो वैदूर्यमणि) ३०

२—नाम-अनुक्रमणी

अकनिष्ट—१०९, १८९ (देवता)।

अग्निदत्त—९६ (ब्राह्मण, ककुसन्ध बुद्धका पिता)।

अंग—४४ (देशमे चम्पा), १६०, १७१ (मे चम्पा महागोविन्दनिर्मित नगर, वर्तमान भागलपुर मुँगेर जिले)।

अगक—४६ (चम्पाके सोणदण्ड ब्राह्मणका विद्वान् भागिनेय)।

अगिरा—४१, ८७ (मत्रकर्ता ऋपि)।

अदृक—४१, ८७ (मत्रकर्ता ऋषि)।

अचिरवती—८९ (=राप्ती नदी) ८६ (नदीके तटपर मनसाकट,) ८९।

अचेल—६१ (काश्यप उजुञ्ञामे), २१६ (कोरखत्तिय उत्तरकामे), २१८ (कोरमट्टक वैशालीमे), २१९ (पाथिकपुत्र, वैशालीमे)।

अचेल काश्यप—(देखो काश्यप अचेल—)।

अच्युत—(अच्युत) १७९ (देवता)।

अजपाल—१३३ (उरुवेलामे वर्गद), १८२ (नेरजराके तीर)।

अजातशत्रु—१२ (कावज्जीपर प्रकोप), १६ राजा मागध वैदेही पुत्रको देवदत्तने भळकाया), १७ टि (ने पिताको मरवाया), १८, १९ (का पुत्र उदयभद्र), २२, ३२ (बोद्धका पश्चात्ताप), ३३, ११७ (मागध वैदेही पुत्रका वज्जीपर चढाओी-का इरादा, गगा और पर्वत के पाससे आने-वाले रत्नके लिये), १५० (का बुद्धकी अस्थियोपर चैत्य वनाना)।

अजित—२१९ (लिच्छवियोका मृत सेनापति)।

अजित केशकम्बल—१८ (तीर्थंकर), २० (जड-वादी), १४५ (यगस्वी)।

अतप्य—१०९ (देवता)।

अनाथपिण्डिक का आराम—(देखो जेतवन)।

अनुरुद्ध—१४७ (निर्वाणके समय), १४८।

अनूपिया—(मल्ल) २१५ (मल्लमे कस्वा, जहाँ भार्गवगोत्र परिव्राजकका आराम, मे उपदिष्ट सूत्र २४)।

अनेजक—१७९ (देवता)।

अनोमा—९६ (वेस्सभू बुद्धकी राजधानी)।

अभिभू—९६ (सिखी बुद्धके शिष्य)।

अभिविनय—३०० (विनयमे), ३१२।

अम्बगाम—१३५ (वैशालीसे कुसिनाराके रास्ते पर)।

अम्बपाली—१२८ (वैशालीकी गणिकाका बुद्ध-को निमत्रण), १२९ (बागका दान)।

अम्बपालीवन—१२७ (वैशालीमे), १२९ (बुद्ध-को दान।

अम्बर—२७९ (वैश्रवणका नगर)।

अम्बरवती—२७९ (वैश्रवणका नगर)।

अम्बलट्ठिका—१ (राजगृह और नालन्दाके बीच-मे), १८ (मगधमे, मे उपदिष्ट सूत्र १), १२२ (मे राजागारक, वर्तमान सिलाव), १२४।

अम्बिका—१२८ (अम्बपाली)।

अम्बष्ट (अम्बट्ठ)—३४ (पौष्करसाति ब्राह्मण-का शिष्य) ३५-४३, ४२ (पर पौष्करसाति नाराज)।

अम्बसण्ड—१८१ (मगधमे ब्राह्मणग्राम प्राचीन राजगृहके पूर्व)।

अरिट्ठक (अरिष्टक)—१७९ (देवता)।

अरिष्टनेमि—२७९ (वैश्रवणके प्राचीन राजा)।

अरुण—९६ (राजा सिखी बुद्धके पिता)।

अरुण–१८० (देवता)।
अरुणवती–९६ (सिखी बुद्धके पिता अरुणकी राजधानी)।
अवदातगृह–१८० (देवता)।
अवन्ती (मालवा)–१७१ (मे माहिष्मती महा-गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
अवृह (अविह)–१०९ (देवता)।
अलसी–२५८ (-फूल), ३१०।
अल्लकल्प–१५०-५१ (के बुलियो द्वारा बुद्धकी अस्थियोका चैत्य)।
अशोक–९६,९८ (विपस्सी बुद्धका उपस्थाक)।
अश्वक–१७१ पैठन हैद्रावादके आस पासका प्रदेश, मे पोतन नगर महागोविन्द द्वारा निर्मित)।
अश्वतर–१७९ (यक्ष)।
असज्ञी–२९९ (देवयोनि), ३११।
असम–१७९ (चद्रमाका देवता)।
असुर–१७९ (वेम चित्ति सुचित, पह्राद, नमुचि, राहु, वलि), १८३ (का बुद्धोके समय ह्रास) १८८ (पराजय), २६२।
आंगिरस–२७७ (गौतम बुद्ध, अगिरा गोत्रीय)।
आगिरसा–१८२ (=भद्रा सूर्यवर्चसा)।
आकाश-आयतन–११५ (देवता)। आकिंचन्य-आयतन ११६ (देवता)।
आजीवक–१४९ (एक सम्प्रदायके साधु)।
आटानाटा–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
आटानाटिय–२७७ (रक्षा-सूत्र)।
आतुमा–१३८ (नगरमे भुसागार)।
आनद–१५ (भिक्षु), ७६ (बुद्ध निर्वाणके वाद जेतवनमे), ७७,९६,१०९ (गौतमबुद्धके उपस्थाक), ११०-१६, ११८, १२०, १२२-२६, १२९-४९, १५२-५९, १६१, १६६, २५२ (वेधञ्ञामे, सामगाममे)।
आनन्दचैत्य–१३५ (भोगनगरमे)।
आभास्वर–७ (ब्रह्मलोक), ११५ (देव), २२३ (देवयोनि), २८५, २९६, २९९, ३११।
आम्रवन-जीवक–१६ (राजगृहमे)।
आम्रवन प्रासाद–२५२ (शाक्योकी वेधञ्ञामे)।
आर्यधर्म–३०० (सूत्रमे), ३१२।
आलकमन्दा–१४४ (देवताओकी राजधानी), १५२, २७९ (वैश्रवणकी राजधानी), २८०।
आलवक–२८० (पचाल चड, अरवल—कानपुर-का यक्ष)।
आलारकालाम–१३७, १३८ (का शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्र)।
आसव–१८० (देवता)।
इक्ष्वाकु–(आक्काक) ३६ (के वशज शाक्यकी दासी दिशाके पुत्र कृष्ण ऋषि), ३८।
इच्छानगल–३४ (कोसल देशमे, उक्कट्ठाके पास, मे उपदिष्ट सूत्र), ४२ (का वनसड)।
इन्द्र–६७, ८९ (वैदिक देवता), १६२ (देखो शक्रभी), १६४, १७८, २७८-२७९ (वैश्र-वण, विरूढक, विरूपाक्ष, धृतराष्ट्र देवताओ-के पुत्रोका नाम), १७९ (असुरजेता, वसु) १८०, १८५ (वासव), १८५, २३८, २६५, २६९ (का कल्पतरु), २८० (यक्ष-सेनापति)।
इन्द्रशालगुहा–१८१ (मगधमे राजगृहके पूर्व अम्वसण्ड ग्रामके उत्तर वैदिक पर्वतमे), १८३ (मे शक्र), १९१ (मे उपदिष्ट सूत्र)।
ईशान–८९ (वैदिक देवता)।
उकट्ठा–३४ (कोसल देशमे, पोष्कर साति ब्राह्मणकी राजधानी), ४२, ४३, १०९ (के पास सुभगवन)।
उजुञ्ञा–६१ (के पास कण्णत्थलक), मे उपदिष्ट सूत्र)।
उत्तर–९६ (कोणागमन बुद्धके शिष्य)।
उत्तर–२१० (पायासी राजन्यका दानाधिकारी)
उत्तर–९६ (केसभू बुद्धका प्रधान शिष्य)।
उत्तरका–२१६ (थुलूदेशमे कस्वा, मे अचेल कोरखत्तिय कुक्कुरवतिक)।
उत्तरकुस–१७९ (मे म्वयजात शाली, ममता-रहित मनुष्य, वैलकी सवारी)।

उत्तरा–९७ (कोणागमन बुद्धकी माता)।
उदयन चैत्य–१३४, २१८ (वैशालीके पूर्वमे)।
उदयभद्र–१९ (अजातशत्रुका पुत्र)।
उदुम्बरिका–२२६ (राजगृह और गृध्रकूटके बीच मे न्यग्रोध परिव्राजक, के समीप मोर-निवाप), २३२।
उद्दक रामपुत्र–२५५ (का कथन)।
उपवत्तन–(देखो उपवर्तन)।
उपवर्तन–(उपवत्तन) १३९ (कुसिनारामे), १४८ (वर्तमान माथा कुँवर, कसया, जिला गोरखपुर), १५२ (मल्लोका शालवन)।
उपवाण–२५९ (भिक्षु), आयुष्मान (देखो उपवान भी)।
उपवान–१४१ (भिक्षु पूर्व बुद्ध-उपस्थाक)।
उपसन्त–९६ (वेस्सभू बुद्धका उपस्थाक)।
उपोसथ–१५४ (महासुदर्शनका हाथी)।
उल्कामुख–(ओक्कामुख) ३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
उरुवेला–१३३, १८२ (नेरजराके तीर)।
ऋद्धिमान्–१८० (देवताके पुत्र सनत्कुमार)।
ऋषिगिरि–१३४ (राजगृहमें)।
एक शालक–(देखो समय प्रवादक)।
ऐतरेय–८७ (ब्राह्मण)।
ऐरावण–१७९ (महानाग)।
ओजसि–२७९ (वैश्रवणकी सेनामे)।
ओट्ठद्ध–५६ (=महालि, वैशालीकीलिच्छवि) ५८।
ओपमञ्ञ–(औपमन्यव) १७९ (यक्ष)।
ओषधीतारका–२९८ (शुक्रग्रह), ३१०।
औपमन्यव–१७९,२८० (यक्ष सेनापति)।
ककुत्थक–२७९ (पक्षी)।
ककुत्था–१३७ (नदी पावा और कुसिनाराके बीचमें), १३९।
ककुध–१२६ (उपासक नादिकामे)।
ककुसन्ध–९५, (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण, गोत्र काश्यप) ९६, (४० हजार आयु, सिरीसवोधिवृक्ष विधुर-सजीव दो शिष्य, एक शिष्य-सम्मेलन, वुद्धिज उपस्थाक, अग्निदत्त ब्राह्मण पिता विशाखा माता, तत्कालीन राजा खेम, राजधानी खेमवती), १०९।
कट्टक–१८० (देवता)।
कण्ठात्थलक मिगदाय–६१ (उजुञ्ञाके पास)।
कपिलवस्तु–(शाक्यदेशमे) ३५, ३६ (मे सस्थागार) ९७, १०९ (शुद्धोदनकी राजधानी) १५० (के शाक्योका बुद्धिकी अस्थिपर चैत्य वनाना)। १७७ (के पास महावन, मे उपदिष्ट सूत्र २०), १७८, १८४।
कपीवन्त–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
कम्बल–१७९ (नाग)।
कम्मासदम्म–(देखो कल्माष दम्म भी)।
करण्डु–३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
करती–२८० (महायक्ष)।
करम्म–१८० (देवता)।
करविक–१०१ (पक्षी हिमालयमे)।
कर्णिकार–२९८ (पीला फूल), ३१०।
कलन्दक निवाप–२७१ (वेणुवन, राजगृहमे, देखो वेणुवन भी)।
कलिंग–(उडीसा) १५१ (मे वुद्ध दात), १७१ (मे दन्तपुर महा गोविन्द निर्मित नगर)।
कल्पतरु–२६५, २६९ (इन्द्रका)।
कल्माषदम्य–(कुरु) ११०, १९० (मे उपदिष्ट सूत्र १५)।
कश्यप–४१, ८७ (मन्त्रकर्त्ता ऋषि)।
कस्सप–(काश्यप) ९५ (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण) ९६, ९७ (काश्यपगोत्र, आयु बीस हजार वर्ष, वर्गद वोधिवृक्ष, तिस्स भारद्वाज दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, सर्व मित्र उपस्थाक), ९७ (ब्रह्म दत्त पिता, धनवती माता, राजा किकी वाराणसी राजधानी), १०९।
कात्यायन प्रक्रुध–(देखो प्रक्रुध कात्यायन)।
कामश्रेष्ठ–१९७, २८० (यक्ष सेनापति)।
कामसेट्ठ–(देखो कामश्रेष्ठ)।
कामावचर–१२ (देवता)।
कारेरिकुटी–९५ (जेतवनमें)।
कारेरिपर्णशाला–९५ (जेतवनमे)।
काण्ण्यायन–३६ (ब्राह्मणोका पूर्व पुरुष कृष्ण इक्ष्वाकु की दासी दिशाका पुत्र), ३७।

कालक–१७९ (असुर)।
कालाम। आलार–(देखो आलार कालाम)।
कालिंग–१२६ (उपासक नादिकामे)।
काशी–२९८ (का वस्त्र), १३२, २९८ (का वस्त्र), १६० (देश) १७१ (बनारस कमिश्नरी, मे वाराणसी नगर महागोविन्द निर्मित), ३१०।
काश्यप–९५ (बुद्ध), ककुसन्ध और कोना-गमन ९५, २७७ (बुद्ध), ९५ (ककुसन्ध और कोनागमन बुद्धोका गोत्र)।
काश्यप–(बुद्ध) (देखो कस्सप भी)।
काश्यप। अचेल–६१ (उजुञ्ञामे) ६२, ६३, ६४, ६५, ६६ (बौद्ध भिक्षु)।
काश्यप। कुमार–१९९ (अर्हत्) २००-२०६, २०८-२११।
काश्यप। पूर्ण–(देखो पूर्ण काश्यप)।
काश्यप। महा–१४८ (निर्वाणके समय पावामें), १४९ (कुसिनारामे बुद्धके शरीर को अन्तिम प्रणाम)।
किकी–९७ (काश्यप बुद्धका समकालीन राजा)।
किनुघण्ड–१७९ (यक्षोका दास)।
कूटदन्त–४८ (ब्राह्मण, मगधमें खाणुमतका स्वामी) ४८-५० (पौष्करसाति ब्राह्मण और बिम्बिसार द्वारा सत्कृत), ५०, ५३, ५५ (बौद्ध)।
कुमार कस्सप–(देखो काश्यप। कुमार)।
कुम्भ-स्तूप–१५१ (द्रोण ब्राह्मण द्वारा बनवाया)।
कुम्भीर–१७८ (यक्ष-राजगृहके वेपुल्ल पर्वतपर)।
कुरु–११०, १६०, १९० (देशमे कम्मासदम्म, कस्बा)।
कुरु। उत्तर–(देखो उत्तर कुरु)।
कुलीरक–२७९ (पक्षी)।
कुवेर–२७९ (देखो वैश्रवण)।
कुशावती–१५२ (कुसिनाराका पुराना नाम), १५३, १५७, १५९।
कुसिनाटा–२७९ (नगर वैश्रवणका)।
कुसिनारा–(मल्ल) १३६ (पावामे), १४०, १५२ (मे उपदिष्ट सूत्र), १४१ (मे निर्वाण), १४३ (क्षुद्रनगला, पूर्व नाम कुशावती), १४७ (के मल्ल वाशिष्टगोत्र), (में उपवर्तन शालवन), १४८-५०, १५२।
कुसीनारा–(देखो कुसिनारा)।
कूटागार शाला–५६ (वैशालीमे), २१८, २२२।
कूटेण्डु–१७८ (यक्षोका दास)।
कूष्माण्ड–(देवयोनि) १७८ (का अधिपति विरूढक) २७७, २७८, २८०।
कूष्माण्ड-राज–(देखो विरूढक)।
कृष्ण–३६ (ऋषि, इक्ष्वाकुकी दासी दिशाके पुत्र, काष्र्णायन ब्राह्मणोंके पूर्व पुरुष), ३७ (महान् ऋषि), ३८।
केतुमती–२२८ (वाराणसीका भविष्य नाम, यहाँ शंख चक्रवर्ती और मैत्रेय बुद्ध होंगे)।
केवट्ट–७८ (गृहपतिपुत्र नालन्दामे) ७९-८१ (को उपदेश)।
केशकम्बल। अजित–(देखो अजितकेश कम्बल)।
कोकिल–२७९ (पक्षी)।
कोटिग्राम–१२६ (पाटलिपुत्रमें वैशालीके रास्ते-पर, में उपदिष्ट सूत्र १६)।
कोणागमन–९५ (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण) ९६ (काश्यप, तीन हजार वर्ष आयु, गूलर बोधिवृक्ष; भी योगु, उत्तर दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, सोत्थिज उपस्थाक, यज्ञदत्त पिता, उत्तरा माता), ९७ (तत्कालीन राजा सोम, सोभवती राजधानी), १०९, २७७।
कोरखत्तिय–२१६ (अचेल कुक्कुरव्रतिक, उत्तर-कामे), २१७ (मरकर कालकञ्जिका असुर)।
कोरमट्टक–२१८ (अचेल, वैशालीमे तपस्वी, उसका पतन)।
कोलिकय–१५०, १५१ (रामगामवालोका बुद्ध-की अस्थिके ऊपर चैत्य बनाना)।
कोसल–(देश) ३४ (मे इच्छानंगलके पास पौष्करसातिकी उक्कट्ठ, ५६ (के ब्राह्मण दूत वैशालीमे), ८२ (मे सालवतिका), ८६ (मे अचिरवतीके तीर मनसाकट), १६०, १९९ (मे सेतव्या नगरी)।

कोशल-(देखो प्रसेनजित्)।
कोसलराज-(देखो प्रसेनजित्)।
कौण्डिन्य-९६ (विपस्सी बुद्ध, वेस्सभू बुद्ध, शिखी बुद्धका गोत्र)।
कौशाम्बी-५८ (मे घोपिताराम), ५९ (मे उपदिष्ट सूत्र ७), १४३, १५८ (बळा नगर)।
कौशिक-८३ (शक्र)।
ककुच्छन्द-२७७ (पूर्व बुद्ध), (देखो ककुसन्ध भी)।
क्रीडाप्रदूषिक-८ (देवता), १७९, २२३।
क्रौञ्च-२७९ (पक्षी)।
क्षुद्ररूपी-३७ (इक्ष्वाकुकी कन्या कृष्ण ऋपिकी स्त्री), ३८।
खण्ड-९६, ९८ (विपस्सी बुद्धका प्रधान शिष्य), १०६-७।
खाणुमत-४८ (अम्वलट्ठिकके पास मगधमे, उपदिष्ट सूत्र ५), का कुटदन्त ब्राह्मण), ४९, ५०।
खेम-९७ (ककुसन्ध बुद्धका समकालीन राजा)।
खेमकर-९६ (सिखी बुद्धके उपस्थाक)।
खेमवती-९७ (ककुसन्ध कालमे नगरी)।
खेमा मृगदाव-१०६-७ (वन्धुमती नगर, के पास)।
खेमिय-१८० (देवता)।
गग्गरा-३०२ (चम्पामे पुष्करिणी)।
गगा-१९, ११७ टि० (पर्वतके पास), १२० टि० (वज्जी और मगधकी सीमा), १२५ (पाटलिपुत्रमे), १६८ (यमुनासे मेल)।
गन्धर्व-१६३ (हीन देवता), २६२ (देवयोनि) २६९, २७७, २७८, २८०।
गन्धर्वराज-(देखो धृतराष्ट्र)।
गन्धारपुर-१५१ (मे बुद्धका दाँत)।
गन्धारीविद्या-७९।
गरुड-१७९ (देवयोनि)।
गर्गरा-(गग्गरा) ४४ (चम्पामे पुष्करिणी)।
गवाम्पति-२१०-११ (अर्हत्, देवलोक तक गाते)।
गिंजकाराम-१६१ (नादिकामे)।
गिंजकावसथ-१२६ (नादिकामे), १६०।
गळ-२८० (महायक्ष)।
गृध्रकूट-६५, ११७, १३४ (राजगृहमे पर्वत), १६७, २२६ (और राजगृहके बीच उदुम्बरिकाराम, से नीचे सुमग्गधाके तीर मोर निवाप), २३२, २७७।
गोतमक चैत्य-१३४, २१८ (वैशालीके दक्षिण)।
गोपक-१८४ (देवपुत्र) पूर्वमे गोपिका शाक्यपुत्री)।
गोपाल-२८० (महायक्ष)।
गोपिका-१८४ (शाक्यपुत्री मरकर गोपक देवपुत्र)।
गोविन्द-१६९ (ब्राह्मण, दिशापित राजाका पुरोहित)।
गोविन्द। महा-१७२, १७३ (देखो महागोविन्द)।
गोसाल। मक्खलि-(देखो मक्खलिगोसाल)।
गौतम-१८, ३४ (बुद्ध), ३५-४३, ४४-४७, ४८-५०, ५३-५५, ५८, ५९, ६२, ६३, ६५, ७२, ८२, ८३, ८५, ८६, ९५, ९६, १०९ (बुद्धके पीपल वोधिवृक्ष, सारिपुत्र मोग्गलान दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, आनद उपस्थाक, शुद्धोदन राजा पिता माया देवी माता, कपिलवस्तु नगर), १४९, १८५, १९९, २२१, २२३, २२६, २२७, २४१, २५७, २७७, २७८, २७९।
गौतमतीर्थ-१२५ (पाटलिपुत्रमे)।
गौतमद्वार-१२५ (पाटलिपुत्रमे)।
गौतमन्यग्रोध-१३४ (राजगृहमे)।
घण्डु-२८० (यक्ष सेनापति)।
घोषिताराम-५८, ५९ (कोशाम्बीमे)।
चंकि-८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसाकटमे)।
चन्दन-१७९, २८० (यक्ष सेनापति)।
चन्द्रमा-१७९ (देवता)।
चम्पा-४४ (अगदेशमे, मे गर्गरा पुष्करिणी), ४४ (मे उपदिष्ट सूत्र ४), १४३, १५२ (बळा नगर), १७१ (वर्तमान भागलपुर), ३०२ उपदिष्ट सूत्र ४३)।
चातुर्महाराजिक-(देव) ७९, १६४, २११, २९७।
चापाल चैत्य-१३० (वैशालीमे), १३३।

चित्त–७२, ७४ (हत्थिसारि-पुत्र), ७५ (बौद्ध भिक्षु)।
चित्र–१७९ (नाग)।
चित्रक–२७९ (पक्षी)।
चित्रसेन–१७९ (देवपुत्र), २८० (गन्धर्व)।
चिन्तामणिविद्या–७९।
चुन्द–१३६ (कर्मारपुत्र पावाका) भगवानको शूकरमार्दव प्रदान करना), १३९ (को महा पुण्य), २८१।
चुन्द–२५२-५९ (समणुद्देस)।
चुन्दक–१३९ (भिक्षु, निर्वाणके समय)।
चेतक–७६ (भिक्षु)।
चेति–१६० (देश)।
चोरप्रपात–१३४ (राजगृहमें)।
छन्दावा–८७ (ब्राह्मण)।
छन्दोग–८७ (ब्राह्मण)।
छन्न–१४६ (भिक्षुको ब्रह्मदंड)।
जनवसभ–१६१ (बिम्बिसारका देव होनेपर नाम), १६१, १६६।
जनौघ–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
जम्बुगाम–१३५ (वैशालीसे कुसीनाराके रास्ते-पर)।
जम्बुद्वीप–१०८, १५१ (मे बुद्ध-अस्थियोकी पूजा), २६३।
जानुस्सोणि–८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसा-कटमें)।
जालिय–५८ (परिव्राजक दारुपाजिकका शिष्य कौशाम्बीमें), २२१-२२ (वैशालीमें)।
जिन–२७८ (बुद्ध)।
जीवक–१६ (-कौमार भृत्यका आम्रवन राजगृह में), १८, १६ टि० (का घर जीवकाम्रवन-के पास)।
जीवक-आम्रवन–१६ (राजगृहमें), १८ (मे अजातशत्रु), १३४।
जीवंजीव–२७९ (पक्षी)।
जेतवन–६७ (श्रावस्ती भी देखो), ७६ (मे आनन्द निर्वाणके बाद), ९५ (मे कारेरि-कुटी)।
जेतवनपुष्करिणी–१७ टि० (जेतवनमें)।
जोति–१८० (देवता)।
जोतिपाल–१६९ (गोविन्दका पुत्र, महागोविन्द) १७०।
ततोजसि–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
ततोतला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
ततोला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तत्तला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तथागत–३७, १६२ (बुद्ध)।
तपोदाराम–१३४ (राजगृहमें)।
तारुक्ख–(तारुक्ष) ८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसा-कटमें)।
तिन्दुक खाणु–२८० (वैशालीमें परिव्राजकाराम)।
तिम्बरु–१७९ (गन्धर्वराज), १८१ (की कन्या भद्रासूर्य वर्चसा), १८२ (गन्धर्वराज)।
तिष्य–९६, ९८ (विपस्सी बुद्धका शिष्य)।
तिस्स–९६ (कस्सप बुद्धका शिष्य), १०५-७ (विपस्सी बुद्धके पास शिष्य)।
तिस्स–१८० (देवता)।
तुट्ठ–१२६ (उपासक नादिकामें)।
तुषित–८० (देवता), १३२ (देवलोक), १८० (देवता)।
तेजसि–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तैत्तिरीय–८७ (ब्राह्मण)।
तोदेय्य–८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसाकटमें)।
तोदेय्यपुत्त–(देखो शुभ माणवक)।
त्रायस्त्रिंश–८० (देवता), १६२, १६३, १६४, १६५, १६७ (देवताओकी सभा), १८१-८४, २०२ (का एक दिन मनुष्यके सौ वर्ष के बराबर।
थुलू–२१६ (देशमें उत्तरका नामक थुलुओका कस्वा, वहाँ अचेलकोरखत्तिय ककुखतिक)।
दधिमुख–२८० (महायक्ष)।
दन्तपुर–१७१ (की कलिंगमें, गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
दयळमान–२७९ (पक्षी)।
दारुपात्रिक–५८, ५९ (का शिष्य जालिय परिव्राजक कौशाम्बीमें), २२१ (वैशालीमें)।

दिशा–३६ (इक्ष्वाकुकी दासीके पुत्र कृष्ण ऋषि)।
दिशापति–१६९ (राजा)।
दीर्घ–२८० (महायक्ष)।
दृढनेमि-जातक–२३३।
देव–२६२, २६९, २९६ (-योनि)।
देवदत्त–१६ टि० (अजातशत्रुको भळकाना), १७ टि० (की मृत्यु)।
देवेन्द्र–(देखो शक्र)।
द्रोण–१५० (ब्राह्मणका बुद्धकी अस्थियोको विभाजन)।
धनवती–९७ (कस्सप बुद्धकी माता)।
धरणी–२७९ (सरोवर, वैश्रवणका)।
धर्म–१५६ (पुष्करिणी महासुदर्शन चक्रवर्तीकी)।
धर्मकाय–२४१ (=बुद्ध)।
धर्मप्रासाद–१५५ (महासुदर्शन चक्रवर्तीका), १५६।
धर्मसेनापति–१२४ टि० (सारिपुत्र)।
धृतराष्ट्र–१७१ (सात भारतोमे दोके नाम)।
धृतराष्ट्र–१७८ (गधर्वोका अधिपति) (के पुत्र इन्द्र लोग), २७८ (गन्धर्वराज पूर्व-दिक्पाल)।
धृतराष्ट्र–१७९ (नाग)।
नन्दनकानन–२६३ (देवलोकमे)।
नन्दा–१२६ (भिक्षुणी नादिकामे)।
नल–१७९ (गधर्वराज)।
नल–२८० (देवपुत्र राजा)।
नाग–१७८ (का राजा विरुपाक्ष), २६२ (देवयोनि), २६९, २७७, २७८, २८०।
नागराज–(देखो विरुपाक्ष)।
नागित–५६ (बुद्धके उपस्थाक)।
नाटपुत्त–१८ (देखो निगठनाथपुत्त)।
नाटसुरिया–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
नातपुत्त। निगण्ठ–२८२ (ज्ञातपुत्र, देखो निगण्ठनाथपुत्त)।
नाथपुत्त। निगठ–तीर्थंकर, (देखो निगठनाथ-पुत्त)।
नादिका–(वज्जी) १२६ (मे उपदिष्ट सूत्र १६, (मे गिजकाराम), १६० (मे उपदिष्ट सूत्र १८, (मे गिजकावसथ), १२७ (मे साळ्ह भिक्षु नन्दा भिक्षुणी, सुदत्त, सुजातो) १२७-२८ (ककुध, कालिग, निकट, काहिस्सका, तुट्ठ सन्तुट्ठ, भद्द, सुभद्द उपासक गण मृत)।
नालन्दा–१ (अम्वलट्ठिकाके पास), ७८ (प्रावारिक अम्रवत्त,) नालन्दा समृद्धमे उपदिष्ट सूत्र ११), १२२ (के प्रावारिक आम्रवनमे उपदिष्ट सूत्र १६), २४६ (मे उपदिष्ट सूत्र २८)।
निकट–१२६ (उपासक नादिकामे)।
निगण्ठ–२९५ टि० (जैनसाधु)।
निगण्ठ नातपुत्त–(देखो निगण्ठनाथपुत्त)।
निगठनातपुत्त–१८ (तीर्थंकर), २१ (चातुर्याम-सवरवादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर), २५२, २८२ (की पावामे मृत्यु, जैन तीर्थंकर)।
निघण्टु–१७९ (यक्षोका दास)।
निघण्ड–२८० (यक्षसेनापति)।
निर्माणरति–८०, १६३ (देवता), १८०।
नेरजरा–(नदी) १३३, १८२ (उरुवेलाके पास)।
नेत्ति–२८० (महायक्ष)।
न्यग्रोध–(निग्रोध) ६५ (तप ब्रह्मचारी गृध्र-कूटपर)।
न्यग्रोध–२२६-३२ (राजगृहमे परिव्राजक मडलेश)।
पकुधकच्चायन–१४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
पज्जुन्न–(पर्जन्य) १८० (देवताका)।
पञ्चशिख–१६७ (गधर्वपुत्र), १७५, १७६, १७९ (गधर्वराज), १८१ (गधर्वपुत्रकी वेलुवपण्डु वीणा), १८२ (भद्रा सूर्यवर्चसाका प्रेमिक), १८३ (देवता), १८९।
पञ्चाल–१६० (देश)।
पञ्चाल चण्ड–(देखो आलवक)।
पनाद–१७९ (यक्षोका दास)।
परकुसित नारा–२७९ (नगर)।
परकुसिनारा–२७९ (वैश्रवणका नगर)।

परनिर्मित वशवर्त्ती–८० (देवता), १६४,१८०।
परमत्थ–(परमार्थ), १८० (देवता)।
पर्जन्य–२८० (महायक्ष)।
पहराद–(=प्रह्लाद) १७९ (असुर)।
पाटलिग्राम–(मगधे) १२३ (मे उपदिष्टसूत्र १६), १२३, टि०, वर्तमान पटना) १२४ (वज्जियोको रोकनेके लिये नगर) १२४। टि०। (मे बुद्धके जानेका समय), (देखो पाटलिपुत्र भी)।
पाटलिपुत्र–१२५ (के शत्रु)।
पाथिक पुत्र–२१९ (अचेल, वैशालीमे) २२० (चमत्कार दिखानेसे भागा)।
पायासी राजन्य–१९९ (राजन्य, कोसलमे सेतव्या का स्वामी, तथा प्रसेनजित्‌का माण्डलिक, नास्तिक २००-२११ (राजन्य), २०६, २१० (पायासी), २०९ (बौद्ध) २१० (देवपुत्र) २११। २१० (-देवपुत्रका सौरस्सक विमान)।
पारग–१८० (यशस्वी देवता)।
पारग। महा–१८० (यशस्वी देवता)।
पावा–१३६ (कुसीनाराके पास), २५२ (मे निगण्ठ नाथपुत्तकी मृत्यु), २८१ (मे मल्लोका सस्थागार, मे चुन्द कर्मारपुत्र, मे उपदिष्ट सूत्र ३३)।
पिप्पलीवन–१५०-१५१ (के मौर्योका अगार-स्तूप)।
पुक्कुस–१३७, १३८ (मल्लपुत्र, आतारथलामका शिष्य) १३९ (बौद्ध)।
पुराणक–२८० (महायक्ष)।
पूर्णकाश्यप–१८ (तीर्थंकर), १९ (अक्रियावादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
पूर्वाराम–२४० (मृगारमाताका प्रासाद, श्रावस्तीमे)।
पोक्खरसाति–(देखो पोष्करसाति)।
पोट्ठपाद–(प्रोष्ठपाद) ६७ (परिव्राजक श्रावस्तीमे), ६८-७५।
पोतन–१७१ (पैठन, हैदराबाद, अश्वक देशमे गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
पौष्करसाति–३४ (ब्राह्मणराजा प्रसेनजित्‌का मान्य, कोशलदेशमे उक्कट्ठाका स्वामी), ३५, ४०, ४१, ४२ (का शिष्य अम्बष्ट बौद्ध), ४९ (का मान्य मगधका कुटदन्त, बौद्ध), ८६ (का शिष्य वाशिष्ट)।
प्रकुध कात्यायन–१८ (तीर्थंकर), २१ (अकृततावादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
प्रजापति–८९ (वैदिक देवता), १८५ (देव), २८० (यक्ष सेनानायक)।
प्रणाद–२८० (यक्षसेनापति) (देखो पनाद भी)।
प्रभावती–९६ (सिखी बुद्धकी माता)।
प्रयाग–१७९ (वाले नाग)।
प्रसेनजित्–४१ (ब्राह्मण पोष्करसातिका मुँह नही देखता), ४९ (कोसल, बुद्धका उपासक), ८२ (के आधीन लोहिच्च ब्राह्मण), १९९ (के आधीन पायासी राजन्य), २०७, २४१ (के आधीन शाक्य)।
प्रह्लाद–(असुर) (देखो पहराद)।
प्रावारिक आम्रवन–७८, १२२ (नालन्दामे), २४६।
प्रोष्ठपाद–(देखो पोट्ठपाद)।
बन्धुजीवक–२९८ (पुष्प), ३१०।
बन्धुमती–९६, ९८ (विपस्सी बुद्धकी माता), १०३।
बन्धुमती–९६, ९८ (विपस्सी बुद्धके पिता बन्धुमान् राजाकी राजधानी), १०६ (मे खेमामृगदाव), १०७ (खण्ड तिस्सकी जन्मभूमि), १०९ (मे विपस्सी बुद्धका शिष्यसम्मेलन)।
बन्धुमान्–९६, ९८, ९९ (राजा विपस्सी बुद्धका पिता), १००, १०१, १०२।
बलि–बलि १७९ (असुरके राहु नामधारीपुत्र)।
बहुपुत्रकचैत्य–१३४, २१८ (वैशाली के उत्तर)।
बिंबिसार–१७ टि० (कैदमे) ४८, ४९ (श्रेणिकका मान्य पोष्करसातिब्राह्मण), (बौद्ध) १६०, १६१ (मरकर जनवसभ देवपुत्र)।
बुद्ध–२३ (की उत्पत्तिका प्रयोजन), ४२

(बत्तीस लक्षण), ४९ (के शिष्य प्रसेनजित् बिंबिसार पौष्करसाति), १४६ (का अन्तिम वचन), ७६ (के निर्वाणके बाद), ११७ (का अन्तिम जीवन), १३३ (उरुवेलामें, १३६ (पावामें बीमारी,) १४६ (का अन्तिम वचन), १७९ (की सेवामें देवगण) २५१ (एक लोकधातुमें एक ही), २८२ (बुढ़ापे मे कमरदर्द) (देखो गौतम भी)।

बुद्धिज–९६ (ककुसन्ध बुद्धका उपस्थाक)।

बुली–१५० (अल्लकप्पवालो का बुद्धकी अस्थिमे भाग) १५१ (और चैत्य बनाना)।

(बोधगया)–१४१ (मे बुद्धत्व प्राप्ति)।

ब्रह्मकायिक–(देवता) ८०, ११५, २८५, २९६, २९९, २९९, ३११।

ब्रह्मचर्य–८७ (ब्राह्मण)।

ब्रह्मदत्त–१ (सुप्रिय परिब्राजकका शिष्य), ९७ (ब्राह्मण कस्सप बुद्धका पिता), १७१ (सात भारतोमे एक)।

ब्रह्मपुरोहित–१८४, १८५ (देवता)।

ब्रह्मलोक–७ (आभास्वर)।

ब्रह्मा–७, ८० (ईश्वर), ८९ (वैदिक देवता), ९० (के गुण), १६३ (सनत्कुमार), १६४, १६५, १७२, १७५, १८०, २२२ (सृष्टिकर्ता नही)।

ब्रह्मा। महा–७ (ईश्वर), १०५, १०६ (विपस्सी बुद्धके पास), १०८।

ब्रह्मा सनत्कुमार–(देखो सनत्कुमार)।

ब्रह्मा। सहापति–(देखो सहापति)।

भण्डग्राम–१३५ (वैशालीमे कुसीनाराके रास्तेपर)।

भद्द–१२६ (उपासक नादिकामे)।

भद्रकल्प–९५ (वर्तमान कल्प), १०९।

भद्रलता–२४२ (सृष्टिके आरम्भकालमे)।

भद्रासूर्यवर्चसा–१८२, १८३ (तिम्बरु गन्धर्व कन्या, पचशिखकी प्रेमिका), १८९ (पचशिखकी प्रेमिका)।

भरत–१७१ (सातभरतोमे एक)।

भरद्वाज–४१, ८७ (मत्रकर्ता ऋषि)।

भागलवती–२७९ (यक्षसभा, सागलवती भी)।

भारत–१७० (उत्तरमे चौळी दक्षिणमे शकट समान)।

भारत–१७१ (के सात राडकलिंग, अश्वक, अवन्ती, सोवीर, विदेह, अग और काशी, के सात राजा सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत, रेणु, धृतराष्ट्र, धृतराष्ठ, राजधानियाँ—दन्तपुर, पोतन, माहिष्मती, रोरुक, मिथिला, चपा, वाराणसी।

भारद्वाज–८६ (माणवक तारुक्ख ब्राह्मणका शिष्य मनसाकटमे) ८७, ९२।

भारद्वाज–९६ (कस्सप बुद्धके शिष्य)।

भारद्वाज–२४० (श्रावस्तीमे ब्राह्मण तरुण प्रब्रज्याकाक्षी)।

भारद्वाज–२८० (यक्षसेनापति)।

भार्गव गोत्र–२१५ (परिब्राजक अनूपियामे) २१५-२२५।

भीयोसु–९६ (कोणागमन बुद्धके शिष्य)।

भुञ्जती–१८३ (वैश्रवण देवताकी परिचारिका)।

भुसागार–१३८ (आतुमा नगरमे)।

भृगु–४१, ८७ (मत्रकर्त्ता ऋषि)।

भोगनगर–(वज्जी ?) १३५ (वैशालीसे कुसिनाराके रास्तेपर, मे आनन्द चैत्य, मे उपदिष्ट सूत्र १६)।

मक्खलिगोसाल–१८ (तीर्थंकर), २० (दैववादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।

मगध–४८ (देशमे खाणुमत का स्वामी कुटदन्त ब्राह्मण), ५६ (के ब्राह्मण वैशालीमें), ११७ (का महामात्य वर्षकार), १६० (देश), १६१, १६५ (के परिचारक), १८१ (मे अम्बसण्ड, राजगृहके पूर्व), २३३ (मे मातुला)।

मगधराज–२३ (अजातशत्रु), ४८ (बिबिसार), २८०।

मणिचर–२८० (महायक्ष)।

मणि (भद्र)–२८० (महायक्ष)।

मण्डिस्स–५८-५९ (परिब्राजक कौशाम्बीमें)।

मत्स्य–१६० (देश)।

मद्रकुक्षिमृगदाव–१३४ (राजगृहमे)।
मध्यदेश–२९९, ३१०।
मन. प्रदूषिक–८,१७९, २२४ (देव)।
मनसाकट–(कोसल) ८६ (मे उपदिष्टसूत्र ८६), ८६ (कोसलमे अचिरवती नदीके तटपर, तारुक्ख, पौष्करसाति, जानुस्सोणि, तोदेय्य महाशाल ब्राह्मण),मे वाशिष्ट भार-द्वाज माणवक), ९०, ९१।
मनोपदूसिक–(देखो मन प्रदूषिक)।
मन्दबलाहक–१७९ (नक्षत्रोके देवता)।
मन्दिय–२८० (महायक्ष)।
मयूर–२७९ (पक्षी)।
मल्ल–(कुसिनारा) १४३ (गोत्र वाशिष्ट), १४७, १४८-५० (कुसिनाराके, द्वारा बुद्धका दार सस्कार आदि), १६० (देश)।
मल्ला–२१५ (अनूपियाके), २८१ (पावाके)।
मल्ल–(देश) २१५ (मे अनूपिया कस्बेमे भार्गवगोत्र परिव्राजकका आराम), २८१ (मे पावा)।
मल्लपुत्र–(देखो पुक्कुस)।
मल्लिका-आराम–६७ (श्रावस्तीमे, परिव्राजको-का मठ, नगर द्वारके पास)।
मल्लोका शालवन–१३९, १४०, १५२ (कुसि-नारामे)।
महर्द्धि–८९ (वैदिक देवता)।
महाकाश्यप–(देखो काश्यप। महा—)
महागोविन्द–१६९-७५ (जातक) १७० (भारत को सात भागोमे बॉटनेवाला)।
महाब्रह्मा–(देखो ब्रह्मा)।
महाराज–८०, २७७-७९ (चार—धृतराष्ट्र, विरूढक, विरूपाक्ष, वैश्रवण)।
महालि–५६ (=ओट्ठद्ध वैशालीका लिच्छवि), ५८।
महावन–५६ (वैशालीमे), १७७ (कपिल-वस्तु), २१८ (वैशालीमे कूटागारशाला)।
महावनकूटागारशाला–१३४ (वैशालीमे)।
महाविजित–५०-५३ (जातक), ५० (राजा), ५१-५३ (का यज्ञ)।
महाविहार–१५१ टि० (लकामे)।
महावीर–२८२ (जैन तीर्थंकर, देखो निगण्ठ नाथपुत्त, नातपुत्त)।
महाव्यूह–१५८ (चक्रवर्ती महासुदर्शनका कोष्टागार)।
महासुदर्शन–(जातक) १४३, १५२ (कुशावती-का चक्रवर्ती), १५३-५४ (के सातरत्न), १५९ (की आयु)।
महासुदस्सन–(देखो महासुदर्शन)।
महिष्मती–१७१ (महेश्वर, इन्दौर,) (गोविन्द द्वारा निर्मित नगर, अवन्तीमे)।
मागध–१६, १८, ११७ (अजात शत्रु), ४९ (=विंबिसार)।
मातलि–१७९ (देवपुत्र), १८२ (का पुत्र शिखडी), २८० (देवसूत)।
मातुला–(मगध) २३३ (मे उपदिष्ट सूत्र २६)।
मानुष–१७९ (=मानुस देवता)।
मानुषोत्तम–१७९ (देवता)।
मानुस–(मानुष) १७९ (देवता)।
माया–१७९ (यक्षोका दास)।
मायादेवी–९७, १०९ (गौतमबुद्धकी माता)।
मार–१३० (का बुद्धसे सलाप), २३३।
मारसेना–१८० (देवता)।
मिथिला–१७१ (जनकपुर? विदेहमे गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
मिस्सक–१८० (देवता)।
मुकुटबन्धन–१४८ (कुसिनारामे, वर्तमानरामा-भार, कसया, जि० गोरखपुर), १४९ (मे बुद्धका दाह)।
मुचलिन्द–२८० (महायक्ष उरुवेलामे)।
मृगारमाता-प्रासाद–(देखो पूर्वाराम)।
मैत्रेय–२३८ (बुद्ध होगे वाराणसी=केतु-मतीमे)।
मोग्गलान–९६, १०९ (गौतमबुद्धके प्रधान शिष्य)।
मोरनिवाप–२२७ (राजगृहमे सुमागधाके तीर गृध्रकूटके नीचे, उदुम्बरिकाके समीप)।
मौद्गल्यायन। महा–१७ टि० (देवदत्तकी

मडलीमे फूट डालना) (देखो मोग्गलान भी)।

मौर्य–१५० (पिथलीवनवालोका बुद्धकी चिता-का कोयला लेना), १५१ (चैत्य बनाना)।

म्लेच्छदेश–३१०।

यक्ष–१७८ (का अधिपति), २६९ (देवयोनि), २७७, २७८, २८०।

यक्ष । महा–१८० (इन्द्र, सोम, वरुण, भरद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्ड, निघण्डु, प्रणाद, औपमन्यव, मातलि, चित्रसेन, वल)।

यक्षराज–(देखो वैश्रवण)।

यज्ञदत्त–९७ (ब्राह्मण कोणागमनबुद्धके पिता)।

यम–८९ (वैदिक देवता)।

यमदग्नि–४१, ८७ (मत्रकर्ता ऋषि)।

यमुना–१६८ (नदीमे गगाकी धार गिरती है), १७९ (का नाग यामुन)।

यशोवती–९६ (रानी वेस्सभू बुद्धकी माता)।

याम–(देवता) ८०, १६४, १८०।

यामुन–१७९ (यमुनावासी नाग)।

युगन्धर–२८० (महायक्ष)।

रसा–२४२ (आरण्यक ग्राममे पृथिवीका रूप)।

राक्षस–२६९ (देवयोनि)।

राजगृह–१ (और नालन्दाके वीचमे अम्वलट्ठिका), १६ (जीवक आम्रवन), १८, ६५, ११७, १२०, १५३, १३४, १६७, २२६, २७७ (मे गृध्रकूट), १२४ टि० (मे मोग्गलान का चैत्य), १३४ (मे गौतम न्यग्रोध, चोरप्रपात, वैभार पर्वत, सप्तपर्णिगुहा, ऋषिगिरि, कालशिला, सीतवन, सर्पशौडिक पहाळ, तपोदाराम, वेणुवन, कलन्दक निवाप, जीवकाम्रवन, मद्रकुक्षिमृगदाव), १४, १५२ (मे अजातशत्रुका वनवाया धातुचैत्ये), (मृगदाव), १४४, १५२ (वळा नगर), १५७ (मे अजातशत्रुका वनवाया धातुचैत्य), १७८ (के वैपुल्य पर्वतपर कुम्भीर यक्ष), २२६ (मे उदुम्बरिका, परिव्राजकाराम), २२७ (मे सुमागधाके तीर मोरनिवाप), २२६, २३२ (मे सन्धान गृहपति), (२२६ (में उपदिष्ट सूत्र २५), १६ (२), ११७ (मे उ० सूत्र) १६, १६७ (मे उ० सूत्र १९), २७१ (मे उ० सूत्र ३१), २७७ (मे उ० सूत्र ३२) (उ० सूत्र) २७१ (मे वेणुवन कलन्दक निवाप)।

राजगृह । प्राचीन–१८१ (से पूर्व अम्वसण्ड ब्राह्मणग्राम)।

राजन्य–(देखो पायासी)।

राजागारक–१२२ (अम्वलट्ठिकामे)।

रामपुत्र–(देखो उद्दक)।

रामगाम–१५० (के कोलियोका बुद्धकी अस्थिमे भाग माँगना), १५१ (मे चैत्य वनाना, उसकी नागो द्वारा पूजा)।

राहु–१७९ (नामधारी वलिके पुत्र)।

रुचिर–१७९ (देवता)।

रेणु–१६९ (राजपुत्र), १७० (द्वारा सात भाग भारत), १७१ (सात भारतोमे)।

रोरुक–१७१ (रोरी, सिन्ध, सौ वीरमें गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।

रोसिक–८२ (सालवतिकाके स्वामी, लोहिच्च ब्राह्मणका नाई), ८३।

लंका–१५१ टि० (मे बुद्धकी अस्थियोका जाना)।

लम्बितक–१८० (देवता)।

लिच्छवि–५६ (महालि=ओट्ठद्ध), ५७ (सुनक्खत), ५८, ११७ टि० (और मगधकी सीमा गगा और पर्वत), १२४ टि० (का जोर पाटग्राममे), १२८ (त्रायस्त्रिंश जैसे), १५० (वैशालीवालोका बुद्धकी अस्थिमे भाग माँगना और चैत्य वनाना), २१९ (वैशालीके), (देखो वज्जीभी)।

लुम्बिनी–१४१ (बुद्धका जन्मस्थान)।

लोमसेट्ठ–१८० (देवता)।

लोकधातु–२५१ (एकम एक समय एक ही वुद्ध)।

लोहिच्च–(=लौहित्य), ८२ (कोमलम साल-वतिकाका स्वामी, की वुरी धारणा), ८३, ८४ (को उपदेश), ८५ (बौद्ध उपासक)।

जिसपर कुम्भीर यक्ष)।
वेमचित्र–१७९ (असुर)।
वेलट्ठिपुत्त। सजय–(देखो सजय वेलट्ठिपुत्त)।
वेलुवपण्डु–१८१, १८३ (पञ्चशिखकी वीणा)।
वेलुवग्राम–(वज्जी)— १२९ (मे उपदिष्ट सूत्र १६), (देखो वेणुग्राम)।
वेलुवगामक–१२९ (देखो वेणुग्राम)।
वेसनस–१८० (देवता)।
वेस्सभू–९५, ९७ (क्षत्रिय, कौण्डिन्य) ९६, (साठ हजार वर्ष आयु)साल वेदिवृक्ष, सोण उत्तर दो प्रधान शिष्य, ३ शिल्पसम्मेलन, उपसन्त उपस्थापक) (सुप्रतीत पिता, यशोवती माता, अनोमा राजधानी), १०९।
वेस्सभू–(सात भारतोमे)। २७७।
वेस्सामित्त–(वैश्वामित्र)—१७८ (यक्ष)।
वैदेहीपुत्र–१६ (देखो अजातशत्रु)।
वैपुल्यपर्वत–(देखो वैपुल्य)।
वैभार–१३४ (पर्वतकी वगलमे सप्तपर्णि गुहा, राजगृह)।
वैशाली–५६, २१८ (मे महावनकी कूटागारशाला), १२७ (मे अम्बपाली वन), ११९ (मे सारन्दद चैत्य), १२८ (जनपद), १२९ (के पास वेणुग्राम), १३० (मे चापाल चैत्य), ५६ (मे उपदिष्ट सूत्र ६), १२७ (मे उपदिष्ट सूत्र १६), १३४ (मे उदयन, गौतमक, सप्ताम्र, वहुपुत्रक और सारन्दद चैत्य), १५० (के लिच्छवियोका वुद्ध-अस्थिमे भाग माँगना और चैत्य वनाना), ३७९ (का नाग), २१८ (के पूर्वमे उदयन, दक्षिणमे जोतमद, पश्चिममे सप्ताम्रक और उत्तरमे वहुपुत्रक चैत्य), २२० (मे तिन्दुक खाण्डक)।
वैश्रवण–१६१, १६२ (कुवेर), १६६, १७८ (यक्षाधिपति), १८३ (की परिचारिका भुञ्जती), २७७, २७९ (यक्षराज उत्तर दिक्पाल), २८०, २७९ (के नगर—आटानाटा, कुसिनारा, परकुसिनाटा,=टि० सुरिया, परकुसितनाटा, कपीवन्त, जनौघ, अम्वर, अम्वरवती, आलकमन्दा राजधानी, विसाणा राजधानी), ।
वैश्वामित्र–२८० (महायक्ष)।
शक्र–८०, १६२, १६३, १६४, १६९, १६७-१६९, १७९ (वसुदेवता), १८१ (देवेन्द्र), १८३, १८४, १८६-१८९, १८९ (शक्र-प्रश्न)।
शख–२३८ (चक्रवर्ती, केतुमती=वाराणसीका राजा मैत्रेय वुद्धका समकालीन)।
शाक्य–३४, ५६, ८२, ३५, ३६ (की इक्ष्वाकुसे उत्पत्ति), ४८, ८६, २४१ (प्रसेनजित्के अधीन), १५१ (कपिलवस्तुवालोको वुद्धास्थिमे भाग), १७७ (देशमे कपिलवस्तुका महावन), २५२ (देशमे वेधञ्ञा)।
शाक्यपुत्र–३४, ४८, ५६, ८२, ८६, १८२, २७७ (वुद्ध)।
शाक्यपुत्रीय श्रमण–२१७, २१८, २४१, २५६ (बौद्ध भिक्षु)।
शाक्यमुनि–१८५ (वुद्ध)।
शिखंडी–१८३ (मातलिका पुत्र)।
शिखी–२७७ (देखो सिखी)।
शिवक–२८० (महायक्ष राजगृहके एक द्वारपर)।
शिवि–१६ टि० (देशका दुशाला)।
शुक–२७९ (पक्षी)।
शुक्रतारा–१३२।
शुद्धावास–१०९ (देवता), १७७।
शुद्धोदन–९७, १०९ (राजा गौतमवुद्धके पिता)।
शुभ–(सुभ) १६८ तोदेय्यपुत्त श्रावस्तीमे)।
शुभकृत्स्न–११५, २८५ (देवता), ३११, २९६, २९९, ३०७।
शृगाल–२७१, २७६ (राजगृहका गृहपति पुत्र)।
श्रावस्ती—(जेतवन)—६७, ७६, ९५, २६०, मे उपदिष्ट सूत्र ९ (६७), १० (७६), १४ (९५), २७ (२४०), १० (२६०)।
श्रावस्ती–१२४ (मे मारिपुत्रका चैत्य), १६३,

सुनीध–(सुनीथ) १२४ (मगध-महामात्यका पाटलिग्राममें नगर बनवाना), १२५ (बुद्धको भोजनदान)।
सुपर्ण–१७९ (नाग)।
सुप्रिय–१ (परिव्राजक)।
सुप्परोध–२८० (महायक्ष)।
सुप्रतीत–९६ (राजा, वेस्सभू बुद्धका पिता)।
सुब्रह्मा–१८० (देवता)।
सुभगवन–१०९ (उक्कट्ठाके पास)।
सुभद्द–१२६ (उपासक नादिकामे)।
सुभद्र–१४४ (परिव्राजक), १४५ (कुसीनारा मे बुद्धका अन्तिम शिष्य)।
सुभद्र–१४९ (बुद्ध प्रव्रजित बुद्धके मरनेपर खुश)।
सुभद्रादेवी–१५७ (महासुदर्शन चक्रवर्तीकी रानी)। १५८
सुमन–२८० (महायक्ष)।
सुमागधा–(सरोवर) २२७ (राजगृहमे गृध्रकूटके नीचे, के तीरपर मोरनिवाप, उदुम्बरिकाके समीप)।
सुमख–२८० (महायक्ष)।
सुमेरु–२७९ (पर्वत उत्तर दिशामे)।
सुयाम–८० (देवता)।
सुर–२६९ (देखो देव भी)।
सूर्य–१७९ (देवता)।
सुर्यवर्चस–१७९ (गन्धर्व राज)।
सूर्यवर्चा। भद्रा–(देखो भद्रा)।
सूर–२७९ (राजा वैश्रवणके आधीन)।
सूरसेन—१६० (देश)।
सूलेय्य—१७९ (देवता)।
सोण–९६ (वेस्सभू बुद्धका प्रधान शिष्य)।
सोणदड–(स्वर्णदड) ४४ ब्राह्मण चम्पाका स्वामी ४५-४६, ४७ (बौद्ध उपासक)।
सोत्थिज–९६ (कोणागमन बुद्धका उपस्थाक)।
सोभ–९७ (कोणागमबुद्धका समकालीन राजा)।
सोभवती–९७ (कोणागमनबुद्धके समकालीन राजा सोभकी राजधानी)।
सोम–२०८ (यक्ष सेनापति)।
सौवीर–(सिन्ध) १७१ (मे रोरुक गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
सेतव्या–१९९ (कोसलदेशमे नगर पायासी राजन्यकी राजधानी, के उत्तरसिसपावन, मे उपदिष्ट सूत्र २२)।
सेनिय–(देखो बिम्बिसार)।
सेरिसिक–२८० (महायक्ष)।
सेरिस्सक–२१९ (पायासीका देवविमान)।
हत्थिनिक–३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
हत्थिसारिपुत्त–(देखो चित्त)।
हरि–१६९ (लोहित नगरका रहनेवाला देवता), हिरि २८० (महायक्ष)।
हरिगज–१८० (देवता)।
हारित–१८० (वशवर्ती लोकका देवता)।
हिमालय–३६ (के पास शाक्यदेश), १०१ (मे करविक पक्षी), १७८ (के यक्ष)।
हिरण्यवती–१४० (कुसिनाराके पास, जिसके दूसरे तटपर मल्लोका उपवनमे, वर्तमान सोना नाला)।
हैमवत–२८० (महायक्षके हिमालयके।)

३—शब्द-अनुक्रमणी

अ-कल्मष—१२१ (=निर्मल)।
अकारणवाद—१०, ११।
अकालिक—१२७ (=सद्य फलप्रद), १६५।
अकिंचन—१३ (=शून्य)।
अकुशल कर्मपथ—२३७ (=दुराचार), ३००, ३१३।
अकुशलधर्म—१११ (=बुराई), १६८ =पाप), १८६, २३२, २४३।
अकुशल मूल—२८३ (=बुराइयोंकी जळ), ३०३ (तीन)।
अकुशलवितर्क—२८३।
अकृततावाद—२१ (प्रकुधकात्यायनका)।
अकृष्टपच्य—२४२ (=विना बोया जोता अनाज)।
अकोप्यज्ञान—३०२।
अक्ष—३ (एक जुआ), २५।
अक्षण—(आठ) ३१०।
अक्षर—२४२ (=वात)।
अक्षर प्रभेद—३४, ४६।
अक्षाहत—२३५ (=चूरमे ढोका)।
अक्रियवाद—१९ (पूर्णकाश्यपका)।
अक्रिया—२०।
अगतिगमन—(चार) २८८।
अगोख—(छै) २९३, ३०६।
अग्नि—(दोत्रिक) २८४।
अग्नि परिचरण—४० (=होम)।
अग्निहोम—५।
अग्र—४६ (=अगुआ), २३७ (=श्रेष्ठ), २४२ (=प्रथम)।
अग्रबीज—३ (ऊपरसे उगता पौधा), २४।
अग—४५ (=गुण), ४९ (=वात)।
अगविद्या—४, २६।
अगार—१५० (=कोयला)।
अचेल—६१ (=नगा)।
अजलक्षणा—४ (शुभाशुभ फल)।
अजन—२७।
अणु—८१, ११३ (आत्मा)।
अतथ—११३ (वैसा नहीं)।
अतिचार—२७५ (=व्यभिचार)।
अतिथि—५०।
अदत्तादान—(=चोरी)।
अधिकरण—१०१ (=कचहरी), २९६ (=झगळा)।
अधिकरणशमथ—(सात) २९६ (=झगळेका शमन) (मे विस्तारके लिये देखो विनय-पिटक हिन्दी)।
अधिमुक्त—११६ (=मुक्त)।
अधिष्ठान—२८६ (=दृढ विचार), २८९ (चार)।
अधिवचन—११२ (=नाम), ११३ (=सज्ञा), ११५।
अधीत्य समुत्पन्न—२२४ (=अभावमे उत्पन्न)।
अध्यवसान—१११ (=प्रयत्न), ११२।
अध्यात्म—१३ (=भीतर), ११६ (=अपने) १९४ (शरीरके भीतर)।
अध्यात्म आयतत—(छै) २९३, ३०६।
अध्यायक—३४, ४६ (=वेदपाठी), ४५, ५१, २४४ (की व्युत्पत्ति)।
अध्याश—१०६ (=भाव), १८७।
अध्व—(तीन) २८४ (=काल)।
अध्वगत—४९, १२९ (=वृद्ध)।
अनभिभूत—८० (=अपराजित)।
अनय व्यसन—१२० टि० (=तबाही)।

अनवभाप्य–१८३ (=निस्सकोच)।
अनवद्य–२३४ (=निर्दोप)।
अनागामी–१२६, १२७, १४५, २४९, २५७, २९२ (पाँच)।
अनागामी-फल–८४।
अनात्मवाद–११३, ११४, ११५।
अनार्य व्यवहार–(तीन चतुष्क) २८९, २९०।
अनास्रव–१४२ (=मुक्त)।
अनिदर्शन–८१ (=उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी जहाँ वात नही)।
अनिश्चिततावाद–२२ (सजयवेलट्ठिपुत्तका)।
अनीकस्थ–२३५, २६७ (=सेनानायक)।
अनुत्तर–२३ (=अलौकिक), १२३ (=सर्व-श्रेष्ठ), १९३ (=अनुपम)।
अनुत्तरीय–(तीन) २८५ (तीन), २९४, ३०६ (छै)।
अनुपर्याय–१२३ (=क्रमश)।
अनुपूर्वनिरोध–(नव) २९९, ३१२।
अनुपूर्व विहार–(नव) २९९, ३१२।
अनुप्राप्तसदर्थ–२५७ (=परमार्थप्राप्त)।
अनुभव–१३७।
अनुभावे–६८ (=ऋद्धि)।
अनुयुक्त–२४१ (=अधीन)।
अनुयुक्तक–५१, १५३ (माडलिक)।
अनुयुक्तक-क्षत्रिय ५२ (=माण्डलिक राजा, या जागीरदार)।
अनुलोम–११६।
अनुशय (सात) २९६, ३०७।
अनुशासन–५१४ (=उपदेश), १६९ (=सलाह)।
अनुशासन विधि–२४९।
अनुशासनी–३१२ (=धर्मोपदेश)।
अनुस्मृतिस्थान–(छै) २९४, ३०६।
अन्त–(तीन) २८४।
अन्तगुण–१९१ (=आँत)।
अन्त पुर–१०१, २३५ (=राजनिवास)।
अन्तराय–९ (=मुक्तिमार्गमे वाधक), १५० (=वाधक)।
अन्तेवासी–२९ (=शागिर्द), १४५ (=शिष्य)।
अन्त्यकल्याण–२३।
अन्धवेणी–८८।
अन्यथाभाव–१५८ (=वियोग)।
अपचित–४९ (=पूजित)।
अपत्रपा–२६५, २८३ (=सकोच)।
अपत्रपी–१२१ (=भय खानेवाला)।
अपरान्तकल्पिक–१३, १४।
अपरिहाणीय–११९ (=हानिसे बचानेवाले)।
अपवाद–४५ (=प्रत्याख्यान)।
अपश्रयण–३०१ (=आश्रय)।
अपाय–४२, ११० (=दुर्गति), २७३ (हानि-कर कृत्य), २८५ (=विनाश)।
अपायमुख–४० (=विघ्न), २७१ (छै हानि-के द्वार), २७२।
११९७ तद्वद्दोपस्या साम्याच्चे
अपाश्रयण–(चार) २८७ (=अवलम्वन)।
अप्रज्ञप्त–११८ (=गैरकानूनी), १२० (=अविहित)।
अप्रमाण–३१३ (=अतिमहान्)।
अप्रमाद–१४६ (=निरालस), ३०२।
अप्रामाण्य–(चार) २८६।
अब्भाकुटिक–४९ (=अकुटिल भ्रू, खुश-मिजाज)।
अभव्यस्थान–(पाँच) २९१।
अभिजाति–(छै) २९५।
अभिज्ञात–३५ (=प्रख्यात), ८६ (=प्रसिद्ध)।
अभिज्ञेयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३१२, ३१४।
अभिधर्म–३००, ३१२ (=सूत्रमे)।
अभिध्या–१९०, २८९ (=लोभ)।
अभिनिर्वृत्ति–१९५।
अभिनीलनेत्र–१००, २६१, २६६।
अभिप्राय–१८७।
अभिभव–२९८ (=लोप)।
अभिभू–७ (ब्रह्मा), ८०, २२३, २५८ (=विजयी)।

अभिभू-आयतन–१३२ (आठ)।
अभिभ्वायतन–(आठ) २९८, ३१०।
अभियान–११७ (=चढाई)।
अभिरूप–४५, ४६, ५२ (=सुदर)।
अभिविनय–३००, ३१२ (=विनयमे)।
अभिसञ्ज्ञा–६९ (=सञ्ज्ञाकी चेतना)।
अभिसञ्ज्ञा निरोध–६८ (समाधि)।
अभिसम्पराय–१२६ (=परलोक)।
अभिषेक–३८।
अभीक्ष्ण–१२० (=बार बार)।
अभूत–६१ (=असत्य)।
अभेद्य–२६८ (=न फूटनेवाला)।
अभ्याख्यान–२९४ (=निन्दा)।
अमनुष्य–४९ (देव, भूत आदि), १७३ (=देवता), २४७, २८०।
अमराविक्षेपवाद–९, १०।
अमात्य–१९, ५१, ५२ (अधिकारी), ५३, १८३ (=मत्री), २३५ (=मत्री)।
अमूढ विनय–२९६।
अय कूट–३७ (=लोहखड)।
अय्यक–२७५ (=मालिक)।
अरक्षणीय–(तीन) २८४ (तथागतके)।
अरणी–२०६।
अरूप–७३ (=अभौतिक)।
अरूपभव–१११ (=निराकार लोक)।
अरोग–२५९ (=परमसुखी)।
अर्घ्य–१७२।
अर्थाचर्या–२६३ (=उपकार), २७५ (=काम कर देना)।
अर्थदर्शी–१६९।
अर्थाख्यायी–२७४ (=हितवादी)।
अर्थिक–५१ (=मँगता)।
अर्थी–३५ (=याचक)।
अर्धकर्म–(केवल मानसिक कर्म)।
अर्हत्–३४, ५४ (=मुक्त), ९६, १००, १४५, १८१, २१७, २४९, २५७, २७७।
अर्हत-धर्म–(दश) ३०१।
अर्हत्व–८४।
अल्पआतंक–११७ (=नीरोग)।
अल्पारम्भ–५४ (=अल्प क्रियावाला)।
अवदात–१२८ (=सफेद)।
अवद्य–२३४।
अवनद्ध–८९ (=बँधा)।
अवरभागीय–१६० (सयोजन)।
अवरभागीय संयोजन–५८ (=यही आवगमनमे फँसा रखनेवाले बन्धन)।
अवरभागीय सयोजन–१२६।
अवरभागीय सयोजन–२५७ (=इसी ससार फँसा रखनेवाले बन्धन)।
अवरभागीय सयोजन–(पाँच) २९०।
अवरुद्ध–२८० (=बागी)।
अविद्या–३२ (अज्ञान)।
अविद्या–३०३।
अविद्या–३०३।
१।७७ अविशेषार्थसामान्य।
अव्यक्त–४४ (=अज्ञ)।
अव्याकृत–७१ (=कथनका अविषय)।
अव्याकृत–७२।
अशनि–१३७ (=विजली)।
अशैक्ष्य-धर्म–(दश) ३०१।
अशैक्ष्य-धर्म–(दश) ३१४।
अश्वयुद्ध–३।
अश्वयुद्ध–२५।
अश्वलक्षण–२६।
अश्वारोहण–१९ (शिल्प)।
अष्टकुलिक–११८ टि० (राजकीय अधिकारी)।
अष्टपाद–३ (एक जुआ)।
अष्टपाद–२५ (जुआ)।
अष्टांगिकमार्ग–१३४।
अष्टांगिकमार्ग–१४५।
अष्टागिकमार्ग–१७५।
अष्टागिकमार्ग–१९७।
अष्टागिकमार्ग–२४७, २५५।
अष्टागिकमार्ग–(८) ३०९।
असञ्ज्ञी–६८ (=सञ्ज्ञारहित)।
असञ्ज्ञी–११६ (-सत्व)।

असंज्ञी सत्व-१० (=सञ्ज्ञासे रहित)।
असंज्ञी सत्व-२२४।
असद्धर्म-(सात) २९५, ३०७।
असिलक्षण-४ (शुभाशुभ फल)।
असिलक्षण-२६।
अस्तगमन-११६ (=विनाश)।
अहिच्छक-२४२ (=नागफनी)।
अहिंसा-२८३।
आकाश-३ (एक जुआ)।
आकाश-२५ (जुआ)।
आकाश-आनन्त्य-आयतन-६९।
आकाश-आयतन-११५ (=योनि)।
आकिंचन्य-६९ (=न कुछ पना)।
आकिंचन्य आयतन-१३।
आकिंचन्य-आयतन-६९।
आकिंचन्य-आयतन-११६ (योनि)।
आक्षेपकर्ता-२९१ (के पाँच धर्म)।
आख्यायिका-६७।
आख्यायिका-२२६ (-भेद)।
आगमज्ञ-१३५ (=आगमोको जाननेवाला)।
आघातप्रतिविनय-(नव) २९८।
आघातप्रतिविनय-३११ (=द्रोह हटाना)।
आघातप्रतिविनय-(नव) ३११।
आघातवस्तु-(नव) २९८।
आघातवस्तु-(नव) ३११।
आचार्यक-१३० (=सिद्धान्त)।
आचार्यक-२२२ (=मत), २२३।
आचार्यक-२२५ (=मत)।
आचार्यक-२२७ (=मत)।
आचार्यमुष्टि-१२९।
आजानुबाहु-२६५।
आज्ञा-१४४ (=परमज्ञान), १९८ (अर्हत्व)।
आढ्य-४९।
आणि-२७६ (=नाभी)।
आत्मद्वीप-२३१ (=स्वावलंबी), २३८।
आत्मभाव-२५० (=योनि)।
आत्मभावप्रतिलाभ-(चार) २८९ (=शरीर प्राप्ति)।
आत्मवाद-११३, ११४, ११५, २५९।
आत्मवाद-उपादान-१११ (आत्माकी नित्यतामे आसक्ति)।
आत्मा-६ (नित्य) ११, १२ (का उच्छेद), ७०, ११३ (का आकार)।
आदिकल्याण-२३, ३४।
आदिनव-११६ (=दुष्परिणाम), १२१, २९१ (पाँच)।
आदिब्रह्मचर्य-७२।
आदीप्त-३७ (=प्रज्वलित)।
आदेयवाक्-२६८।
आदेशना प्रातिहार्य-७९।
आदेशनाविधि-(चार) २४७-४८।
आधानग्राही-१९४ (=हठी)।
आधिचैतसिक-२५१।
आधिपत्य-(तीन) २८५ (=स्वामित्व)।
आनन्तरिक चित्त-समाधि-३०२।
आनापान-१९०।
आनुपूर्वी-१०७ (=क्रमानुकूल)।
आनुपूर्वीकथा-५५।
आनृशंस्य-(=गुण)। १२२ (=फल), २९१ (पाँच)।
आभास्वर-३११।
आमगन्ध-१७३।
आमिष-१९२ (=भोगपदार्थ), २७५ (खान-पानकी वस्तु)।
आयतन-१९४ (सविस्तर-), १९४ टि० (आध्यात्मिक बाह्य बारह), १९५ (=इन्द्रिय और विषय), २८३ टि० (बारह), २९३ (अध्यात्म बाह्य), ३१३ (दश)।
आयतपार्ष्णि-२६०।
आयुध-(तीन) २८५।
आयुध लक्षण-४ (शुभाशुभ फल)।
आयुप्रमाण-९६।
आयुसंस्कार-१२९, १३१ (=प्राणशक्ति)।
आरक्षा-१११ (=हिफाजत)।
आरब्धवस्तु-(आठ) २९७, ३०९।

आरब्धवीर्य–१२१ (=उद्योगी), २९१ (=यत्नशील), ३१३।
आराम–४२ (=बगीचा)।
आरूप्य–(चार) २८६।
आर्जव–२८३ (=सीधापन)।
आर्य–२७ (=उत्तम), २९ (=पडित), १२१, १२७।
आर्य अष्टांगिकमार्ग–५८।
आर्य-आयतन–१२५ (=आर्योका निवास)।
आर्यक–२७५ (=मालिक)।
आर्यधन–(सात) २९५, ३०७।
आर्यधर्म–३३ (=बौद्धधर्म), १६४।
आर्यपुत्र–३६ (=स्वामियुक्त), ३७।
आर्यवश–२८७ (चार)।
आर्यवास–(दश) ३०१, ३१३।
आर्यविनय–८९ (=बुद्धधर्म)।
आर्यव्यवहार–(दो चतुष्क) २८९, २९०।
आर्यसत्य–१९५, ९८, ३०४ (चार)।
आर्षभी–१२२ (=वळी), २४६।
आलय–१०५ (=भोग)।
आलारिक–१९ (=बावर्ची)।
आलोप–२६९ (=लूटना)।
आवरण–११९ (=रक्षा), २६२।
आवसथ–१२५ (=डेरा), २९७ (=निवास)।
आवसथागार–१२३ (=अतिथिशाला)।
आवास–१३५, २०६ (=टिकनेका स्थान)।
आवाह–३९।
आविल–३१३ (=मलिन)।
आवुस–६०, ६२ (=बाबू)।
आवृत–८९ (=ढँका)।
आस्तरण–२६४ (=बिछौना)।
आस्तिकवाद–२१ (=आत्मा है)।
आस्रव–३२ (=चित्तमल तीन), १०५, १२२ (काम, दृष्टि, भव), १२६, २३९, २४७, २८४ (तीन)।
आस्रवक्षय–८५।
आस्रवरहित–२७७ (=अर्हत्)।
आस्वाद–७ (=रस)।
आहवनीय–२८४ (अग्नि)।
आहार–७०, २८२, ३०२, २८८ (चरा), ३०४ (चार)।
आह्वान–८९ (देवताओका)।
इति भवाभव–६७ (ऐसा हुआ ऐसा नही हुआ)।
इन्द्रजाल–५, २७।
इन्द्रिय–१०६ (=प्रज्ञा), १३४, १५८ (=शरीर), २४७ (पॉच), २५५, २८५ (तीन), २९२ (तीन पचक), ३०५ (पॉच)।
इन्द्रिय सवर–२७।
इब्भ–(=इभ्य) २४०।
इभ्य–३५, ३६, ४० (=नीच)।
ईर्यापथ–१९१ (का रूप)।
ईश्वर–७, ८ (सृष्टिकर्ता ब्रह्मा), १२० टि० (=मालिक), १८० (=स्वामी), २२२ (सृष्टिकर्ता)।
ईहन–१७ टि० (=प्रयत्न)।
उग्र–१९।
उच्चार–१९१ (=पाखाना)।
उच्छेद–१२।
उच्छेदवाद–२०३ (=जडवाद, अजित केश कम्बलका)।
उत्कोटन–२६९ (=रिश्वत)।
उत्तरितर–२५ (=उत्तम)।
उत्थान–२७५ (=तत्परता)।
उत्पल–२९, १०६।
उत्पादविद्या–४।
उत्पादनीय धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३१२, ३१४।
उत्पीडा–५०।
उत्सग–१७ टि० (=ओइछा)।
उत्संगपाद–२६३।
उदककृत्य–९९ (=प्रक्षालन)।
उदय–१०५ (=उत्पत्ति)।
उदान–१९ (=प्रीतिवाक्य), २८९ (चित्तोल्लाससे निकला वाक्य)।
उदार–१३ (=स्थूल), ६९ (=विशाल), १२२ (=वळा), २४६।

उद्यानपाल-१०६।
उद्यानभूमि-१०१, १०२, १०३, १५५।
उन्नाद-३७ (=कोलाहल)।
उपकरण-५० (=साधन)।
उपकारकधर्म-(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०७, ३०८, ३११, ३१२।
उपक्लेश-१२३ (=चित्तमल), २२८ (=मल)।
उपनाही-२९८ (=पाखंडी)।
उपमा-२०१ (=उदाहरण)।
उपराज-११८ टि०
उपलाप-११९ (=रिश्वत)।
उपविचार-२९३ (सौमनस्य, दौर्मनस्य, उपेक्षा)।
उपशम-७१ (=शान्ति), १७५ (=परम-शान्ति), २५८।
उपशमसवर्तानिक-२५२ (=शान्तिगामी), २५८, २८२ (=शान्तिप्रापक)।
उपसहार-१७८ (=समझना)।
उपसेचन-८१ (=सेवन)।
उपस्थाक-५६ (=हजूरी), ९६ (=सह-चर), १४२ (=चिरसेवक)।
उपस्थान-२७५ (=हाजिरी, सेवा)।
उपादान-१० (=ससारकी ओर आसक्ति), १८, १०४ (=भोग-ग्रहण), ११० (=आसक्ति), १११ (काम, दृष्टि, शीलव्रत, और आत्मवादके), २८९ (चार)।
उपादानस्कध-१०५, १९३, १९५, २९०, ३०४ (पाँच)।
उपादि-१३९ (=आवागमनका कारण)।
उपाधि-२५० (=आस्रव, चित्तमल)।
उपायास-११० (=परेशानी), १९६ (का रूप)।
उपासक-४७, ५५, ९२, १३८।
उपासक श्रावक-२५४ (=गृहस्थ शिष्य)।
उपेक्षा-२९ (=अन्य मनस्कता), १५७, २३०।
उपेक्षा-उपविचार-२९३।
उपोसथ-१७ (=पूर्णिमा), २३४।
उब्भतक-२८१ (=ऊँचा)।
उभयतो भाग विमुक्त-११६ (=नामरूपसे मुक्त)।
उभयतो भाग विमुक्त-२४८।
उभयाश-५७ (=दो तर्फी)।
उलुम्प-१२५ (=बेळा)।
उल्का-४२ (=मशाल)।
उल्कापात-५।
उल्लूका पख-६३।
उष्णीष शीर्ष-१००, २६१।
उस्सखपाद-१०० (ऊँची गुल्फवाला), २६०, २६३ (=सत्मगपाद)।
ऊर्ध्वभागीय सयोजन-२९० (पाच)।
ऊर्ध्वविरोचन-२७।
ऋजु गात्र-१०० (=अकुटिल शरीर)।
ऋण-२८।
ऋतुनी-२४० (=ऋतुमती)।
ऋद्ध-१३१ (=उन्नत)।
ऋद्धि-३०, १३७, १५५ (चक्रवर्तीका चार), १६६, २५०।
ऋद्धिपाद-१३० (=योगसिद्धि), १३४, १६४ (चार), २३९ (चार), २४७, २५५ (चार), २८४ (चार)।
ऋद्धि प्रातिहार्य-७८ (=ऋद्धियोका प्रदर्शन)।
ऋद्धिवल-७८ (=दिव्यशक्ति), २१५-२०, २२२।
ऋद्धिभावना-२६२।
ऋद्धिविध-२५० (=दिव्यशक्ति), २५१।
ऋषि-८७।
एकाशिक-७२।
एकैकलोम-२६७।
एणीजघ-२६०, २६४।
एषणा-(तीन) २८४ (=राग)।
एहिपश्यिक-१६५।
एहिपस्सिक-१२७ (=यही दिखाई देनेवाला)।
ओघ-(चार) २८९ (=बाढ), ३०४।
ओज-१८८।
ओवाद परिकार-५१।
औदारिक-७०, ७३ (=स्थूल)।

औद्धत्य–२८।
औद्धत्य-कौकृत्य–८९ (=उद्धतपना और खेद), १९३ (उद्वेग और खेद)।
औपनयिक–१२७ (=निर्वाणके पास ले जाने-वाला), १६५।
औपपातिक–१०, २१, २२ (=अयोनिज), ५८ (=देवता), १६०, १६५, १७५, २४९, २८९ (=अयोजिन)।
कच्छप–४ (लक्षण)।
कण–६३।
कथा–२५, ६७ (के भेद) १०७ (दान-शील-स्वर्गकी), २२६ (के भेद)।
कथावस्तु–(तीन) २८५ (=कथाविषय)।
कथा। व्यर्थ–४।
कदलिमृगकी खाल–३ (बिछौना), २५।
करणीय–११८ (=कर्तव्य)।
करविक–२६१।
करविकभाषणी–२६८।
करुणा–(भावना) ९१, १५७।
कर्णिका लक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
कर्म–(चार) २८९।
कर्मकर–५२ (=कमकर, नौकर)।
कर्मक्लेश–(चार) २७१।
कर्मपथ–३०० (कुशल, अकुशल)।
कर्मान्त–२७५ (काम)।
कर्मार–२८१ (=सोनार)।
कलम्बुक–२४२ (=सरकण्डा)।
कल्पक–१९ (=हजाम)।
कल्याण–४३ (=सुन्दर), १०८ (आदि-मध्य-पर्यवसन-), २७५ (-भलाई)।
कल्याणधर्म–२०३ (=पुण्यात्मा)।
कल्याण वाक्करण–४९ (=सुवक्ता)।
कवलिंकार–७०, ७३ (=ग्रास ग्रास करके खाना)।
कवि–३४, ४६।
कवितापाठ–५, २६।
कंस–२६९ (बटखरा)।
काकपेया–८९ (=करारपर बैठकर कौआ भी जिसका पानी पी ले)।
कांक्षा–१४४ (=संशय), १४६ (=सन्देह), २५१, २८४ (तीन)।
काजी–६३।
कान्तार–२८ (मरुभूमि), ९० (=वीरान), २०७।
काम–२८, १११ (=भोग), १५३, २३९, २७१ (=स्त्रीसंसर्ग)।
काम-आस्रव–३२ (भोगोकी इच्छा)।
काम-उपपत्ति–(तीन) २८४।
काम-उपादान–१११ (=भोगोमे आसक्ति)।
कामगुण–१३, २२, ८९, ९८ (=भोग), १०१, १०२, १६९, २२९, २९० (पाँच)।
कामच्छन्द–८९ (=भोगकी इच्छा) १०९, १९३ (=कामुकता)।
कामभव–१११ (पार्थिव लोक)।
काय–८९ (=त्वक् इन्द्रिय)।
काय–२९३ (=समुदाय)।
कायगत स्मृति–३०२।
काय समाचार–१८६ (=कायिक आचरण)।
कायसाक्षी–२४८।
कायस्पर्श–१११।
कायानुपश्यना–१९०।
कायानुपश्यी–२३३, २३९।
कालवादी–२६९।
किंचन–(तीन) २८४ (=प्रतिबन्ध)।
कुक्कुट सम्पातिक–२३८ (=ऐसे एकसे एक मिले घर कि मुर्गा छतसे छतपर होता चला जाये)।
कुटी–१६ टि०
कुद्रूस–२३७ (=कोदो)।
कुवळा–२०४।
कुमार लक्षण–४, २६।
कुमारी लक्षण–४ (=शुभाशुभ फल)।
कुम्भकार–१९।
कुम्भ थूण–२७२ (बाजा)।
कुम्भस्थान–६७ (=पनिघट), २२६।
कुल्ल–१२५ (=कूला)।

कुशल-४९ (=अच्छा)।
कुशल कर्मपथ-२३७ (=सदाचार), ३००, ३१३ (दश)।
कुशलता-२८३ (=चतुराई)।
कुशलधर्म-१८३ (=अच्छाई), १९७ (=सुकर्म), २३०, २३८ (=सुकर्म)।
कुशल मूल-२८३ (=भलाइयोंकी जळ), ३०३ (तीन)।
कुशल वितर्क-२८३।
कुशल-समीक्षा-२७८ (=भलाई चाहनेवाला), ३०३।
कुमीत (आठ) २९६, ३०९।
कूट-२६९ (=ठगी)।
कूटस्थ-६ (आत्मा), २४९।
कूटागार-१५७।
कृत्स्नायतन-(दश) ३००, ३१३।
कृपण-२१० (=गरीब)।
कृपणता-१७३।
कृष्णधर्म-२९५ (=पाप)।
केटुभ-३४ (=कल्प), ४६।
केदार-१२० टि० (=क्यारी)।
केवल-११० (सम्पूर्ण)।
कोळा-४१।
कोश-५१, ५२।
कोषाच्छादित-१०० (चमळेसे ढका), २६०।
कोषाच्छादित वस्तिगुह्य-२६५।
कोषाध्यक्ष-२६२।
कोष्ठागार-५१, ५२।
कौकृत्य-१९३ (=खेद), ३०४ (=हिचकिचाहट)।
कौमुदी-१६ (आश्विन पूर्णिमा)।
कौशल्य-(तीन) २८५।
क्रीडाप्रदूषिक-८ (देवता)।
क्लेश-१०६ (=चित्तमल), १७५, २२८ (=मैल), २७० (पापका मालिन्य)।
क्षत्ता-४४ (=प्राइवेट सेक्रेटरी), ४८, १९९।
क्षमा-१०८।
क्षत्रिय-१७९, २४० (वर्ण)।
क्षान्ति-७० (=चाह), १५० (=क्षमा)।
क्षीण-१०८ (=नष्ट)।
क्षीणास्रव-१६८ (=अर्हत्), २४५।
क्षुरप्र-८ (=वाण)।
क्षेत्रविद्या-४, २६।
क्षौम-१५७ (=) अलसीका कपडा), २०९ (=अलसीका सन)।
खलिक-३, २५ (जुआ)।
खली-६३।
खाडित्य-१९५ (=दाँत टूटना)।
खुन्सेन्तो-३५ (खुन्साते)।
गण-११७ टि० (=प्रजातत्र)।
गणक-१९, २६७ (=एकौन्टेंट)।
गणना-५।
गणाचार्य-४९।
गणिका-१२८।
गणी-४९।
गतात्मा-२१ (=अतिच्छुक)।
गति-१६० (=परलोक), २९० (पाँच)।
गन्ध-(चार)—२८९।
गन्धतृष्णा-१११।
गरुड-१७९
गर्भ-अवक्रान्ति-२८९ (=गर्भप्रवेश)।
गर्भपुष्टि-५,२६।
गर्भप्रवेश-२४७, २८९ (चार)।
गहनी-२६६ (=पाचनशक्ति)।
गान्धारी विद्या-७८।
गार्हपत्य-२८४ (अग्नि)।
गिंजका-१६१ (=ईंट)।
गीतमण्डल-२५।
गुप्ति-११९ (=रक्षा), २६२।
गुरुकरणीय-५० (=सत्करणीय)।
गुरुकार-११८ (=सत्कार), २७१।
गुरुकुल-३५।
गुल्फ-२६३ (=घुट्ठी)।
गूथकूप-२०१ (=सडास)।
गृहपति-४५ (=गृहस्थ), ५१, १४३, १५४, १७५ (वैश्य)।

गोघातक— १९२।
गोचर—२२१ (=शिकार)।
गोत्र—३६।
गोत्रवाद—३९।
गोपक्ष्म—२६१, २६६।
गोलक्षण—४ (शुभाशुभ फल)।
गोहलक्षण—४।
गौरव (छै) २९३, ३०६।
ग्रहण—५, २६ (चद्र सूर्य नक्षत्रके)।
ग्रहणी—२९१ (=पाचनशक्ति)।
ग्राम—७३।
ग्रामघात—५० (=गाँवोकी लूट)।
ग्रीष्म—१०१ (ऋतु)।
ग्लान प्रत्यय भैषज्य—२५६ (=पथ्य औषध, का प्रयोजन)।
घटिक—३, २५ (जुआ)।
घातयिता—२१।
घ्राण स्पर्श—१११।
चक्र—(४) ३०३।
चक्ररत्न—१५२, २३४-३५।
चक्रवर्तीव्रत—२३५।
चक्रवर्ती—९९, १४१।
चक्षु—२७ (=आँख), १०६ (बुद्ध), १०७ (धर्म), २८५ (तीन)।
चक्षुमान—१४१ (=बुद्ध)।
चक्षु स्पर्श—१११।
चक्रम—४१ (=टहलना)।
चर्म—१९ (=ढाल)।
चलक—१९ (व्यूहरचना)।
चतुरंगिनी—५१ (सेना), ५२, १५४।
चतुष्पद—११० (=चौपाया)।
चद्रग्रहण—५।
चातुर्महापथ—७३ (=चौरस्ता)।
चातुर्यामसंवर—२१ (निगण्ठनाथपुत्तका), २२९ (=चार सयम), २३०।
२२१ (=चार सयम), २३०।
चारिका—१०८।
चिकित्सा—२७।
चितान्तरांस—२६६।
चित्त—३१ (के भेद)।
चित्तविनिबन्ध—२९२।
चित्तसमाधि—६, २३९, ३०२ (आनन्तरिक)
चित्तसम्पत्ति—६४।
चित्तानुपश्यना—१९३ (का रूप)।
चिन्तामणि विद्या—७९।
चिंलिगुलिक—३, २५ (जुआ)।
चीवर—३९, ४३, ९१, १९१ (भिक्षुवस्त्र), २५६ (का प्रयोजन)।
चेत. परिज्ञान—१२३ (=परचित्तज्ञान), २४६।
चेतोखिल—(पाँच) २९२, ३०४।
चेतोविमुक्ति—१७५, २४७।
चेलक—१९ (=युद्धध्वज)।
चैत्य—११९ (=चौरा), १४८ (देवस्थान)।
चोदनावस्तु (तीन) १८४ (=दोषारोप)।
चोर—११८ टि० (=अपराधी), २०३।
चोर। महा—२८० (=डाकू)।
चोरी—२३५ (की वृद्धि), २३६।
च्युत—११३ (=मृत)।
च्युति—६१ (=मृत्यु)।
छन्द—१८६ (=चाह), १९७ (=इच्छा), २९५ (अनुराग)।
छन्दराग—१११ (=प्रयत्नेच्छा), ११२।
छन्दसमाधि—२३९।
छवि—१४९ (=झिल्ली), १५८ (=चर्म)।
छारिका—१४९ (=राख)।
जटिल—२०६ (=जटाधारी), २०७।
जडवाद—२० (=उच्छेदवाद, अजितकेश कम्बलका)।
जनपद—४ (=दीहात), २५, ३८ (=देश), ५०, १०३, २०६ (=दीहात)।
जनपद कल्याणी—७३ (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) ८८।
जनश्रुति—२५।
जन्मान्ध—२०२।
जरा—१०४, ११०, १९५ (का रूप)।
जाति—४५ (=जन्म), ४६, १०४, ११०, १९५।

जातिवाद–३९।
जादू–(देखो विद्या)।
जानपद–५, ५१ (=ग्रामीण), ५२, २६२ (=दीहाती सभासद्), २६७।
जालहस्तपाद–१००।
जिह्वा–१११ (-स्पर्श)।
जीर्ण–४९ (=वृद्ध)।
जीव–५८, ५९।
जुआ–३, २५ (के भेद)।
जुआरी–२०८।
जेल–२८।
ज्ञाति–६७ (=कुल), २२६।
ज्ञान–(दो चतुष्क) २८७, ३०४, ३०३ (दो) ३०३ (तीन), ३०४ (चार)।
ज्ञान दर्शन–६४, २८६ (=साक्षात्कार)।
ज्योतिषफल–५।
ज्योतिषी–१०२।
तत्पापीयसिक–२९६।
तथाकारी–२५८।
तथागत–(=बुद्ध) ५, १४, १५, ७१ (मरनेके वाद), ७७ (जब ससारमें)।
तथ्य–७२ (=यथार्थ)।
तनु–५७ (=निर्बल), १६० (-कमजोर)।
तप–२२८-३० (का वल)।
तप-ब्रह्मचारी–६५।
तपश्चरण–६१।
तपस्या–४० (के भेद), ६२-६३ (नाना भेद)।
तपो जुगुप्सा–२२७ (=तपोकी निन्दा)।
तर्क–८ (=न्याय)।
तर्कावचर। अ–५ (तर्कमें न जाना जानेवाला)।
तापनगेह–१६ टि० (=लोहारखाना)।
तार्किक–११।
तिणवत्थारक–२९६।
तितिक्षा–१०८।
तिरश्चीन कथा–४ (व्यर्थकी कथा)।
तिर्यग् योनि–३१० (=पशु पक्षी आदि)।
तीर चलानेकी वाजी–३ (एक जुआ)।
तीर्णविचिकित्स–१६८ (=सन्देहरहित)।
तीर्थ–६८ (=पन्थ), १२५ (=घाट)।
तीर्थंकर–१७, ४९ (=सप्रदाय-स्थापक)।
तीर्थिक–२२६ (=मतवाला)।
तुच्छ–८८ (=रिक्त, व्यर्थ)।
तुषोदक–६२ (=चावलकी शराव)।
तृष्णा–१४ (से उपादान), १०४, १११ (छ), १८७, १९६ (के भेद), १९७, २८४ (दो त्रिक), ३०३ (तीन)।
तृष्णा-उत्पाद–(चार) २८८।
तृष्णाकाय–(छै) २९३, ३०६।
तृष्णामूलक धर्म–(९) ३११।
तेजो धातु–२२२ (=अग्नितत्व)।
त्रैविद्य–४१ (=त्रिवेदी), ८७, ८८, ९०।
त्वक्–१९१ (=चमळा)।
दक्षिण–२८४ (अग्नि)।
दक्षिणा–१२५ (=दान)।
दक्षिणाविशुद्धि–(चार) २८९।
दक्षिणेय–(सात) २९६।
दक्षिणेय पुद्गल–(आठ) २९६।
दण्ड लक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
दत्तादायी–२ (दी गई चीजको लेनेवाला)।
दन्तकार–३० (हाथीके दाँतका काम करने-वाला)।
दन्धा–२४८ (=धीमी)।
दम्य सारथी–३४ (=चावुक मवार)।
दर्पण–५ (पर देवता बुलाना), ३१।
दर्भ–५२ (=कुश)।
दर्शन–५८ (=ज्ञान), २५७।
दर्शनसमापत्ति–(चार) २४८।
दशपद–३, २५३ (जुआ)।
दस्यु–५० (=डाकू)।
दस्युकील–५० (=लूट-मार)।
दहर–१२८ (=तरुण)।
दान-उपपत्ति–(आठ) २९७ (उपपत्ति= उत्पत्ति)।
दानपति–५१ (=दायक)।
दानवस्तु–(आठ) २९७।
दाय–१०३ (=नर्का)।

दायज्ज–३४, २७४ (=वरासत)।
दास–२४, २८, ४१, १८४।
दासपुत्र–१५।
दासलक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
दासी लक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
दिव्य ओज–१८८।
दिव्यचक्षु–३१, ३२, ४०, ६१।
दिव्य रूप–५७।
दिव्य शब्द–५७।
दिव्यश्रोत्र–९५।
दिशादाह–५, २६।
दीर्घरात्र–१४२ (=चिरकाल), २८१।
दुःखक्षय–३२।
दुःखता–(तीन) २८४।
दुःखनिरोध–३२।
दुःख-समुदय–३२ (=दुःख का कारण)।
दुराख्यात–२५२ (=ठीकसे न कहागया)।
दुर्वचन–३०३।
दुर्वर्ण–२४२ (=कुरूप)।
दुष्प्रतिवेध्य धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३११, ३१३।
दुष्प्रवेदित–२५२ (=ठीकसे न साक्षात्कार किया गया)।
दुष्कृत–१३३।
दुष्प्रज्ञ–३६ (=अपडित)।
दुःशील–१२४ (=दुराचारी)।
दुश्चरित–(तीन) २८३।
दुस्स–१४७ (=थान)।
दूतकर्म–४, २६ (के भेद)।
दृष्टजन्म–१७२ (=इसी जन्ममे)।
दृष्टधर्मनिर्वाण–१३, १४ (इसी जन्ममे निर्वाण)।
दृष्टधार्मिक–२५६ (=इसी जन्ममे)।
दृष्टि–३१ (=सिद्धान्त), ३२ (सम्यग्), ७० (=धारण), ७३ (=वाद, मत), ११३, २४५।
दृष्टि-उपादान–१११ (=धारणामे आसक्ति)।
दृष्टिप्रतिवेध–२९६ (=सन्मार्ग दर्शन)।
दृष्टिप्राप्त–२४८।
दृष्टिविपत्ति–२८३ (=सिद्धान्तदोष)।
दृष्टि विशुद्धि–२८३ (=सिद्धान्तकी शुद्धता), सम्यग् दृष्टिका निरन्तर अभ्यास)।
दृष्टि स्थान–११ (=सिद्धान्त)।
देव–१०२ (=राजा)।
देवता–५ (बुलाना)।
देवपुत्र–९९।
देववाहिनी–५ (जिस स्त्रीके ऊपर भूत आता हो), २७।
दैववाद–२० (मक्खलिगोसालका)।
दोहद–१६ (=सधोर)।
दौर्मनस्य–१४, ११० (=मन सन्ताप), १६५ (=मनकी अशान्ति), १८६ (=चित्त-का खेद), १९० (=दुःख), १९६ (=मानसिक दुःख)।
दौर्मनस्य-उपविचार–२९३।
दौवारिक–२६७ (=द्वारपाल)।
द्यूतप्रमाद स्थान २७२।
द्रोण–२० (एक नाप)।
द्रोणी–१४८ (=कळाही)।
द्वारपाल–२३५, २६२।
द्वीप–१५७ (=चीता)।
धनुष–१५५ (=चार हाथ)।
धनुर्ग्रह– १९।
धनुष लक्षण ४ (धनुष का शुभाशुभ फल)।
धर्म–५४ (=परमतत्त्व), १०४ (=विषय), १११ (=मनका विषय), १२७ (की अनुस्मृति), १३५ (=सुत्त), १४२ (=बात), १६५ (-अनुस्मृति), १९२ (=स्वभाव), १९३ (नीवरण, स्कन्ध, आयतन, बोध्यंग, आर्यसत्य), १९४ (=वस्तु), स्वभाव, पदार्थ, मनका विषय), २३७ (=बात), २५५ (=बुद्धवचन), २८८ (-अनुस्मृति)।
धर्म-अन्वय–१२३ (=धर्म-समानता), २८६।
धर्मकाय–२४१ (=बुद्ध)।
धर्मचक्र–१३१ (=धर्मोपदेश)।

धर्मचक्षु—३३ (=धर्मज्ञान), १०७।
धर्मतृष्णा—१११ (=मनके विषयकी तृष्णा)।
धर्मदायाद—२४१।
धर्मदीप—१३०।
धर्मधर—१३३ (=सूत्रपाठी), १३५।
धर्मनिर्मित—२४१।
धर्मपद—(चार) २८८।
धर्मपर्याय—१२७ (=उपदेश), २५९।
धर्मविचय—१९५ (=धर्म-अन्वेषण), २४८ (=सम्बोध्यग)।
धर्मविनय—४ (=मत), २५, २१६, २५२, २८८ (=मत, धर्म)।
धर्मसमादान—(चार) २८२।
धर्मस्कन्ध—२८९ (चार), ३०५ (पाँच)।
धर्मानुधर्मप्रतिपन्न—१६८ (=धर्मके अनुसार मार्गपर आरूढ)।
धर्मानुपश्यना—१९३ (का रूप)।
धर्मानुसारी—२४८।
धातु—७९ (पृथिवी, जल, तेज, वायु), १९२, २८३ (चार त्रिक), २८३ टि० (अठारह), २८३, २८४ (तीन त्रिक), २८८ (चार), २९४ (छै), ३०३ (दो), (तीन)।
धातुमनसिकार—१९२।
धारणा—५ (मत)।
धुतपाप—२१ (=पापरहित)।
धोपन—३, २५ (खेल)।
ध्यान—(चार) २३, २८, २९, ४०, ४७, ५४, ५५, ५८, ५९, ६४, ६८-६९, ७९, १४६, १४७, २३९, २८६।
ध्यायक—२४४ (की व्युत्पत्ति)।
ध्रुव—८।
नक्षत्र—५ (विवाह आदिमें), २६ (वतलाना)।
नक्षत्रग्रहण—५।
नगर—७३।
नगरक—१४३ (= नगला)।
नग रूपकारिका—४१ (=नगररक्षाके स्थान)।
नदिका—१३७ (=छोटी नदी)।
नन्दी—१९६ (=राग)।
नरक—१२४।
नरक प्रपात—८५ (=नरकका खड्ड)।
नलकार—१९।
नवकतर—१४६ (=छोटा)।
नवनीत—७५।
नहापक—१९ (=नहलानेवाला)।
नागआवास—२०।
नागावलोकन—१३५।
नाटक—२५।
नाथकरण धर्म—(दश) ३००, ३१२।
नानात्म—१२ (=नाना शरीर)।
नानात्व—३११।
नानात्वसज्ञा—६९।
नानाभाव—१५८ (=वियोग)।
नाम—३०३।
नामकाय—११२ (=नाम-समुदाय)।
नामरूप—१०४, ११०, ११२, ११३।
निकति—३ (सोना चाँदी वनाना), २६९ (=कृतघ्नता)।
निगण्ठ—२१ (=निर्ग्रन्थ)।
निगम—७३, १०३ (=कस्बा), ११०।
निग्रहस्थान—२८२।
निघण्टु—३४, ४६।
नित्य—६ (आत्मा और लोक), ७, ८।
नित्यताऽनित्यता वाद—७।
निदान—१११ (हेतु), ११२, १८५ (=कारण)।
निधानवती—२६९ (=भावपूर्ण)।
निधि—१५४।
निपुण—६१ (=पडित)।
निमित्त—११२ (=लिग)।
नियत—५७।
निरय—४२ (=नरक)।
निरुक्ति—७५ (=वचन-व्यवहार), ११३ (=भापा), ११५ (=भापा)।
निरुद्ध—६८, ११४ (=विनप्ट, विगत, विलीन)।
निरोध—७१, १०४ (=विनाग), १०५, १८६।

निरोध धर्म–४३, १०७ (=नाश होनेवाला)।
निर्जरवस्तु–(दश) ३१४।
निर्देशवस्तु–(सात) २९५, ३०७।
निर्वाण–५८, ७१, ८१ (मे चारो भूतोका निरोध), ९७, १०५, १०७, १०८, १६७।
निर्विण्ण–२८२ (=विरक्त)।
निर्वृति–११।
निर्वेद–७१ (=उदासीनता), १८८, २५६ (=विराग)।
निर्वेधभागीय सञ्ज्ञा–(छै) २९५।
निर्वेधिक–२९१ (=अन्तस्तल तक पहुँचने-वाला), ३१३।
निवृत–८९ (=ढँका)।
निष्कामता–४३ (=भोगत्याग), २८३।
निष्क्रमण–११९ (=निकालना)।
निष्पाक–२९६ (=परिपाक)।
निष्पुरुष–१०१ (=केवल स्त्री)।
निस्सरण–११६ (=छूटनेका मार्ग)।
नि सरणीय धातु–(पाँच) २९२ (पाँच), २९४, ३०३ (तीन), ३०६ (छै), ३०५ (पाँच)।
निहीन–३९ (=नीच)।
नीवरण–२८, ८९ (पाँच कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्यकौकृत्य, विचिकित्सा), ६८ (पाँच), ८९ (=आवरण), ९०, १०७, १९३ (का रूप), २३० (पाँच), २४७ (पाँच), २९० (पाँच), ३०४ (पाँच)।
नीवार–६३ (=तिली)।
नृत्य–२५।
नेचयिक–५१ (=धनी), ५२, ५३।
नेमि–१५३ (=पुट्ठी)।
नैगम–५१ (=नागरिक), ५२, २६२ (= नागरिक सभासद्), २६७।
नैमित्तिक–९९ (=ज्योतिषी)।
नैरयिक–२१६ (=नारकीय)।
नैर्याणिक–१२१ (=पार करानेवाला), २५२ (=पार लगानेवाला), २५३ (=मुक्ति-की ओर ले जानेवाला)।
न्याय–८ (=तर्क) १९० (=सत्य), १९८।
पगचिर–३, २५ (जुआ)।
पतोद लट्ठी–४७ (=कोळेका डडा)।
पत्ताल्हक–३, २५ (जुआ)।
पदक–४६ (=कवि)।
पदज्ञ–३४ (=कवि), ४६।
पद्म–२९।
पनुन्नपच्चेक सच्च–३१३ (=प्रत्येक सत्य त्यागे)।
परचित्त ज्ञान–३१, (देखो चेत परिज्ञान भी)।
परयुद्गलविमुक्तिज्ञान–२४९।
परलोक–२०१-५।
परामृष्ट–२९४ (=निन्दित)।
परिग्रह–१११ (=जमा करना), ११२।
परिग्रह। स–९० (=बटोरनेवाला), ९१।
परिघ–४१ (=काष्ठप्राकार), १७७ (= अर्गल)।
परिचर्या–२७५ (=सत्सग)।
परिचारक–१६० (=सेवक)।
परिजन–१८३, २७५ (=नौकर चाकर)।
परिज्ञेय–३०२ (=त्याज्य)।
परिज्ञेय धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
परिणायक–१५४ (=कारबारी)।
परिणायक रत्न–१५७।
परित्त–११३ (=अणु)।
परिदेव–१०४ (=रोना पीटना), ११०, १९५ (का रूप)।
परिनिर्वाण–१३३।
परिव्राजक–२०, ७१, २२६।
परिमडल–१५० (=घेरा)।
परिवास–६५ (=परीक्षार्थ वास), १४५।
परिषद्–१७ टि०, १३२ (आठ), २९८ (आठ)।
परिष्कार–४८।
परिहाण–२६६ (=क्षीण)।
परिहारपथ–३, २५ (जुआ)।
पर्णाकार–११९ (=भेट)।

६३ (=आसन), १६४।
-८९ (=बँधा)।
–१८७ (=लक्ष्य)।
कल्याण–३४।
-१११ (=खोजना)।
२९४ (=निष्ठुर)।
१२५ (=जलाशय)।
-१९१ (=पेशाव)।
९१।
७५ (=बुराई)।
–(चार) २७१, २७२।
ष्ट–८३ (बुरी धारणा)।
–३५ (=दुष्ट)।
स्–६९ (=बुरा)।
-१२१ (=बदनीयत)।
–१३२ (=दुष्ट)।
द्धि शुद्धि प्रधानीय–३११ (नव)।
द्य–५१ (=सभासद्)।
–३७ (दर्बारी), ५२ (=सभासद्), ५३।
ा–१०० (= घुट्ठी)।
त्य–१९५ (=बाल पकना)।
दिक–२५९ (= बळा सुन्दर)।
ायिक–१९ (पिड बाँटनेवाला)।
ात–१३९ (=भिक्षा), २५६ (का प्रयोजन)।
ामह–३६ (पूर्वज)।
ास–२७२ (=पियक्कळ)।
ुन वचन–२८९ (=चुगली)।
ुनवाची–५२ (=चुगुलखोर)।
भेदन–१२५ (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय)।
डरीक–२९।
यक्रियावस्तु–२८४।
ुगल–(आठ) १२७ (=पुरुष, अठ), २८४ (तीन), २९० (तीन चतुष्क)।
ुगल प्रज्ञप्ति–(सात) २४८।
ुषक–२८० (=अफ़सर)।
पुरुष लक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
पुरोहित-पुत्र–१०६।
पूर्वजन्म–३१, ४०, ९५।
पूर्वजन्मस्मृति–६ (समाधिसे)।
पूर्वजन्मानुस्मृति–२५०।
पूर्व निमित्त–१०१, १०२ (गृहत्यागके)।
पूर्वनिवास–२६१।
पूर्वान्त कल्पिक–५, १४।
पूजा–२७ (के भेद)।
पृथक्–३०१ (=उल्टा)।
पृथग्जन–२ (अनाळी)।
पृथुभूत–२५४ (=विशाल)।
पेशकार–(=रगरेज)।
पोरसा–१५२ (=५ हाथ)।
पौरी–३६८ (=सभ्य, नागरिक)।
प्रग्रह–२८३ (=चित्तनिग्रह)।
प्रजा–१०५ (=सासारिक लोग), ११० (=जनता)।
प्रज्ञप्त–११८ (=विहित, कानूनी)।
प्रज्ञप्ति–७५ (=वचन-व्यवहार), ११५ (=रूढि), २४७ (छै), २५३ (=उपदेश), २५९ (व्याख्यान)।
प्रज्ञा–३०-३२, ४६ (=ज्ञान, शीलप्रक्षालित), ११५, २७२ (=बुद्धि), २८५ (दोत्रिक)।
प्रज्ञापन–११२ (=बोलना), ११३ (जतलाना)
प्रज्ञापित–७२।
प्रज्ञावादी–६५ (=केवल ज्ञानसे मुक्ति माननेवाले)।
प्रज्ञाविमुक्ति–११६ (=जानकर मुक्त), १२६, २४७, २४८।
प्रज्ञा सम्पत्ति–६४।
प्रज्ञास्कन्ध–७१, ७७।
प्रणव–३१ (बाजा)।
प्रणिधि–२९७ (=अभिलापा)।
प्रणिधिकर्म–६४ (=मिन्नत पूरा करना)।
प्रणिहित–२४८ (=एकाग्र)।
प्रणीत–१०६।
प्रणीततर–५५ (=उत्तम)।

प्रतिकूल मनसिकार–१९२।
प्रतिग्राहक–५२ (=दान लेनेवाला)।
प्रतिघ–११२ (=रोक), ११६ (=प्रति-हिंसा), २८६, ३११।
प्रतिघसञ्ज्ञा–२९९ (=प्रतिहिंसाका ख्याल)।
प्रतिज्ञा–१४४ (=दावा)।
प्रतिज्ञातकरण–२९६।
प्रतिपदा–२० (=मार्ग), १६७, २४८(चार)।
प्रतिपद्–५८ (=मार्ग), ६२, ७१, ९०, १८९, २८८ (चार)।
प्रतिलोम–११६।
प्रतिवानता–२८३ (=आलस्य)।
प्रतिष्ठा–२५२ (=नीव)।
प्रतिसख्यान–२८३ (=अकपज्ञान)।
प्रतिसल्लयन–२९५ (=एकान्तवास)।
प्रतिसस्तार–२८३ (=छिद्रपिधान)।
प्रतिहरण–७२ (प्रमाण)।
प्रतिहारक–२६२, २६७ (राजके अफसर) २६८ २६९।
प्रतीत्यसमुत्पन्न–११४ (कारण से उत्पन्न)।
प्रत्यय–६८ (हेतु), ७०, ११० (कारण), १११ (निदान), ११२, १०३, १०४।
प्रत्युत्पन्न–१२३ (वर्तमान)।
प्रत्युपस्थान– (खळा होना), २७४ (सेवा)।
प्रत्यूष–१२ (=भिनसार)।
प्रथम ध्यान–(देखो ध्यान)।
प्रदक्षिणा–३४।
प्रधान–१४२ (=निर्वाणके साधन), २४८ (सात), २८३ (=अभ्यास), २८७ (चार, देखो सम्यक्प्रधान भी)।
प्रधानीय अङ्ग–२९१, ३०४ (पाँच)।
प्रपंचसञ्ज्ञा सख्या–१८६।
प्रव्रजित–५८ (=साधु), ७५, ८४, १०३, १४९।
प्रभव–१८५ (=जन्म)।
प्रभूतजिह्व–२६१।
प्रमत्त–२७४ (=भूला)।
प्रमाण। अ–९१ (=महान्)।
प्रमाद–२४८ (=आलस्य), २७५(=भूल)।
प्रमादस्थान–५४।
प्रमुख–२६३ (=श्रेष्ठ)।
प्रवचन–३४, १४५ (=उपदेश)।
प्रवारणा–१६७ (=आश्विनपूर्णिमा)।
प्रवेणी पुस्तक–११८ टि० (कानूनकी पुस्तक)।
प्रवेदित–३१० (=साक्षात्कार किया)।
प्रश्न व्याकरण–(चार) २८९ (=सवालका जवाब)।
प्रश्रब्ध–६८ (=अचचल), ९१ (=शान्त)।
प्रश्रब्धि–७३ (=निश्चलता), २४८ (सवोध्यग)।
प्रसन्न–५२ (=स्वच्छ), ५४, ७८ (=श्रद्धालु), १६०, १८४, २४६।
प्रसाद–१३८ (=श्रद्धा)।
प्रहाण–१९३ (=विनाश)।
प्रहातव्य–३०२।
प्रहातव्य धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
प्रहीण–२३२ (=नष्ट)।
प्राणातिपात–२ (=जीवहिंसा)।
प्राणातिपाती–५२ (=हिंसारत)।
प्राणायाम–१९०।
प्रातिमोक्ष–१०८ (=भिक्षुनियम), ३१२।
प्रातिमोक्षसवर–१८६ (=भिक्षु-सयम)।
प्रातिहार्य–१३० (=युक्ति), २८५ (तीन)।
प्राभृत–५० (=पूँजी)।
प्रामाणिक–। अ–८८ (=अप्पाटिहीरक)।
प्रामोद्य–७३ (=प्रमोद)।
प्रावरण–२६४ (=ओढना)।
प्रासाद–७३, ७४।
प्रासादिक–१७।
प्रियभाषणी–२७३ (=जीहुजूर, खुशामदी)।
प्रेत–१०२ (=मृत), २२६।
प्रेतयोनि–१२७।
प्रेष्य–५२ (=नोकर)।
प्लीहा–१९१ (=तिल्ली)।
फलवीज–२४ (जिसके फलमे प्ररोह होता है)।

फल्गु-२३० (=हीर और छालके बीचवाला भाग)।
फाणित-५३ (=खाँड)।
बंजारा-२०७।
बध-२५२ (=युद्ध), २८२।
बन्ध-३५ (=ब्रह्मा)।
बधुजीवक-१३२ (=अळहुल)।
बन्ध्य-२४९ (=कूटस्थ)।
बल-१३४, २४७ (पाँच), २५५, २८९ (चार), २९६ (सात)।
बलभेरी-१२० टि०, (=सैनिक नगारा)।
बलि-५० (=कर), ११९ (=वृत्ति)।
बलिकर्म-५।
बहिर्धा-१९४ (=शरीरके बाहरी)।
बहुश्रुत-५१।
बादल गर्जना । सूखा-५।
बाल-१७ टि० (=अज्ञ), ४४ (=अज्ञ), १९९ (=मूर्ख), २५७ (=अजान)।
बालका कम्बल-६३।
बाह्य-आयतन-(छै) २९३।
बीजभत्ता-५१।
बुद्ध-२३ (=ज्ञानी), ४८ (के गुण), ५४ (=परम ज्ञानी), १०९ (=उपदेश), १२७ (=उपदेश), १२७ (ज्ञानी), १२९ (=उपदेश), १२७ (ज्ञानी), १२९ (की अनुस्मृति), २८८।
बुद्धचक्षु-१०६।
बोधिपाक्षिक-२४५ (धर्म)।
बोधिवृक्ष-१०६।
बोधिसत्व-९८, १०३।
बोध्यग-१३४, १९४ (सविस्तर-), १९४ (सात), २४७, २५५, २९५ (सात) ३०७।
ब्रह्मकायिक-३११।
ब्रह्मचर्य-१०८ (परिशुद्ध-)।
ब्रह्मचर्य-१३१ (=बुद्धधर्म)।
ब्रह्मचर्यवास-७५।
ब्रह्मदड-३८, १४६, ब्रह्मदेय ३८।
ब्रह्मदेय-४८।
ब्रह्मपूजा । महा-५, २७।
ब्रह्मविमान-७ (शून्य), २२३ (ब्रह्मलोक)।
ब्रह्मस्वर-१६३ (मे आठ बाते), १६१, १६८, २६८।
ब्रह्मा-७, ८ (सृष्टिकर्ता ईश्वर)।
ब्रह्माण्ड-१५।
ब्राह्मण-२४० (-वर्ण), २४४ (=पुराने), २४४ (की उत्पत्ति)।
ब्राह्मणदूत-५६।
ब्राह्मणमंडल-२४४ (का निर्माण)।
ब्राह्मण्य-६३।
भडन-२८२ (=कलह)।
भत्तवेतन-५० (=भत्ता और तन्खाह), २७५।
भत्तसम्मद-१५८ (=भोजनोपरान्त आलस)।
भद्रकल्प-९५।
भद्रलता-२४२।
भन्ते-१ (=स्वामी), २७१।
भव-१४ (उपादानसे), १०३ (=आवागमन) ११०, १११ (तीन), १८० (=ओघ), १९६ (=जन्म), २८२, २८४ (तीन), २८९।
भवतृष्णा-१५, ३०३।
भवदृष्टि-२८२ (=नित्यताकी धारणा)।
भवनेत्री-१२६ (=तृष्णा)।
भवसस्कार-१३१ (=जीवनशक्ति)।
भवास्रव-३२ (=जन्मनेकी इच्छा)।
भविष्यद्वाणी-२६।
भस्ससमाचार-२४९ (=वाचिक आचरण)।
भावना-(तीन) २८५।
भावनायोग्यधर्म-(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
भिक्षु-सघ-७५।
भिन्नस्तूप-२५२ (=नीव विना)।
भुजिस्स-१२१ (=सेवनीय)।
भूकम्प-५।
भूचाल-१३१।
भूतप्रेतकी कथा-४ (निपिद्ध)।
भूत-७२ (=यथार्थ), १३४ (उत्पन्न)।
भूत । महा-३० (पृथिवी, जल, तेज, वायु)।

भूतवादी–२६९।
भूतविद्या–४ (=यथार्थ)।
भूरिप्रज्ञ–१६२ (=बुद्ध)।
भेद–११९ (=फूट)।
भेरी–३१, १५२।
भैंसलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
भोग–२७४ (=सपत्ति)।
मचक–१४० (=चारपाई)।
मज्जा–१९१।
मजु–१०१ (कोमल), १६८।
मणिकुण्डल–४१।
मणिलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मडप–१६ टि०।
मडलमाल–९५ (=पर्णशाला)।
मद–(तीन) २८५।
मदनीय–१५३ (=मोह लेनवाले)।
मद्गुर–७३ (=मागुर मछली)।
माद्य–५४।
मध्यकल्याण–२३।
मध्यकल्याण–३४।
मनःप्रदूषिक–८ (देवता)।
मनसिकार। प्रतिकूल–१९१।
मनसिकार। धातु–१९२।
मनस्कार। योनिश –३०२।
मनःस्पर्श–१११।
मनाप–८९ (=प्रिय)।
मनाप–१०१ (=प्रिय),१७० अ–(=अप्रिय)।
मनोमय शरीर (अनोमा)–७४, ७५।
मंत्र–२६ (से जीभ बाँधना)।
मत्र–३८ (=वेद), ३९।
मंत्र–४५ (=वेद), ४६,
मन्त्र–१७१ (=वेद)।
मंत्रधर–३४, ४६, मत्रधर ४५-४६, ५१।
मत्रपद–८७।
मन्त्रबल–५, २७।
मन्त्री–२६२ (खत्री)।
मरण–१९५ (का रूप)।
मर्यादा–२४३ (=मेड)।
मर्षी–२९४ (=अमरखी)।
मल्लाह–(१५)।
मसारगल्ल–१५२ (रत्न)।
मह–१५० (=पूजा)।
महद्गत–१९३ (=महापरिमाण, महद्धिक वैशाली)।
महर्द्धिक–११७ (=वैभवशाली)।
महल्लक–३७ (=वृद्ध), ४९, ९०, ११८।
महाचोर–२८० (=डाकू)।
महाजन–२६५ (=जनता), महानस १९।
महापुरुषलक्षण–३४ (=सामुद्रिक), ४६, ४९ (वत्तीस), २६०-७०।
महापुरुषवितर्क–(आठ) ३१०।
महाभूत–७९ (पृथिवी, जल, तेज, वायु), ८० (महाभूत)।
महामन्त्री–२३५।
महामात्य–६७, ११७ (महामत्री)।
महावात–१३१ (=तूफान)।
महाशाल–५१ (=धनी)।
महाशाल–५२, ५३ (=धनी), महाशाल (धार्मिक)। ८६ (महाधनिक)।
महाशाल–१४३, १७५, २१९,
महिषयुद्ध–२५ (तीन)।
महेशाख्य–१४०, १४१ (पृथीनाख)१२४, १२५।
माणवक–१ (ब्राह्मण तरुण, शिष्य)।
माणवक–३५, ३६, ३७, ४३, (तरुण ब्राह्मण), ४९ (विद्यार्थी) ७६, ८६, ७७, १६९, २१०।
मात्रिकाधर–१३५।
मात्सर्य–१११ (=कजूसी), ११२, १८५, २९० (पाँच) १७९ कथा।
मार–३४, २३३, ६२ (मर्ग उपाय)।
मार्ग–६२ (=उपाय)।
मार्दव–२८३ (=कोमलता)।
मार्ष–१०८ (=समान व्यक्तिके लिये देवताओका सम्वोधन), १६३।
मिथ्यात्व–२९६ (=झूठ), ३०९ (आठ), ३१३ (दश)।

मिथ्यादृष्टि–५२ (=झूठे मत वाले), ८३ (=झूठी धारणा), २३८, २४१, ३१३ (=उल्टी मत)।
मिथ्याप्रतिपन्न–२५२ (=गलत रास्तेपर)।
मुखचूर्ण–४, २५ (पाउडर)।
मुखलेपन–२५।
मुढोली–१९१ (=डेहरी)।
मुडक–३५, ४१।
मुदिता–(भावना) ९१, १५७।
मुद्रिक–१९ (=हाथसे गिननेवाला)।
मुर्गालक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मुष्टियुद्ध–२५।
मुँहसे आग नकालना–५।
मूज–३०।
मूर्छा–२०५ (=मोहित करना)।
मूर्छित–८९ (=बेखबर)।
मूर्धाभिषिक्त–२७, ६४, १६३, २३४ (Sovereign)
मूषिकविषविद्या–४, २६।
मूलबीज–३ (जिसकी उत्पत्ति बीजसे होती है), २४।
मृगचक्र–४ (एक प्रकारका जादू), २६।
मृगलक्षण–३१, २६।
मृदग–३१, १५२।
मृद्ध–१९३ (=चित्तका आलस्य)।
मृषावाद–२८९ (=झूठ)।
मृषावादी–५२ (=झूठा)।
मेद–१९१ (=वर)।
मेरय–५४, ६२ (=कच्ची शराब)।
मेषलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मैत्री–(भावना) ९१, १५७, २३८, २७५, २८३ (शौचेय)।
मोक्खचिक–३, २५ (जुआ)।
मोघ–७० (=निरर्थक), ७४ (=मिथ्या)।
मौनेय–(तीन) २८५ (=वाक्-सयम)।
यक्ष–१६१ (=देवता), १६५, २८०।
यज्ञ–५१ (के आठ परिष्कार), ५२ (की सोलह सम्पदा)।
यज्ञवाट–५३ (=यज्ञस्थान), ५५ (० मडप)।
यज्ञसम्पदा–४८ (=यज्ञविधि), ५० (० परिष्कार), ५३ (त्रिविध)।
यतात्मा–२१ (=सयमी)।
यथाकारी–२५८।
यथावादी–तथाकारी १६८।
यद्भूयसिक–२९६।
यम–२०१ (नरकपाल)।
यमक–१४० (=जुळवाँ)।
यान–४२ (=रथ), ६७, २२६ (=युद्ध-यात्रा)।
याम–१४४ (=४ घटा)।
युद्ध–३ (पशुओके)।
यूप–५२ (=यज्ञस्तम्भ)।
योग–(चार) २८९ (=मिलना), ३०४।
योगक्षेमप्राप्त–२५४ (=मुक्त)।
योजन–५०, १५४।
योनि–(चार) २८९।
योनिसो–४४ (=ठीकसे)।
रक्तज्ञ–१२१ (=धर्मानुरागी), २५४।
रजोधातु–२०।
रत्न–(सात) ९९ (चक्र, हस्ती, अश्व, मणि, स्त्री, गृहपति, पुत्र), १५३-५४, २३३, २६०।
रथकी दौड–३, २५।
रथिक–१९ (सारथी)।
रभस–३५ (वकवादी)।
रसग्गसग्गी–२६६।
रसतृष्णा–१११।
राजदाय–४८।
राजदेय–३४।
राजन्य–२०१-११ (=क्षत्रिय)।
राजपुरुष–५० (=राजाका नौकर)।
राजर्षि–२३४।
राजा–११८ (गण-पति)।
११९ (प्रजातत्रके सभासद्)।
राजाधिकारी–२६२, २६७ नैगम, जानपद,

गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, भोग्यकुमार)।
राजा सबंधी शुभाशुभ–४, ५।
राजकर्ता–१७०।
राज्याभिषेक–१७०।
राशि–(तीन) २८४।
रिक्त–८८ (=व्यर्थ)।
रूप–(तीन) २८४, ३०३।
रूपकाय–११२ (=रूपसमुदाय)।
रूपतृष्णा–१११।
रूपभव–१११ (=अपार्थिव लोक)।
रूप-संज्ञा–१९९ (=रूप-सबधी ज्ञानका अनुभव)।
रूपी–३० (=भौतिक), ७३ (चार महाभूतोके), ३१० (=रूपज्ञान)।
रोगी–२८।
लक्षण–४ (विद्याये), २६ (विद्याके भेद-) ९८ (युद्धके गर्भप्रवेशका), ९९ (बुद्धके प्रसवका)।
लघु-उत्थान–११७ (=फुर्ती)।
लघुक–३५ (=क्षुद्र)।
लटुकिका–३६ (=गौरय्या)।
लयन–१६ (=गुफा)।
लसिका–१९१ (=शरीरके जोळोकी चर्बी), २४८।
लिंग–११२ (=आकार)।
लेख–१७ टि० (=पत्र)।
लोक–७०, ७१ (शाश्वत), १९० (=ससार या शरीर)।
लोकधातु–९८ (=ब्रह्माण्ड), ९९, २५१।
लोकविद्–२३, ३४, ४८।
लोकायतशास्त्र–३७, ४६।
लोह–१४८ (=ताँबा)।
लोहद्रोणी–१४१ (=ताँबेकी दोन)।
लोहित–१२८ (=लाल)।
लोहिताङ्क–१५३ (मणि)।
वंकक–३, २५ (जुआ)।
वचीपरम–२७३ (=वात बनानेवाला)।
वणिक्‌पथ–१२५ (=व्यापार-मार्ग)।
वणिब्बक–५१ (=वन्दीजन)।
वत्तक–४ (के लक्षण)।
वद्य–३१२ (=दोष)।
वमन–५।
वर्ण–३१, ४५ (=रग), २६६ (=रूप), २४० (चार)।
वर्णवान्–२४४ (=सुन्दर)।
वल्वज–११० (=भाभळ)।
वशवर्ती–७, ९० (=अपरतन्त्र, जितेन्द्रिय), ९२।
वशी–२२३ (=स्वामी)।
वसा–१९१ (=चर्बी)।
वस्तिगुह्य–१०० (=पुरुष इन्द्रिय), २६०।
वस्त्रलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
वाणलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
वाणिज्य–५०।
वाद–७२ (=मत), ७३ (-दृष्टि, मत), २५४ (=आक्षेप)।
वास्तु–१२५ (=घर, वास)।
वास्तुविद्या–२६।
वाहन–२७९ (=सवारी)।
विकाल–२४ (=मध्याह्नके वाद)।
विचार–१९७ (-भेद)।
विचिकित्सा–२८, ८९ (=दुविधा), १७३, १९३ (=सशय), २३० (=सन्देह)।
विज्ञान–३० (=मन), १०४, ११०, ११२ (=चित्तधारा, जीव), १३२ (=चेतना), १९६ (छै)।
विज्ञान-आयतन–१३, ११५ (योनि)।
विज्ञानकाय–(छे) २९३।
विज्ञानशरीर–१२।
विज्ञानस्रोत–२४८ (=भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनो कालोमे वहती जीवनधारा)।
विज्ञानस्थिति–११५ (=योनियाँ ७—नाना काया नाना सज्ञा आदि), २८८ (चार), २९६, ३०७ (सात)।
वितथ–११७ (=अयथार्थ)।

वितर्क–१०३ (=ख्याल), १५७, १९७ (के भेद)।
वितान–१४७ (=चँदवा)।
विद्या–४ (जादूमन्तर), २६ (मत्रपूजाके भेद), २८५, ३०३ (तीन)।
विद्या । हीन–४।
विद्याचरण–३९।
विनय–१३५, २९५ (=त्याग)।
विध–(तीन) २८४।
विनयधर–१३५।
विनाभाव–१५८ (=वियोग)।
विनिपात–४२ (=दुर्गति), ११० (=पतन)।
विनिपातिक–११५ (=नीच योनिवाले, पिशाच २८४ (अधमयोनि), २९६ (=पापयोनि)।
विनिश्चय–१११ (=दृढ विचार), १२० टि० (=इन्साफ)।
विनिश्चयमहामात्य–११८ (=न्यायाधीश, जज)।
विनिश्चयशाला–१७ टि० (=अदालत)।
विन्दु–१६८ (=ठोस)।
विपरामोस–२६९ (=डाका)।
विपरिणत–१५९ (=वदल गया)।
विपश्यना–२८३ (=प्रज्ञा), ३०३।
विपिन–९० (=जगल)।
विपाक–१० (=फल)।
विप्रतिसार–५२ (=चित्तको बुरा करना), १२९ (=अफसोस)।
विप्रसन्न–१५४ (=स्वच्छ)।
विभवदृष्टि–२८२ (=उच्छेदकी धारणा)।
विमान–२२३ (=लोक)।
विमति–२५१ (=सन्देह)।
विमुक्ति–२४७।
विमुक्ति-आयतन–(पाँच) २९२,३०५।
विमुक्तिपरिपाचनीयसज्ञा–२९३।
विमुक्तिवादी–६५।
विमोक्ष–(आठ) ११६, १३२, २२४, २९८, ३१०।
विरज–३३ (मलरहित)।
विराग–१९३।
विरूढि–११३ (=वृद्धि)।
विरेचन–५, २७ (जुलाव)।
विरेचन । ऊर्ध्व–५।
विरेचन । शिरो–५।
विवर–२१ (=खाली जगह), १२३ (=सन्धि)।
विवर्त–६, ३१ (=सृष्टि), २२३ (=लोककी उत्पत्ति), २४१ (=सृष्टि), २४२ (=उद्घाटन, २४९ (=प्रादुर्भाव)।
विवादमूल–(छै) २९४।
विवाह–५ (मे सायत वतलाना), ३९।
विविक्त–१७२ (=एकान्त, निर्जन)।
विशारदता–८५।
विशिखा–४, २५, ६७, २२६ (=चौरस्ता)।
विशेष–१६२ (=मार्गफल)।
विशेषभागीयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
विषविद्या–४।
विसयोग–(चार) २८९ (=वियोग), ३०४।
विहार–३५, १४२ (=कोठरी), २८५ (तीन)।
वीतराग । अ–१४७।
वीमसासमाधि–२३९।
वीर्य–१२९ (=मनोवल), २४८ (सवोद्यग)।
वीर्यसमाधि–२३९।
वृक्क–१९१।
वृषभयुद्ध–२५।
वृषभलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
वृषली–२४३ (=शूद्री)।
वृष्टि–५ (फलाफल)।
वेद–३४ (तीन), ४६।
वेदन–११४ (=अनुभव)।
वेदना–१४, १०४ (=अनुभव), १९० (सुख आदि), १९२ (का रूप), १९६ (-विशेष), २८४, ३०३ (तीन), २८६ (=अनुभव)।
वेदनाकाय–(छै) २९३।
वेदनानुपश्यना–१९२।

वेदित—११५ (=अनुभव किया गया)।
वेष्ठन—४७ (=साफा)।
वैदूर्यमणि—९८ (=हीरा), १५२, १५६ (देखो हीरा भी)।
वैद्यकर्म—५, २७।
वैयाकरण—३४, ४६।
वैयावर्त्य—२८९ (=सेवा)।
वैश्य—२४० (वर्ण), २४४ (की व्युत्पत्ति)।
वोसग्ग—२७५ (=छुट्टी)।
व्यक्त—५१ (=पडित), १२३, १३०, १९९।
व्यजन—४१ (=तर्कारी), २५५ (वाक्य-योजना)।
व्यजनसहित—३४।
व्यय—१०५ (=विनाश), ११४ (=क्षय), १९१।
व्ययशील—११४ (=विनाशशील)।
व्यवकीर्ण—११४ (=मिश्रित)।
व्यवदानीय—७३ (=शोधक)।
व्यसन—९० (=आफत), २९१ (पाँच)।
व्यवसर्ग—२८७ (=त्याग)।
व्यवहारिक—११८ टि० (=न्यायविभागका अधिकारी)।
व्याकरण—१६० (=अदृष्ट कथन)।
व्यापन्नचित्त—५२ (=द्रोही)।
व्यापाद—२८, ८९ (=द्रोह), ९०, ९१, १५७, १९७, २३० (=हिसाभाव), २३७ (प्रति-हिसा), २८३ (=द्रोह)।
व्यापारी—८० (सामुद्रिक-)।
व्यायाम—६२ (=उद्योग) १०० (=चौळाई)।
शकट—१२९ (=गाळी)।
शख—२३, ३१, २०५।
शंखध्मा—९१।
शठ—११९ (=मायावी)।
शब्द—४२ (=यश), १४३ (दस), १५२ (दस)।
शब्दतृष्णा—१११।
शमथ—२८३ (=समाधि), ३०३।
शयनासन—१२१ (=कुटी), २८८ (=निवास)।
शय्या—३, २५ (के भेद)।
शरण—२७४ (=रक्षक)।
शरपरित्राण—४, २६ (=मत्रसे वाण रोकना)।
शरीर—१४९ (=अस्थि), १५०।
शरीरपरिग्रह—७४ (मनोमय-, अरूप-, स्थूल-शरीर), ७५।
शरीररक्षक—२६२।
शलाकहस्त—३ (जुआ)।
शस्त्र—२१।
शस्त्रान्तरकल्प—२३७।
शाक—३६ (=सागौन)।
शाक्य—३६ (=समर्थ)।
शान्तिकर्म—६४।
शालिमासौदन—२३७ (=पोलाव)। २४३ (=धान)।
शाश्वत—६, ७, ८, ७० (=नित्य), २५८।
शाश्वतवाद—६ (चार), २४९।
शाश्वतवादी ७।
शाश्वतविहार—(छै) २९५।
शासन—१६ (=धर्म), ८४ (=उपदेश), ८५ (=धर्म), १०७, १२० टि० (=खवर), १७८ (=धर्म), १८८ (=धर्म)।
शास्ता—१८ (=उपदेशक), २३, ३४, ८४ (=गुरु), १३९, २९२ (=धर्माचार्य)।
शिक्षा—३४ (=निरुक्त), २८५ (तीन), २९५ (=भिक्षुनियम)।
शिक्षापद—५४ (=यम-नियम), ६४ (=आचार नियम), १४६ (=भिक्षुनियम), २३९ (=नियम), २९० (पाँच)।
शिरोविरेचन—२७।
शिल्प—१९ (विस्तारसे), १२० टि० (=विद्या)।
शिल्पस्थान—१९ (=विद्या, कला)।
शिवविद्या—४, २६ (मत्र)।
शिविका—१०२ (=अरथी)।
शील—२४-२८ (सविस्तर), ४६ (=आचार), ४६ (प्रज्ञाप्रक्षालित), ६४ (=सदा-चार)।

शीलवान्—४५, ५३ (=सदाचारी)।
शीलविपत्ति—२८३ (=आचार-दोष), २९१।
शीलविशुद्धि—२८३ (=आचारशुद्धता)।
शीलव्रत-उपादान—१११ (=व्रत-आचारमे आसक्ति)।
शीलव्रतपरामर्श—१९४ टि० (=शील और व्रतका ख्याल)।
शीलसमाचार—२४९ (=शीलसम्बन्धी आचरण)।
शीलसम्पत्ति—६४।
शीलसम्पदा—२८३ (=आचारकी पूर्णता)।
शीलसम्पन्न—२४, ४०, ७७ (=सदाचारयुक्त)।
शीलसवर—२७।
शीलस्कन्ध—२७, ६४, ७७ (=उत्तम सदाचार-समूह)।
शुक्लधर्म—२९५ (=पुण्य)।
शुद्धावास—(पाँच) २९२ (-देवलोक)।
शुभ—८१।
शुभ। अ—८१।
शुभाशुभफलशास्त्र—४।
शूकरमार्दव—१३६ (सुअरका मास)।
शूद्र—४१, २४० (वर्ण), २४४ (=क्षुद्र)।
शैक्ष—१६८ (=निर्वाणके मार्गपर आरूढ)।
शैवाल—६३ (=सेवार)।
शोक—१९२ (का रूप)।
शौचेय—२८३ (=मैत्रीभावना), २८५ (=पवित्रता, तीन)।
शौंड—२७३ (=मस्त)।
श्रद्धानुसारी—२४८।
श्रद्धाविमुक्त—२४८।
श्रमण—३५, ४१, ४४, १०८, २४५ (की उत्पत्ति)।
श्रमण ब्राह्मण—६, ८, ९, १४, १९, ३४, ७७, ८२, ८४, ९८, १८७, २१०, २५८।
श्रमणभाव—२३ (=साधु होना), ८४।
श्राद्ध—३८, ३९, २७४।
श्रामण्य—१९ (=भिक्षुपन), ६३, १२२, २८८ (चार)।
श्रामण्यफल—(४) ३०४।
श्रामण्यफल प्रत्यक्ष—२१, २२, २९, ३२।
श्रावक—(=शिष्य) ९६, १२७, १८५, १८८ २५४, २५५।
श्राविका—१३३ (=शिष्या)।
श्रुत—२६५ (=विद्या), २७५।
श्रयस्—६९ (=अच्छा)।
श्रोत्र—३१ (=कान)।
श्रोत्रस्पर्श—१११।
श्मशान—२२२।
श्मशानयोग—१९२।
षडायतन—१०४ (छै—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन), १०५।
सकृदागामी—५७, ८४, १२६, १२७, १४५, १६०, १६२, १७५, २४९, २५७।
संकल्प—(दो त्रिक) २८३।
सक्लेश—९० (=चित्तमल), ३०३।
सक्लिष्ट—९२ (=मलिन)।
सक्लेशिक—७३ (=चित्तमल उत्पन्न करनेवाले)।
सख्या—१८७ (=ख्याल), २५०।
सख्यान—३१४ (=समझना)।
सगणिकाराम—१२१ (=भीळको पसन्द करने-वाला)।
सग्रहवस्तु—(चार) २८९।
संग्राहक—२७६।
सघ—१८, ५४ (परमतत्वका रक्षक समुदाय), १२१, १२७ (-अनुस्मृति), २८८ (-अनु-स्मृति)।
सघाटी—१३९, १९१ (भिक्षुकी दोहरी चादर)।
सघी—४९ (=सघाधिपति)।
सज्ञा—२८६ (=ज्ञान)।
सचेतना—१९६ (=ख्याल)।
सचेतनाकाय—(छै) २९३।
सजधज—४, २५ (के भेद)।
सज्ञा—११ (=ख्याल), ६८, ७०, ७५ (=वचन व्यवहार), ७५, ११५ (=नाम), १९६ (=अनुभव), २२४ (=होश), २८३ (दोत्रिक), २९८ (=ख्याल), २९६, ३०७ (सात), ३११ (=ख्याल), ३१२ (नव), ३१४ (दश)।

...ाकाय—(छैं) २९३।
सचेतनाकाय—७० (सज्ञाओमे श्रेष्ठ)।
सजधज—(छैं) २९३।
सज्ञावेदयितनिरोध—१४६, ३११ (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)।
सज्ञी—२० (होशवाला)।
सडास—२०१ (=गूथकूप)।
सत्काय—२८४।
सत्पुरुष-धर्म—(सात) २९५, ३०७।
सत्पुरुषसहवास—३०३।
सत्यसन्ध—२४।
सत्व—७ (=प्राणी), १२ (=जीव), १११, २३१, २३६।
सत्वनिकाय—१९५ (=योनि)।
सत्वावास—(नव) १०९ (=योनि), २९९ (=जीवलोक), ३११।
सद्धर्म—(सात) २९५, ३०७।
सनका कपडा—६३।
सन्थागार—१७२ (=देखो सस्थागार)।
सन्धि—१२३ (=विवर), २४६।
सन्निक—३, २५ (जुआ)।
सन्निपात—९५ (=सम्मेलन), ११८(=वैठक)।
सप्त-उत्सद—२६१, २६२।
सब्रह्मचारी—१२१ (=गुरुभाई), २५५।
सभासद—२३५ (देखो पार्षद भी)।
समज्या—२७२ (नाच-तमाशा)।
समतित्तिक—८९ (=पूर्ण)।
समवर्त—१०० (समान)।
समवर्त्तस्कन्ध—२६६।
समादपन—५२ (=समुत्तेजन)।
समादान—२८८ (=स्वीकार)।
समाधि—६ (चित्त-), २८, २९, १०९, १३० (=एकागता), १७२, २३९, २४८ (=सम्वोध्यग), २८५, ३०३ (दोत्रिक), ३०४ (चार)।
समाधि । सम्यक्—(पाँच) ३०४।
समाधि-परिष्कार—(सात) २९५।
समाधिभावना—(चार) २८६।
समाधिस्कन्ध—७७।
सामडपत्त—६९ (=समाधि), १४६, १४७ (चार), २८३ (=ध्यान)।
समापत्ति । दर्शन—२४८।
समारम्भ—५३ (=क्रिया)।
समाहित—२८ (=एकाग्र)।
समीहित—४१ (=चिन्तित)।
समुदय—७ (=उत्पत्ति), ११ (उत्पत्ति स्थान), १४, १०४, ११० (=उत्पत्ति), १११ (=हेतु), ११२, ११६, १९१, १९३ (=उत्पत्ति), १८५ (=जन्म)।
समुदयधर्म—४३ (=उत्पन्न होनेवाला), १८९।
समुद्र—८१।
समृद्ध—८१।
सम्पद्—७८, १४३, १५६ (महानुभाव), २०८। सम्पद् (पाँच) २९१।
सप्रजन्य—२७ (सावधानी), १२७, १९० (=अनुभव), १९१ (का रूप), ३०३।
सप्रज्ञ—१२७।
संप्रज्ञात समापत्ति—६९ (समाधि)।
संप्रलाप—२८९ (=बकवाद)।
संप्रवारित—४३ (=सन्तर्पित)।
सम्प्रसाद—१३, ६८ (प्रसन्नता), २५१ (=श्रद्धा)।
संबुद्ध—१८ (=परमज्ञानी), १२२, १२७।
सम्बोधि—५७, १२२, १२३ (=परमज्ञान), १६१ (=बुद्धत्व), १७५, २४६, २६६।
संबोध्यग—(सात) १२१ (=परमज्ञान प्राप्ति-के साधन), (देखो बोध्यग भी)।
सम्मत—२४४ (=निर्वाचित)।
समुखविनय—२९६।
समोदक—४९।
समोदन—३५, ४२ (=कुशलप्रश्न), ८६।
सम्यक्—३१४(=यथार्थ) सम्यक् कर्मान्त ५८।
सम्यक्त्व—(आठ) २९६।
सम्यक् प्रधान—१३४, २४७, २५५, २८६ (चार), देखो प्रधान भी)।
सम्यक् संकल्प—५८

सम्यक् समाधि-५८, ३०४, ३०५ (पाँच)।
सम्यक्स्मृति-५८।
सम्यग्-६२ (=ठीक)।
सम्यग् आजीव-५८।
सम्यग्दृष्टि-५२ (सत्यमत), ५८, ६२ (=ठीक धारणा), ८३ (=अच्छी धारणा), १९७।
सम्यग्वचन-५८।
सम्यग्विसृष्टैषण-३०१।
सम्यग्व्यायाम-५८।
सयोजन-(दश) ५७ वचन, १६०, १९४ टि० (दश), २५७ (तीन), २८४ (तीन), २९० (अवरभागीय, ऊर्ध्वभागीय), २९६ (सात)।
सरक-१७ टि० (=कटोरा)।
सरीसृप-११० (=रेंगनेवाला)।
सर्पविद्या-४।
सर्पिष-७५ (=घी)।
सर्पिष्मण्ड-७५ (=घीका मार)।
सर्वद्रष्टा-७।
सवर-२७ (=रक्षा), १८७ (=सयम)।
सवर्त-३१, २४१ (=प्रलय), २४९।
सवर्तकल्प-६ (प्रलय)।
सवास-३६ (=मैथुन)।
सविग्न-१७२ (=भयभीत)।
सवृत-२१ (=आच्छादित)।
सवेजनीय-२८३ (=वैराग्य करनेवाला)।
सलाकहस्त-२५ (जुआ)।
सलोकता-८७, ८८ (=एक स्थान निवास), ९१।
ससरण-१२६ (=आवागमन)।
सस्कार-१५९, १३४ (=कृतवस्तु), १४६ (=उत्पन्न वस्तुये), १९० (गति, क्रिया), २८४ (तीन)।
सस्कृत-११४ (कृत, कारणसे उत्पन्न), १४१ (=कृत वस्तुये), १४२।
सस्थागार-३५, १४७, २८१ (=प्रजातन्त्र-भवन)।
सहव्यता-८८ (=सहभोजन)।
सहसाकार-२६९ (खून आदि कार्य)।
साक्षात्करणीयधर्म-(५५) २८९, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३१०, ३१२, ३१४।
साक्षात्कार-५७ (=अनुभव)।
साखिल्य-२८३ (=मधुर वचन)।
साचियोग-२६९ (=कुटिलता)।
सात-१९६ (=अनुकूल)।
सान्तअनन्तवाद-८।
सादृष्टिक-२० (=प्रत्यक्ष), १२७ (इसी शरीरमे), १६५।
सापतेय्य-५३ (=धन-धान्य)।
सामीचि-२५३ (=ठीक मार्ग)।
सामुद्रिक-२५ (कथा)।
सामुद्रिक व्यापारी-८०।
सारथी-१०१।
साराणीयधर्म-(छै) २९३, ३०५।
सार्थ-१३७ (=कारवाँ), २०७।
सिहनाद-६५, १२२, २३२।
सिहपूर्वार्द्धकाय-२६६।
सुख-उपपत्ति-(तीन) २८५।
सुखलोक-७२।
सुखल्लिका-२५६ (=आरामपसन्दी)।
सुगत-(=बुद्ध) १८ (=सुन्दर गतिको प्राप्त), ३४, ७१।
सुगति-१२४ (=स्वर्गलोक)।
सुगीता-३९।
सुचरित-(तीन) २८३।
सुजा-४५ (=यज्ञ-दक्षिणा), ४६, ५१।
सुप्रतिवेध-१०९ (=अवगाहन)।
सुप्रतिष्ठितपाद-१००, २६०, २६१।
सुप्रवेदित-२८२ (=ठीकसे साक्षात्कार किया गया)।
सुभाषित-३९।
सुरा-५४।
सुवर्णकार-३०।
सूकरमद्दव-१३६।
सूक्ष्म-११३ (=क्षुद्र, अणु)।

सूक्ष्म-छवि–२६०, २६४।
सूत्रधार–११८ टि० (सर्कारी अफसर)।
सूद–१९ (=पाचक)।
सूर्यग्रहण–५।
सेना–५१, १५४ (चतुरंगिनी)।
सेनापति–११८ टि०।
सौमनस्य–१६२ (=प्रमोद), १८६, १८९ (=सन्तोष)।
सौमनस्य-उपविचार–२९३।
सौरत्य–२८३ (=आचारयुक्तता)।
स्कन्ध–(=समूह) ७७ (तीन—शील-, समाधि-, प्रज्ञास्कन्ध), १५३ (=तना, धळ) १९३ (का रूप), १९४ टि० (पाँच), २९० (पाँच)।
स्कन्धबीज–३, २४ (जिसकी गाँठसे प्ररोह निकलता है)।
स्तूपार्ह–१४२ (=स्तूप बनाने योग्य)।
स्त्यान-मृद्ध–२८, ८९ (=आलस्य), १९३ (=शरीर और मनका आलस्य)।
स्त्रीलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
स्थविर–(=वृद्ध) १२१, २८४ (तीन)।
स्थविरतर–१४६ (=अधिक वृद्ध)।
स्थाता–२६७ (=विश्वासपात्र)।
स्थानान्तर–१२० टि० (=पद)।
स्थालिपाक–३८, ३९।
स्थितधर्मा–२५७ (=धर्ममें स्थिर)।
स्थूण–४८ (=खम्भा)।
स्थूल–८१।
स्नातक–१७१, १७५।
स्नानचूर्ण–२९।
स्नायु–२०४ (=नस), २०५।
स्पर्श–६९ (=प्राप्ति), १०४ (=इन्द्रिय और विषयका मेल), ११०, १११ (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनके), ११२ (=योग), २५६ (=आघात)। ३०२।
स्पर्शकाय–(छै) २९३।
स्पर्शायतन–१४ (=विषय)।
स्प्रष्टव्य–१११ (तृष्णा)।
स्फीत–१४३।
स्मृति–१४१ (=होश)।
स्मृतिप्रस्थान–(चार) १३४, १९०, २४७, २५५, २५९, २८५, ३०४।
स्मृतिमान्–२४।
स्मृतिविनय–२९६।
स्मृति-सप्रजन्य–२७, २९, ७३, २८३ (=ज्ञान, ख्याल), ३०३।
स्रोतआपत्ति–१७ टि० (मार्गफल)।
स्रोत आपत्ति-अंग–२८८ (दो चतुष्क)।
स्रोत आपत्तिफल–८४।
स्रोत आपन्न–५७, १२७, १४४, १४५, २४९, २५७।
स्वकसंज्ञी–६९ (अपनी ही संज्ञा ग्रहण करने-वाला)।
स्वप्नविद्या–४, २६।
स्वस्ति–३७ (=मंगल)।
स्वाख्यात–१२७ (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) २५३ अच्छी तरह कहा गया)।
हनु–१०० (ठोळी)।
हन्ता–२१।
हवन–(देखो होम)।
हस्तरेखा विद्या–५, २६।
हस्ति-आरोहण–१९ (हाथीकी सवारी, महा-वतगरी)।
हस्तियुद्ध–३, २५।
हस्तिलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
हानभागीयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३। (=अव-नतिकी ओर ले जानेवाली बातें)।
हीन–४ (=नीच)।
हीन। अ–९८ (=अपूर्ण)।
हीरा–३०।
हेतु-प्रत्यय–(आठ) ३०८ (आदि ब्रह्मचर्य-के भी)।
हेमन्त–१०१ (ऋतु)।
होम–४ (के भेद), २६ (के भेद)।
हिरी–(=लज्जा) २६५, २८३।